गुरुकुल पत्रिका

चैत्र
२००७

वर्ष ३
अङ्क ८

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वर्ष ३
अङ्क ८

चैत्र
२००७

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

संस्कृत भाषा	श्री वासुदेव शरण अग्रवाल
विदेशों में आम भेजना	श्री रामेश बेदी
गुप्तकालीन मूर्तिकला	श्री कृष्णदत्त वाजपेयी
धूम्रपान से हानियां	श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ८) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

अग्निहोत्र क्यों करना चाहिए ?

श्री देवराज विद्यावाचस्पति

शश्वद्ध वा एष न सम्भवति योऽग्निहोत्रं न जुहोति तस्मादग्निहोत्रं होतव्यम् ।

श० ब्रा० २. २. ४. ८ ।

वह मनुष्य कभी फूलता फलता नहीं जो अग्निहोत्र नही करता, इस कारण अग्निहोत्र करना चाहिए।

संसार में विचारों का शासन है। मनुष्यों के मन में विचार उठते हैं। विचारों के ऊपर मनुष्य अपनी जान खेल जाते हैं। विचारों के ऊपर मनुष्य अपना तन, मन, धन न्योछावर कर देते हैं। विचार अग्नि हैं। मनुष्य विचारों का पुतला है। मनुष्य अग्नि का पुञ्ज है। जिस मनुष्य से विचारों का उद्गम नहीं होता, वो मनुष्य बुझा हुआ है, वह मनुष्य मनुष्य नहीं—वह केवल पशु है—दूसरी अग्नियों की भोग्य सामग्री है।

विचारवान् मनुष्य अपने मन के द्वारा यज्ञ करता है। अर्थात् वाक् का प्रयोग करता है। वाक् यज्ञ में सत्य का व्रत धारण करता है। कहा है—

'चक्षुर्वै सत्यम् ।'

जो बात देखा है—स्वयं अनुभूत है वह सत्य है। जो सत्य का व्रत धारण करता है वह कहता है देखी हुई बात को अपनी वाणी से कहूँगा, अपनी अनुभव की हुई बात दूसरों को बतलाने के लिये वाणी का प्रयोग करूंगा। वाणी जिस रूप में प्रकट होती है वह रूप वाणी को मन के द्वारा प्राप्त होता है। वाणी से मनुष्य के मन का भान होता है। मन का स्वरूप मनुष्य की वाणी में उतर आता है। वाणी की प्लेट पर मन का फोटो खिंच जाता है। मन के अन्दर जो २ विचार उठते हैं उन विचारों का स्वरूप ही मन का स्वरूप होता है। किसी विचार की अत्यन्त प्रबलता वा टिकाव का परिणाम यह होता है कि वह विचार वाणी के रूप में फूट निकलता है। विचार अग्नि हैं वे वाणी का रूप धारण करके मुख से प्रकट हो जाते हैं।

'अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत् ।'

मनुष्य जब व्रत धारण करता है तो अपने कर्मक्षेत्र को सीमित करता है अपनी सीमा के केन्द्र में केन्द्रित करता है। ऐसा करने से ही वह अपने व्रत का पालन कर सकता है और इसी प्रकार ही उसका यज्ञ पूरा हो सकता है। अपनी क्रियाओं को केन्द्रित करने से वा एक लक्ष्य में बांधने से मनुष्य की आत्मा में एक प्रकार का बल उत्पन्न हो जाता है जिसका नाम श्रद्धा है। इस श्रद्धा बल के भरोसे पर ही व्रत का पालन होता है व्रत में सफलता मिलती है। जिस श्रद्धा बल के आश्रय मनुष्य को अपने व्रत में—अपने निश्चित कार्य में—सफलता मिलती है वह श्रद्धाबल ही मनुष्य के आत्मा के स्वरूप को प्रकट करता है।

'यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।'

श्रद्धा के द्वारा मनुष्य की व्रत में (कार्य में) तत्परता का नाम ही दीक्षा है। मैं इस कार्य को कर ही डालूंगा

करके ही छोड़ूंगा—इस प्रकार की धी का (प्रबल बुद्धि का वा विचार का) अपने मन में बैठा लेना ही दीक्षा है। धियः क्षयः, धीक्षयः, धीक्षयः एव धक्षा, धीक्षा एव दीक्षा। व्रत ग्रहण करना व्रत के प्रति मनुष्य की श्रद्धा को प्रकट करता है। श्रद्धा ही दीक्षा है। श्रद्धा के द्वारा मनुष्य अपने आपको व्रत के लिये (कर्तव्य के लिये) अर्पण कर देता है, अपने आपका आहुत कर देता है, अपने आप को हविः बना कर व्रत की अग्नि में छोड़ देता है। व्रत का पालन करते हुए मनुष्य का तन मन धन स्वाहा हो जाता है परन्तु उसकी आत्मा अमर होकर उज्वल होकर उस अग्नि में से निकल जाती है।

इस प्रकार अग्नि में अपना बीज वपन करने से वा अग्निहोत्र करने से प्रजा के रूप में जो अपना उज्वल रूप तैयार होता है उस से मनुष्य संसार में फूलता फलता है, ख्याति प्राप्त करता है अपने कार्य का आगे प्रसार करता है। वाक्रूप में प्रकाशित हुई उसकी अपनी महिमा सर्वत्र फैल जाती है। जहां २ उसकी महिमा फैलती है वहां २ उसका आधान होता है। एक नये विचार को फैलाने वाले मनुष्य की अपनी महिमा का प्रसार ही उसका स्वाहा (स्वो वै मा महिमाऽऽह इति स्वाहा) उच्चारण है। स्वाहा बोलने से उस देवता की महिमा प्रकट होती है जिस के लिये स्वाहा उच्चारण किया जाता है। उसकी महिमा के क्षेत्र में आये हुए मनुष्य उस व्रतपति की अग्नि में अपना २ हवन कर डालते हैं—अपने आपको उसके मिशन के अर्पण कर देते हैं। इस प्रकार वह व्रतपति अग्नि सूर्य के समान सर्वत्र चमकता है. अपने यश के द्वारा वायु के समान सर्वत्र गति करता है और अपने विचारों के द्वारा अपने क्षेत्र के चारों ओर चक्कर लगाता है। इस प्रकार जो अग्निहोत्र करता है वह अवश्य ही संसार में फूलता फलता और ख्याति को प्राप्त करता है। मनुष्यों को चाहिए कि जो मनुष्य अपने २ क्षेत्रों में सफलता चाहें वे अवश्य इस प्रकार अग्निहोत्र किया करें।

जो मनुष्य अपने आपको किसी उद्देश्य की पूर्ति में खपा देता है उसके लिये लोगों के दिल में आशङ्का उठती है कि इस प्रकार अपने आपको खपा देने से क्या लाभ। संसार में रहकर संसार का सुख नहीं भोगा और आराम से जिन्दगी न बिताई तो संसार में रहने का क्या लाभ। संसार की स्टेज पर इतने लोग आये अपना २ खेल खेलकर चले गये मृत्यु के फंदे में फंसने से कोई न बचा, इस लिये किसी कार्य के पीछे तुल जाना यह बड़ी मूर्खता है कोई बुद्धिमानी का लक्षण नहीं है। मृत्यु अग्नि सब को अपना ग्रास बना रहा है। देखते २ तो मनुष्य सब कुछ है परन्तु ज्यों ही उसका ग्रास बना वह खतम हुआ। इसलिये किसी कार्य के पीछे मर मिटने की अर्थात् अग्निहोत्र करने की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह आशंका मनुष्यों को समय २ पर हुआ करती है। इसका फल यह होता है कि मनुष्यों के जीवन निराशामय हो जाते हैं, जीवनों में कुछ जीवन प्रतीत नहीं होता. जाति में निष्प्राणता छा जाती है। मुर्दा जाति जीते जी भी मुर्दे से ज्यादह नहीं रहती। ऐसी निष्प्राण जाति प्राणवान् जातियों से ठुकराई जाती है, पद दलित की जाती है, मट्टी में रोंधी जाती है।

बुद्धिमान् मनुष्यों के दिलों में जीवन के सम्बन्ध में जब इस प्रकार की आशंका उत्पन्न होती है तो उसका परिणाम बुरा नहीं निकलता अच्छा ही निकलता है। बुद्धिमान मनुष्य जीवन के सतत प्रवाह को अनुभव करते हैं वे देखते हैं किसी कार्य को जिम्मेवारी के साथ करने में मनुष्य मज जाता है उसका कालुष्य नष्ट हो जाता है उसकी मैल छंट जाती है उसकी मुर्दानगी काफूर हो जाती है। वे देखते हैं आग के अन्दर डाला हुआ सोना आग के तीव्र ताप से कुन्दन हो जाता है उसके सब मैल कट जाते हैं। मैल में सने हुए सोने

की आत्मा सोना ही है और शुद्ध सोने की आत्मा भी वही सोना है। आग में तपने से सोना सोना हो जाता है, पहले भी सोना होता है और पीछे भी सोना रहता है, आग का तपना सोने को नेस्त नाबूद नहीं कर देती उसको मिटा नहीं देती प्रत्युत उसको चमका देती है। इसी प्रकार किसी कार्य की जिम्मेवारी को उठाना अपने आपको मृत्यु के मुख में रखना है। जिम्मेवारी अग्नि का स्वरूप है, जिम्मेवारी को धारण करना आग में प्रवेश करना है। जिम्मेवारी की आग मनुष्य के जीवन के मैल को छांट देती है। इस आग में पड़कर मनुष्य अपने दुर्वृत्तियों के— पाप के बने हुए मैले शरीर को भस्म कर नये शुद्ध चमकीले रूप को धारण करता है उसका दूसरा जन्म होता है वह नवीन बन जाता है वह द्विज बन जाता है। जिम्मेवारी की आग में से उत्पन्न हुए सत्य स्वरूप निर्मल उज्वल रूप इस वीर नवीन कुमार पर चारों ओर से देवों की दृष्टि पड़ती है— चारों ओर से देव उसे देखने आते हैं। अग्नि उसमें नेतृत्व को देखते हैं। पवन उसमें क्रियाशीलता—कर्म कुशलता को देखते हैं। सूर्य उसमें प्रकाश, तेज और उदात्तता को देखते हैं। जहां २ मनुष्यों पर उसके नेतृत्व का क्रियाशील जीवन का, प्रकाश, तेज और उदात्तता का प्रभाव पड़ता है वहां २ मनुष्य वीर बन जाते हैं कोई उसके नेतृत्व की भावना से भावित होकर अग्नि बन जाते हैं, कोई उसकी कर्मशीलता से भावित होकर वायु बन जाते हैं और कोई उसके प्रकाश, तेज और उदात्तता के प्रभाव से सूर्य बन जाते हैं। इसी प्रकार इन वीरों की सन्तानों में इसी जीवन का, अग्नि का आधान होता है तो वीरों के वीर पैदा होते हैं। आग से आग पैदा होती है और यदि आग न हो तो कोयले का टुकड़ा कोयला ही रहता है निस्तेज बेकदर रहता है, निस्तेज निर्वीय जिससे चाहे जैसे ठुकराया जाता है, जिससे चाहे जैसे दबाया और तंग किया जा सकता है। जो अग्निहोत्र नहीं करता वह निस्तेज है निर्वीर्य है निष्प्राण है निर्जीव है मुर्दा है, दूसरों से हमेशा पददलित होने के योग्य है ठुकराया जाने के लायक है।

अग्निहोत्र करने वाले वीर कहते हैं कि हम अपने पिता की औलाद हैं—जैसा वह था वैसे ही हम हैं—तो हम भी ऐसी औलाद पैदा करें जो हमारे अनुरूप हो—जैसे हम हैं वैसी ही हो।

'ते उ ह एते (वीराः) ऊचुः वयं प्रजापतिं पितरमनु स्मो हन्त वय तत्सृजाम यदस्माननुवसत्।'

॥ श० ब्रा० २, २ ४ ११ ॥

यह है अग्निहोत्र का महत्त्व कि पुत्र कह सकता है कि मैं अपने बाप की औलाद हूं। जैसा मेरा पिता था वैसा ही मैं हूं। मुझे देख लो जैसा मैं हूँ वैसा ही मेरा बाप था और जैसा मैं हूँ वैसा ही मेरा पुत्र होगा। जिस घर के अन्दर पिता से पुत्र अलग चले और पुत्र से पिता नाराज रहे उस घर में अग्निहोत्र नहीं होता। ऐसे घरों में किसी उद्देश्य विशेष को, विचार विशेष को जीवन में किसी कार्य विशेष को (यज्ञ को) पूरा करने की धगस में सहायक प्राप्त करने को सन्तानें उत्पन्न नहीं की जातीं। बिना किसी उद्देश्य के केवल अपनी काम वासना को तृप्त करने की गरज से जो सन्तानें उत्पन्न हो जाती हैं वे सन्तानें अपने बाप की सन्तानें नहीं कहला सकतीं क्योंकि वे संसार में किसी उद्देश्य विशेष को पूरा करने के लिये माता पिता की ओर से नहीं भेजी गईं। वे सन्तानें उस पत्र के समान हैं जिसे पता बिना लिखे लैटर बक्स में छोड़ दिया गया है। जिस पत्र का पता नहीं उसने कहां जाना है वे पते की सन्तानों पर लावारिस सन्तानों पर माता पिता कुछ क्लेम नहीं कर सकते उनसे किसी अपनी आशा को पूर्ण करने का दावा नहीं कर सकते।

★

वैदिक शिक्षा प्रणाली

श्री विष्णुमित्र

जितना हमारी क्रिया का दूसरों पर प्रभाव होता है उतना उपदेशों का नहीं। वर्तमान युग के महात्मा गान्धी के उपदेशों का इसी लिये प्रभाव होता था कि वह जिसका उपदेश करना चाहते पहिले वे उसे अपने जीवन में करके दिखाते। वे धार्मिक उपदेष्टा थे साथ ही नीतिज्ञ भी थे। उनकी नीति धर्म को साथ लेकर चलती थी। अमली क्रियाओं द्वारा जो शिक्षा दी जाती है उसका असर जनता पर और बच्चों पर जल्द होता है। जो बिना अमल के अर्थात् बिना स्वयं किये दी जाती है उसका कोई असर नहीं होता। स्वामी सर्वदानन्द जी एक आप बीति कहानी सुनाया करते थे कि मैं एक आर्य्य पुरुष के घर में ठहरा हुआ था। उस आर्य्य पुरुष को हुक्का पीने की आदत थी। मैंने उन्हें कहा कि इस आदत को छोड़ दीजिये अन्यथा यह दोष आप के बच्चों में भी जायगा। उसी समय उस आर्य्य ने अपने बालक को बुलाया और उससे कहा कि कुन्दन लाल बताओ हुक्का पीने में क्या २ हानियें हैं। वह लगातार आध घंटा बोलता रहा। थोड़ी देर के बाद पिता जी के बाहर चले जाने पर देखा कि वही बालक दूसरे कमरे में हुक्का पी रहा है। आर्य्य पुरुष के आने पर मैंने उन्हें दिखाया। तब वे गुस्से में आकर बच्चे को भला बुरा कहने लगे। तब मैंने कहा कि महाशय जो कुछ आपने सिखाया था बच्चे ने कह सुनाया और जो कुछ आपने किया था उसने कर दिखाया।

विद्वान् तो यहां तक कहते हैं कि हमारी क्रियाओं का ही नहीं प्रत्युत हमारे मन के विचारों का भी दूसरों पर प्रभाव होता है। देखी हुई घटना है कि एक बुढ़िया ने एक घुड़ सवार से कहा कि बेटा, अगले ग्राम तक इस मेरे पोते को घोड़े पर बिठाले। घुड़ सवार ने इनकार कर दिया। थोड़ी दूर जाकर घुड़ सवार ने विचारा कि मैंने गलती की। बच्चा बड़ा सुन्दर था। घर में कोई बच्चा न था। यदि मैं घर ले जाता तो बुढ़िया मेरा क्या कर लेती। यह विचार कर वहीं खड़ा हो गया। बुढ़िया के आने पर उसने कहा कि बुढ़िया ला बिठा दे। बुढ़िया बोली बच्चा, जिसने तुझे ऐसा सुझाया है। उसने मुझे भी सुझा दिया है।

वेद भी कहता है कि—मनः पश्चात् अनुगच्छति रश्मयः। मन से निकले हुए विचार बाद में रश्मियों के रूप में वायु-मण्डल में जाते हैं। जैसे प्रत्येक उच्चारण किया गया शब्द परमाणुओं द्वारा कहां का कहां चला जाता है।

इसी प्रकार मन के विचार भी इन्हीं द्वारा बराबर जाते हैं। कोई विचार कोई शब्द निकला हुआ नष्ट नहीं होता है। इन सतत परमाणुओं में बना रहता है। जैसे रेडियो द्वारा आकाश में अनेक शब्द होते हुए भी जिसे हम सुनना चाहते हैं सुन लेते हैं वैसे ही विचार भी जाने जा सकते हैं। जर्मनी के वैज्ञानिक ब्रेडक ने विचारों का उस समय फोटो लिया जबकि एक युवक दूर बैठा अपनी स्त्री के विचारों में मग्न था। फोटो लेने पर विचारों के साथ उसकी स्त्री का चित्र प्लेट पर आया। अमली शिक्षा के अतिरिक्त दूसरी शिक्षा गुरु-शिष्य संवाद के रूप में दी जाय—वह प्रश्नोत्तर के रूप में होनी चाहिये। छोटे बच्चे बचपन में इतने प्रश्न करते हैं कि कभी २ माता पिता तंग आ जाते हैं। बच्चों की यह आयु ज्ञान बढ़ाने की है। इसी लिये वेद कहता है कि बच्चों को जब पढ़ाओ उनसे जितने बन पड़े प्रश्न करो। जब वे जवाब न दे सकें तब उन के पूछने पर समझाओ। गुरु इस प्रकार प्रश्न करे कि—

कोऽस्य वेद भुवनस्य नाभिम्। को द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम्। कः सूर्य्यस्य वेद बृहतः को जनित्तम्। को वेद चन्द्रमसे यतो जाः।

बालको बताओ तुममें से इस भूमि के मध्य को तथा पृथिवी और अन्तरिक्ष को कौन जानता है। और इतने बड़े सूर्य्य को किसने बनाया। चन्द्रमा कहां से या किससे पैदा हुआ।

शिक्षा का माध्यम

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

दयानन्द और महेन्द्रलाल सरकार के विज्ञान की शिक्षा के लिए स्वतन्त्र प्रयत्न करने के बाद भारत के सरकारी शिक्षणालयों में विज्ञान परीक्षणालय स्थापित किये गये। बंगाल जातीय शिक्षा परिषद् द्वारा ही विज्ञान और शिल्प की उच्चतम शिक्षा भारतीयों द्वारा ही दिलाने के उपाय किये जाने के बाद कलकत्ता यूनिवर्सिटी में उस अंश में सुधार किये गये। सरकारी शिक्षणालयों में भारतीय इतिहास का शिक्षण और विविध खोज का आयोजन भी जातीय शिक्षा परिषद् के देखादेखी आरम्भ किया गया। बंगाल में फैले उस उग्र स्वदेशी वातावरण में कलकत्ता युनिवर्सिटी एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में आ गई जो विचारों में लगभग पूरे राष्ट्रीय स्वाधीनतावादी थे। उन आशुतोष मुखर्जी ने उसे अनेक अंशों में नये सांचे में ढाल दिया, यद्यपि अपनी अभिलाषानुसार वे उसमें शिक्षा का माध्यम बंगला को न बना सके।

कांगड़ी गुरुकुल के उदाहरण से शिक्षा के माध्यम का प्रश्न पहले विश्वयुद्ध के समय उग्र हो उठा, विशेष कर उस समय जब कि मदनमोहन मालवीय ने हिन्दू युनिवर्सिटी की स्थापना के लिए हिन्दू संस्कृति के नाम पर देश से अनुरोध किया, और महात्मा मुन्शीराम ने आन्दोलन उठाया कि उस युनिवर्सिटी में शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो। सैडलर कमीशन की तभी नियुक्ति हुई। आशुतोष उसके सदस्य थे और वे समूचे कमीशन को कांगड़ी लाये। वहां उस कमीशन ने आधुनिक अर्थशास्त्र के इस जटिल प्रश्न पर कि एकधात्विक (मौनोमैटेलिक) और द्विधात्विक (बाइमैटेलिक) मुद्राप्रणाली के आपेक्षिक गुण-दोष क्या हैं, गुरुकुल महाविद्यालय के विद्यार्थियों से हिन्दी में वादविवाद करा के देखा। मैंने स्वयं उस विवाद में भाग लिया था और दो वर्ष हुए मेरे श्रद्धेय गुरु पं० योगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य ने मुझे वह बात याद दिलाई थी, जो मेरी वक्तृता को सुन कर आशुतोष ने अपने साथियों से कही थी। उनके मुंह से निकला था—विद व्हाट फैसिलिटी ही इज़ एक्सप्रेसिंग हिज़ आइडियाज़—कैसी सरलता से वह अपने विचार व्यक्त कर रहा है।

सैडलर कमीशन को और तब से मैकाले शिक्षा प्रणाली के सब कर्ता-धर्ताओं को सिद्धान्त रूप से यह मानना पड़ा कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक विचार

क्लिष्ट प्रश्न का उत्तर न आने पर बच्चे पूछते हैं कि—

गुरोपृच्छामित्वा परमन्तं पृथिव्याः। पृच्छामि यत्र भुवनस्यनाभिः। पृच्छामित्वा वृष्णोऽश्वस्यरेतः। पृच्छामि वाचः परमं व्योम।

बच्चों ने कहा कि गुरु आप ही बतायें—इस पृथिवी का अन्त कहां है। और मध्य कौन है। इस वर्षणशील सूर्य्य का पुत्र कौनसा है और इस वेद वाणी का उद्गम स्थान कौन है।

गुरु का उत्तर—

इयं वेदिः परोऽन्तः पृथिव्याः।
अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः॥
अयंसोमो वृष्णो ऽश्वस्य रेतः।
ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम॥

गुरु ने यज्ञ वेदी पर हाथ रख कर बताया कि यही पृथिवी का अन्त है और यही पृथिवी का मध्य है क्यों कि गोल वस्तु पर जहां उंगली रखी जाय वहीं उसका अन्त और वहीं मध्य होता है। चन्द्रमा सूर्य का पुत्र है क्योंकि इससे ही बना है। और वेद वाणी का उद्गम स्थान ब्रह्म है। शिक्षक कैसा होना चाहिये। उसे शिक्षा प्रेम से देनी चाहिये। और वह शिक्षा बालक की रुचि के अनुसार देनी चाहिये, इत्यादि विषयों पर फिर भी लिखने का यत्न किया जायगा।

★

व्यक्त किये जा सकते हैं। उपेक्षा और उपहास का अध्याय उस दिन समाप्त हुआ, बहानेबाज़ी और टाल-मटोल का आरम्भ हुआ। यदि कांगड़ी के अनुभव से वे सीखना चाहते तो तीन नहीं तो छः मास के अन्दर समूचे भारत में शिक्षा का माध्यम मातृभाषाएं बनाई जा सकती थीं। किन्तु तब से लेकर अपने भारत छोड़ने तक के तीस बरस अंग्रेज शासकों ने हीले-हवाले में टाल दिये।

उनके बहाने क्या थे? एक यह कि भारतीय भाषाओं में पाठ्य ग्रन्थ कहां हैं, उन पाठ्य ग्रन्थों के लिए वैज्ञानिक परिभाषाएं कैसे बनेंगी? दूसरा यह कि भारत में तो अनेक भाषाएं हैं, उस दशा में भारतीय भाषाओं को शिक्षा-माध्यम बनाने से देश में एकता कैसे रहेगी, और कलकत्ता युनिवर्सिटी के तमिल अध्यापक या इलाहाबाद युनिवर्सिटी के बंगाली अध्यापक स्थानीय भाषा में कैसे पढ़ा सकेंगे?

जहां तक भारत की अनेक भाषाओं और देश की एकता का प्रश्न है उस पर हम आगे विचार करेंगे। पाठ्य ग्रन्थ और वैज्ञानिक परिभाषाएँ आरम्भ में कांगड़ी में भी न थीं और अब भी ऊपर तक की नहीं हैं। वहां भी मराठे और बंगाली, तमिल और पंजाबी भारत के सब प्रांतों के आदर्शोपासक अध्यापक आते जो एक मास में टूटी फूटी हिन्दी सीख जाते थे। जिन प्रो० सेवाराम फेरवानी से अर्थशास्त्र की शिक्षा पा कर हमें सैडलर कमीशन के सामने विवाद की योग्यता प्राप्त हुई थी वे स्वयं सिन्धी थे। पाठ-कक्षाओं में खिचड़ी भाषा चलती जैसी इस युग के शिक्षित भारतीयों की आपसी बोलचाल में चलती है। अंग्रेज़ी के अनेक पारिभाषिक शब्द उसमें मिले रहते, पर वाक्यरचना हिन्दी ही होती। अध्यापक का काम वहां अपनी लफ्फाज़ी बघारना नहीं प्रत्युत विद्यार्थियों को ज्ञान देना और उनकी सोचने की शक्ति को जगाना होता। विद्यार्थी अपनी भाषा में खुल कर प्रश्न करते। उस प्रश्नोत्तर द्वारा वे ज्ञान की तह तक पहुँचते और उनकी सोचने की शक्ति जगती। वे अपने परीक्षापत्र भी अपनी उसी खिचड़ी भाषा में लिखते। कक्षाओं में खुल कर अपनी भाषा में पूछ सकना और परीक्षाओं में प्रश्नों का उत्तर अपनी भाषा में दे सकना यह मातृभाषा द्वारा शिक्षा का निष्कर्ष और उसका सब से बड़ा वरदान है। अंग्रेज़ी पाठ्य-ग्रन्थों और परिभाषाओं का प्रयोग करते हुए भी इसे प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं है। मैकाले शिक्षणालयों का सब से बड़ा अभिशाप यह था कि वहां विद्यार्थियों को ऐसा करने की और अध्यापकों को अपनी भाषा में बोलने की इजाज़त न थी। विद्यार्थी को कोई सन्देह रहे और कुछ पूछना चाहे तो तब तक नहीं पूछ सकता जब तक अपने प्रश्न को अंग्रेज़ी में न रख सके। घर में, बाज़ार में वह पूछना चाहे कि प्रयाग से कोटा का सीधा रास्ता कौन सा है तो, यदि बताने वाला उसका समभाषी रहे तो अपनी भाषा में और यदि अन्यभाषी रहे तो टूटी-फूटी मिश्रित भाषा में पूछ लेता। पर पाठ-कक्षा में वही बात पूछनी हो तो, चाहे उसका अध्यापक समभाषी भी हो, वह उससे साधारण रूप से बात नहीं कर सकता, उन दोनों को अंग्रेज मालिक की भाषा में बोलने का स्वांग करना पड़ता। यों विद्यार्थियों की जिज्ञासा मर जाती और वे किसी भी ज्ञान की तह में न पैठ पाते। उनकी दिमागी शक्ति बहुत कुछ अंग्रेज़ी पर अधिकार करने में खर्च हो जाती और जब वे विभिन्न विषयों की चर्चा करते तो केवल अंग्रेजी के बड़े-बड़े शब्द दोहराया करते। अध्यापक भी खुल कर अपने विचार नहीं प्रकट कर पाते और न गहरा सोच सकते। उनमें से ९९ प्रतिशत केवल अंग्रेज़ी पाठ्यग्रन्थों की बातों को तोतों की या ग्रामोफोनों की तरह दोहराया करते।

यही कारण था कि इन पाठ्यग्रन्थों में जो भी ऊलजलूल बातें उन्हें मिलती रहीं उन्हें वे बिना सोचे अपने छात्रों के दिमागों में भरते रहे। इङ्गलैंड के

एक विख्यात अर्थशास्त्री के पाठ्यग्रन्थ में जब हमें यह पढ़ाया गया कि श्रम की कार्यक्षमता (एफीशिएन्सी ऑफ़ लेबर) को जो वस्तुएं निर्धारित करती हैं उनमें से नृवंश या नस्ल भी एक है, और उसका यह उदाहरण दिया गया कि एक अमरीकी जितना काम करता है, उसके बराबर काम पन्द्रह हिन्दुस्तानी कर पाते हैं, तब, कांगड़ी में हमें अच्छी तरह पूछने-सोचने की आदत होने के कारण मैंने अपने अध्यापक से पूछा कि यदि ऐसी बात है तो कलफ़ोर्निया और कनाडा के खेत मालिक क्यों पञ्जाबी मज़दूरों को अधिक पसन्द करते हैं और क्यों उन्हें वहां से निकालने को कानून का सहारा लिया जा रहा है? मेरे अध्यापक भी तब सोच में पड़ गये। किन्तु मैकाले शिक्षणालयों में ऐसी बातें सवा शताब्दी तक बराबर पढ़ाई जाती रहीं और उन शिक्षणालयों के अध्यापकों ने हिन्दी में भी पाठ्य-ग्रन्थों के नाम पर जो कूड़ा-कचरा डाला उनमें भी वे बातें दोहराई जाती रहीं। १९४१ में मेरे बच्चे ने जो तब हिन्दू यूनिवर्सिटी के स्कूल की छठी कक्षा में पढ़ता था, मुझे अपनी भूवृत्त (भूगोल) की पाठ्य पुस्तक में से दिखा कर पूछा कि क्या यह ठीक है कि भारत के लोग नाविक जीवन में अंग्रेजों से इस कारण पीछे हैं कि भारत की तटरेखा इंगलैंड की तरह दन्तुरित नहीं है। मैंने कहा, यदि ऐसी बात होती तो फिलीपीन के लोग नाविक जीवन में बहुत ही बढ़े चढ़े होते; और यह तुरन्त उसकी समझ में आ गया। ये उदाहरण अपवाद नहीं हैं, ये मैकाले-शिक्षणालयों की साधारण दशा को प्रकट करते हैं।

और ऐसा क्यों न होता जब कि वे शिक्षणालय अंग्रेजी साम्राज्य के कल-पुर्जे-मुन्शी, अमले, वकील आदि तैयार करने को ही खड़े किये गये थे? लार्ड कर्जन ने अंग्रेज पूञ्जीपतियों को याद दिलाया था कि 'आप दामराग (ब्रितानवी गिआना) और नाटाल के खेतों-बगीचों का विदोहन करते हैं तो हिन्दुस्तानी कुली मजदूरों द्वारा, मिस्र को सींचते हैं और नील नदी को बांधते हैं तो सधे हुए हिन्दुस्तानी अफसरों द्वारा; मध्य अफरीका और स्याम की संपद् निकालते हैं तो हिन्दुस्तानी जंगल-अफसरों द्वारा; दुनिया के सब छिपे स्थानों की खोज करते हैं तो हिन्दुस्तानी पैमाइशकारों द्वारा। इनमें से कुली-मजदूरों को छोड़ कर और सब उपकरणों को तैयार करने के कारखाने मैकाले शिक्षणालय थे, जिनकी बदौलत भारतीय हर तरह से अंग्रेज का उपकरण बना हुआ था। जब उसे अपने मालिक का उपकरण ही बनना था तब मालिक की भाषा ही सीखनी चाहिए थी। उसे स्वतन्त्र सोचने देना अभीष्ट होता तब तो मातृभाषा में शिक्षा दी जाती। कवि अकबर ने कहा था—

तोप खिसकी, प्रोफेसर पहुँचे।
यह बसूला हटा तो रन्दा है।

अंग्रेजी तोपों से भारत के जीते जाने के बाद अंग्रेज प्रोफेसर यहां वही काम कर रहे थे जो बसूले के बाद रन्दा करता है। जब भारत के दिमाग पर रन्दा फेरना ही इस शिक्षा को उद्दिष्ट था, तो उस दिमाग का विकास करने वाली मातृ-भाषा की खुराक उसे क्यों दी जाती। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा था—

भीतर तत्व न, झूठी तेज़ी?
क्यों सखि सज्जन, नहिं अंग्रेजी।

भारत को जिस ज्ञान से शक्ति मिल सकती थी वह इस पढ़ाई में न था, इसमें केवल वह दिखावटी तेजी थी जिससे वह अंग्रेजों का उपकरण बन सकता था और जिनका स्वार्थ भारत को उपकरण बनाये रखने में था वे उस शिक्षापद्धति में सुधार क्यों कर होने देते? तीस बरस की बहानेबाज़ी की यही व्याख्या है।

बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी इस घोषित उद्देश्य के साथ चली थी कि वह हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाएगी। पचीस बरस में वह इन्टरमीडिएट की दो कक्षाओं तक यह सुधार कर सकी। क्या इससे प्रकट

व्यक्ति समाज, और सदाचार

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

आज मानव जीवन इतना अस्त-व्यस्त हो गया है कि सदाचार की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। लोककल्याण तथा विश्वशांति के लिये अनेकानेक-लौकिक-प्रस्ताव किए जाते हैं, परन्तु वे निरर्थक ही सिद्ध हो रहे हैं। इसका कारण यही है कि मनुष्य-समाज अपने जीवन के सत्यात्मक-पक्ष को देख नहीं पाया है। मरु-मरीचिका को ही जलाशय जानकर वह व्यर्थ ही कुलांचें भर रहा है। इसी लिए हम नित्यप्रति सुनते हैं कि विश्व विनाश और मृत्यु, पाप और दुराचार, असभ्यता तथा नारकीयता का प्राबल्य है। यदि हम कुछ देर तक ध्यानपूर्वक मनन करें तो इसी निष्कर्ष पर आएंगे कि मानवधर्म के सदाचार-रूप-व्यावहारिक कर्म का विस्मरण ही समस्त मानव-समाज की अशांति का मूल कारण है। हमारा अधोगतिमान् दृष्टिकोण ही हमारे विश्व में अन्याय का साम्राज्य पसारे है। हमारी नैतिक-दुर्बलताएं हमारे भौतिक दुःख और क्लेश को जन्म देती हैं। शास्त्र-निषिद्ध कर्मानुसरणकर, निज-निज धर्मानुसार कर्तव्यों को त्यागते हुए ही हमारा लौकिक-आचार अपने सत्ययुगी अधिष्ठान से नीचे की ओर पतित किया गया है। यदि समाज अथवा राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति किसी भी कार्य को करने के पूर्व ही यह विचार करे कि तद्-विचारित कार्य सदाचारप्रभव धर्म की उपक्रमणिका में आता है या नहीं, तो वह निश्चय ही अपने जीवन को सफल और कल्याणमय और विमल तथा पवित्र बना सकेगा। यदि परधनलोलुप व्यक्ति यह सोचे कि वह उचित कार्य नहीं कर रहा है; यदि मद्य पीने वाला यह सोचे कि मद्यपान तद्विचारितदृष्ट्या अनुचित है, यदि हिंसातुर व्यक्ति यह सोचे कि हिंसा सदाचार नहीं—किन्तु महापाप है, तो वह अपने को इन दुष्कर्मों से विरत रखने की चेष्टा अवश्य करेगा। परिणाम यही होगा कि हमारे संसार में नित्यप्रति जो अमानुषिक कर्म होते रहते हैं, वे नहीं होवेंगे। किसी की चोरी नहीं होवेगी, किसी का पुत्र कुचरित्र नहीं होवेगा, किसी का सतीत्व हरण नहीं होवेगा, किसी के प्राणों का हनन भी नहीं होगा। सभी मिलनसार, एक सिद्धान्ती, दयानुरक्त, मैत्रीयुक्त, परोपकारी, त्यागी और निःस्वार्थ होकर सर्वतोमुखी-शांति के लक्षणों का श्री गणेश कर पाएंगे।

तब सदाचार की मीमांसा क्या है? अथवा सदाचार केवलमात्र लौकिक-मानव-समाज का सुधारमात्र है? सदाचार यदि इसे अपने भारतीय-तत्वज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य के जीवन में उन आध्यात्मिक व्यवहारों का मौलिक स्वरूप है, जिससे विश्वधर्म या लोकधर्म की मर्यादा का प्रतिष्ठापन होता है। यह समझना हमारी भूल होगी कि सदाचार मनुष्य के किसी ऐसे समय की विचार-शृङ्खला है, अथवा वाणी का कौतुक है, जबकि मानव-क्षेत्र परिमित विज्ञान होने के कारण आदर्शवाद की ओर जा रहा था, जबकि उसका सामाजिक भूगोल तथा राजनीतिक प्रश्न कुछ ही परिवारों में सीमित था—क्योंकि सदाचार, तथागत शास्त्रों के अनुसार, जिनका क्षेत्र आज से भी विशालतर जान पड़ता है, मनुष्य के मन, कर्म और वचन की पवित्र धारा का वह सुन्दर समन्वय है. जहां पर मनुष्य मनुष्य के सम्बन्ध को उचित-रीति से जानता है और उस सम्बन्ध का नियमानुकूल अनुपालन भी करता है तथा तद्फलतः वह दूसरे के विनाश का विचार नहीं करेगा

होता है कि उसके कर्ता-धर्ता सचाई से यह सुधार चाहते थे? आशुतोष मुखर्जी सचाई से यह चाहते थे, पर विरोधी शक्तियों के कारण न कर सके; उनकी सचाई का प्रमाण यह है कि उन्होंने बहानेबाज़ी नहीं की।

★

उसके प्रति कटु-शब्दों का प्रयोग भी नहीं करेगा और तद्-निषिद्ध दुष्कर्म करने को उद्यत भी नहीं होगा। अतः यह प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि सदाचार सत्य आचरण है, जो आचरण दूसरे के मनोविज्ञान की कसौटी पर ठीक उसी तरह खरे उतरें, जैसे उनका स्वरूप है। सदाचार तो मनोविज्ञान, व्यवहार तथा आध्यात्मिक कर्मों का केन्द्रीयकरण है, जिसका प्रभाव मनुष्य के आजीवनोपरान्त कर्मों में शत-प्रतिशत के अनुपात से क्रियात्मक होता रहता है।

हम नित्यप्रति धर्मग्रन्थ (शास्त्र) अध्ययन करते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि सदाचार का स्वरूप आध्यात्मिक और व्यावहारिक दोनों है और पुराणों में इसे लोक धर्म का सजीव रूप दिया गया है। परन्तु जो कुछ भी हो, हम अपने शास्त्रों से यही सार जान पाए हैं कि सदाचार का सूत्रपात हमारे जीवन के ईश्वरीयकरण से है—जिसका परिणाम निश्चयतः ऐसा ही होना चाहिये। यदि वटवृक्षारोपण किया जाय तो छाया भी तो मिलेगी ही, तदनुसार यदि जीवन में ईश्वरीय जीवन की स्फूर्ति संचरित कर दी जाय तो कालान्तर में इसका विकास भी ईश्वरीय ही होगा। अतः हम इस परिणाम पर आते हैं कि सदाचार का श्री गणेश मनुष्य की आध्यात्मिकता के जागरण से होता है। जब अनुभूति का अध्यात्मकरण हुआ तो सदाचार का सूर्योदय हो जाता है।

इस प्रकार सदाचार के साधारणतः तीन गम्भीर स्वरूप होते हैं, जो हमारे जीवन के सभी कर्मों और सभी विचारों और सभी अनुभूतियों को अनुस्यूत किए हुए हैं—

सदाचार का प्रथम सत्य आध्यात्मिक जीवन है, जो सर्व प्रधान तथा सर्व व्याप्त माना जाता है, जैसे जल की अति व्याप्ति जल के समस्त विकारों और विकल्पों में भी मानी जाती है। दैवी-सम्पत सम्पन्न होना इस जीवन का उपादान कारण है। श्रीमद् भगवद्गीता और मनुस्मृति के सिद्धान्तों में यही प्रतिध्वनि है कि प्रत्येक मनुष्य को सर्व प्रथप अपने आध्यात्मिक क्षेत्र में सद्गुणों की अनुभूति का विकास करना चाहिए। अपनी-अपनी अनुभूतियों को सर्वथा सद्गुणों का स्वरूप देकर, आप निश्चयतः उसी का अभिव्याख्यान करेंगे तथा व्यवहार भी कर सकेंगे। 'जैसी अनुभूति होती है, वैसा ही व्यवहार भी'—यह विद्वानों का सर्वसम्मत-सिद्धान्त है और यही हमारी भारतीय सदाचार प्रणाली है, जो पाश्चात्य सदाचार विज्ञान से विकासमान् दृष्टिकोणतया महत्तम है। आप लोगों ने सुना तो होगा, 'जैसी गति वैसी मति यही है जग की रीति।' इससे स्पष्ट यही अभिव्यक्त हो रहा है कि हमारी अनुभूतियां ही हमारे विचार का, तदनुसार व्यवहार का निर्णय कर पायेंगी। यदि हमारी अनुभूति में सर्वात्मभाव तथा एकात्मक सत्य का अनुभव होगा तो हम अपने को सत्य, अहिंसा, आत्मसंयम, निरंहकारिता तथा अन्यान्य शास्त्रोक्त गुणों के लिए सचेष्ट कर सकेंगे, जिसकी प्रतिच्छाया हमारे व्यावहारिक स्तर पर अवश्य पड़ेगी ही।

अपनी आध्यात्मिक प्रकृति को अराग-द्वेषादि सद्-गुणों से अलंकृत करने के उपरान्त ही हम अपने जीवन के प्रत्येक व्यवहार में शान्ति और कल्याण और सर्वभूत-हित की रूप रेखा का अवतरण कर सकते हैं। अतः सदाचार का सर्वप्रथम दृष्टिकोण आध्यात्मिकता या ईश्वरीय जीवन है। जहां मनुष्य पारस्परिक भेदभाव से परे, विश्व को केवल एक परिवार ही नहीं—अपितु अपना स्वरूप ही जानता है और यह अनुभव करता है कि समस्त विश्व निसन्देह उसका ही जल-बिन्दु, तरंग, सागर तथा वाष्पवत् विकास है और वह सर्वकर्म अध्यक्ष, सभी जीवों में अधिवास करने वाला तथा सब का आत्मा है। वह किसी का अहित नहीं चाहता। वह किसी के प्रति अन्य तथा इतर-भाव से अभिव्यक्ति नहीं करता। वह परवित्तहरण ही क्यों करेगा, जबकि वह ईशावास्यमिदं सर्वम्—को अपने सदाचार का सर्व

प्रधान दृष्टिकोण स्थिर किए है। हमारे प्राचीन, वैदिक-कालीन, वीतराग, तपस्वी, ऋषि-महर्षिगण इसके युग स्मरणीय आदर्श थे।

ऐसा मनुष्य या समाज या राष्ट्र अपने प्रतिवासी के दुःखों में दुःखित होगा ही, क्योंकि वही तो सब में है। अतः वह अपने प्रतिवासी आत्मा के यत्-किंचित् दुःखों के समूल निवारण के लिए प्रयत्न करता रहेगा। स्वभावतः ही दया, मैत्री, करुणा, उपकार तथा अन्य मानसिक सदाचार सम्बन्धी सद्गुणों का आविर्भाव उसमें होगा। यदि किसी समाज के ऊपर आर्थिक संकट आया हो तो तत्कथित सदाचारशील व्यक्ति ही उस संकट निवारण के उपायों के लिए कटिबद्ध हो जाता है। वह नवीनतर और नवीनतम प्रयोगों द्वारा अपने पराए के हित और कल्याण और शांति की विधि के अनुसन्धान में तत्पर हो जाता है। यह सदा-चार का मानसिक स्वरूप है, जिसे मनोवैज्ञानिक सदाचार भी कहते हैं। महात्मा बुद्ध इस कोटि के आदर्श थे।

सदाचार का तीसरा स्वरूप व्यावहारिक है। इससे यह अर्थ नहीं कि वह स्वतन्त्र अंग हो। व्यावहारिक तथा मौलिक सदाचार सर्वदा आध्यात्मिक अनुभूति तथा मनोवैज्ञानिक आधारों पर ही प्रतिष्ठित रहा है। इसका कारण स्पष्ट है कि जब तक आप अपने जीवन के अनुभवों और विचारों को सत्य के पवित्र मन्त्र में दीक्षित नहीं कर लेंगे, तब तक कैसे सम्भव है कि आप सदाचारपरायण हों। आपका आचार आपके विचारों का द्योतक है अर्थात् प्रतिबिम्ब है। तात्पर्य कि आपके विचारों के अनुसार ही आपकी क्रियाशक्ति सुकर्म तथा दुष्कर्म का निर्णय करेगी। यदि आप मुझे किसी प्रकार का भीषण कष्ट देना चाहते हैं और यह निश्चय करते हैं कि किसी निकट भविष्य में उचित अवसर पाकर, आप मेरा तिरस्कार करेंगे, या मुझे निश्चित कष्ट देंगे, तो क्या आप व्यवहार करते समय तद्विचारित निश्चय का पालन करने को विवश नहीं होंगे? इसी प्रकार आप यदि किसी अनाथ बालक के दुःखों की अनुभूति कर, उसके दुःख निवारण के लिए विचार कर उसके जीवन की आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था करने को सन्नद्ध होते हैं तो संसार में कोई भी शक्ति ऐसी नहीं जो आप के इन आदर्श विचारों को पलट दे। मैंने कुछ लोगों को कहते सुना है—क्या करें, मन में उसकी दशा पर तरस आता है। परन्तु कभी-कभी उसकी बातें सहन नहीं हो सकतीं। जो लोग इस प्रकार के विजातीय सिद्धान्तों को जन्म देते हैं, वे सदाचार के आध्यात्मिक तथा मानसिक स्वरूपों में स्थिर नहीं हो पाए हैं और उनके उपरोक्त कथन से हमें यही समझना चाहिए कि वे सत्यतः अपने मन के अन्दर भी उसी प्रकार का निश्चय किए हैं, जो उन्होंने बाहर प्रकट किया है।

ऐसा व्यक्ति जिसने तद्वर्णित तीसरे अंग का सद्-अनुशीलन कर पाया है, वह आध्यात्मिक तथा मानसिक सदाचार का व्यावहारिक आदर्श होना चाहिए। महात्मा गान्धी जी को यदि हम इस समन्वय का व्यावहारिक आदर्श मानें तो सर्वथा उचित ही होगा।

अतः पाठक, समझ गए होंगे कि सदाचार मनुष्य जीवन का एक विशिष्ट विज्ञान है, जिसका यहां पर अति संक्षेप में दिग्दर्शन कराया गया है और जिसका विशद् व्याख्यान हमारे धर्म-ग्रन्थों में किया गया है। सदाचार जितना व्यावहारिक दीखता है, उतना ही—किसी अवस्था में उससे भी अधिक मात्रा में आध्यात्मिक है। सदाचार के अर्थ केवल समाज सुधार विषयक आचरण ही नहीं। समाज तो इस विराट्-सदाचार का एक रोममात्र है। समाज से ही सदाचार की पूर्ति नहीं हो सकती। ईश्वर पर ही विश्वास कर, उसको ही एक मात्र उपास्य जानना तथा उसी को सर्वभूतमय देखना ही सदाचार की भूमिका है। जप, कीर्तन, सत्संग, योगाभ्यास, आत्म-विचार, सच्छा-स्त्र मनन, यम-नियमादि का संपालन सदाचार का

प्रथम सोपान है। सद्गुण सदाचार के प्रथम सोपान को पार करके, स्वतः ही आपके जीवन में ओतप्रोत हो जाते हैं, आपको विशेष श्रम नहीं करना पड़ता। यदि आधार दृढ़ हो गया तो आप विशालतर से विशालतर भवन का भी निर्माण आसानी से कर सकते हैं। इसी प्रकार ईश्वर चिन्तन के लिए जपादि नित्य धर्मों का अक्षरशः पालन करते हुए आप अपने जीवन के सभी कार्यों को यथा योग्य रीति करते रहें और किसी को दुःख और क्लेश न दें तो आप सहसा ही एक दिन अनुभव करेंगे कि सदाचार आपके जीवन का अभिन्न अंग हो गया है और आपके आचरण की व्याप्ति हो गयी है, जिसके अतिरिक्त आप अन्य किसी प्रकार के भौतिक आचरण को श्रेय नहीं समझते। जिस तरह फिटकरी धीरे-धीरे आश्चर्यपूर्ण आचरण से जल में मिल जाती है, उसी प्रकार आपका जीवन भी जप, कीर्तन और ईश्वर प्रेम में धीरे-धीरे आश्चर्यपूर्ण आचरण द्वारा समाधिस्थ होता जायगा और आप काम करते हुए भोजन करते हुए, तथा संसार के अन्य कार्यों को करते हुए भी अपने सदाचरण से विचलित नहीं हो पाएंगे। परन्तु ईश्वर भावना का परित्याग कर यदि केवलमात्र लौकिक, सामाजिक व्यवहारों का पालन करोगे तो वह सीमित और अस्थायी ही रह जायगा, और आप उसमें शाश्वत जीवन संचरित कर ही नहीं पाएगे। कभी-कभी तो आप उकता कर अपनी सदाचरण की निष्ठा को तिलांजलि भी दे देंगे। यह कोई असम्भव नहीं, कई उदाहरण आपको मिलते रहते हैं। परन्तु यदि आपने भगवद् प्रेम, नाम स्मरण तथा अन्य शास्त्रोक्त नित्य विधियों को अपने जीवन क्षेत्र के अनुसार संपादित किया तो आप सच्चे सदाचार की आधार-शिला की प्रतिष्ठा कर पाएंगे, जिस पर जन-कल्याण का विशाल प्रासाद बनाया जा सकेगा, प्रत्येक व्यक्ति जिसकी सुदृढ़ ईंट होगी, एकता तथा समभाव जिसको संवलित कर पाएंगे तथा सत्य प्रेम, आनन्द, चिर कल्याण और देवत्व हमारे विशाल-प्रासाद की महामहनीय शोभा होंगे। क्या तब भी विश्वशांति एक समस्या बनी रहेगी ?

हठयोग के अधिकारी

श्री स्वामी कृष्णानन्द

प्राणक्रिया, हठयोग, नादोपासना, वासनाक्षय [वैराग्य], सामान्य निरोधाभ्यास मात्र तथा तत्त्व-ज्ञान [निदिध्यासन] के द्वारा मनोनाश अथवा असम्प्रतज्ञात समाधि—इन सब अवस्थाओं में शास्त्र को प्रायः मन की एक ही स्थिति अभिप्रेत है; परन्तु उपायों के भिन्न २ होने से और शास्त्र के तथ्य तात्पर्य की अनभिज्ञता के कारण प्रत्येक साधन के द्वारा एक फल का होना सम्भव नहीं है। प्राणायाम आदि हठयोगिक क्रियाओं तथा नादोपासना से कुण्डलिनी शक्ति के उद्बोधन के द्वारा जब सुषुम्ना का मार्ग खुलता है, तो प्राण ईडा, पिंगला के मार्ग को छोड़ कर सुषुम्ना में प्रवेश करता है। प्राण-क्रिया मद्धम होता है। ब्रह्मरंध्र में प्राण के प्रविष्ट होने पर प्राणगति नितान्त बन्द हो जाती है। जीव की सम्पूर्ण गति प्राण के अधीन है। बाह्य संसार में भौतिक गति भी वायु स्पन्दन के आधीन है। तब प्राण की गति के रुक जाने से शरीर, इन्द्रिय व्यापार सहित मन की गति भी निरुद्ध हो जाती है। मनोव्यापार के शून्य हो जाने पर असम्प्रज्ञात अवस्था लाभ होती है।

इस साधन में प्राण क्रिया मुख्य है। इस के निरोध से अन्य जो कुछ सिद्धि होती हैं, वह विचार तथा लक्ष्य के अनुसार इस के उपयोग से ही होती है। बहुधा मन चक्रगत महाशक्ति कुण्डलिनी के अनेक विचित्र कार्यों में ही रम जाता है। कई बार साधक सिद्धियों से ही कृत कृत्यता मान बैठता है। अन्ततः ब्रह्मरन्ध्र से पूर्व शून्यादि स्थानों में पहुँचने पर, इन को ही अपना परम लक्ष्य समझ कर ऐसी जड़ समाधि को ही असम्प्रतज्ञात तथा स्वरूप स्थिति मान कर प्रयत्न करना छोड़ देता है।

यह सब कुछ इस लिए होता है कि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के आदेशानुसार साधना नहीं होती, अथवा साधक पूर्ण वैराग्यवान नहीं होता और मध्य मार्ग की विचित्रताओं में ही फंस जाता है। क्योंकि उसे आत्मस्वरूप तथा ज्ञान समाधि के शास्त्रोक्त अभि-प्राय का यथार्थ बोध नहीं होता अतः उसे स्वरूप स्थिति तथा अनुभूति के विषय में भ्रान्ति का होना स्वाभाविक होता है।

योगाभ्यासियों को योग के महत्व के विषय में प्रायः भ्रान्ति होती है। वे लोग शास्त्र आदि के कार्यों को भी योग साधना मात्र से निकालने का दुःसाहस करते हैं। परन्तु योग साधन के अधिकारी के लक्षण, यथार्थ मार्ग, मार्ग के विघ्न, योग सिद्धि के लक्षण, योग का लक्ष्य, योग के सहकारी साधन, योग की चर्म सीमा अथवा योग का प्रयोजन आदि अनेक अत्यन्त उपयोगी विषयों का ज्ञान श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के द्वारा शास्त्राभ्यास के बिना नहीं होता। यह भी सत्य है कि गुरु के द्वारा शास्त्र के स्वाध्यायमात्र से ही परम लक्ष्य ब्रह्मात्म साक्षात्कार की सिद्धि नहीं हो जाती। योग के अनुष्ठान के बिना साक्षात्कार प्रायः असम्भव ही है। परन्तु बिना शास्त्र स्वाध्याय के उपर्युक्त विषयों का परोक्ष रूप यथार्थ बोध न होने के कारण योग के द्वारा आत्म प्रत्यक्षरूपी फल की उपलब्धी नहीं होती। सर्वज्ञ, अनादि, ईश्वर के उप-देश परम प्रमाण श्रुति-शास्त्र-का तथ्य महत्व न होने से साधक शास्त्र अभ्यास रूप परम सामर्थ्यशाली तथा अनिवार्य साधन का निरादर करता है और उस का फल यह होता है कि उसे लक्ष्यादि के विषय में यथार्थ परोक्ष ज्ञान नहीं होता तथा वैराग्यादि अधिकारी सामग्री की न्यूनता के कारण वह मध्य के माया के अत्यन्त तुच्छ खेल में ही रम जाता है। अथवा जड़ समाधिरूपी लय को ही स्वरूप स्थिति मान

बैठता है।

इस प्रकार यदि हठयोग का भी शास्त्र सम्मत अभ्यास न हो तो पहिले तो हठयोग की परम स्थिति उन्मनि अथवा समाधि का लाभ ही नहीं होता, यदि लाभ हो भी जाय तो उस का शास्त्रोपदिष्ट उचित उपयोग नहीं होता और साधक परम लक्ष्य से वञ्चित रह जाता है। जैसे पहले भी कहा गया है कि इस यांत्रिक क्रिया का मुख्य फल प्राण गति-स्पन्दन-को रोकना है। परन्तु केवल इस से लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो सकती। लक्ष्य तो अखण्ड आत्मा के प्रत्यक्ष से ही सिद्ध होता है। उसके लिए यह प्राण का निरोध कई प्रकार से उपयोगी है; परन्तु अनभिज्ञता के कारण इस का सदुपयोग नहीं हो पाता। पहिले तो आसन, प्राणायाम, मुद्रा, षट्क्रिया, बन्ध आदि में से किसी एक भाग के ही अनन्त मायिक रूपों के अनुष्ठान में जीवन बीत जाता है; तुच्छ साधन को ही साध्य मान कर व्यवहार किया जाता है। इस खेल तमाशे से अपना तथा दूसरों का मन बहलाया जाता है; और इसे ही सांसारिक उपभोग का साधन बना लिया जाता है। योग, सिनेमा तथा सर्कस आदि का रूप धारण कर लेता है।

षट् क्रियादि साधनों में साध्य दृष्टि आदि की भ्रान्ति के कारण ये साधन अपने यथार्थ परिमित रूप में नहीं रहते, जिसके कारण प्रायः अनेक शारीरिक तथा मानसिक दुःसाध्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं। साधक स्वयं दुःख का जीवन बिताता है और सर्व व्याधि के नाशक, वीर्य के रक्षक, बल ओज के वर्धक योग के भी अपमान और निन्दा का कारण बन कर घोर पाप का भागी होता है, और इस के कटु फल को जन्म जन्मान्तर में भोगता है। ऐसी अवस्थाओं में स्वयं भी परम साधन योग में अश्रद्धा करने लगता है। अज्ञान के कारण हठयोग के सदुपयोग के अभाव में इस प्रकार के अनेक दोष हो सकते हैं। अतः हठयोग के द्वारा परम सिद्धि के लाभार्थ इन सब बातों की जानकारी का होना सर्व प्रथम आवश्यक है कि हठयोग का अधिकारी कौन है, हठयोग के मुख्य तथा गौण प्रयोजन क्या हैं; तथा इस के साधारण और स्वतन्त्र लक्ष्य की सिद्धि में अन्य किन २ साधनों का समावेश होना आवश्यक है।

हठयोग का साध्य आत्म साक्षात्कार तथा मनोनाश है। साधन प्राण स्पन्दन का निरोध है। इस में असफलता के निम्नलिखित कारण हैं:—१ चक्रभेदन के द्वारा होने वाली सिद्धियों में अनुराग। २ वैराग्य का अभाव। ३ शास्त्राध्ययन तथा श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु का अभाव।

स्वास्थ्यविज्ञान के सम्बन्ध में भारत से पश्चिमी देश क्या सीख सकते हैं?

श्री डा० सुन्दरलाल भण्डारी एम. बी. बी. एस., पी. सी. एम. एस.

अपने चौदह मास के योरोपीय निवास में पाश्चात्य लोगों के उच्च जीवनतल और साधारण स्वच्छता का मेरे ऊपर विशेष प्रभाव पड़ा। निस्सन्देह वैज्ञानिक उन्नति और आविष्कारों में पश्चिम ने पूर्व को बहुत पीछे छोड़ दिया है। परिणामतः ऐसी अनेक बातें हैं कि जिनको पूर्व पश्चिम से सीख सकता है। तथापि ऐसी अनेक महत्वपूर्ण बातें हैं कि जिनको पश्चिम पूर्व से सीख सकता है। मैं योग के सम्बन्ध में कुछ न कहूँगा। क्योंकि पाश्चत्य देशों में प्रायः लोग योग का नाम तक नहीं जानते हैं। मैं पौरस्त्य दर्शन के विषय में भी कुछ न कहूँगा क्योंकि इस सम्बन्ध में तो यह कहा जाता है कि जहां पाश्चात्य-दर्शन का अन्त होता है, वहां पौरस्त्य दर्शन आरम्भ होता है। किन्तु कुछ शब्द स्वास्थ्य-विज्ञान के सम्बन्ध में कहूँगा कि जिस के विषय में पश्चिम को इतना अधिक घमण्ड है और स्वास्थ्य विज्ञान के विषय में भी मैं केवल शारीरिक स्वास्थ्य विज्ञान के सम्बन्ध में उल्लेख करूंगा। यह जानकर आश्चर्य होगा कि प्राचीन ऋषि मुनियों ने शारीरिक स्वच्छता के सम्बन्ध में किस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से ऐसे युग में विवेचन किया था कि जब कीटाणु विज्ञान से लोग प्रायः अनभिज्ञ कहे जाते हैं। यह बात भी रूचिकर होगी कि अन्य प्रकार से स्वतंत्रता पूर्वक अनेक वैज्ञानिक क्षेत्रों में आश्चर्य-जनक और महत्वपूर्ण अनुसंधान करने वाले लोग भी जीवन संबंधी अनेक साधारण किन्तु महत्वपूर्ण बातों को दृष्टिपथ से ओझल कर जाते हैं। उदाहरणार्थ पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने दो सौ मील प्रति घंटे की गति से चलने वाले वायुयान का तो निर्माण कर लिया किंतु आज तक किसी ऐसे दन्तशोधक (टूथ ब्रुश) का आविष्कार न कर सके जो दांतों को पूर्ण रूप से पवित्र और स्वच्छ करने वाली साधारण वृक्ष की दन्तधावन की समता कर सके। वह यक्ष्मा सम्बन्धी कीटाणुओं का शोध तो कर सके किन्तु इस साधारण बात को न समझ सके कि भोजन के पूर्व और पश्चात् मुख को जल से स्वच्छ करना कितना महत्वपूर्ण है। इस प्रसंग में यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इस लेख का प्रयोजन किसी को अपमानित करना या किसी की भावना को ठेस पहुँचाना नहीं है। किन्तु इस लेख को मनुष्य मात्र के हितार्थ और सर्व साधारण के निमित्त आदर्श सभ्यता की ओर पथ प्रदर्शन मात्र है।

दन्तधावन की प्रथा

(अ) दांतों को दिन में प्रातःकाल और सोने के पूर्व ताजी कोमल दन्त-धावन से स्वच्छ करना। इस को दन्तधावन विषयक स्वास्थ्य-विज्ञान कह सकते हैं। यह हमारे पूर्वजों का एक सरलतम और अत्यन्त आश्चर्य-जनक आविष्कार है। इस सिद्धान्त का उल्लेख आयुर्वेद के सब से प्राचीन ग्रन्थ चरक में किया गया है। यह ग्रन्थ लगभग ईसा से चार सौ वर्ष पूर्व लिखा गया है और इस के अनुसार आर्यों तथा हिन्दुओं के अत्यन्त अशिक्षित वंशज भी आज तक व्यवहार करते हुए पाए जाते हैं। न केवल दन्तधावन के नाम का ही वर्णन मिलता है अपितु उनकी डेढ़ बित्ता लम्बाई तथा कनिष्ठिका जैसी मुटाई होने का भी उल्लेख मिलता है। पाश्चात्य लोग धीरे-धीरे दांतों को स्वच्छ रखने के सिद्धान्त को तो स्वीकार करने लगे हैं और इस सम्बन्ध में ब्रश और पाउडर को भी प्रायः प्रयोग करते हैं। किन्तु निम्नलिखित कारणों से अभी तक दन्तधावन के समान किसी प्रकार के टूथ ब्रश का आविष्कार नहीं कर पाया है—

(१) यह नितान्त असम्भव है कि किसी प्रकार भी टूथ ब्रश को नितांत विषरहित (Aseptic)

रख सकें और एक ही वस्तु का बार बार प्रयोग अत्यन्त घृणास्पद है। दातून प्रतिदिन नवीन ही प्रयोग में लाई जाती है।

(२) टूथ ब्रुश में जो बाल लगे होते हैं वह या तो मसूड़ों के लिये बहुत कठोर और हानिकर अथवा बहुत कोमल होते हैं जो दांतों को स्वच्छ करने में सर्वथा अनुपयुक्त है। दातून में रेशे कोमल और आवश्यकतानुसार कठोर होने के कारण दांतों को स्वच्छ करने के लिये एक आदर्श साधन है।

(३) टूथ ब्रुश की सतह चिकनी होने के कारण स्वच्छ करने में सर्वथा अनुपयुक्त है। दातून में खुरदरी और छिद्र युक्त सतह होती जो कि स्वच्छ करने का एक आदर्श संघर्षक उपाय है।

(४) वृक्ष का ताजा रस आयुर्वेदिक गुणों को रखता है जो मसूड़ों के लिये लाभदायक होता है। दातून के ये गुण किसी प्रकार के टूथ ब्रुश में संभव नहीं है।

(५) सब से अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह है कि टूथ ब्रुश के बालों में एक प्रकार का मारक और संक्रामक रोगप्रद विष रहता है कि जिस के संसर्ग से टिटैनस, अन्थेस और इरिसिपिलास नामक रोगों के उत्पन्न होने की आशंका है। यह भी अत्यन्त कठिन है कि ब्रुशों को किसी प्रकार उक्त विष के प्रभावों से रहित रक्खा जा सके क्योंकि विषप्रद कीटाणुओं के सूक्ष्म अण्डे ब्रुश के उबाले जाने पर भी नहीं मरते हैं। ऐसा अनुभव किया गया है। उदाहरणार्थ ऐसी अनेक मृत्यु घटनाएं हुई हैं कि जिनमें बाल बनाने के ब्रुश से इस प्रकार रोग उत्पन्न हुए हैं।

कुल्ला करने की परिपाटी

(ब) भोजन के पूर्व और पश्चात् पानी से कुल्ला करना। पाश्चात्य देशों में भोजन करने के पूर्व और भोजन के पश्चात् कुल्ला करने की प्रथा नहीं है। पूर्व में भोजन के पश्चात् कुल्ला करके भली प्रकार मुंह साफ किये बिना और हाथ धोये बिना मनुष्य अपवित्र समझा जाता है तथा किसी खाद्य पदार्थ के स्पर्श करने के अयोग्य माना जाता है। इसी प्रकार पाश्चात्य देशों में बिना मुंह धोये ही शय्याचाय (बेड टी) को पीने की प्रथा है। पूर्व में ऐसा करने पर कोई विचार भी नहीं कर सकता है। यहां तक कि शौच जाकर अच्छी तरह हाथ मुंह आदि धोये बिना किसी चीज के खाने का विचार नहीं कर सकता है। पाश्चात्यों की यह प्रथा किस प्रकार हानिकारक है, यह निम्नलिखित परीक्षण से प्रकट हो जायगी।

प्रातःकाल उठते ही मुंह में कुछ जल भरकर भली भांति गरारी सहित कुल्ला करके पांच मिनट जल को मुख में रखने के उपरान्त एक स्वच्छ शीशे के ग्लास में डाल दीजिये। ग्लास में पड़े हुये गदले और मलिन पीत रंग के दूषित जल को देख कर आश्चर्य होगा, जो मुख से निकला है। यदि कोई मनुष्य बिना कुल्ला किये कोई वस्तु खावे तो यह सब दूषित और विषाक्त वस्तुयें भोजन के साथ पेट में चली जावेंगी और सब में मिल कर उसको भी विषैला बना देंगी। यही साधारण प्रयोग सिद्ध करेगा कि किस प्रकार भोजन के पश्चात् किये हुये कुल्ले के जल में भोजन संबंधी विषैला मल मुंह से जल के साथ निकलता है। यदि भोजन करने के पश्चात् तुरन्त ही जल से मुंह को साफ नहीं किया जाये तो भोजन कण सड़ने लगेंगे और दांत सम्बन्धी अनेक रोगों को उत्पन्न करेंगे। यह दोनों बातें दांतों की रक्षा और उन को मोतियों की भांति श्वेत और चमकीले रखने में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह तो सर्वसाधारण को विदित है कि पूर्व में किसी व्यक्ति के बत्तीस दांत चिरकाल तक बने रहना एक साधारण बात है। इसके विपरीत पाश्चात्य देशों में प्रायः लोगों के सड़े, पीले और रोगग्रस्त दांतों का होना एक साधारण बात है।

(२) शौच (कमोड) सम्बन्धी स्वास्थ्य-विज्ञान

नग्न होकर किसी ऐसे कमोड पर बैठना कि जिस को सैंकड़ों मनुष्य उपयोग में ला चुके हों केवल अरुचिकर ही नहीं है अपितु अत्यन्त भयावह प्रथा है। मैंने देखा है कि बैठने का स्थान चिपचिपा हो जाता है। किन्तु सब से अधिक भय दाद, खाज, आतशक और विविध प्रकार के मूत्र सम्बन्धी संक्रामक रोगों के लग जाने की आशङ्का है। मेरा विश्वास है कि ज्यों-ज्यों चिकित्सा विज्ञान उन्नति करेगा त्यों-त्यों पाश्चात्य लोग किसी भिन्न प्रकार के कमोड का विकास करेंगे अथवा पूर्व में प्रचलित बैठ कर शौच करने के प्रकार को अपनाएंगे जो दो प्रकार से उपयोगी है:—

[अ] उदर का निचला भाग जांघों से दबा रहता है जो कि एक Truss (हरनिया बन्धक) का कार्य देती है। इस से हरनिया रोग होने की सम्भावना नहीं रहती है।

[ब] उदरस्थ मांसपेशियां इस प्रकार आश्रित होकर मल को दबा कर निकाल देने में यह विशेष रूप से साधक होती है।

(३) शौच के पश्चात् गुह्य अङ्ग को जल से धोना

यह अत्यन्त स्वास्थ्यकर वैज्ञानिक प्रथा पूर्व में भी केवल आर्य अथवा हिन्दुओं के ही भाग्य में आई है। हिन्दू लोग शौच के पश्चात् जल से अग-प्रक्षालन करने की प्रथा अनादि काल से अपने बचपन में सीखते आए हैं। यहां तक कि एक बालक भी जब तक शौच के पश्चात् पानी लेकर अपने को स्वच्छ नहीं कर लेता तब तक अपने को अपवित्र और किसी वस्तु को छूने के अयोग्य समझता है। पश्चिम में लोग कागज का प्रयोग करते हैं और समझते हैं कि यह पर्याप्त है। यह पर्याप्त नहीं है इस के लिए किसी युक्ति प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। कागज से अच्छी प्रकार रगड़ने के पश्चात् भी सम्बन्धित भाग को देखने पर यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उपर्युक्त प्रथा हानिप्रद है। योरोप के प्रथम महान युद्ध के समय मुझ को एक बार अंगरेज़ सिपाहियों की एक टुकड़ी का निरीक्षण करने का अवसर मिला था। क्योंकि रणक्षेत्र में पानी की कमी रहती थी, इस लिए प्रतिदिन स्नान सम्भव न था गुह्यागों के बालों में शुष्क मल को लगा हुआ देखना बहुत ग्लानिकर दृश्य था। ईश्वर जाने यह कितने दिनों से लगा हुआ था। ऐसा एक ही दृश्य इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि शौचोपरान्त जल से प्रक्षालन करना जल का दुरुपयोग नहीं है।

एक और लाभ पानी प्रयोग का यह भी है कि जल प्रक्षालन से गुह्येन्द्रिय के निम्न भाग का आंतरिक भाग जल से ही स्वच्छ हो सकता है। कागज प्रयोग से किसी प्रकार इस भाग का स्वच्छ होना सम्भव नहीं है। यह एक साधारण अनुभव की बात है कि गुह्येन्द्रिय प्रदेश में लगा मल शीघ्र शुष्क होकर अनेक प्रकार के नासूर आदि रोगों को उत्पन्न करता है। दूसरी ओर अत्यन्त कोमल कागज भी घर्षण से गुह्येन्द्रिय के कोमल भाग में क्षत उत्पन्न कर देता है कि जिस से अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं।

(४) स्नान सम्बन्धी स्वास्थ्य-विज्ञान

पाश्चात्य देशों में लोग टब में स्नान करते हैं। टब का जो जल उन के पैरों, गुह्येन्द्रियों और अन्य अंगों के मल को स्वच्छ करता है, वही उनके मुख को भी धोने के काम में लाया जाता है। प्रायः सभी लोग गुह्यागों के शौच के पश्चात् पानी से नहीं धोते हैं। यह स्पष्ट है कि यह प्रथा अत्यन्त घृणित है। चाहे स्नान प्रतिदिन किया जाये या सप्ताह में किया जाये, फिर भी स्नान के समय साबुन आदि लगा कर टब में ही धोने से सब प्रकार मल, दोष, साबुन

आदि का एक मिश्रण जल के ऊपर मैल की एक तह बना देते हैं और टब में स्नान कर के बाहर निकलते समय वह जल के ऊपर की मैल तह स्नान करने वाले के समस्त शरीर में चक्र वृद्धि व्याज रूप में लग जाती है। इस प्रकार स्नान करने वाले को स्नान के पश्चात् और भी अधिक मलिन होने का सहज ही अवसर प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार स्नान करने का कष्ट उठाना व्यर्थ हो जाता है। चाहे कोई कितना भी प्रयत्न करे टब में से बाहर आने पर इस मलिनता से शरीर को बचाना असम्भव ही हो जाता है।

दूसरा स्नान का प्रकार जापानियों का है वे टब स्नान करने के पूर्व नल के नीचे अपने शरीर को भली भांति स्वच्छ कर लेते हैं। इस विधि से भी एक बार नल के नीचे शरीर को पूर्ण रूप से धो लेने के पश्चात् टब का स्नान व्यर्थ, अनावश्यक और निष्प्रयोजक हो जाता है। स्विटज़रलैंड के यक्ष्मा विशेषज्ञ डा० जैकुआर्ड के मतानुसार अति स्नान उसी प्रकार स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है कि जैसे अल्प स्नान या अस्नान। ज्यों-ज्यों विज्ञान उन्नत होता जाता है त्यों-त्यों लोग अधिक वैज्ञानिक स्नान विधि का अनुसरण करने लगेंगे। पूर्व में लोग स्नान करने के लिए या तो बहती धार में बैठ जाते हैं, या अपने शरीर और शिर और धड़ पर जल उडेलते हैं। यह प्रारम्भिक स्नान विधि है किन्तु निश्चय ही स्वास्थ्य-विज्ञान से अधिक सम्मत है।

(५) मुख और पैर विषयक स्वास्थ्य

मानव के शारीरिक यन्त्र के लिए पैर शरीर रक्षा और संक्रामक रोगों से बचने के लिए अत्यन्त महत्व रखते हैं। यह ध्यान में रहे कि पैरों की स्वच्छता किसी प्रकार से भी मुख की स्वच्छता से कम महत्वपूर्ण नहीं है। पूर्व में जब लोग स्नान नहीं भी करते हैं तो भी मुख, हाथ और पैरों को धो डालते हैं। पश्चिम में लोग इस के लिए एक ही पात्र में जल रखते हैं और उसी जल में साबुन आदि से मुख, हाथ आदि धोते हैं। उसी प्रयुक्त जल का बार बार प्रयोग करते हैं जो कि स्वास्थ्य-विज्ञान के सर्वथा विपरीत है। इस प्रकार से साबुन का जो एक मिश्रण बन जाता है, वह चाहे जितना धोने पर भी मुखादि में अंशतः लगा ही रहता है और अनेक प्रकार से हानिकारक सिद्ध होता है। किन्तु पैरों को धोने की कोई व्यवस्था नहीं होती है सिवाय स्नान के समय जो प्रायः एक सप्ताह में एक बार किया जाता है। यह स्पष्ट ही है कि यह प्रथा ठीक नहीं है। पैर स्वेद से, मैले स्थानों में तथा शौचनालय आदि में जाने से प्रायः मलीन हो हो जाते हैं और उनको प्रतिदिन धोने की भी आवश्यकता है। पैरों का प्रक्षालन थकावट दूर करता है, और दिन भर के काम के पश्चात् भूख को बढ़ाता है। योरोप के किन्हीं किन्हीं देशों के कतिपय होटलों में पैर धोने की प्रथा प्रारम्भ हो गई है किन्तु अभी तक सर्व साधारण में इसका प्रचार नहीं हुआ है। मुझे विश्वास है कि कुछ दिनों में इसका प्रचार बढ़ेगा और धीरे धीरे इंगलैंड और अमेरिका में यह प्रथा प्रचलित हो जायगी।

अन्त में इन शब्दों के साथ मैं इस लेख को समाप्त करता हूँ कि किप्लिंग के इन शब्दों के होते हुए भी कि पूर्व और पश्चिम कभी नहीं मिल सकते हैं, पूर्व और पश्चिम मिल कर संसार के कल्याण की शीघ्रतर साधना कर सकते हैं. इसकी अपेक्षा कि दोनों पृथक् प्रयास करें। पाश्चात्य देशों के प्रमुख लोगों के द्वारा मृत शरीरों की दाह प्रथा का अनुसरण पूर्व की एक महान् विजय है। यह भी विशेष आश्चर्य की बात है कि यह अत्यन्त वैज्ञानिक प्रथा पूर्व में भी हिन्दुओं में ही पाई जाती है।

★

निराशा का अन्त

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.

जब मनुष्य का मन किसी प्रकार की चिन्ता से एक बार आक्रान्त हो जाता है, तो धीरे धीरे अपनी मानसिक स्थिरता, संतुलन और दृढ़ता खो देता है। बुलबुले के समान प्रतिकूलता, दुःख और उद्वेग उसे पर्वत सदृश दीख पड़ते हैं। प्रतिकूल विचारों के चिन्तन से मन अव्यवस्थित हो आता है, मन के दुर्बल बनने से शरीर दुर्बल बन जाता है। यह चिंता ही अनेक प्रकार के छोटे मोटे शारीरिक रोगों के रूप में प्रकट होती है। नैराश्य के अधिक दिन तक रहने से शरीर का बल, प्रतिभा, बुद्धि का विकास, आन्तरिक आह्लाद और आध्यात्मिक सामर्थ्य नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

चिंता का एक स्थायी कारण होता है, कुछ सामयिक कारण उस प्रधान कारण से मिल जाते हैं और मूल कारण को बढ़ाते रहते हैं। यह स्थायी कारण मनुष्य के गुप्त मन के किसी स्तर में छिपा रहता है। चतुर मानस-चिकित्सक इसे विश्लेषण द्वारा चेतना के समक्ष लाते हैं। यह मूल कारण मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का मुख्य कारण बन जाता है। सामयिक कारण कोई भी हो सकता है।

जब नैराश्य एक भावना-ग्रन्थि के रूप में परिणत होकर गुप्त मन में निवास करने लगता है, तब मनुष्य का मन मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के कारण निर्बल पड़ जाता है। फिर तो साधारण सी घटना भी मन में पुरानी दुःखद स्मृतिएं जाग्रत कर देती है। मान लीजिये एक स्त्री के कई बच्चे साधारण बीमारी में ही मर चुके हैं, कोई बचता नहीं। यदि उसका कोई पुत्र जीवित रहे, और जरा भी जुकाम, खांसी से ग्रस्त हो, तो उसके मन में बेचैनी बनी रहती है इस बेचैनी से उसके शरीर में थकावट उत्पन्न होती है। स्थायी चिंता किसी भी सामयिक कारण से उत्तेजित होकर चेतना पर अधिकार कर लेती है। यहां चिंता का कारण भय और मानसिक निर्बलता है। कमजोर मन पर अभद्र कल्पनाएं और कुत्सित निर्देश शीघ्र ही अपना प्रभाव डालते हैं। यह भय भी एक भावना-ग्रन्थि बन जाता है।

नैराश्य से क्लान्त रोगी का मन भाग्यवादी होता है, कर्तव्यवादी नहीं। जो परमेश्वर करेगा, वही होगा। हम तो अदृष्ट के हाथों में खिलौना मात्र हैं, भाग्य हमें जिधर ले जायगा, उधर ही चले जायंगे ऐसी दुर्बल विचार-धारा रखने वाला व्यक्ति अभागा होता है। वह ज्योतिषी, फकीर, झाड़फूंक करने वालों के पास जाता है और भाग्यफल पूछता है। जैसा उसे ज्योतिषी बता देता है, वैसे ही वह करने लगता है। स्वयं अपने भाग्य का फैसला करना नहीं जानता। उसका निर्बल मन तुरन्त ज्योतिषी के बुरे संकेत ग्रहण कर लेता है। ज्यों ज्यों वह इन अकल्याणकारी भावों को दबाने की चेष्टा करता है, त्यों त्यों उसके दुर्बल मन पर इनका अधिकाधिक प्रभाव गहरा पड़ता जाता है। यह आन्तरिक दुर्बलता शारीरिक रोग के रूप में प्रगट हो जाती है। हमें अपने निजी अनुभव में ज्ञात हुआ है कि अनेक शारीरिक रोग भी मानसिक निर्बलता—सन्देह, शंका, चिंता, भय, ग्लानि तथा मानसिक विकारों से उत्पन्न हुए और हमने उनको मानसिक चिकित्सा द्वारा ही अच्छा भी किया। पहले रोगी को नैराश्य की मानसिक चिकित्सा द्वारा ही अच्छा भी किया। पहले रोगी को नैराश्य की मानसिक ग्रन्थि से मुक्त करना पड़ा। तत्पश्चात् उसका शरीर रोग ठीक हुआ। जैसे-जैसे रोगी ने मानसिक सबलता धारण की आत्मश्रद्धा, तथा आन्तरिक विश्वास की वृद्धि की, वैसे-वैसे उसका स्वास्थ्य पूर्ववत् होता गया। यदि आन्तरिक जगत् में पूर्ण समस्वरता, शान्ति, सरलता रहे, तो कोई भी मानसिक या शारीरिक विकार संभव नहीं है।

नैराश्य रोग से मुक्त होने का उपाय इस विकार को दमन कर देना नहीं है। अनेक व्यक्ति निराश व्यक्त को अच्छे २ दृश्य दिखा कर उसकी पुरानी दुःखदस्मृतियों को भुलाने या दबाने की चेष्टा करते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस मानसिक विकार की मानसिक ग्रन्थि को सुलझाना ही सुखी होने का एक मात्र उपाय है। किसी भी विकार को दबा देने भर से काम न चलेगा। दमन की प्रतिक्रिया स्वरूप तो भावना-ग्रन्थि और भी जटिल बनती जायगी। दमन से थोड़े दिनों के लिये यह संभव हो सकता है कि रोग न बढ़े किन्तु जरा सा संघर्ष या दुःखद अवसर आते ही वह पुनः आन्तरिक जगत् से उमड़ पड़ेगा। कोई भी रोग दमन से विनष्ट नहीं होता। अल्पकाल के लिए अदृश्य हो जाता है। यह मनोवैज्ञानिक नियम नैराश्य तथा चिंता के विषय में भी सच है।

नैराश्य से मुक्ति के लिए उसका कारण सुलझा कर खोज निकालिये। यदि स्वयं समझ में न आये, तो किसी योग्य मनोवैज्ञानिक के पास जाकर समझिये। अपनी मानसिक गुत्थियों को सुलझाना इस विकार से बचने का सर्वोत्तम उपाय है। जब इस इस ग्रन्थि का कारण चेतना के समक्ष आयेगा तो वह स्वयमेव अच्छा हो जायगा। मनोविश्लेषण द्वारा जब विगत कटु अनुभूतियां रोगी की चेतना की सतह पर लाई जाती हैं और जब रोगी आत्म-स्वीकृति कर लेता है, अर्थात् सन्देह, भय, ग्लानि, चिंता की व्यर्थता मान लेता है तो वह ग्रन्थि सुलझ जाती है और मानसिक विकार नष्ट हो जाता है।

नैराश्य को दूर करने के दो मुख्य उपाय हैं—

[१] मन को निर्बल न होने देना।

[२] चिंता से न घबराना और नित्य प्रसन्न रहना।

मन को सबल बनाना

मन को ऐसे विचारों से भरे रखिये जो हितकर, शांतिकर, पुष्टकर हों अर्थात् जिनमे आपको वास्तविक शक्ति और आत्मविश्वास मिले, आत्मश्रद्धा में वृद्धि हो। आत्मश्रद्धा युक्त अवस्था में हम इस बात को जानते हैं कि परमात्मा हमारे अभीष्ट के लिए हमारे अन्तर जगत् में है। अपनी शक्तियों में अखण्ड विश्वास नितान्त आवश्यक तत्व है। हम सबल हैं, प्रत्येक ओर से सतर्क और पुष्ट हैं—ऐसी विचार धारा से मन पुष्ट होता है।

मन की शक्ति का ह्रास अन्तर्द्वन्द्व से होता है। अतः आप किसी भी संघर्ष में न फंसिये संघर्ष को विरोधी वासनाओं या विचार धाराओं का विषमता से उत्पन्न होता है। इस विषमता से सावधान रहिये। अपने आदर्श इतने ऊंचे न बना लीजिये कि वे कभी पूर्ण न हों। और आदर्शों तथा भोगेच्छाओं में विषमता न बनी रहे। अपने आदर्शों और इच्छाओं में समता उत्पन्न कीजिये। समता से स्थायी मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

इच्छाओं का शोध कीजिये अर्थात् इच्छाओं, वासनाओं तथा अपनी शक्ति के प्रकाशन के लिए कोई उत्तम कार्य ढूंढ निकालिये। उन्हीं में संलग्न रह कर अपने आदर्शों को व्यवहार के योग्य बनाइये। संसार में इच्छाओं के शोध के लिये आप को अनेक उत्तम कार्य मिल जायेंगे। स्वदेश सेवा, समाज सुधार, साहित्य सेवा, भजन पूजन, अध्ययन, फूल पौधों से प्रेम, पशुपक्षियों का अध्ययन, विज्ञान, मैशीनरी से दिलचस्पी, घर की सफाई, बच्चों को पढ़ाने का काम,—कोई भी उपयोगी कार्य ले कर उस में अपने आपको व्यस्त रखिये। मन का उपयोग करने से ही मानसिक शक्तियों का विकास होता है।

मन में नये उत्तम विचारों से भरे रक्खो।

मस्तिष्क में जितने ही नवीन शान्तिदायक विचार आयेंगे, उतना ही मन सबल होगा। खेद, शोक, चिन्ता और भविष्य के कल्पित दुःखों के विचार स्मरण बल, पुरुषार्थ, स्फूर्ति व सामर्थ्य को नष्ट कर डालते हैं। निरुपयोगी विचारों का बहिष्कार कीजिए। नवीन जीवन का नियम यही है कि निरुपयोगी विचारों को स्वभाव को निर्मूल करो और मन को सामर्थ्य युक्त नवीन उत्पादक विचारों को वृद्धि करो। नवीन विचार—उत्साह, प्रेम, उन्नति, विश्वास, प्रगति, शांति की भावनाओं का स्वागत करने से मस्तिष्क का मानस व्यापार व्यापक होता है, मन प्रफुल्लित हो जाता है, जीवन व बल की वृद्धि होती है, मन व बुद्धि तेजस्वी बनते हैं। इच्छानुसार मानसिक शक्तियें जागृत होती हैं।

नैराश्य से ग्रसत व्यक्ति को आन्तरिक संतुलन प्राप्त करने की दृढ़ प्रतिज्ञा और उस पर अमल करना चाहिए। चिन्ता से घबराना नहीं चाहिए। वरन् चिन्ता के कारणों को सुलझा कर एक-एक को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रत्येक कारण को या तो स्वयं ही अथवा दूसरों की सहायता से सुलझा कर नष्ट कर देना चाहिये। चुपचुप मन में न ठहरने देना चाहिये। मन की अद्भुत शक्तियों का ह्रास अर्तर्द्वन्द्व से होता है अतः इसे मानसिक जगत् में स्थान न देना चाहिए।

आपको जब चिन्ता आये तो उसका सामना समझदारी से करना चाहिए। जब आप चिन्तित हों तो यह समझिये कि मनन की आवश्यकता आ पड़ी है। आप सोच विचार कर चिंता का कारण दूर कर दीजिये। और सबलता ले आइये। अनेक बार मनुष्य आचरण के प्रतिकूल कार्य कर बैठता है। फलतः उसका मन आत्मग्लानि से भर जाता है। आत्मा उसकी भर्त्सना करती है। अपने दुष्कृत्यों के लिए पश्चाताप आवश्यक है। अवश्य! किन्तु स्थायी रूप से इसे मन में स्थान देने से यह मानसिक रोग बन जाता है। आत्मग्लानि का अर्थ यही होना चाहिए कि भविष्य में हम वे दुष्कृत्य न करें, आगे को सम्हल जांय, ठीक मार्ग ग्रहण कर लें। आप पुण्य को, सत्य को, प्रेम को ग्रहण करने का प्रण करें मन में शुभ कल्पनाएं रक्खें शुभ भावनाओं में रमण करें यही नैराश्य से मुक्त होने का सर्वोत्तम उपाय है।

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व से मुक्त होने के लिए आत्मनिर्देश या सजेशन से सहायता लीजिये। मन को बलवान् बनाने का एकमात्र उपाय आत्मनिर्देश ही है। अपनी आत्मा के सर्वोत्तम गुण विकसित एवं जाग्रत करने के लिये निर्देश का ही उपयोग कीजिये।

★

पक्षियों का अद्भुत संसार

श्री राधाकृष्ण कौशिक एम. एस. सी.

विचित्रता सदा से ध्यान आकर्षित करती रही है और भविष्य में भी इसी प्रकार करती रहेगी। समाचार पत्रों में भी ऐसी बातें न केवल प्रथम पृष्ठ पर स्थान पाती हैं प्रत्युत मोटे-मोटे अक्षरों में प्रकाशित की जाती हैं। पक्षिगण (Aves) नभचर होने के कारण साधारणतया ही दृष्टि में आते हैं, परन्तु इनमें से कुछ अपनी विशेष वेषभूषा व आकार के कारण, कुछ डिम्बोषणीय प्रकृति के कारण, कुछ सुमधुर कलरव और कुछ पंखों के होते हुये भी उड़ने में असमर्थ होने के कारण विशेषरूप से अपनी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं।

यद्यपि शुतरमुर्ग (Ostrich), इमू (Emu), उष्ट्र=याति (Rhea) और केसोवरी (Cassowary) जैसे भीमकाय पक्षियों को उड़ने में असमर्थ देख कोई आश्चर्य नहीं होता, परन्तु ऊर्ध्वस्थायी अर्थात् पेनग्वीन (Penguins), कीविक (Kiwic), ऊलूक-तोता (Owl-parrot), बिना उड़ने वाले पनकौए (Cormorants) आदि साधारण परिमाण के पक्षियों की अक्षता देख कर बड़ा विचित्र प्रतीत होता है।

वृद्ध के समान लंगड़ा कर चलने वाले पक्षी

इस प्रकार चलने वाले पक्षियों में ऊर्ध्वस्थायी (Penguins) सब से प्रमुख हैं। ये प्राणी-उद्यान (Zoological-gardens) में विशेषकर रखे जाते हैं और विदूषक के समान खड़े होने के ढग के कारण यात्रियों का ध्यान स्वयं ही उनको ओर चला जाता है। पैर छोटे व शरीर से बहुत पीछे निकले हुए होने के कारण यह मनुष्य की तरह बिलकुल सीधा खड़ा रहता है और पंजों का कुछ भाग आगे की ओर प्रवर्द्धित होने से बड़ी अनोखी तरह छोटे २ डग भर कर वृद्धों की तरह लंगड़ा कर चलता है। इस प्रकार इसकी चाल बड़ी अजीब मालूम होती है और आकर्षण का कारण बन जाती हैं।

ऊर्ध्वस्थायी (Penguin) के डैने शल्क (scales) जैसे पंखों से ढके रहते हैं और दृढ़ क्षेपणी (stiff paddle) अथवा पतवार का काम देते हैं। तैरने में पक्षी इनका पूर्ण लाभ उठाता है और जल में इतनी तीव्रगति से चलता है कि मछली आदि अपने खाद्य को बड़ी सुगमता से पकड़ लेता है।

खड़े खड़े अंडे सेने वाला पक्षी

ऊर्ध्वस्थायी (Penguins) की अनेक जातियां हैं परन्तु उत्तरी-ध्रुव का राज-ऊर्ध्वस्थायी (King penguin) सब से बड़ा होता है। यह खड़ी हालत में ४ फीट ऊँचा और कभी कभी ८० पौंड से भी अधिक भारी होता है। इसकी नीड व डिम्बोषण सम्बन्धी प्रकृति विशेषरूप से उल्लेखनीय है। मादा प्रतिवर्ष हेमन्त ऋतु के मध्य में केवल एक अंडा देती है जिसको उदर और पैरों के बीच में रख खड़े रह कर सेने का कार्य करती है। और पिछले भाग की ढीली त्वचा से एक प्रकार की थैली बना कर ढक लेती है जिससे अंडे को गर्मी पहुँचती रहती है।

छोटे आकार वाले ऊर्ध्वस्थायी में काले पंख वाला अर्थात् अन्तरीपीय ऊर्ध्वस्थायी (Cap penguin) सब से अधिक परिचित है। लन्दन के प्राणी-उद्यान में कितने ही पाले-पोषे भी गये हैं। इसके सम्बन्ध में सब से बड़ी विचित्र बात यह है कि नैसर्गिक वातावरण में तो केवल हेमन्त ऋतु में ही अंडे देता है परन्तु कौतुकागार के बन्दी-गृह में किसी भी समय प्रजनन के कार्य में लीन हो जाता है।

घोर निद्रा में दिन व्यतीत करने वाला पक्षी

न्यूजीलैंड का कीविक (Kiwic) की तीन जातियां हैं। आकार में यह घरेलू मुर्गी के बराबर होती है। इसके डैने (wings) इतने सूक्ष्म होते हैं कि

पूर्णतया पंखों से ढक जाने के कारण तनिक भी मालूम नहीं होते। डैनों की इस हीन अवस्था के कारण यह पक्षी होते हुये भी थलचर जीवन (terrestrial life) व्यतीत करती हैं। इसके उपरान्त ये रात्रिचर (nocturnal) अर्थात् 'निशाचर' भी हैं। सूर्योदय से सूर्यास्त तक अपना सम्पूर्ण दिवस एक भूमिगत छिद्र (under ground hole) में पड़ कर ऐसी घोर निद्रा में व्यतीत करती है कि उठा कर ले जाने पर भी निद्रा भंग नहीं होती। केवल रात्रि के अगाध अन्धकार में कीड़े-मकोड़ों और विशेषकर केंचुओं (Earth worms) का भक्षण करने के लिये अपने शयन-कक्ष से बाहर निकलती है। इसने उदर पूर्ति के लिये जीवों को चुगने में भी एक असाधारण विधि को अंगीकार किया है।

कीविक अपनी तीखी व लम्बी चोंच मिट्टी में घुसेड़ कर नासारंध्र (nostrils) से ध्वनि सहित बड़ी तीव्रता से श्वास छोड़ती है, जिससे मिट्टी इधर-उधर हो जाती है और कीड़े सुगमता से दृष्टि में आ जाते हैं। इस विशेष साधन के लिये अन्य पक्षियों की उपेक्षा इसके नासारंध्र चोंच के सिरे पर स्थित होते।

मादा कीविक अपने भूमिगत बिल में प्रायः एक और कभी २ दो अंडे देती है। जिनके सेने का भार नर को संभालना पड़ता है। पक्षी को देखते हुये इसके अंडे काफी बड़े होते हैं। लन्दन के कौतुकागार में एक कीविक ने अंडा दिया, जिसका भार १४½ औंस था, अर्थात् वह मुर्गी के औसतन अंडे से छः गुना अधिक भारी उतरा, जबकि कीविक, जैसा कि प्रारम्भ में ही वर्णन किया जा चुका है कि एक मुर्गी से अधिक बड़ी नहीं होती।

भौंडा स्वरूप

साधारणतया पक्षी सुन्दर ही होते हैं, परन्तु कुछ की विशेषता उनका विचित्र व भौंडा आकार है। इनमें से धनेश (Horn-bill) और टूकन (Toucan) बृहत् चोंच के कारण बड़े अजीब व भौंडे जैसे प्रतीत होते हैं। टूकन की चोंच चमकदार व रंगबिरंगी होती है जिसमें काला, पीला, लाल, नीला और हरे रंग की झलक होती है। धनेश की चोंच के ऊपरी पर टोप जैसा प्रवर्द्धन होता है, मानो मनोरञ्जन के लिये विदूषक ने टोप यथा स्थान न पहिन कर आगे रख लिया हो। इस प्रतियोगिता में गैंडा-धनेश (Rhimoceros Horn-bill) सब से बाजी मार गया है। इसका अग्रभाग गैंडे के शृङ्ग के समान एकदम ऊपर को मुड़ा होता है जिसके कारण उसका स्वरूप बड़ा विचित्र व भौंडा प्रतीत होता है। उड़ने के दृष्टिकोण से ये पक्षी बड़े सुस्त और अत्यधिक भार के होते हैं।

धनेश की चोंच के बने आभूषण

यद्यपि धनेश और टूकन की चोंच इतनी बड़ी व लम्बी होती है, परन्तु आकार के अनुसार भारी नहीं होती। क्योंकि अन्दर से कोषावान (Cellular) होती है। परन्तु सुमात्रा और बोर्नियो का टोप वाला धनेश (Helmet hornbill) इसका प्रतिवाद है। इसकी चोंच केवल ठोस ही नहीं होती प्रत्युत हाथी दांत जैसे वयन (texture) की होती है। वहां के आदिवासी चोंच के लोभ से इस पक्षी को पकड़ लेते हैं और चोंच के कत्तलों को काट कर खुदाई और नकाशी का काम करके सुन्दर आभूषण व पिनें बनाते हैं।

नीड में बंदी पत्नी

धनेश की नीड सम्बन्धी प्रकृति भी बड़ी अनोखी है। नारी किसी शुष्क वृक्ष के खोखले तने के छिद्र में अंडे देती है। नीड-निर्माण के पश्चात् वह उसके अन्दर अपना स्थान ग्रहण कर लेती है और नर फलों की लुगदी को अपने उदर-यूष से मिश्रित कर आवागमन के द्वार को लीप कर बन्द कर देता है। परन्तु इसमें एक सूक्ष्म दरार रहने दी जाती है जिस में से

बन्दी पत्नी भोजन ग्रहण करने के लिये अपनी चोंच बाहर निकाल सकती है। नर खाद्य-सामग्री एकत्रित करके लाता है और उसको पेषणी (Gizzard) की त्वचा से बनी एक थैली में से वटिका के रूप में निकाल कर नारी की चोंच में डाल देता है। इस प्रकार बन्दी पत्नी अपने नैसर्गिक शत्रुओं के भय से मुक्त होकर डिम्बोषण (incubation) में लीन रहती है। जब बच्चे दो तीन सप्ताह के हो जाते हैं तो माता अपनी चोंच से भित्ति को फोड़ कर प्रसूतिका गृह से निकलती है और द्वार को लीप कर फिर बन्द कर देती है। जिससे नवजात शिशु अन्दर सुरक्षित रहें। बाहर आकर माता अपनी बढ़ती हुई गृहस्थी के लिये खाद्य-संग्रह करने में अपने पति का हाथ बटाती है और अपनी आवश्यकताओं की भी पूर्ति करती है। अन्ततः वह दिन भी आता है जब बच्चे स्वावलम्बी होने के योग्य हो जाते हैं और घौंसले को तोड़ कर कर्मण्य जीवन व्यतीत करते हैं।

बन्दी अवस्था में नारी धनेश की अंडे सेने तथा बच्चों के पालन-पोषण की अवधि में यदि नर की मृत्यु हो जाती है तो गृहस्थ के सम्मुख भोजन प्राप्ति की विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है। ऐसे अकाल समय में सजातीय बन्धु सहायता के लिये आगे आ जाते हैं तथा उनको उदर-ज्वाला से मुक्त करते हैं। और इस प्रकार पिता का पद ग्रहण कर लेते हैं।

मृत धनेश के सम्बन्ध में आदिवासियों के अन्धविश्वास

दक्षिण अफ्रीका के आदिवासियों में वहां के धनेश के सम्बन्ध में एक बड़ा विचित्र अन्धविश्वास प्रचलित है कि यदि किसी शुष्क नदी नाले में मृत धनेश डाल दिया तो स्रोत फिर चालू हो जाता है। उनका कथन है कि पक्षी का शव पड़ जाने से स्रोत दूषित हो जाता है। इस लिये वर्षा शीघ्र ही होती है जिससे जल प्रवाह द्वारा दूषित वस्तु बह कर वह पुनः स्वच्छ हो जाये। आदिवासियों में जन्तु व पक्षियों के सम्बन्ध में इस प्रकार के अनेकों अन्ध-विश्वास घर किये हुये हैं।

अफ्रीका और मैडागासकर छत्रधारी अंबर (tufted umbre) नामक विचित्र पक्षी का घर है। यह 'हथोड़ा शिर' नाम से भी पुकारा जाता है। इसका आकार कौए के बराबर होता है और क्योंकि सिर के पिछले पंख छत्र अथवा कलंगी के समान इस प्रकार फैले होते हैं कि शिर का आकार हथौड़े जैसा प्रतीत होता है। इसी कारण इस का नाम 'हथोडा शिर' पड़ गया है। यह पक्षी अपनी भौंडी शकल के उपरान्त अपने वृहद् घौंसलों के कारण भी प्रसिद्ध है। घौंसला छोटी २ लकड़ियों का बनाया जाता है, जिसका व्यास लगभग ६ फीट अर्थात् दो गज का होता है और यह इतना सुदृढ़ होता है कि एक मनुष्य के भार से भी कोई हानि नहीं होती। तीन विभाग होने के कारण घौंसला इतना विस्तृत होता है। एक विभाग बैठक अथवा हाल का काम देता है, दूसरा 'प्रसूतिका गृह' का, जहां अंडे दिये व सेये जाते हैं, और तीसरा 'शयन-गृह' होता है जहां चलने-फिरने के योग्य हो जाने पर बच्चों का स्थान परिवर्तन कर दिया जाता है।

ठण्डा रखने के लिये अंडों को सेने वाले पक्षी

यह सब ही जानते होंगे कि पक्षिगण 'डिम्बोषण अवधि' (incubation period) में अंडों को ऊष्ण रखने के लिये सेते हैं। जिस से नियत समय पर उनका विकास हो जाये। यही अधिकांश पक्षियों के लिये भी सत्य है। परन्तु एक पक्षी शीतल रखने के ध्येय से अंडों पर बैठता है। यह सूक्ष्म पक्षी मिश्र का काली पीठ वाला कोर्सर (Courser) अथवा मगर-मच्छ पक्षी (Crocodile bird) कहलाता है। परिमाण में एक स्टार्लिंग (Starling) के बराबर होता है। यह रेतिया में कई इञ्च गहरे उथले गडढे खोदकर दो तीन अंडे देता है और पुनः उनको

बालू से बूर देता है। सायं व प्रातः दोनों समय निशंक होकर अंडों को छोड़ जाता है। परन्तु जैसे २ सूर्य मध्याह्न में चढ़ता जाता है, उसकी किरणों से बालू तप्त हो जाती है। उस समय सूर्य के उग्र ताप से अपनी छिपी हुयी निधि की रक्षा के हेतु उन 'घौंसलों' पर आ बैठता है, जिस से उन पर छाया हो जाती है। यदि पक्षी इस ओर तनिक भी उदासीन हो जाये तो सूर्य की गर्मी से अंडों का जल भुन कर भुर्ता बन जाये। जिस प्रकार ज्येष्ठ-वैसाख की गर्मी में हम खस की टट्टियों का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार यह पक्षी नदी नाले में जाकर अपने उर (breast) को जल से तर कर लेने के पश्चात् अंडो पर आ बैठता है। रेत से ढके हुये अंडों को शीतल रखने के लिये कभी कभी यह पक्षी पानी घूंट लाकर उन पर छिड़क देता है। साधारणतया पक्षी अपने अंडों को गरम रखने के लिये उन पर बठते हैं, परन्तु उपरोक्त उदाहरण इसका अपवाद है जहां अडों को शीतल रखने के लिये विभिन्न युक्तियों की शरण ली है।

इस पक्षी का मगर-मच्छ के साथ भी बड़ा विचित्र पारस्परिक सम्बन्ध है। यह उरगम ताल-तलैयों व नदी-नालों से बाहर निकल कर सूर्य स्नान के लिये रेतिया में लोट मारना बहुत पसन्द करते हैं और प्रायः इस समय उनका मुंह भी पूर्णतया खुला रहता है। 'मगर-मच्छ पक्षी' भी उड़ कर इसके समीप ही आ बैठता है और फुदक फुदक कर उसके मुंह में से 'जोख (Leech) तथा अन्य छिपे हुये कीड़ों को चोंच से पकड़ कर खाता रहता है। यद्यपि मगर-मच्छ एक अत्यन्त क्रूर व धोखेबाज जन्तु है परन्तु इस पक्षी को नहीं निगलता। इस अनुदार व्यवहार से ऐसा प्रतीत होता है कि मगर इस पक्षी का अत्यन्त आभारी है क्योंकि इस क्रिया से मगर चिपटी हुई जोंखों से मुक्त हो जाता। यद्यपि पक्षी उसके दांतों के नीचे से कीड़े बटोरता रहता है परन्तु मगर जबड़ों को उस समय तक खुला ही रखता है जब तक कि पक्षी उसके मुंह में विचरता रहता है। इन दो प्राणियों का पारस्परिक सम्बन्ध सचमुच ही जन्तु जगत् की एक महान् विचित्रता है। इस 'सहजीवन' (Sym brosis) से दोनों ही जन्तुओं को सम्पूर्ण लाभ है। एक ओर तो मगर की रक्त-चूसने वाले कीड़ों व जोखों से रक्षा होती है और दूसरी ओर पक्षी को बड़ी सुगमता से भर पेट भोजन उपलब्ध होता है।

★

विभिन्न धर्म

प्रत्येक धर्म ने मानवजाति को सहायता पहुँचाई है। पैगनिज्म (प्राचीन यूनान का देव-पूजक धर्म) ने मनुष्य के अन्दर सौंदर्य के प्रकाश को विकसित किया है, उसके जीवन की विशालता और उच्चता को बढ़ाया है और बहुमुखी पूर्णता के उसके उद्देश्य को उन्नत किया है। ईसाइयत ने उसे दिव्य प्रेम और दयालुता व सहृदयता का कुछ दर्शन कराया है। बौद्ध धर्म ने उसे अधिक ज्ञानी, अधिक विनीत और अधिक पवित्र होने का एक उत्कृष्ट मार्ग दिखाया है। यहूदी धर्म और इस्लाम ने उसे धार्मिक भाव से क्रिया में सच्चे होना और ईश्वर के प्रति उत्कट भक्ति वाला होना सिखाया है। हिन्दू धर्म ने उसके आगे बड़ी से बड़ी और गहरी से गहरी आध्यात्मिक संभावनाओं को खोल दिया है। एक बड़ा काम सिद्ध हो जायगा, जब ये सब ईश्वर-दर्शन परस्पर आलिंगन कर लेंगे और अपने आपको एक दूसरे के प्रतिरूप बना लेंगे। पर बौद्धिक सिद्धांत-वादिता और सांप्रदायिक अहंकार मार्ग में बाधक हैं।

—श्री अरविन्द।

★

मांसाहारी वनस्पतियां

श्री राजकुमार गोयल

मांसाहारी पौदों में कुछ ऐसी रचनाएं होती हैं जो पूर्णतया फूलों जैसा आकार बना लेते हैं और उन्हीं की तरह आकर्षक वर्ण व मनमोहक गन्ध तथा मधुरस से परिपूर्ण होती हैं परन्तु बीजोत्पादन से इनका तनिक भी प्रयोजन नहीं होता। यथार्थ में ये कीट जाल हैं जिनकी सुन्दर छटा, वर्ण व्यवस्था, मनमोहक गन्ध और मधु रस कीड़ों को इन जालों में फसने के लिये आमन्त्रित करते रहते हैं। रस स्वादन के लिये आये हुये दीन अतिथि इन शिकञ्जों में फंस जाते हैं जहां से उनका फिर कभी निस्तार नहीं होता। यहीं उनकी मृत्यु होती है और अन्त में पच जाते हैं।

ये 'मिथ्या-पुष्प' कीटाशी हैं और विभिन्न प्रकार के होते हैं। इनमें से अधिकांश कलश पादप पिचर्स प्लान्ट्स के नाम से प्रचलित हैं, क्योंकि ये बहुत कुछ कलश के आकार के होते हैं। इनका आधे से अधिक भाग मधुरस से भरा होता है।

कीटाशी अथवा मांसाहारी पौधों के ज्ञान के लिये हम संसार के महान् प्रकृति वेत्ता चार्ल्स डारविन के सबसे अधिक आभारी हैं। इतने कीटाशियों में से एक भी पौधा ऐसा नहीं है जो कि कीट-भोज पर ही पूर्णतया निर्भर हो। अन्य वनस्पतियों के समान इनमें भी हरी पत्तियां होती हैं और उसी प्रकार भूमि से अपना भोजन प्राप्त कर सूर्य की किरणों द्वारा कार्बात्मीकरण (कार्बन एसिमिलेशन) करते हैं। निःसन्देह ये पौधे कीट भोज के अभाव में जीवित रह सकते हैं परन्तु मांस भोज अधिक पुष्टीकर होता है। जर्मनी के वनस्पति विशेषज्ञ जूलियस वोन सेश् ने एक इसी प्रकार के प्रश्न के उत्तर में कहा है कि 'यद्यपि पोलैंड और आयरलैंड के वासी आलू पर निर्वाह करते हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि शोरबा उनके लिये अधिक उपयोगी और पुष्टीकर नहीं होगा।' अधिकांश कीटाशी पौधे दलदलों में उगते पाये जाते हैं, ऐसे स्थान की मिट्टी में प्रायः नत्रजन का अभाव रहता है, क्योंकि ऐसे स्थानों में बहुत ही कम पेड़ पौधे और जन्तु पाये जाते हैं और जो भी कुछ अल्प मात्रा में नत्रजन मिट्टी में प्रस्तुत होती है वह भी शीघ्र जमीन की गहरी सतह में पहुँच जाने के कारण पौधों के लिये अप्राप्य हो जाती है। पेड़ पौधों के दृष्टिकोण से नत्रजन उसके लवण नाइट्राइट्स और नाइट्रेट्स के रूप में अत्यन्त घुलनशील होने से अगाध पानी के साथ बहुत गहरी सतह में पहुँच कर पौधों को नहीं मिल पाती। नियमित रूप से नत्रजन का भाग पाने में असफल होने के कारण इन पौधों ने इस आवश्यक पदार्थ की पूर्ति के लिये हिंसा करने की असाधारण विधि को अपनाया है। पूर्णतया स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रहने के लिये हमको भी नत्रजन की आवश्यकता पड़ती है जिसका हम दाल, मांस, अंडे आदि के रूप में सेवन करते हैं। ये पौधे साधारण विधि से नत्रजन का नियमित भाग न पाकर हिंसक और मांसाहारी बन गये हैं जोकि वनस्पति जगत की एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण घटना है।

सम्भवतः इस हिंसक प्रवृत्ति का प्रारम्भ दंशक रोम [स्टिंगिंग हेअर्स] से हुआ है। इस प्रकार के रोम दंशरोम [कुल अर्टिकेसी] की पत्तियों पर पाये जाते हैं जिससे कोमल पत्तियों की जन्तुओं से रक्षा हो सके। इससे ऊँची श्रेणी के वे पौधे हैं जिनमें दश रोम पुष्पों के वृन्त पर विद्यमान होते हैं। ये अनुपयोगी कीटों को पुष्प तक पहुँचा कर पराग-कण नष्ट करने से रोकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पौधों ने मृत कीड़ों के शरीर को शोषण करके लाभ उठाया है और इस प्रकार कनक पर्णी (ड्रौसेरा) जैसे कीटाशी पौधों का विकास प्रतीत होता है। जिनमें पत्तियों पर विषम रोम अथवा अंगक (टेन्टेकल्स) होते हैं जो सूक्ष्म जन्तुओं व कीड़ों को पकड़ने, मारने और अन्त में भक्षण करने में सहायता देते हैं।

कनक पर्णी की कुछ जातियां हिमालय के मैदानों नीलगिरी और पंजाब की पहाड़ियों पर पाई जाती हैं।

यह एक सूक्ष्म पौधा है जिसकी रक्त वर्ण पत्तियों पर लगभग दो सौ चमकते हुए गदाकार रोम होते है। इनके सिरे सूर्य की रश्मियों में ओस की बूंदों के समान चमकते हैं। इस लिये इस पर्ण को 'सूर्य की ओस' (सन-ड्यू) के नाम से भी सम्बोधित करते हैं। सूर्य की किरणों से इनकी ऐसी छटा हो जाती है मानो छोटी-छोटी लाल मखमली गद्दी पर सहस्रों सुनहली आलपिनें लगी हों।

कनकपर्णी की पत्तियों के किनारे के रोम सब से बड़े होते हैं और अन्दर वाले क्रमशः छोटे होते जाते हैं। बीच के रोम सबसे छोटे होते हैं और सीधे खड़े रहते हैं। प्रकाश में इन पत्तियों से ठीक फूल का भ्रम होता है, जिन्हें मधुरस से परिपूर्ण समझ कर पतंगे अनायास ही उन पर आ बैठते हैं। परन्तु ज्यों ही एक सूक्ष्म पतंगा एक अंगक पर बैठता है त्योंही उसके पंख इस चिपचिपे रस में फंस जाते हैं और अन्य अंगक चारों ओर से झुक कर इसे घेर लेते हैं। जब पतंगे अपने को मुक्त करने के लिये उड़ने की चेष्टा करते हैं तो उनके अंग और भी अधिक फंस जाते हैं। साथ ही साथ पतंगे के अंग के संघर्षण से ग्रन्थियों में से रस और भी अधिक वेग से बहने लगता है। इसमें प्र त्या-मीन पाचक रस (प्रोटीन्स डाइजेस्टिंग ऐन्ज़ाइम) होता है जिसकी प्रक्रिया से कुछ ही दिनों में पंजर को छोड़कर समस्त शरीर का शोषण हो जाता है और इस क्रिया के समाप्त होने पर अगक फिर उठ कर सीधे खड़े हो जाते हैं। साथ ही साथ पत्ती के उदासर्ग (सीरेशन) तथा कीट शरीर के पाच्य अंगों का शोषण हो जाता है और कटिनि (चीटीन) के पंजर का बायु के झोंके द्वारा निष्कासन होता है। दो, तीन दिन के पश्चात ये पत्तियां फिर शिकार पकड़ने के योग्य हो जाती हैं और इस प्रकार यह चक्र चालू रहता है।

मनोरञ्जन के लिये कनकपर्णी के साथ छोटी-मोटी चाल भी खेली जाती है। उदाहरणार्थ यदि मांस का एक छोटा सा टुकड़ा उसके समीप लाया जाय तो उस ओर के अंगक इस प्रकार आगे बढ़ आते हैं जैसे कि मनुष्य मिठाई के लिये हाथ आगे फैला देता है। यदि मांस का टुकड़ा अधिक दूर नहीं होता है तो अन्त में अंगक उसको घेर कर भक्षण करने में सफल हो जाते हैं। यदि कागज़ की एक गोली अंगकों के मध्य में गेर दी जाय तो लसीला रस का उदासर्जन नहीं होता और वे शीघ्र ही अपनी साधारण स्थिति में आ जाते हैं।
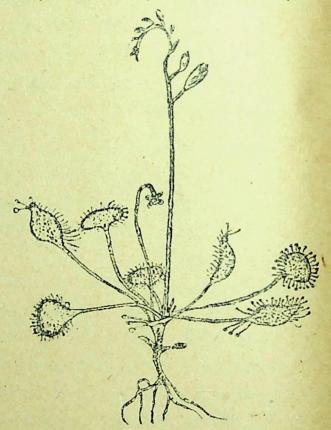
कनकपर्णी

कनकपर्णी का एक निकट सम्बन्धी ओसपर्णी (ड्रोसोफाइलम) है। यह पुर्तगाल में बहुतायत से पाया जाता है और वहां के किसान अपने घरों में इसको मक्खी पकड़ने के प्रयोग में लाते हैं और इस प्रकार ही टांग देते हैं जिस प्रकार मक्खी पकड़ने के कागजों का प्रयोग किया जाता है।

एक दूसरा कीटाशी पौधा नवनीतपर्णी (बटर-वोर्ट) है। यह भी प्रायः उन्हीं स्थानों में पाया जाता है जहां पर कनकपर्णी पाया जाता है। यह एक सूक्ष्म पौधा है जिसकी पत्तियां एक इञ्च से तीन इञ्च

-तक लम्बी होती हैं। इन पत्तियों पर एक पीत वर्ण मक्खन जैसा पदार्थ पुता होता है।

नवनीतपर्णी की पत्तियां जमीन पर बिछी रहती हैं जिनके किनारे ऊपर उठे रहते हैं। जब कोई पतंगा इनके ऊपर आ कर बैठता है तो यह पत्तियां बन्द होने लगती हैं और कीट को बन्दी बना लेती हैं। इनके ऊपर स्थित अणुवीक्षीय ग्रन्थियां (माईक्रोस्कोपिक ग्लैंड्स) पाचक रस छोड़ती हैं जिसके प्रभाव से प्रत्यामीन (प्रोटीन्स) प्रचूषण योग्य बन जाते हैं। इस क्रिया के पश्चात पत्तियां फिर खुलने लगती हैं।

इससे भी अधिक उपज्ञावी (इन्जीनियस) विधि का सूक्ष्म कीट पकड़ने वाले पौधे पुटकी (ब्लेडुर वोर्ट द्वारा होता है जो कि काश्मीर के खड्डों में और डल झील (डल लेक) में बहुतायत से पाया जाता है। अन्य जलीय वनस्पतियों की भांति पुटकी की पत्तियां भी बहुत कटी हुई होती हैं जिनमें से कुछ के सिरे अत्यन्त सूक्ष्म फुग्गों में परिवर्तित हो जाते हैं और प्रत्येक में केवल एक ओर द्वार होता है।

ये सूक्ष्म थैलियां पाश (ट्रेप) का काम करती हैं। इनके मुख पर अन्दर की ओर खुलने वाला एक ढक्कन होता है। विशेष साधन से थैलियों का पानी बाहर निकल जाता है और उसकी दिवारें सुकड़ जाती हैं। साइक्लोप्स, डेफनिया तथा अन्य कठिनिनः क्रस्टेसीन जब द्वार-पाश के रोम छूते हैं, तब द्वार खुल जाता है, और थैली की दिवार बाहर की ओर बढ़ती है। इस प्रकार आकार में परिवर्तन के कारण बाहर से पानी अन्दर की ओर घुसता है जिसके साथ सूक्ष्म कीट भी घुस जाते हैं। कीट के प्रवेश करते ही द्वार बन्द हो जाता है, और वह पुटकी के अन्दर बन्दी हो जाता है। उसके अन्दर श्वासावरोध और उदर ज्वाला से पीड़ित होकर एक दो दिन में मृत्यु को प्राप्त होता है। हृष्ट पुष्ट होने पर ६-७ दिन तक इस यन्त्रणा को भोगता हुआ शरीरांत कर देता है। और वे वहां पर पड़े-पड़े सड़ते रहते हैं। यह क्रिया जीवाणुओं (बैक्टीरीया) के प्रभाव से होती है। पुटकी के अन्दर विशेष कोष होते हैं जो मृत जीवों के शरीर से उपयोगी जैविक (ऑरगेनिक) पदार्थों का शोषण कर पौधे के अङ्गों में पहुँचाते हैं।

इसी सिद्धांत के विस्तृत रूप का प्रदर्शन कलश-पादप (पिचर्स प्लान्ट) में पाया जाता है। कलश-पादप कई प्रकार के होते हैं, जिनमें सब से सुन्दर व आकर्षक घटपर्णी (नेपेन्थेस) है। यह भूमध्य रेखा के निकटवर्ती एशियाई प्रदेशों, उत्तरी आस्ट्रेलिया, मेडागास्कर और सब से अधिक उत्तरी बोरनियों में पाये जाते हैं। कलश पादप दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह जो दलदल में उगते हैं और जिनके लम्बे परन्तु सकड़े फूलदान जैसे कलश झड़ी हुई पत्तियों से न्यूनाधिक ढके रहते हैं। दूसरे वह हैं जिनका आकार जग के समान होता है और हरी पत्ती के सिरे से प्रवर्द्धित प्रतान (टेन्ड्रील) के सिरे पर कलश लटके रहते हैं, जो किसी दूसरी शाखा पर लिपटा रहती है।

प्ररूपिक (टिपिकल) कलश एक इञ्च हो अथवा एक फुट हो बेल जैसे प्रतान के सिरे पर लटका रहता है। जर्मनी के प्राविज्ञानाचार्य कार्ल वोन गोयबिल के मतानुसार कलश यथार्थ रूप में पत्रदल (लेमिना) का रूपान्तर है। प्रारम्भ में कलश का मुख ढक्कन से बन्द रहता है, परन्तु पूर्ण विकसित अवस्था में यह ढक्कन खुल जाता है और मुख के ऊपर झुका रहता है जिस से कलश वर्षा में न भर जाये। इन में तथा अन्य प्रकार के कलशों में ढक्कन और भी आकर्षक रंगों से सजे होते हैं जिस से पतंगे उनको पुष्प समझकर आ बैठते हैं। ये ढक्कन नवनीतपर्णी के पत्रदल अथवा कनकपर्णी के अंगकों के

समान बार बार खुल और भिड़ नहीं सकते। ढकन एक बार खुलने के पश्चात् सदा ही खुला रहता है।

पतंगे, जो सदैव मधु की खोज में उड़ते फिरते है, कलश की सुन्दरता से आकर्षित हो कर सहसा उन के अन्दर घुस जाते हैं। परन्तु कलश का द्वार ढलवां होने के कारण ये अनायास ही कलश के उदर में जा गिरते हैं। कलश की दिवार बहुत ही चिकनी और फिसलनी होती है जिसके कारण कीटों को रेंग कर चढ़ना अत्यन्त ही कठिन हो जाता है। अगर कोई पतंगा चढ़ने में सफल भी हो जाता है तो उस से ऊपर की दिवार पर स्थित, नीचे की ओर झुके हुए कांटये, एक बाढ़ का काम देते हैं जिस से कीट का निकलना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव हो जाता है। किसी-किसी कलश में कांटयों की दोहरी झालर भी पाई जाती है। कलश के उदर में तरल पदार्थ भरा होता है जिस में बहुत से कीट पहली ही डुबकी में प्राण त्याग देते हैं। पतंगे जो एक बार कलश ए अन्दर घुस जाते हैं वहीं पड़े पड़े सड़ते रहते हैं।

कलश का रस गुण में कुछ अम्लीय (एसिडिक) होता है, और विशेषकर निचले भाग में स्थित ग्रन्थियों से निकलता है। यह रस गुण और क्रिया में हमारे उदर-यूष (गेस्ट्रिक ज्यूस) के समान होता है और इसमें जैविक अम्ल (ऑरगेनिक एसिड) के साथ पाचि[पेप्सीन]भी मिश्रित होता है। इसमें कीड़ों मकोड़ों को पचा कर प्रचूषण करने की क्षमता होती है। इसलिए जितने भी कीड़े मकोड़े कलश में बन्दी हो जाते हैं वे वहीं सड़ते गलते रहते हैं और अन्त में भस्म हो जाते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में दूर-दूर तक जल का नाम निशान नहीं होता, उस समय पतंगों के अतिरिक्त चूहे इत्यादि भी जल की खोज में इन कलशों में घुस जाते हैं और इन के शिकार बन जाते हैं। इस से यह ज्ञात होता है कि 'मिथ्या पुष्प' कीटों को छोड़ कर चूहे इत्यादि को भी अपनी तुंबियों में फंसा लेते हैं। परन्तु ऐसा कम ही होता है।

घटपर्णी
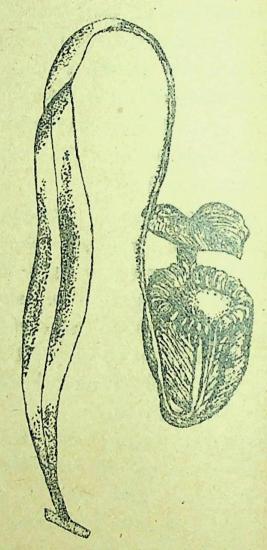
घटपर्णी के अतिरिक्त फूलदान व भूपू के आकार के अन्य पर्याण पर्णी (सेमेसीनिया) और आस्ट्रेलिया का कुम्भपर्णी (सेफेलोटस) भी हैं, जिन में सामान्य पत्तियों के साथ-साथ परिवर्तित तुंबिया भी होती हैं।

पर्याणपर्णी की तूंबी भूपूदार होती है। जो कि सपक्ष पत्रवृन्त (विंग्ड पीटियोल) का रूपांतर मात्र है, और ढकन पत्रदल का। इनमें किसी प्रकार का विकार [एन्ज़ाइम] या अम्ल [एसिड] नहीं

निकलता परन्तु जीवाणुओं [बैक्टीरिया] के उत्पत्ति से विश्लेषण होता है जिसको ये पौधे शोषण कर लेते हैं।

कुम्भपर्णी [सेफैलोटस] में भी किसी प्रकार का पाचक रस नहीं निकलता परन्तु एक अम्लिक यूष निकलता है। यह साधारण प्रकार के सड़ने को रोकता है, परन्तु विशेष प्रकार के जीवाणुओं की उत्पत्ति में सहायक होता हैं।

पर्णपर्णी [साना सीनिया] का एक निकट सम्बन्धी केलीफोर्निया का कलश पर्णपर्णी [डार्लिङ्गटोनिया] है, कीट पकड़ने की विधि में यह पर्णपर्णी से मिलता जुलता है।

बहुत से कलशों व तूंबियों में बहुत कम कीट पाये जाते हैं। उनमें पाचन क्रिया जीवाणुओं की उत्पत्ति से नहीं होती। परन्तु अत्यधिक कीट फंस जाने से रस कम पड़ जाता है और कलश की अन्तर वस्तु सड़ने लगती है। कभी-कभी यह विलक्षण घटना भी देखने में आई है कि कलश द्रव में उपस्थित जीव जीवित अवस्था में ही रहते हैं। सम्भवतः आन्त्रिय पराश्रयी [इन्टर्नल पैरासाइड] जीवों के समान कलश के जीव भी पाचन क्रिया से अप्रभावित रहते हैं।

कीटाशी पौधों में सब से विचित्र कपाटपर्णी [वीनस फ्लाई ट्रैप] है। यह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में और उससे भी अधिक उत्तरी और दक्षिणी केरोलिना के दलदलों में पाया जाता है। इसकी पत्तियों की व्यवस्था पाटलक विधि [नौस्ट्रेफेशन] के अनुसार होती है। प्रत्येक पत्ती में दो पालि [लोबेस्] होती हैं, जो मध्य-नाड़ी [मिड रिब] से संयुक्त रहती हैं और कपाट के समान खुल और भिड़ सकती हैं। पालि के सिरे पर कुण्ठ-सूची [ब्रिस्टल्स] की एक कतार होती है, जो कि चूहेदान के दांतों की तरह काम करती है और पत्ती एक चूहेदानी का। पत्ती की सतह पर अनेकों ग्रन्थियां होती हैं जिनसे पाचक रस निकलता है। प्रत्येक पालि पर तीन रोम होते हैं जो अत्यन्त द्रुष [सेन्सिटिव] होते हैं।

जब पत्तियां हरिता [मौस्सी] बिछौने पर फैली होती हैं। तब वे कीटों के लिए बड़ा ही आकर्षक वेदि का काम देती है। जैसे ही कीट या पतंगा कुंठ-सूची के सम्पर्क में आता है, पत्ती की दोनों पालियां कपाट के पलड़ों के समान बन्द होने लगती हैं। और अन्त में उदर का काम देती हैं, जिन से हमेशा पाचक रस बहता है। पत्तियों की ऊपरी सतह पर स्थित रक्त-वर्ण ग्रन्थियों से यह रस निकलता है और इन्ही के द्वारा अन्त में प्रचूषण कर लिया जाता है। अजैविक [इन ऑर्गेनिक] तथा नत्रजन रहित पदार्थों को पत्तियों पर डालने से किसी प्रकार की उत्तेजना नहीं होती। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वनस्पति जगत् का यह विचित्र हिंसक पौधा इस विशेषता के होते हुये भी विलुप्ति की ओर अग्रसर हो रहा है।

कपाटपर्णी का एक प्रतिरूप बड़ा भंगी [एल्ड्रोवेण्डा] है। यद्यपि यह विश्वव्यापी है जिस पर भी अभी तक इसकी एक ही जाति पाई गई है। बंगाल, क्यून्सलैंड तथा योरोप में यह बहुतायत से पाया जाता है। कभी-कभी इसकी पत्तियों में हवा के बुलबुले पाये जाते हैं इसलिए आरम्भ में इसको पुटकी समझने का भ्रम हो गया था। यह पौधा मूल रहित होता है और स्वच्छन्दता से पानी पर उतराता है। इसकी ऊपरी नतोदर ग्रन्थीमय पालियों तथा मध्य नाड़ी पर सहस्रों लम्बे और तीखे रोम होते हैं, ये अत्यन्त ही द्रुष होते हैं और रोम छूते ही पत्तियां बन्द होने लगती हैं। २४ से ३६ घण्टे पश्चात् पत्तियां इस क्रिया को दोहराने के लिए फिर खुल जाती हैं।

★

गुरुवर्याय श्रद्धानन्दाय श्रद्धाञ्जलिः

श्री धर्मदेवो विद्यावाचस्पतिः।

[१]

भक्तश्रेष्ठः परजनहिते सर्वदा दत्तचित्तः
श्रद्धां शुद्धां विमलहृदये मातरं मन्यमानः।
शिक्षां हृद्यां शुभ गुरुकुले सन्ददानो बटुभ्यः
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरः सर्वदा वन्दनीयः॥

★

[२]

निर्भीको यः सरलहृदयः सत्यवाक् स्पष्टवक्ता
देवे भक्तिं परमविमलामादधानोऽविकम्पाम्।
शुद्धिद्वारा सकल मनुजान् दीक्षमाणः सुधर्मे
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरोऽसौ सदा वन्दनीयः॥

★

[३]

दत्वा तन्वो मुदितमनसा यो बलिं धर्मवेदौ
प्राप्तो लोके ह्यमरपदवीं त्यागशीलो महात्मा।
आसीत्सर्वं विमल चरितं यस्य सद्यज्ञरूपं
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरोऽसौ सदा वन्दनीयः॥

★

[४]

अन्यायं यः सकलमहसा रोद्धुकामः प्रयेते
सत्याहिंसा बलयुत इहान्यायिनो योद्धुकामः।
कारा-कष्टं वयसि चरमे यः समोदं विषेहे
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरोऽसौ सदा वन्दनीयः॥

★

[४]

येते नित्यं दलित-पतितान् मानवानुद्दिधीर्षुः
पूतान् सर्वान् श्रुतिवचनतः पावनः संचिकीर्षुः।
अस्पृश्यत्वं सम सममना दूरयन् जातिभेदं
श्रद्धानन्दो गुरुजनवरोऽसौ सदा वन्दनीयः॥

★

[५]

देवेन्द्रं तं भुवन-पितरं प्रार्थयामो महेशं
दद्याच्छक्तिं यतिपथि सदा निर्भयत्वेन गन्तुम्।
श्रद्धां शुद्धां सकलमनुजेष्वादध्यात्कृपालु-
र्भूयाद् येनाखिलजनगणादर्शभूतः समाजः॥

★

पुस्तक परिचय

वैदिक योग पद्धति—लेखक आचार्य विदेह। प्रकाशक—वेद संस्थान, अजमेर। मूल्य ।=)। ईश-विश्वास, आत्म-विश्वास, आकांक्षा, श्रद्धा, पवित्रता, अनासक्ति, ब्रह्मवृत्ति, समाधि आदि शीर्षकों के नीचे लेखक ने वेद मन्त्रों को देते हुए उनकी सुन्दर व्याख्या की है। अपने जीवनों में मधुरता, आत्म-विश्वास, पवित्रता आदि कल्याणकारी भावनाओं को भरने के लिए इस पुस्तिका से प्रत्येक नागरिक को प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए।

वैदिक बाल-शिक्षा—लेखक और प्रकाशक वही। मूल्य ।=)। चुने हुए वेद के मन्त्रों से बच्चों को तेजस्विता, माता पिता की सेवा, सत्य-भाषण, समय पालन, निन्दा त्याग, अग्रणीयता, चोरी-त्याग, सहनशीलता आदि गुणों को अपने अन्दर ग्रहण करने की शिक्षा दी गई है। इस पुस्तक को स्कूलों में धर्मशिक्षा की पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ाने से बालकों का बहुत उपकार हो सकता है। माता पिताओं को भी इसका स्वाध्याय करना चाहिए।

सार्वभौम आर्य साम्राज्य—लेखक तथा प्रकाशक वही। मूल्य आठ आने। वैदिक आदर्शों के अनुसार राष्ट्र का गठन और वर्धन जिस प्रकार का होना चाहिए उसी प्रकार के सार्वभौम आर्य-साम्राज्य की कल्पना लेखक ने की है। यह साम्राज्य किसी का शोषक न होकर सबको धारण और पोषण करने वाला होगा।

आर्य समाज का साप्ताहिक अधिवेशन—लेखक तथा प्रकाशक वही। मूल्य तीन आने। आर्य समाजों के साप्ताहिक अधिवेशनों कार्यक्रम क्या रहना चाहिए, यह इस पुस्तिका में बताया गया है। सन्ध्या और हवन के मन्त्रों का सरल अर्थ भी दिया गया है।

संस्कार विधि विमर्श—लेखक श्री अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार। प्रकाशक—नरेन्द्र शशि, काशी विश्वविद्यालय, बनारस। पृष्ठ संख्य १२५। मूल्य तीन रुपये। भारतीय जीवन में संस्कारों का ऊंचा स्थान है। इन संस्कारों से हमारे अन्दर अनेक गुणों को आधान करने और दुर्गुणों को निकालने की प्रेरणा मिलती सोलहों संस्कारों की क्या विधि है और उनका चिकित्सा और प्रजाशास्त्र के आधार पर क्या महत्व है यह इस पुस्तक में स्पष्ट किया गया है।

आयुर्वेद (मासिक)—सम्पादक, श्री गौरी शंकर गुप्त। प्रकाशक-श्याम सुन्दर रसायन शाला, काशी। वार्षिक मूल्य ३)। आयुर्वेद के पहले वर्ष का पहला अंक हमारे सामने है। आयुर्वेद के सभी अंगों पर अन्वेषण पूर्ण ठोस साहित्य का प्रकाशन इसका उद्देश्य है। इस आदर्श लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हम 'आयुर्वेद' को उत्तरोत्तर फलता फूलता देखना चाहते हैं।

—रामेश बेदी।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु - ऋतुराज की सवारी अपनी पूरी आन-बान शान से विराज रही है। प्रकृति में चहुँ ओर आमोद और उल्लास दृष्टि-गोचर हो रहा है। आम्रकुञ्ज मंजरियों से झुके जा रहे हैं। फरवरी के मध्य से ही पपीहे की पुकार और कोकिल का कलरव कुल के वनकुंजों को गुंजा रहा है। शहतूत की बहार है। लुकाट प्रारम्भ हो गए। प्रातः सायं खुशनुमा सर्दी हो जाती है। गेहूँ और चने की खेतियां अच्छी अवस्था में हैं। छात्रों का आरोग्य बहुत अच्छा है।

कुल जन्मोत्सव

विगत २२ फरवरी को कुलवासियों ने कुल का जन्मोत्सव बड़े आमोद और प्रेम के साथ मनाया। सुहावने प्रभात में सब कुलवासी कुल पताका की छाया में समवेत हुए। वाद्य-निर्घोष के साथ नवीन पताका फहराई गई। श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने पताका फहराते हुए कुल के आदर्शों की ओर कुल वासियों का ध्यान आकृष्ट करते हुए एक छोटा सा प्रवचन किया। तदनन्तर वेद मन्दिर में कुलसभा हुई। जिसमें ब्रह्मचारियों और गुरुजनों ने इस वर्ष की अपनी सफलताओं और कार्य प्रवृत्तियों पर विचार करते हुए नए वर्ष की आशाएँ व आकांक्षाएं अभिव्यक्त कीं। सायंकाल विविध क्रीडाओं में सान्मुख्य खेले गए।

परीक्षाएं

महाविद्यालय विभाग की परीक्षाएं ६ मार्च से प्रारम्भ हो चुकी हैं और २५ मार्च तक समाप्त हो जायेंगी। विद्यालय विभाग की वार्षिक परीक्षाएं २५ मार्च से प्रारम्भ होंगी और एक सप्ताह तक चालू रहेंगी छात्रगण अध्ययन में खूब दत्तचित्त हैं।

प्रकाशन-विभाग

प्रकाशन विभाग का काम अच्छी गति से चल रहा है। फरवरी मास में 'सरल शब्द-रूपावली' प्रकाशित हुई है। संस्कृत भाषा के शिक्षार्थियों के लिए यह बहुत उपयोगी है। बाजार में उपलब्ध होने वाली रूपावलियों में यह सब से अच्छी कही जा सकती है। रूपों की भिन्नताएं तथा रूपविषयक सब प्रकार के नियम-उपनियम हिन्दी भाषा में बड़ी खूबी से समझाए गए हैं। साथ ही कारक विभक्तियों के अर्थ आदि भी समझाए गए हैं। इसका संपादन गुरुकुल के अध्यापक श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति ने किया है।

स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी के भारतीय इतिहास का दूसरा खंड बहुत दिनों अप्राप्य हो रहा था उसकी सजिल्द नवीन आवृति बहुत सुन्दर रूप में इस मास में प्रकट हो गई है।

अपने देश की कथा (डॉक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार लिखित) का भी नवीन संशोधित तृतीय संस्करण इस मास प्रकाशित हो गया है। यह पुस्तक बनारस की संस्कृत परीक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक के रूप में स्वीकृत हुई है।

विशेष अतिथि

उस दिन भारत सरकार के खाद्य मन्त्री माननीय श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने गुरुकुल की मुलाकात की। उनके साथ श्रीमती लीलावती मुन्शी भी थी। गुरुकुल शिक्षा नगर की परिक्रमा करके आप लोगों ने बड़ी प्रसन्नता और परितोष प्रकट किया।

गत मास में कुल में दो विदेशी यात्री पधारे। इनमें मालकम विली महोदय न्यूयार्क के समीप एक विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। आप भारतीय संस्कृति के विशेष प्रेमी हैं और न्यूयार्क के रामकृष्ण मिशन आश्रम से सम्बन्ध रखते हैं। दूसरे सज्जन मारकोस लोना बारोस चिली देश के एक पत्रकार थे। आप भारतीय वेष-भूषा धारण किए हुए थे।

★

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार । गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार ।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार ।

गुरुकुल पत्रिका

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय-हरिद्वार

वर्ष २ । अङ्क १० । गुरुकुल-पत्रिका ज्येष्ठ २००७

व्यवस्थापक
श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

अंग्रेजी वैज्ञानिक शब्दावली

डाक्टर रघुवीर, एम. ए. पी. एच. डी. (लन्दन)डी. लिट् एंड फिल (हालैंड)

हमारी शिक्षा का माध्यम भारतीय होना चाहिये; इसे सभी मनुष्य मानते हैं पर कुछ मनुष्य यह चाहते हैं कि हमारी भाषाओं को अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली अपना लेना चाहिये। वे समझते हैं कि आंग्ल वैज्ञानिक शब्दावली अवश्य ही अंताराष्ट्रीय है और उसे अपनाने से हमें समस्त संसार के विज्ञान को समझने में सुगमता होगी। वे मनुष्य भ्रांति में हैं। अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली अंताराष्ट्रीय नहीं है। यदि शब्द चयन में हम विभिन्न शब्दों को हम अंताराष्ट्रीयता की कसौटी पर कसें तो हमें संसार की समस्त भाषाओं के शब्द कोषों में प्रत्येक शब्द देखना पड़ेगा, यदि वह सब कोशों में आया है, तो हम भी उसे रखेंगे अन्यथा नहीं। यह बड़ी हास्यास्पद कसौटी होगी। अपनी भाषा का निर्माण करते समय, किसी भी देश ने अंताराष्ट्रीयता के दृष्टिकोण को नहीं अपनाया। उन्होंने केवल अनुकरण ही नहीं किया अपितु अपनी भाषा की प्रतिमा के अनुसार उसे विकसित किया है।

हम अनुवाद क्यों करते हैं? अनुवाद करने से हम विविध भाषाओं के साहित्य को सरलतापूर्वक समझ सकते हैं, उन भाषाओं के सीखने का श्रम बच जाता है और समय नष्ट नहीं होता। विदेशी भाषाओं का अध्ययन देश के सब मनुष्य नहीं कर सकते। जनसाधारण में ज्ञान विज्ञान फैलाने के लिये अनुवाद आवश्यक ही है। विदेशी भाषाओं के माध्यम द्वारा सीखने से हमारे मस्तिष्क के विकसित होने में बाधा होती है और हम अपनी बपौती को सर्वथा भूल जाते हैं, उसकी उपेक्षा करने लगते हैं, अनुवाद करने से हमारी भाषायें भली भांति विकसित होंगी, हम में स्वावलंबन का भाव जाग्रत होगा, विदेशी भाषाओं के बन्धन से मुक्त होकर हमारे मस्तिष्क स्वच्छंदतापूर्वक विकसित हो सकेंगे।

हमारी भाषा में आंग्ल शब्दावली का मिश्रण करना बहुत हानिकारक होगा। हमें आंग्ल शब्दावली अर्थहीन होगी और उस पर आश्रित होने के कारण हमारी भाषा दास भाषा कहलायेगी, वह कदापि उन्नति न कर सकेगी।

हमारी भाषायें समृद्धशाली हैं और वे अल्पकाल में ही पूर्णत विकसित होने की क्षमता रखती हैं। यदि हम अपनी शब्दावली का प्रयोग करें तो हमारी भाषाएं विकसित होंगी। अपनी वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग करने में हमारा ध्येय आंग्ल शब्दावली को नष्ट कर देना नहीं है। हम उस शब्दावली का प्रयोग भले ही न करें पर हम से असंबद्ध उसका

अस्तित्व और विकास तो होता ही रहेगा। अभी हम उस दिवस की कल्पना नहीं कर रहे हैं जब हमारे शब्द सारे संसार में प्रयोग किये जायेंगे और उन्हें हटा देंगे। हमारी भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली बनने के पश्चात् भी, हमारे अन्वेषक अंग्रेजी और अन्य भाषायें सीखेंगे, पर उन्हें जनसाधारण क्यों सीखें? श्रम, समय और धन का दुरुपयोग क्यों करें? पाठकों को सुनकर आश्चर्य होगा कि भारतीय शब्दों का ज्ञान होने से हम उनके पर्यायवाची यूरोपीय शब्दों को सरलतापूर्वक समझ सकेंगे। अंतारा्ष्ट्रीय के मोह में पड़ यदि हमने इस तथाकथित अंतारा्ष्ट्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम रखा तो भारतीय विद्यार्थियों के ज्ञान के विकास में एक महान् बाधा उपस्थित हो जावेगी।

हमें शब्दनिर्माण करने में झिझकना नहीं चाहिये। इसमें संकोच अथवा लज्जा की कोई बात नहीं है। अन्य देशों में प्रतिदिन सैकड़ों शब्द बनाये जाते हैं। प्रत्येक नये आविष्कार के साथ ही कई नये शब्द आते हैं। यदि हमारी भाषाओं में शब्दों की आवश्यकता है तो हमें नवीनता से न घबड़ाकर नये शब्द बना लेना चाहिये।

हम अभीतक आंग्ल माध्यम से शिक्षित होते आये हैं और अधिकांश अंग्रेजी शब्द हमें अर्थहीन प्रतीत हुये हैं, इस कारण हम यह सोचते भी नही कि शब्दों का अर्थमय होना कितना आवश्यक है। जब हम अपने शब्द प्रयोग करेंगे और उनकी अर्थमयता का बोध होगा तब हमें भारतीय शब्दों का महत्व मालूम होगा। शब्द, केवल वर्णों के संग्रहमात्र नहीं होते हैं। अंग्रेजी शब्द हमारे लिये अर्थहीन होते हैं इस कारण ज्ञान का द्वार हमारे लिये बन्द ही रहा है पर भारतीय शब्द हम स्वच्छन्दतापूर्वक ज्ञानभांडार में प्रवेश करने देंगे।

कुछ मनुष्यों का मत है कि यदि कुछ आंग्ल शब्द हमारी भाषा में आ जावें तो कोई हानि नहीं होती। कुछ ही शब्द होते तो समस्या कठिन न थी। प्रयोग में वे 'कुछ ही' शब्द अधिक हो जाते हैं। एक आंग्ल शब्द अपने साथ सैकड़ों शब्द लाता है जिनमें बहुत से ऐसे होते हैं जो अवांछनीय होते हुये भी हमें रखने पड़ेंगे।

हमारी अपनी शब्दावली होने से एक लाभ यह होगा कि हमारी साहित्य और विज्ञान की भाषा एक ही होगी, अंग्रेज़ी की भांति भिन्न न होगी। दूसरा लाभ यह होगा कि हम अपने व्यापार और विज्ञान के गोपनीय विषयों को गुप्त रख सकेंगे। रूसी, जर्मन और जापानी अपनी भाषा के कारण ही इस बात में सफल हो सके हैं और बिना किसी के ज्ञात हुये विभिन्न क्षेत्र में उन्नति कर सके हैं।

भविष्य में भारतीय विद्यार्थी को पाश्चात्य विद्यार्थी के समीप पहुँचना है, उन्हें १०, १५ वर्ष अंग्रेजी सीखने में नष्ट नहीं करना चाहिये। शिक्षा के ध्येय में परिवर्तन करना होगा। आज शिक्षा का ध्येय अंग्रेजी सिखाना समझा जाता है भविष्य में इसका मुख्य ध्येय विज्ञान सिखाना होगा। भाषा की दृष्टि से विज्ञान सीखने के लिये अंग्रेजी उपयुक्त माध्यम नहीं है।

हमें अपनी भावी पीढ़ियों और उन ८० प्रतिशत भारतीयों के दृष्टिकोण से सोचना चाहिये जो अंग्रेजी नहीं जानते। यदि हम अपनी दृष्टि को व्यापक बनाकर इस प्रश्न पर सोचेंगे तो हमें आंग्ल भाषा के साथ लगे रहने की निरर्थकता का पता लग जाएगा और हम आलस्य त्याग कर भारतीय वैज्ञानिक शब्द ही अपनाएगें।

माता पिता के प्रति बच्चों के विचार

डाक्टर डोरिस ओडलुम

माता और पिता सम्भवतः उन विचारों को सुनना पसन्द करेंगे जो समय समय पर अनेक बच्चे मेरे सामने अपने माता पिताओं के प्रति प्रकट करते रहे हैं। ये सदैव प्रशंसात्मक ही नहीं होते, परन्तु यदि इन से आपको बच्चों का दृष्टिकोण समझने में सहायता मिले तो मैं समझती हूँ आप बुरा न मानेंगे।

सम्भवतः उन विचारों के सर्वोत्तम प्रतिनिधि के रूप में मैं अपनी एक ६ वर्ष की भतीजी के विचार रख सकती हूँ, जो उसने दण्ड पाने के उपरान्त एक कुर्सी पर खड़े होकर मानो एक श्रोतृवृन्द के सन्मुख भाषण देते हुए प्रकट किये थे, "मैं समझती हूँ सबसे अधिक खेद का विषय यह है कि माता पिता यह भूल जाते हैं कि बचपन में वे स्वयं क्या अनुभव करते थे।" सम्भवतः अधिकांश बच्चे यही समझते हैं। वे कहते हैं कि आप उनके दृष्टिकोण को नहीं समझते प्रतीत होते। आप जानते हैं उनका भी एक दृष्टिकोण है। यदि आप उनका प्रेम और सहयोग चाहते हैं तो इस दृष्टिकोण को समझना आप के लिये अवश्य लाभप्रद सिद्ध होगा।

मुझे सैंकड़ों बच्चों से मिलने का अवसर मिला है, और मैंने अनुभव किया है कि उन में से एक बहुत बड़ी संख्या की यह शिकायत है कि माता पिता सवेरे से शाम तक किसी न किसी काम से उन्हें रोकते ही रहते हैं और कुछ नहीं कहते। निःसन्देह इस में पर्याप्त सत्य है। और दुर्भाग्यवश कई कामों से उन्हें रोकना आवश्यक भी है; परन्तु अच्छा होगा यदि किसी किसी दिन कभी-कभी आप यह भी विचार करें कि प्रातः से शाम तक आप ने जितने कार्यों से उन्हें रोका है क्या उन सब से रोकना वस्तुतः आवश्यक था। यदि छोटी छोटी बातों के लिये माता पिता रोकने लगे तो बच्चे बारबार की इस नाहीं के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि इस पर ध्यान भी नहीं देते। उस अवस्था में बड़े-बड़े दुष्कर्मों से उन्हें रोकना भी आपके लिये कठिन हो जाता है।

बच्चों को झिड़कना

एक अन्य शिकायत यह है कि माता पिता उन्हें झिड़कते रहते हैं। वस्तुतः हम इस दोष के भागी नहीं कहे जा सकते क्योंकि कई बार वे हमारे कथन की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते हैं। इसका कारण यह है कि बच्चे अपना बहुत सा समय दिवास्वप्नों तथा कल्पनाओं में ही बिताते हैं। जब उन्हें दक्षिणी समुद्र के किसी द्वीप में बहुत बड़ी सम्पत्ति मिल रही हो या कोई परी उन्हें किसी दैत्य के हाथ से छुड़ा कर उड़ाये ले जा रही हो तब एकदम इस रूक्ष तथा नग्न सत्य से पूर्ण जगत् में लौट आना उनके लिये कठिन है। सम्भवतः जब हम उन्हें बुलाना चाहते हैं तब यदि कुछ क्षणों का अवसर दे दिया करें तो झिड़कने के अवसर आया ही बहुत कम करें।

रुचि की भिन्नता

बच्चों की रुचि तथा अरुचि के विषय वही नहीं होते जो माता पिताओं के होते हैं। उन्हें शोर मचाना बहुत अच्छा लगता है और वे समझते हैं कि हम आनन्द से दूर तथा नीरव प्रकृति के मनुष्य हैं। हमें समझना चाहिये कि बच्चे एक

बालिग व्यक्ति की अपेक्षा शीघ्रता को बहुत पसन्द करते हैं। वे सदैव आगे ही आगे बढ़ते रहना चाहते हैं। यदि उनके दिमाग तथा शरीर कार्य-व्यस्त नहीं हों तो वे उकता कर क्षुब्ध हो जाते हैं और तब जैसा हम सब भलीभांति जानते हैं किसी न किसी शरारत में लग जाते हैं। यदि आप एक बच्चे को घूमने के लिये ले जांय तो वह पिल्लों की तरह कूदना तथा दौड़ते हुए चलना पसन्द करता है। कुछ देर तक शान्तिपूर्वक कुर्सी पर बैठना उस के लिये बहुत कष्ट का विषय है। बच्चे किसी बात पर देर तक अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकते और इसलिये वे खेल तथा अपने पाठ में विभिन्नताओं को पसन्द करते हैं। उन के क्रोध का एक बहुत बड़ा विषय यह भी है कि जब हमारे अनेक अतिथि किसी पार्टी में आये हों तो उन्हें अच्छे वस्त्र पहनाये जांय तथा नम्र रहने के लिये कहा जाय। एक बुद्धिमान् बालक सबसे अधिक तब अनुभव करता है जब मित्रों के सामने उसे कोई खेल दिखाने अथवा गीत गाने के लिये कहा जाय।

अपनी चीजों से प्रेम

कभी कभी हम किन्हीं चीजों को केवल अपने उपभोग के लिये रखते हैं और दूसरों को छूने भ नहीं देते। हमारा यह व्यवहार भी बच्चों को बहु बुरा लगता है। एक छोटे बच्चे ने एक दिन मुझे कहा "यदि मैं कभी पिता जी के पाइप के पास जाऊं या मुझसे उनका सबसे भद्दा और छोटा सा गुलदस्ता भी टूट जाय तो पिता जी तथा मां दोनों मुझे मारने लगते हैं परन्तु जब काका मेरे खिलौने तोड़ देता है तो मुझे उसे कुछ नहीं कहने देते।" खेद है हम भूल जाते हैं कि कितनी कम चीजें को बच्चे अपना कह सकते हैं और वह छोटी सम्पत्ति उन के लिये कितनी मूल्यवान् होती है। एक बच्चे की गुड्डी या छोटी सी रेलगाड़ी उसके लिये उतनी ही मूल्यवान् है जितनी कार या रेडियो हमारे लिये।

परन्तु सार रूप में बच्चे हमारे झक्कीपन और हमारी त्रुटियों के लिये बहुत क्षमाशीलता तथा सहन शक्ति का परिचय देते हैं। एक छोटे बालक ने इस विचार से अपने बड़ों को क्षमा कर दिया "मैं समझता हूँ माता पिता अब इतने वृद्ध हो गये हैं कि अब वे अपनी आदत से लाचार हैं।"

गुरुकुल पत्रिका स्वर्ण जयन्ती विशेषाङ्क। होम्येपैथिक सन्देश, दिल्ली की समालोचना—

अपने छोटे से कार्यकाल में इस पत्रिका ने सर्वसाधारण में भारतीय संस्कृति व शिक्षा प्रणाली का प्रसार किया है और इस अंक द्वारा गुरुकुल कांगड़ी के ५० वर्ष पूरे होने पर सबके सम्मुख गुरुकुल जीवन, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली व गुरुकुल कांगड़ी के सम्बन्ध में यथेष्ट ज्ञान प्रदान किया है। इस अंक में अनेक लेख ऐसे हैं जो कि भारतीय शिक्षा प्रणाली पर लिखे गये हैं। भारतीय संस्कृति की उपयोगिता का इसमें शुद्ध वर्णन मिलता है। "गुरुकुल क्या है?" अब भी बहुत से यह प्रश्न पूछते हैं उनका स्पष्टीकरण इसमें जन-साधारण के लिये दिया है। ऐसे समय में जब कि भारतीय अपनी शिक्षा सुधार की ओर चिन्तित हैं। इस भांति के अंक अच्छे सुझाव प्रस्तुत करते हैं। इस अंक में दीक्षान्त भाषणों के संग्रह से गुरुकुल की कार्य प्रणाली का अच्छा चित्रण मिल जाता है। आशा है, पाठक वर्ग इस अंक व पत्रिका का समुचित आदर करेंगे।

जीवन के दैनिक व्यवहार को पवित्र और धवल बनाने का काम महिलाओं को ही करना होगा।

श्री सुधीर कुमार घोष, शिक्षा संचालक, उत्तर प्रदेश

कुछ समय पूर्व तक हम भारतीयों के कार्यक्षेत्र में दो परस्पर विरोधी दिशाएं रही हैं। देश में प्रतिष्ठित शासनसत्ता द्वारा स्थापित संस्थाओं को एक निश्चित नीति के अनुसार काम करना पड़ता था। इस नीति के निर्धारण में अनेकों बाह्य पदार्थों का प्रभाव रहता था। दूसरी ओर वे संस्थायें थीं जिन्होंने अपने कार्यक्रम का उद्देश्य और आदर्श केवल देश और राष्ट्र की सेवा को मान रखा था। इन संस्थाओं में प्राचीन आर्य संस्कृति और परम्परागत आदर्शों तथा मर्यादा की रक्षा का भरसक प्रयत्न किया जाता था। एक कार्यप्रणाली की शक्ति और प्रेरणा का स्रोत शासन सत्ता थी, तथा दूसरी देशभक्ति और देश-सेवा की त्यागपूर्ण आधार-शिला पर स्थित थी। इन दोनों कार्यप्रणालियों के उद्देश्य अधिकांश में भिन्न थे। दोनों में विरोध का होना स्वाभाविक था और यह भी स्वाभाविक था कि जिन संस्थाओं का जन्म राष्ट्रीय सेवा के उद्देश्य से हुआ था उन्हें विरोधी वातावरण से घिरे हुए अपने अस्तित्व को बनाये रखने की चिन्ता रहती थी। अतः जो शक्ति कार्यक्रम को निश्चित रूप से आगे बढ़ाने के लिए अपेक्षिक थी वह प्राप्त नहीं हो सकती थी। आज परिस्थिति सर्वथा भिन्न है। हमारे बल का ह्रास करने वाली विरोधी शक्तियों का अन्त हो गया है। देश की सब संस्थाओं और उसके सब कार्यकर्ताओं का अब एक निश्चित ध्येय तथा उद्देश्य है—अपने स्वतन्त्र-राष्ट्र को शीघ्रातिशीघ्र शक्तिशाली बनाना। हमारी कार्य-प्रणालीयां राष्ट्रनिर्माण की भावना से नया जीवन पाकर एक दिशा की ओर उन्मुख हो गई हैं। राष्ट्रीय निर्माण में देश की सारी शक्तियों को लगाना है। अभी तक हमारे आन्दोलन स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए होते थे, अब वे देश में नई क्रान्ति उत्पन्न करने के लिए हो रहे हैं। शताब्दियों की परम्पराओं और रूढ़ियों के बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके हमें नये विचार कोण और नये दृष्टि-कोण को बनाना है, जीवन के आदर्शों को नया रूप देना है, समाज की नयी मान्यताओं का निर्माण करना है। यह कहना अनुचित न होगा कि युग के अनुरूप अपने राष्ट्र को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने के लिए विषमताओं से रहित नए समाज का ही निर्माण करना है। यह महान् कार्य है। इसके लिए भगीरथ प्रयत्नों की आवश्यकता है। इसमें संदेह नहीं कि इस कार्य का भार समाज के शिक्षित अंग पर है और इसके सम्पादन का सब से बड़ा उत्तरदायित्व शिक्षा विभाग पर है, क्योंकि समाज का विकास, उसकी व्यवस्था, उसका नव-निर्माण, उसकी सांस्कृतिक मान्यताएं आदि शिक्षा के रूप और प्रकार पर ही निर्भर करती हैं।

वर्तमान युग में विज्ञान ने काल और देश विषयक सीमाओं का संकोच कर दिया है। संसार के समस्त देशों का पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध होता जा रहा है। हम या कोई अन्य राष्ट्र अपना पृथक् अस्तित्व नहीं रख सकते। यदि किसी नवीन-विचार धारा का जन्म पृथिवी के किसी भाग में होता है तो उसका प्रभाव सारी मानव जाति पर पड़ता है। वर्तमान युग में मनुष्य परम्परागत रूढ़ियों के बन्धन से मुक्त होने की

चेष्टा कर रहा है। इन्हीं का अन्त करने के लिये अनन्त-शक्ति-सम्पन्न नये नये आविष्कार हो रहे हैं, और दार्शनिक-विचारक नये सिद्धान्तों को जन्म दे रहे हैं। परन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का क्या रूप होगा यह प्रश्न विचारणीय है। क्या समाज का आधार नष्ट करके उसे सर्वथा अव्यक्तिगत कर देना होगा? क्या निर्माण के लिए विध्वंस अनिवार्य है? क्या व्यक्तिगत स्वतन्त्रता उच्छृंखलता का रूप धारण करेगी? शान्ति और सुख की अभिलाषा रखते हुए भी क्या हमारा विचारस्वातन्त्र्य विशृंखलता का कारण बनेगा? इन प्रश्नों पर हमें शांतचित्त से विचार करते हुए अपने क्रांतिकारी काम में लगे रहना है।

हमारे सामने जो अनेकों कठिन समस्यायें हैं उनका कुछ दिग्दर्शन ऊपर किया गया है। हम इनका समाधान किस प्रकार कर रहे हैं या करना चाहते हैं उसका संक्षेप करके मैं अपने प्रदेश की शिक्षा-विषयक नीति की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। परिस्थिति के बदल जाने से हम सहसा अपने अधिकारों का विचार करने लगे हैं। अधिकारों की मांग भी की जाती है। ऐसा होना स्वाभाविक और ठीक भी है। अपनी नागरिकता का सम्यक् ज्ञान होने पर हमें अपने नागरिक अधिकारों के प्राप्त करने की भी आकुलता है जिससे हम अपनी उन्नति, अपना विकास और अपना हित साधन कर सकें। परन्तु हम यह भूल जाते हैं कि हमारे लिये अपने कर्तव्य का ज्ञान होना सबसे अधिक आवश्यक है। हमारे शास्त्रों ने हमारे धर्म का, हमारे कर्तव्यों का उल्लेख किया है और उन्हीं पर जोर दिया है, अधिकारों पर नहीं। हमारा अधिकार कर्तव्य पालन तक ही है—'कर्मण्येवाधिकारस्ते'। आपको ज्ञात है कि उत्तर-प्रदेश में शिक्षा में क्रांति उत्पन्न कर दी गई है। अनेकों योजनाएँ चालू की गई हैं जो समाज के प्रत्येक अंग का स्पर्श करती हैं। संस्थाओं का विभेद मिट गया है। हम सब का उद्देश्य एक हो जाने के कारण सभी संस्थाएं राष्ट्रीय निर्माण का काम कर रही हैं। सहस्रों कार्यकर्ता एकनिष्ठ होकर, निष्काम बुद्धि से उत्साह और लगन के साथ नयी योजनाओं को चला रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति में हम अपने कर्तव्य पालन की बलवती भावना जगा देना चाहते हैं। स्वावलम्बन के भावों को उत्पन्न करना चाहते हैं और आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय के आध्यात्मिक गुणों का प्रस्फुटन करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि नारी समाज इस राष्ट्रीय महायज्ञ के अवसर पर पीछे न रहे वरन् पुरुषों के साथ २ महिलाएँ भी राष्ट्र सेवा को ही अपना मुख्य कर्तव्य बना लें।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में महिलाओं का महत्वपूर्ण भाग रहा है। शिक्षित महिलाएँ ही नारी समाज में नया उत्साह पैदा कर सकती हैं। आर्य-संस्कृति के वातावरण में शिक्षा प्राप्त कन्या गुरुकुल की स्नातिकाएँ इस समय प्रदर्शिकाएं बन सकती हैं। सहस्रों वर्षों की दूषित रूढ़ियों ने स्त्री-वर्ग के कार्य-क्षेत्र को गृहस्थी की सीमाओं तक ही संकुचित कर दिया। स्त्री-कर्तव्य की भी रूढ़ियां बन गयीं, और धीरे २ इनकी अनुदारता और जड़ता बढ़ती गयी। परिणाम यह हुआ कि शक्ति-स्वरूपा नारी अबला बना दी गई। वह स्वयं बन्धनयुक्ता होकर अपना आत्म-विश्वास खो बैठी, उसने साहस और पुरुषार्थ को तिलांजलि दे दी। स्वतन्त्रता संग्राम की प्रथम सेनानी झांसी की रानी लक्ष्मी बाई जैसी महिला-मणियां तो अपवाद के रूप में अवतरित होती रहीं। स्त्रियों ने कच्छप के सदृश अपने अंग को सिकोड़ कर घर की दीवारों के पृष्ठ के अन्दर शरण ले ली और बाह्य संसार से सम्बन्ध विच्छेद-सा कर दिया। अब इस कच्छप-वृत्ति के अन्त करने की आवश्यकता है। बाह्य जीवन के मुक्त वातावरण में स्वास्थ्यप्रद वायु सेवन से ही जीवन-शक्ति प्राप्त होगी।

हम राष्ट्र-निर्माण अपना ध्येय बना चुके हैं। इसका अर्थ यह है कि हमें जातीय चरित्र का निर्माण करना है जो शिला की भाँति अडिग, स्थिर और दृढ़ हो। स्वतन्त्र भारत का प्रत्येक नागरिक दृढ़ संकल्प होकर अटूट श्रद्धा और विश्वास के साथ लोक-हित और लोक-संग्रह के कामों में लगेगा। वह बात का धनी होगा। कठिनाइयों को परास्त करने के लिए उसके हृदय में अमित उत्साह होगा। हमें समाज के सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा करना है। प्रेम और सहानुभूति के भावों को प्रोत्साहित करते हुए एक व्यापक आचार—शील—का संचार करना है। इन कार्यों के करने में कोमल हृदया स्त्री के सहयोग की सबसे अधिक आवश्यकता है। जब अपने राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक में हम उल्लिखित गुणों का समावेश कर देंगे तब राष्ट्रीय उन्नति के जितने भी भौतिक साधन हैं उनके प्रस्तुत करने में हमें विलम्ब न होगा।

स्त्री-शिक्षा की ओर शिक्षा-विभाग ने विशेष ध्यान दिया है। यह प्रश्न महत्वपूर्ण था। यद्यपि स्वतन्त्र लोकतन्त्रात्मक राज्य में स्त्रियों के लिए हर प्रकार की उच्च-शिक्षा के द्वार उसी प्रकार उन्मुक्त रहने चाहिये जिस प्रकार पुरुषों के लिए, और स्त्रियां तथा पुरुषों की प्रतिभा के विकास के लिए समान सुविधाएँ होनी चाहिएं, फिर भी उस शिक्षा पद्धति को सन्तोषजनक तथा पूर्ण नहीं कहा जा सकता जो जीवन के वास्तविक तथ्य की उपेक्षा करे। पुरुष अथवा स्त्री का कार्य-क्षेत्र सदा समान नहीं हो सकता। गृहस्थी की देखभाल का भार स्त्रियों के कन्धों पर रहेगा। शिशुओं का पालन-पोषण उन्हीं की स्नेहमयी गोद में होगा। बालकों की शैशव काल की शिक्षा का संचालन-सूत्र माताओं के हाथ में रहेगा। अतएव गृह-विज्ञान, शिशु-पालन तथा गृहस्थी-संचालन की शिक्षा की व्यवस्था का होना समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इन विषयों के पठन-पाठन का समुचित प्रबन्ध कर दिया गया है जिससे उच्च-शिक्षा-प्राप्त स्त्रियों को ही अपने जीवन के विशिष्ट गुरुतर कर्तव्यों के पालन करने का ज्ञान दिया जा सके। अपने जातीय-आदर्शों—जैसे पातिव्रत, शील, संयम आदि की रक्षा का ध्यान रखते हुए पाश्चात्य ढंग की उदार शिक्षा की सुविधाओं के साथ उल्लिखित गृह-विज्ञान विषयक शिक्षा की सम्यक व्यवस्था ही हमारे समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगी।

सत्य और अहिंसा का गला घोंट कर इस समय सारे विश्व में अविश्वास और सन्देह का वातावरण पैदा कर दिया गया है। तीसरे महायुद्ध की विभीषिका की घटा घिरती जा रही है। मानव-समाज की इस आसन्न विपद् घड़ी का निवारण अपने राष्ट्र-पिता पूज्य बापू के चरण-चिन्हों पर चलते हुए पारस्परिक प्रेम और भ्रातृ-भाव के प्रचार के द्वारा ही हो सकता है। प्रातः स्मरणीय श्रीमती कस्तूरबा ने अपने व्यक्तिगत उदाहरण से जो आदर्श उपस्थित किया है वह प्रकाश स्तम्भ की भांति हमारी बहनों का मार्ग प्रदर्शन कर रहा है। उसी का अनुसरण करके सक्रिय रूप से प्रेम की जान्हवी को प्रवाहित करने का काम स्त्रियां ही कर सकती हैं। परन्तु इस संजीवनी रसधारा के प्रवाहन में जो उद्दण्डता और अमानुषिकता के अवरोध होंगे उन्हें विचूर्ण करने के लिए भी स्त्रियों को तैयार रहना होगा। हमारे देश में शक्ति के रूप में स्त्री की कल्पना और उपासना की गई है। 'विद्युद्दाम समप्रभाम्' सिंह-वाहिनी दुर्गा का आवाहन आज भी हजारों लाखों घरों में होता है। स्त्री के इस अतुलनीय शक्तिसम्पन्न रूप की कल्पना मानवीय महिषासुरों का अन्त करने के लिए ही की गई थी। दानवी दुर्गुणों, पापों और अत्याचारों का समूल नाश करने के लिए हमारी महिलाओं को दुर्जेय दुर्गा का रूप धारण करने के लिए सदा तैयार रहना होगा।

भारत के सामने एक कठिन समस्या आर्थिक विषमता की है। हमारे राष्ट्र को स्वावलम्बी बनना है। फिर ऐसी स्थिती उत्पन्न करना है कि दूध दही की नदियां बहें और रत्न-गर्भा भारतभूमि शस्य-सम्पन्न होकर अपने पुत्रों को अमृत सदृश खाद्यान्न दे सके। हिन्दुओं ने 'सर्वेश्वयं समस्त वांछितकरी' अन्नपूर्णा देवी की कल्पना की है। क्या आज की प्रत्येक भारतीय नारी अन्नपूर्णा का रूप नहीं धारण कर सकती। हमारे समाज में शील स्वभाव के अभाव में कितनी विशृंखलता फैल रही है। आचरण की कटुता, व्यवहार की शुष्कता और धृष्टता हमारी संस्कृति और सभ्यता में कलङ्क बन कर लग रही है। यह कलङ्क-कालिमा बढ़ती जा रही है। इसके धोने का और जीवन के दैनिक व्यवहार को पवित्र और धवल बनाने का काम महिलाओं को ही करना होगा। पारस्परिक स्वार्थों का संघर्ष वर्तमान जीवन की एक और विषमता है। स्त्रियों ने त्याग के अनुपम उदाहरण उपस्थित किए हैं। वास्तव में स्त्री का सारा जीवन निःस्वार्थ शृंखला है। परन्तु केवल आत्म-त्याग से ही समाज का कल्याण नहीं हो सकता। एक व्यक्ति अपने स्वार्थ का त्याग कर सकता है, स्वयं कष्ट सहन कर सकता है, परन्तु क्या इससे दूसरे का भला होना अवश्यम्भावी है? आवश्यकता इस बात की है कि निःस्वार्थ त्याग की भावना, परोपकार और लोक सेवा के कार्यों द्वारा, सक्रिय और संक्रामक रूप ग्रहण करें। हम दूसरों की सेवा का व्रत लें। दूसरे भी उसके व्रती बनें। तब लोक कल्याण होगा।

इस विषय के साथ-साथ मैं आपका ध्यान 'स्वावलम्बन दल' की नवीन योजना की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जो गत कुछ महीनों से उत्तर-प्रदेश की पाठशालाओं में चालू की गयी है। बालकों और बालिकाओं की टोलियां लोक-सेवा के काम में लग कर स्वावलम्बन-दल के जीते-जागते उदाहरण उपस्थित कर रही हैं। कहीं ये टोलियां बीमारों और दीन-दुखियों की सहायता कर रही हैं, कहीं स्कूलों की दीवारों की लिपाई-पुताई कर रही हैं, कहीं सड़कों पर झाड़ू लगा रही हैं, और कहीं नालियों की सफाई कर रही हैं। हमारे समाज में आलस्य ने घर कर लिया है। ऊंच-नीच का भेद-भाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पदार्पण कर चुका है। अपनी मान-मर्यादा, अपनी शान और इज्जत के थोथे और भ्रामक विचार हमारे मन में जमे हुए हैं। इनको दूर करना है। मोटे-छोटे कामों को मान्यता देनी है और अपने देशवासियों में अपने पैरों पर खड़े होने के भावों को जागृत करना है। इसी पुण्य उद्देश्य को लेकर स्वावलम्बन दलों का जन्म हुआ है। मुझे विश्वास है कि कन्या गुरुकुल की स्नातिकाए इस योजना में सक्रिय भाग लेंगी और अपने-अपने स्थान में सेवा टोलियों का निर्माण करेंगी, और लोक-सेवा के कार्यों को प्रोत्साहन देंगी। शिक्षित स्त्रियों के लिये समाज सेवा का एक और आवश्यक क्षेत्र है। जिन लोगों को अभी तक निम्न-वर्ग की सेवा दी गयी थी उनके रहन-सहन में बड़े परिवर्तन की आवश्यकता है। उनके वास-स्थान के गन्दगीपूर्ण वातावरण, व्यक्तिगत शारीरिक स्वच्छता के प्रति उनकी उदासीनता, अज्ञानधिकार में घिरे हुए उनके मतिष्क के अंध-विश्वास-पूर्ण विचारों पर जब तक भीषण प्रहार न किया जायगा तब तक उनका स्तर ऊंचा न उठ सकेगा। उनको साक्षर बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है, किन्तु उनके जीवन में वाँछनीय सुधार करने के लिये उनको ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो उनके दृष्टिकोण को उदार बना दे और उन्हें अपने हित और समाज के कल्याण का बोध करा कर नागरिकता के कर्तव्य का ज्ञान करा दे। ये लोग सहानुभूति

के लिये लालयित हैं। समाज में दीर्घकाल से उपेक्षित और तिरस्कृत रह कर ये अपने को मानव भी कहने में संकोच करने लगे थे, तभी महात्मा तुलसीदास तक ने इनको पशुओं के साथ श्रेणी-बद्ध कर दिया था। इस अग को सुन्दर बनाने के लिये स्त्री-हृदय की स्नेहमयी सहानुभूति की आवश्यकता है।

मध्यम-वर्ग लीजिये। कितनी दीनता और गरीबी गुप्त रूप में घरों में अड्डा जमाये है— इसका अनुभव वही कर सकते हैं जिन्हें निकट से इस वर्ग की दशा को देखने का अवसर मिला है। जहां आर्थिक संकट पल-पल में हो वहां किसी प्रकार की उन्नति की आशा करना व्यर्थ है। शिक्षिता महिलाएं इन घरों में दैन्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाली अपनी बहनों की सहायता कर सकती हैं और उनके जीवन में भी आशा का संचार कर सकती हैं। उन्हें अनेकों प्रकार के हस्तशिल्पों के कार्य करने के लिए उत्साहित कर और उनके बनाए हुए सामान के विक्रय की व्यवस्था करके उनमें स्वावलम्बन की भावना पैदा की जा सकती है। नगरों में मुहल्ले २ में स्त्रियों की सहयोगी-समितियां बनायी जा सकती हैं।

मैंने वर्तमान युग में देश की सामाजिक वस्तु-स्थिति की ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हुए कुछ क्षेत्रों का संकेत किया है जिनमें मीशनरी उत्साह के साथ काम करने की आवश्यकता है। काल की पुकार को हमें सुनना पड़ेगा और उसकी ओर भी ध्यान देना होगा। इस समय तो प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्र का सैनिक बनना है। सैनिक चित्तवृत्ति, सैनिक व्यवहार, सैनिक-दृष्टिकोण तथा सैनिक-जीवन को अपना कर राष्ट्र के निर्माण में हम हाथ बँटा सकते हैं। मातृभूमि अपने प्रत्येक पुत्र तथा पुत्री की सेवा की उपेक्षा कर रही है। क्या इस समय हम कर्त्तव्य-च्युत होंगे।

देवियो, आप विद्यालंकृता की उपाधि लेकर अपने गुरुकुल से विदाई ले रही हैं। अपनी संस्था की कीर्ति की आप ही संरक्षिका होंगी। आपके कार्य-कलाप और आचरण से इस संस्था के महान् उद्देश्य की पूर्ति होगी। मैंने जिन कर्तव्यों का उल्लेख किया है उनके पालन का विचार करते हुए भी आपको सदा स्मरण रखना है कि आप सीता सावित्री जैसी देवियों के आदर्शों का पालन करती हुई सर्व-प्रथम सुगृहणी बनने का प्रयत्न करेंगी। आदर्श पत्नी और आदर्श माता का उदाहरण भी आपको बनना है। अपने परिवार में आनन्द, सुख और हर्ष का संचार करके समाज में सरसता का संचार करना होगा। जिन अतीत-कालीन-आदर्शों की रक्षा करते हुए भारतीय नारी-समाज ने आर्य संस्कृति के उदात्त गुणों की आज तक मूक और निष्क्रिय-जीवन व्यतीत करते हुए भी रक्षा की है उन्हीं आदर्शों की महानता हमें संसार के सम्मुख प्रतिपादित करनी है।

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय अंग्रेजी शासन के प्रतिकूल वातावरण में अपना कार्य कर रहा था। अब शासन जनता का है, सभी राष्ट्रीय संस्थाएं हैं, और राष्ट्रीय कार्य कर रही हैं। मुझे विश्वास है कि यह संस्था उत्तरोत्तर उन्नति करेगी और राष्ट्र की सेवा में तत्पर रहेगी। [गुरुकुल कांगड़ी विश्व-विद्यालय के अन्तर्गत कन्या गुरुकुल देहरादून में १४ मई १९५० को दिया गया दीक्षान्त भाषण।]

मेले

श्री ब्रह्मदेव

हमारे देश में कई मेले लगते हैं, सारे देश में क्या केवल एक ही प्रान्त में वर्ष में तीन हजार मेले से अधिक लग जाते हैं, परन्तु इन मेलों से हमारे देश को कोई लाभ नहीं होता, कुम्भ आदि के मेले तो देश में दरिद्रता और हैज़ा फैलाने में सहायता करते हैं।

दूसरे देशों में भी मेले लगते हैं, परन्तु समय के साथ-साथ उनमें परिवर्तन होते रहते हैं जो कि उन देशों को समय के साथ-साथ चलाते हुये संसार के क्षेत्र में दूसरे राष्ट्रों से आगे बढ़ाने का सन्देश देते हैं। सबसे अच्छे मेले अमेरिका में लगते हैं, इन मेलों की टोटल हाजरी करोड़ों तक पहुँचती है, जब जब व्यापार में कुछ कमी हो जाती है तब तब कोई न कोई बड़ा मेला हो जाता है। सन् ३३ में सारी दुनियां में व्यापार मन्दा पड़ गया था, अनेक कारखाने बन्द हो गये और मनुष्य बेकार हो गये, उस समय अमेरिका के विद्वानों ने अन्तर्राष्ट्रीय मेले का सुझाव रखा, लाखों रुपयों की इमारतें बनाई गईं, जो कि मेले के पश्चात् गिरा दी जानी थीं, सारे संसार से दर्शक वह मेला देखने गये। कहा जाता है कि ऐसा मेला संसार के इतिहास में वह प्रथम ही था। यह अन्तर्राष्ट्रीय मेला इतना सफल सिद्ध हुआ कि उसके पश्चात् फिर पेरिस और न्यूयार्क में उस के सदृश अन्तर्राष्ट्रीय मेले लगे, संसार भर से इन मेलों में प्रदर्शन के लिए चीजें आईं, व्यवहार बढ़ा, व्यापार बढ़ा, बुद्धि भी कुछ बढ़ी और जमाने का ज्ञान बढ़ा।

वहां हर वर्ष तीन हजार बड़े मेले लगते हैं, इन तीन हजार मेलों में से एक भी तीर्थ-यात्रा, मोक्ष या सन्तान प्राप्ति के लिये नहीं होता। अमेरिका हिन्दुस्तान से तिगुना है, वहां कोई तीर्थ नहीं. किसी सन्त महात्मा की उसमाधि नहीं, किसी स्थान पर परमेश्वर केवल पुत्र नहीं देता, किसी स्थान विशेष पर इच्छा पूर्ति नहीं होती, न ग्रहण के मेले, न गंगा के स्नान, न पीरों की समाधि, न गूगे के दर्शन और न काली के आगे बकरों की कुर्बानी। वहां किसी स्थान विशेष का महत्व देखकर मेले नहीं लगाये जाते, वहां स्वास्थ्य का ध्यान रखकर स्थान को चुना जाता है। वहां के मेलों का मूल मनोरथ अच्छी वस्तुओं के लिये एक चाह पैदा करना और भाईचारे का एक दर्पण सम्मुख रखना हैं, जिससे लोग अच्छी आदतों को अपनायें और बुरी आदतें छोड़ दें।

वहां प्रत्येक जिले में एक मेला सभा होती है। इनका मंत्री केवल क्लर्क का काम नहीं करता। वह अपने जिले में लगने वाले मेले का अध्यक्ष होता है। इस सभा के सदस्य सब क्षेत्रों में से चुने जाते हैं। आरम्भ में मेले केवल जिले की उन्नति व व्यवहारिक ज्ञान की वृद्धि के लिये ही होते थे, परन्तु वर्तमान समय में व्यवहार मुख्य मन्तव्य नहीं रह गया। अब तो इनसे राष्ट्र को प्रगतिशील बनाने का ठोस काम लिया जाने लगा है। मेलों पर अच्छा रहना, अच्छा स्वास्थ्य, अच्छा घर, अच्छी आदतों के लिए सम्मान पैदा किया जाता है, ताकि लोग उनसे कुछ सीखें और एक ऊंची जाति बनाने में सब सहायक हों।

अच्छा खाना और अच्छा घर यह आधुनिक संसार का नारा है, हमारी कांग्रेस के चुनाव घोषणा-पत्र में भी इसी बात को महत्व दिया जाता है। स्वर्ग, पीर और महात्मा के आशीर्वाद तथा

दर्शन अब जीवन में ठोस प्रेरणा उत्पन्न नहीं करते।

मेले केवल प्रबन्धकों के लाभ के लिए नहीं लोगों के लाभ के लिए होने चाहियें। हमारे देश के मेले इसी कारण लाभ के स्थान पर हानि पहुँचा रहे हैं, क्योंकि वे किसी महन्त, धार्मिक संस्था आदि के लाभ के लिये ही लगाये जाते हैं, अच्छे मेले का असर सारे जिले पर अच्छा पड़ता है। आसपास के गांव आदि अपने घर साफ़ करवाते हैं। सड़कें तथा पगडंडियों के रास्ते भी साफ करवाये जाते हैं।

अच्छे मेले की सब से प्रथम आवश्यकता यह है कि वह खुली जगह पर लगाया जावे। हिन्दुस्तान में प्रायः किसी छोटे मन्दिर या किसी एक छोटी सी गुफ़ा में बड़े शिवलिंग की यात्रा के लिये ही मेले लगते हैं। सब लोग उस छोटी सी जगह में प्रवेश करना चाहते हैं। संकुचित से क्षेत्र में इतनी भीड़ होने के कारण यात्रियों की आत्मा भी संकुचित होकर वहां से लौटती हैं।

खुले स्थान के पश्चात् दर्शकों के आराम का सामान आवश्यक है। अगर रात में भी दर्शकों का रहना आवश्यक हो तो उसी के अनुसार मेले का माप होना चाहिए। नहाने और टट्टी का इन्तजाम पहिले ध्यान का अधिकारी है। क्योंकि इसी कारण तो हमारे देश में मेलों से ही बीमारियां फैलती हैं। अगर सफाई पर एक हजारों रुपया भी खर्च कर दिया जावे तो डाक्टरों तथा दवाइयों पर पीछे जो हजारों रुपये खर्च हो जाते हैं, वह बच जाव, जो मौतें होती हैं वह अलग। सफाई की ओर ध्यान दिये बिना लोगों का मेले में बुलाना एक बड़ा भारी अन्याय है। जिस मेले में पखाने आदि का अच्छा प्रबन्ध नहीं वहां के दर्शक अपने अन्तर में दुर्गन्ध भर के ही वापस लौटेंगे।

इसके पश्चात् आवश्यक बात यह है कि मेले में कुछ देखने योग्य वस्तु हो। व्यवहार का ध्यान रखते हुए क्षेत्र की पैदावार की प्रदर्शिनी हो। प्रदर्शिनी में पुरस्कार दिये जावें। पुरस्कार का निर्णय करने वाले कुछ स्कूलों के प्रोफेसर हों जो निष्पक्ष जांच करें। अच्छे बैल, भैंस, गाय आदि, अच्छी सब्जी अच्छे बढ़ई, लुहार, जुलाहे आदि अपने अपने काम प्रदर्शिनी में दें। अच्छी पैदावार पर व्याख्यानों का प्रबन्ध हो।

इसके पश्चात् दिल बहलाव के सामान भी काफी मात्रा में होने चाहियें। परन्तु किसी मेले पर जुआ देखने की आदत को उत्साह नहीं देना चाहिये। खेल हों, सरकस, थियेटर, सिनेमा हों, बैठने आदि के लिये पार्क आदि हों। वहां पर शीतल छाया में लोग आराम कर सकें। संगीत हर मेले का आवश्यक अंग होना चाहये। मेलों पर प्रायः बुरे बुरे गीत और गाने गाये जाते हैं। मेले का हर अंश, हर दुकान, हर गीत किसी अध्यक्ष के संरक्षण में होनी चाहिये।

जीवन में बहुत लोग अच्छे हैं और थोड़े बुरे, इसलिये जो अधिक संख्या में हैं, उन लोगों की आवश्यकताओं तथा रुचि का ध्यान रखते हुये मेले लगने चाहियें। हमारे मेलों में अच्छे-अच्छे लोगों की प्रवृति भी बुरी हो जाती है। यह हमारे मेलों के वातावरण का दोष है। एक साफ मेला उन थोड़े बुरों को भी अच्छाई की राह दिखा सके, ऐसा होना चाहिये। इसी प्रकार के साफ मेले जिले के लोगों में व्यवहार बढ़ाकर प्रत्येक को एक बढ़िया नागरिक बना सकते हैं।

मेले का प्रत्येक अंश बढ़िया हो। एक घटिया अंश भी पूरे मेले का वातावरण दूषित कर सकता है। लूले, लंगड़े, भिखमंगे, कीलों पर बैठे हुये फकीर, झूठी दवाइयां बेचने वाले हकीम, अविवेक पूर्ण तथा व्यर्थ शिक्षा देने वाले धर्मोपदेशक भी मेले से अलग रखे जाने चाहियें।

मेले में सावधानि से ऐसा वातावरण बना देना चाहिये कि स्त्रियें बिना झिझक तथा कष्ट के वहां घूम फिर सकें। प्रबन्धकों की ओर से व्याख्यानों का

प्रबन्ध होना चाहिये, जिन में जीवन सम्बन्धी नवीन बातों को समझाया जावे। जो कुछ संसार के दूसरे हिस्सों में हो रहा है वह भी रुचिकर उपायों से बताया जावे। रोगों सम्बन्धी बातें बतलाई जावें। आत्मा और मस्तिष्क दोनों स्थानों का अंधेरा दूर किया जावे और सस्ते आविष्कारों का प्रचार किया जावे। मानव को उसकी आत्मिक शक्तियों से परिचित कराया जावे।

बच्चों का लालन, पालन, विद्या और काम काज के विषय में बातें बतलाई जावें। इस कार्य के लिये मेला सभा विद्यालयों के प्रोफेसरों तथा दूसरे विद्वानों की सहायता प्राप्त कर सकती है। विद्वानों का एक समूह ऐसा भी रखा जा सकता है जो एक मेले से दूसरे मेले में जाता रहे और प्रत्येक विद्वान अपने अपने विषय का विशेषज्ञ हो। सबसे मुख्य बात जो इन मेलों में बिल्कुल स्पष्ट रूप से समझाई जानी चाहिये वह यह है कि प्रत्येक राष्ट्र और मनुष्य अपने भाग्य निर्माता स्वयं हैं। कोई मेला बिना पूरे सोच विचार के न लगाया जावे। सड़कें, बाजार, दुकानें आदि सब ढंग से हों। इन दुकानों का किराया ही मेले का खर्च पूरा कर सकता है।

अमरीका में मेलों पर आमदनी का एक बड़ा सुन्दर उपाय यह है कि मेला सभा मेले में योग्य व्यक्तियों को बुलाकर उनके भिन्न-भिन्न विषयों पर व्याख्यान कराती है और उस पर टिकट लगाती है। परन्तु यहां तो वह बात नहीं हो सकती। यहां पर तो कितना भी योग्य व्यक्ति क्यों न हो, अगर उसका व्याख्यान बिना मूल्य ही रखा जाय तो डोंडी पिटवाने और विज्ञापन बांटने पर भी बड़ी कठिनाई से थोड़े से सज्जन ऐसे मिलेंगे जो अपना कुछ समय दे सकें। हमारे मेलों में अच्छे नाटक किये जा सकते हैं। पात्र अपने क्षेत्र में से ही बनाये जावें, ताकि नाटक करते-करते प्रत्येक क्षेत्र का नाटक क्लब एक बढ़िया कम्पनी का मुकाबला कर सके।

कुछ सस्ती, प्रतिदिन के व्यवहार में लाई जाने वाली वस्तुयें मेला सभा द्वारा बनवाकर बेची जावें। पुस्तकें सस्ती छपवाकर बेची जावें। इन सबका लाभ किसी की जेब के लिये नहीं, परन्तु मेले पर ही खर्च किया जावे। गन्दे, व्यर्थ, दूर-दूर और अधिक भीड़ वाले मेले बन्द कर देने चाहियें और रुचिकर तथा शिक्षादायक मेले आरम्भ कर देने चाहियें। अगर प्रत्येक जिले में प्रतिवर्ष एक दो बड़े मेले इस प्रकार के लगने आरम्भ हो गये तो लोग हरिद्वार, कुरुक्षेत्र आदि मेलों पर स्वयं ही आना जाना बन्द कर देंगे।

जिस प्रकार बच्चों के आधुनिक खिलौने हैं। जिन से बच्चों का दिल बहलाव भी होता है और अनजाने में ही वे कुछ सीख भी लेते हैं, वैसे ही हमारे मेले होने चाहियें। लोग यही समझें कि उनका दिल बहलाव हो रहा है। परन्तु दिल बहलाव के साथ-साथ प्रतिदिन व्यवहार में आने वाली वस्तुओं का ज्ञान तथा हर प्रकार के व्यवहारिक ज्ञान की भी वृद्धि हो जावे, इस प्रकरर के मेले किसी भी देश की काया पलटने में सहायक हो सकते हैं। स्वतन्त्र होना सही अर्थों में सुशिक्षित होना है। राजनैतिक स्वतन्त्रता सुशिक्षा के पदचिन्हों पर चलती है। इसके बिना वह आगे नहीं चल सकती।

गर्मियों में पित्त से अपनी रक्षा कीजिये

श्री रामेश बेदी

मेरा परिवार गरमियों में हर साल शिमला जाया करता था। इस साल किन्हीं कारणों से जाना नहीं हुआ। मेरी पत्नी को आज तक ऐसी बुरी तरह पित्त कभी नहीं निकली। जैसी इस बार निकली है। यहां सचमुच आग बरस रही है। डाक्टर साहिब क्या किया जाय !

वह सो भी नहीं पाती थी

पिछले साल की बात है। ये एक बड़े घर के सज्जन थे और पत्नी को साथ लेकर मुझ से परामर्श लेने आये थे। मैंने उनकी पीठ की परीक्षा आरम्भ की। छोटे-छोटे लाल रंग के घने दानों से वह बुरी तरह भरी हुई थी। नीचे धड़ की तरफ तो दाने कुछ विरल थे। परन्तु ज्यों-ज्यों ऊपर की तरफ जायें दाने घनता में बढ़ते जाते थे। गरदन के पीछे और सामने की ओर दानों का आकार भी काफी बड़ा था। और इनके सफेद मुखों के अन्दर से पीप झांक रही थी। ब्लाउज़ को ऊपर उठाते हुए पित्त पर जो रगड़ लगी उसकी वेदना रोगी को असह्य प्रतीत होती थी। त्वचा के किसी भी भाग को छूने से वह स्पष्ट रूप से विपरीत प्रतिक्रिया दिखाती थी। उस संभ्रान्त युवती का चेहरा कष्ट से बहुत उद्विग्न दीखता था। वह न तो रात को सो पाती थी, और न दिन में। पित्त के दानों ने उसके बदन पर प्रायः सारा पृष्ठ आवृत कर लिया था। किसी भी करवट लेटना उसके लिये मुसीबत है। मैंने देखा कि दानों का इतना जोर है कि उसकी गौर त्वचा के ऊपर सारी पीठ और छाती ऐसी लाल नज़र आ रही थी कि जैसे उस स्थान की सूक्ष्म रक्तवाहिनियां अभी फट जायेंगी और उनसे रक्त बह निकलेगा। पीठ और छाती के ऊपरले भाग पर और गरदन पर जो दाने हैं उन में भरी हुई पीप में से विष रगों में बह रहा है और इसलिये इस सारे भाग में सोज आ गई है। इससे यह स्थान बहुत अकड़ गया है। गले की गिलटियां भी उभरने लगी हैं। तथा दर्द करने लगी हैं। गरदन की पेशियां अकड़ जाने से रुग्णा को स्वतंत्रता से गरदन झुकाने में भी व्यथा अनुभव होती है।

गरमी इस समय यौवन पर है। कुछ दिनों में पित्त के दाने निकलने प्रारम्भ हो जायेंगे। ऊपर दिये गये उदाहरण की तरह अनेकों स्त्री पुरुष पित्त का शिकार होने लगेंगे। आपको इसके सरल उपचार का ज्ञान रहना चाहिये, जिससे आप की और आपके बच्चों की परेशानी न बढ़े।

इस का इलाज

इस रोग में क्योंकि शरीर के अन्दर गरमी अधिक बढ़ जाती है इसलिए उसे दूर करने के लिए सब शीतल उपायों को बरतना चाहिए। अन्तः प्रयोग में सामान्यतया किसी औषध की आवश्यकता नहीं पड़ती। बहुत अधिक उग्र अवस्थाओं में पाश्चात्य चिकित्सक सल्फानोमाइड आदि का प्रयोग करते हैं। जब दानों में पीप पड़ गई हो और शोथ हो तो अवघूलनों (डस्टिंग पाउडरों) में सल्फा औषधियां भी मिला ली जाती हैं। इससे तुरन्त लाभ दीखता है और दाने सूख जाते हैं। परन्तु इस लाक्षणिक चिकित्सा से फलतः रोग शान्त नहीं होता। वास्तविक चिकित्सा तो यह है कि शीतल भोजनों का प्रयोग किया जाय। ककड़ी,

खीरा, सत्तू, तरबूज़ आदि का सेवन, शीतल जल धाराओं, टब्बों, शावर बाथ्स का स्नान, ठंडे पेयों का बराबर प्रयोग, ये चीजें हैं, जिनका बारबार प्रयोग रोगी को शान्ति प्रदान करता है। समर्थ लोगों को घर की हर एक खिड़की और दरवाज़े पर खस की चटाइयां लगा कर पानी खूब छिड़कवाते रहना चाहिये।

स्थानिक उपचार

दानों की क्षोभ, गरमी, खुजली और जलन के शान्त करने के लिए शीतल ग्राही और क्षोभ शामक द्रव्यों का स्थानिक प्रयोग किया जाता है। इन द्रव्यों में सबसे प्रसिद्ध गाचनी मिट्टी है। जिसे भारत में हजारों सालों से इस्तेमाल किया जा रहा है। गाचनी मिट्टी को मुलतानी मिट्टी भी कहा करते हैं। चन्दन की तरह इसे घिस कर स्नान से पूर्व सारे बदन पर लेप कर देते हैं। लेप जितना गाढ़ा लगाया जाय उतना अच्छा रहता है। लेप जल्दी ही सूख जाता है। कुछ देर तक इसे लगा रहना देना चाहिए। फिर खुले पानी में नहाते हुए हाथों से मल-मल कर धो डालना चाहिए।

चन्दन का प्रयोग

लेप और अवधूलन (डस्टिंग पाउडर) दोनों रूपों में सफेद चन्दन का प्रयोग होता है। पानी के साथ घिस कर इसे अकेला या गाचनी मिट्टी में मिला कर लेप किया जाता है। बारीक कपड़े में चन्दन का छाना हुआ चूर्ण दानों पर अवधूलन की तरह छिड़का जाता है। स्नान के बाद शरीर को नरम तौलिये से पोंछ कर चन्दन को नरम रुई से या पफ़ से मोटी तह में दानों पर बिछाते जाना चाहिए। पित्त पाउडर के अनेक नुस्खों में चन्दन का चूर्ण या तेल मिलाया जाता है।

सौभाग्य जल

पित्त के दानों और खुजली को शान्त करने के लिए एक तोला सुहागे (सौभाग्य) की खील एक पाव कपूर जल में घोल कर बनाये घोल को दानों पर रुई से लगाना चाहिये। नरम कपड़े या शोषक रुई को इस घोल में भिगो कर दानों पर रखें। जब गरम हो जाये तो निचोड़ कर दें। और फिर ठंडे घोल में भिगो कर रखें। इससे रोगी को बहुत आराम मिलता है।

चावल का आटा

चावल के बारीक पिसे हुए आटे को भी डाक्टर बेअरिंग ने पित्त के दानों पर छिड़कने से दाह, क्षोभ, और गरमी को शान्त करने वाला पाया है। इस के लिये साफ चावलों को बारीक पीस कर कपड़े में छान लें। त्वचा पर इसे छिड़क कर मोटी तह बना दें। दानों पर यह बहुत शीतल और शामक दवा का काम करता है। इसलिये रोगी भी इसे लगाना पसन्द करता है।

पित्त पाउडर

बाज़ार में पित्तपाउडरों के नाम से बिकने वाले पाउडरों में सामान्यतया निशास्ता सुहागा, बोरिक एसिड, जस्ते का फूला आदि द्रव्य होते हैं। मेरे अनुभव में नीचे लिखा नुस्खा बहुत लाभदायक रहता है।

सुहागे का फूल या बोरिक एसिड १ तोला, जस्ते का फूला या ज़िंक ऑक्साइड १ तोला, निशास्ता (एमाइलम) २ तोला, सफेद चन्दन का चूर्ण ६ माशा।

दानों में पड़ गई पीप को भी यह सुखाता है। त्वचा की शोथ और क्षोभ को शान्त करता है।
[कापीराइट, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट।]

छोटा नागपुर के आदिवासी

श्री धर्मदेव शास्त्री

विभाजन के बाद गत जन-गणना के अनुसार भारत की जनसंख्या ३१ करोड़ ८३ लाख ६०० है। इसमें आदिवासियों की संख्या २ करोड़, ४८ लाख, २ हजार, ७ सौ है। इसका अर्थ है कि कुलदेश में आदिवासी ७-८% प्रतिशत है। प्रान्तों में सबसे अधिक आदिवासी बिहारप्रान्त में हैं। जहां इनकी संख्या ५१, ६५, ४०० है। जब कि बिहारप्रान्त की जनसंख्या ३, ६५, ४५,००० है। इसका अर्थ यह हुआ कि बिहार में आदिवासी प्रतिशत १४.१ हैं। रांची कमिश्नरी में जिसे छोटा नागपुर कहा जाता है, इन आदिवासी भाइयों की बहुसंख्या है। दुर्भाग्यवश छोटा नागपुर में ईसाई मिश्नरियों के प्रयत्न से ५ लाख से अधिक आदिवासी ईसाई हो गये। पिछले दिनों झारखण्ड के नाम से पृथक् आदिवासी प्रान्त बनाने का आन्दोलन उठाया गया था। यद्यपि यह आन्दोलन अव्यावहारिक होने के कारण दब गया है, तब भी आदिवासियों में गैर आदिवासियों से घृणा का जो बीज बोया गया था वह निर्मूल नहीं हुआ। छोटा नागपुर का प्रदेश पर्वतमय होने से जंगल बहुत हैं। यद्यपि यहां के पहाड़ हिमालय जैसे ऊँचे नहीं तब भी चाईबासा से रांची तक मोटर में सवार होकर जब हम जा रहे थे, तब जौनसार बावर की बरबस स्मृति हुई। मैं गत ८ वर्षों से हिमालय के इस अर्धबहिष्कृत आदिवासी प्रदेश में अशोक आश्रम के द्वारा सेवा कार्य कर रहा हूँ। जौनसार बावर के ही समान छोटा नागपुर में पहाड़, जंगल और छोटे २ बैल, गौ आदि पशु हैं। भेड़ पालने का रिवाज़ यहां कम है। बकरी प्रायः सभी आदिवासी पालते हैं।

छोटा नागपुर में मैं ३०० से अधिक मील बस पर घूमा। आदिवासियों को समीप से देखने के अतिरिक्त मैंने छोटा नागपुर में ईसाई मिश्नरियों और आदिम जाति सेवा मंडल के द्वारा होने वाले सेवा कार्य को भी देखा है। प्रस्तुत लेख में मैं संक्षेप से अपने अनुभवों का वर्णन करूंगा।

आदिमजाति अथवा आदिवासी

गतवर्ष अक्टूबर मास में पूज्य ठक्कर बापा के निमन्त्रण पर दिल्ली में तीस के करीब वे प्रमुख कार्यकर्ता एकत्र हुए थे जो जंगल और पहाड़ में रहने वाले पिछड़े देशवासियों की सेवा का कार्य करते हैं। देशरत्न राजेन्द्रबाबू की अध्यक्षता में उक्त कार्यकर्ताओं ने आज आदिवासी नाम से पुकारे जाने वाले देशवासियों की उन्नति के लिये तीन दिन तक विचार विनिमय किया और भारतीय आदिम जाति सेवक संघ के नाम से एक संगठन बनाया।

देश में आदिवासियों की सेवा का कार्य करने वाली २० संस्थायें उक्त संघ से सम्बद्ध हैं। गत वर्ष मान्य राजेन्द्रबाबू ने कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए कहा था कि कभी हम सब भी आदिवासी थे। सन्तों और धर्माचार्यों के उपदेश से जो लोग दीक्षित होकर उन्नत होगये वे सभ्य अथवा शिष्ट बन गये। जो काल के अनुसार परिवर्तित नहीं सके वे पिछड़े ही रह गये। यही पिछड़े हुए देशवासी ही आज आदिमजाति वाले अथवा आदिवासी कहे जाते हैं। हमें प्रयत्न करना चाहिये कि पहाड़ों और जंगलों में रहने वाले देशवासियों की सेवा करके

उनमें और अपने में वर्तमान भेद न रह जाय।

श्रीयुत राजेन्द्रबाबू के ये शब्द यथार्थ हैं। धनुषबाण रखना, जंगल के कन्दमूल पर ही निर्वाह करना, कम वस्त्र पहिरना और अतिशय सादगी आदि बातें कभी भारत के प्राचीन राजाओं और ऋषियों में भी थीं। मृगचर्म ओढ़कर रहने वाले स्त्री पुरुषों की कथायें महाभारत और रामायण में ही नहीं कालीदास के प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल में भी मिलती हैं। भगवान् राम धनुषबाण रखते थे, और भगवान् कृष्ण मोर मुकुट लगाते थे।

एक समय था जब ये बातें सभ्यता का अंग थीं। समय के परिवर्तन के साथ ही समाज का स्वरूप भी बदलता गया। हमारे विशाल देश के कुछ निवासी जंगलों और पहाड़ों में दूर रहने के कारण अपनी पुरानी ही अवस्था में रह गये। इसलिये उन्हें आदिमजाति अथवा आदिवासी कहते हैं।

मुझे रांची में लूथरिम मिशन के प्रधान श्री रेवरेंड जुराल लाकड़ा ने जो स्वयं उराँव जाति के आदिवासी हैं कहा कि उनके पूर्वपुरुष हनुमान् जी के वंशज हैं। चित्रकूट में रहते हुए इस जाति के ही वीर पुरुषों ने रामचन्द्र जी की सेवा की थी। जब अयोध्या से हज़ारों नागरिक रामचन्द्र जी को वापस अयोध्या ले जाने को आये थे तब इन ही आदिवासियों ने रामचन्द्र जी की आज्ञा से सब की यथोचित सेवा की थी।

श्री लाकड़ा जी ने जब स्वर में रामायण की कुछ चौपाइयां सुनाईं तब मैं आनन्द में विभोर हो गया।

चाईबासा और राची में आदिमजाति सेवामंडल के तीन बृहत् छात्रावास हैं। इनके अतिरिक्त रांची में लूथरिम मिशन के कन्या छात्रावास को भी हमें देखने का मौका मिला। रांची के बिडला छात्रावास में हमने प्राय: एकसो आदिवासी छात्रों से उनके जातिसूचक सरनेम अथवा उपाधियां पूछीं। किसी वृक्ष, लता, पशु, पक्षी अथवा पुष्प के नाम पर ही सब के सरनेम थे। अंग्रेजी में इसे टोटेम कहते हैं। टोटेमिज्म की प्रथा भारत की पुरानी जातियों में पाई जाती है। श्री कालीदास नाग के नाम के साथ लगा हुआ नाग टोटेम ही है। पुराने टोटेम का अध्ययन रोचक विषय है। छोटा नागपुर के आदिवासियों में जो टोटेम प्रचलित हैं उनका अध्ययन करना चाहिये। हमने जो टाइटिल अथवा जातिसूचक उपाधियां पूछीं उनमें से एक वानर परक थी। उसे सुनकर श्री लाकड़ा जी का यह कथन सत्य प्रमाणित हुआ कि हनुमान् जी आदिवासियों के पूर्वज थे। हनुमान् जी और अन्य बानरों ने रामचन्द्र जी की सेवा की उससे उऋण होने के लिए भगवान् राम के करोड़ों भक्त हिन्दुओं को आदिवासियों की सेवा करनी चाहिये।

ईसाई प्रचारक

१८४५ में सर्वप्रथम तीन जर्मन मिशनरी रांची में आये। उन्होंने जहां अपना डेरा डाला था वहां स्मृति रूप एक स्तम्भ बना है। इस स्मृतिस्तम्भ को देख कर मुझे अपने देशवासियों की दयनीय दशा का दुःखद ज्ञान हुआ। जिस देश के धर्म प्रचारक कभी समस्त एशिया, यूरोप और सुदूर अमेरिका तक गये और विश्व को आर्य धर्म की दीक्षा दे आये, जो जगद्गुरु था- आज उसी देश के निवासियों को अपने धर्म की दीक्षा देने के लिए यूरोप और अमेरिका से प्रचारक आये हैं।

इसके साथ ही मैं उन ईसाई मिशनरियों के प्रति श्रद्धा प्रकट करता हूँ जो हज़ारों मील दूर विदेश में आये और जंगलों तथा पहाड़ों में आदियों

बीच बैठ गये। वस्तुतः आज आदिवासियों की सेवा का ध्यान हम सब को दिलाने का श्रेय इन ईसाई मिश्नरियों को ही है। सर्वप्रथम रांची में आने वाले तीन प्रचारक लूथरिन मत के थे। ईसाई मिश्नरियों ने आदिवासियों की सेवा की, उनमें स्कूल औषधालय और छात्रावास खोले। कोढ़ के बीमारों की भी सेवा की। यह सब आदर्श कहा जा सकता है। परन्तु यह सब इसलिये किया गया कि आदिवासी ईसाई बनें। धर्म परिवर्तन के नाम पर की गई सेवा धर्म के स्थान पर अधर्म बन गई। रोमन कैथलिक सम्प्रदाय के पादरियों ने पैसा देकर तथा अन्य प्रलोभन देकर भी ईसाई बनाया। विदेशी सरकार का पूरा संरक्षण और सहायता मिश्नरियों को प्राप्त थी। परिणाम यह हुआ कि जो ईसाई बने वह अपने को भारतीय न मानकर विरोधी मानने लगे। भारतीय वेश, नाम और आचार को छोड़कर उसके स्थान पर सब विदेशी अपना लिये। धर्म परिवर्तन का मनुष्य को अधिकार है। परन्तु छोटा नागपुर में आज ५ लाख से अधिक जो ईसाई बने हैं उनमें से विवेकपूर्वक धर्म बदलने वाले बहुत कम हैं, इसलिये ईसाई धर्म को बुरा भला कहे बिना आदिवासियों में गीता, रामायण और वेदादि शास्त्रों में वर्णित पुराने भारतीय धर्म का सही रूप समझने की आज महती आवश्यकता है। हम इसके लिये आर्य सार्वदेशिक सभा और अखिल भारतीय आर्य (हिन्दू) धर्म सेवा संघ का ध्यान आकर्षित करते हैं।

आदिम जातियों का धर्म

ईसाई मिश्नरियों का कहना है कि छोटा नागपुर के आदिवासियों का कोई धर्म नही था। इसलिये उनमें ईसाई धर्म का प्रचार किया गया। पादरियों का यह भी कहना है कि आदिवासी हिन्दूधर्म में नहीं हैं। यह बात ठीक नहीं है। आदिम जातियों में अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक विशेषतायें हैं। ये लोग देवी देवताओं की पूजा करते हैं। होली आदि हिन्दू त्योहारों को मनाते हैं। भगवान् अथवा सर्वशक्ति को शिंगबोंगा और उसके आधीन कार्य करने वाले देवी देवताओं को बोंगा कहते हैं। इनका मत है कि सारी सृष्टि की उत्पत्ति शिंगबोंगा ने की है। और वही संहार करता है। ये लोग मानते हैं कि विविध देवी देवता सर्व शक्तिमान की आज्ञा से कार्य करते हैं। इसलिये शिंगबोंगा को खुश करने के लिये आदिवासी विविध देवी देवताओं को बलि चढ़ाते हैं। भेड़, बकरी और भैंसों की बलि चढ़ती हैं। मुर्गे भी देवताओं को पसन्द हैं। देवताओं पर शराब चढ़ाने की भी प्रथा है। शराब को यहां हंडिया कहा जाता है। आदिम जातियों में मुख्य तीन हैं। मुण्डा, हो, उरांव। शराब को मुण्डा लोग इलीं, हो लोग डीयङ, और उरांव लोग झारा कहते हैं। हो जाति में शराब को देवताओं पर चढ़ाने का रिवाज अधिक है। इसलिये इस जाति में शराब बनाने पर प्रतिबन्ध नहीं है।

शिंगबोंगा और बोंगा के अतिरिक्त अनेक भूत, प्रेत, डाग आदि की भी पूजा होती है। कोई गर्भवती स्त्री यदि मर जाय तो उसे जलाते नहीं, गाड़ देते हैं। ऐसा समझा जाता है कि ऐसी स्त्री भूत बनकर सताती है। नामकरण, विवाह और जातकर्म संस्कार भी इनके होते हैं। मेले त्योहारों में नाचना, गाना और देवताओं की पूजा होती है। पूजा में देवता पर दूध, चन्दन और दूब भी चढ़ायी जाती है। आदिवासी चोटी रखते हैं। स्त्रियां भी पुरुषों के समान निर्भीक हैं। हमने १५ मील दूर से जमशेदपुर सौदा बेचने के लिये आदिवासी महिलाओं को जाते देखा है।

स्त्रियां एक धोती ही पहिरती हैं, चोली नहीं लगातीं। पुरुष सिरपर पगड़ी बांधते हैं। जबकि स्त्रियां नंगे

सिर रहती हैं। कद में छोटा होने पर भी स्त्री पुरुष स्वस्थ रहते हैं। प्रायः शादी जवानी में होती हैं। कौमार की सुरक्षा का पूरा ध्यान रखा जाता है। हमें बताया गया कि यदि कोई पुरुष आदिवासी लड़की से मजाक करे तो वह ग्राम में से जीवित नहीं लौट सकता है।

आदिवासियों के घर बहुत साफ रहते हैं। लाल मट्टी से पुते हुए घर सीमेंट से बने मकानों की अपेक्षा भी स्वच्छ प्रतीत होते हैं। भोजन बनाने और रहने का मकान पृथक् होता है। बर्तन खूब साफ रहते हैं। प्रायः आदिवासी स्त्री पुरुष प्रतिदिन स्नान करते हैं। प्रातः काल प्रायः सभी दतुवन करते हैं।

उरांव जाति के आदिवासी अधिक ईसाई हुए हैं। मुण्डा आदिवासी अपेक्षाकृत उन्नत हैं। मुण्डा लोगों में राष्ट्रीयता भी अधिक है। खूँटी मुण्डाओं का केन्द्र स्थान है। मुण्डा लोग अपनें सुधारक विरसा मुण्डा को भगवान् के रूप में पूजते, मानते हैं। विरसा भगवान् भी पहले ईसाई पाठशाला में दाखिल हुआ था। परन्तु विरसा पर वैष्णव धर्म का बहुत प्रभाव पड़ा, और इस महान् पुरुष ने आदिवासियों को ईसाई होने से रोका। विरसा के अनुयायियों ने १८६६ में बड़े दिन पर अनेक गिरजाघर जला दिये और पादरियों को मार डाला। विरसा ने अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया और इसी अपराध में पकड़ा गया। जेल में ही विरसा भगवान् की मृत्यु हो गई। इस वीर का जन्म १८७४ में हुआ। विरसा भगवान् ने आदिवासियों में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया है। भूत, प्रेत की पूजा और देवी देवताओं के लिये बलि चढ़ाना बुरा बताया, शराब को छोड़ने पर विरसा ने बहुत बल दिया।

उक्त विवेचन से यह भली भांति विदित होता है कि छोटा नागपुर के आदिवासी धर्म शून्य नहीं हैं। ये लोग भी प्राचीन हिन्दू धर्म को मानने वाले हैं।

आदिम जाति सेवा मंडल

रांची में मंडल का प्रधान स्थान है। मंडल के प्रधान देशरत्न राजेन्द्र बाबू और मंत्री श्री नारायण जी है। निवारण आश्रम में जहां मंडल कार्यालय है आज-कल एक कन्या मिडिल स्कूल और एक गूंगे बालकों का विद्यालय चला रहे हैं। सेठ जुगल किशोर जी बिडला ने आदिवासी बालकों के लिये २५ वर्ष पूर्व जो छात्रावास बनाया था उसकी व्यवस्था भी मंडल करता है। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय सरकार ने तीन बृहत् आदिवासी छात्रावास बनाये हैं। जिसमें प्रत्येक मकान पर ८५ हजार रुपये व्यय हुए हैं। यह छात्रा-वास भी मंडल की देख रेख और प्रबन्ध में चलते हैं। प्रत्येक छात्रावास में १०० विद्यार्थी रहते हैं। सैंकड़ों छोटे २ विद्यालय चलते हैं। आदिवासी छात्रों को उचित छात्रवृत्ति मिलती है। प्रसन्नता की बात है कि मंडल को प्रान्तीय सरकार पूरी सहायता देती है। आदिवासियों पर होने वाला व्यय मंडल के द्वारा ही चलता है। श्री नारायण जी कुशल और परखे हुए कार्यकर्ता हैं।

उपसंहार

छोटा नागपुर के आदिवासियों में शिक्षा का यथेष्ट प्रसार हो रहा है। अब दो ही कार्य होने चाहियें। एक, आदिवासियों को सहकारी आधार पर आर्थिक दृष्टि से उन्नत करना। दो, ईसाई और गैर ईसाई का भेद मिटाने के लिये रचनात्मक कार्य करना। मेरा दृढ़ विश्वास है कि छोटा नागपुर के आदिवासियों को धर्मशून्य मानकर दबाव वश ईसाई बनाया गया है। यदि उनमें पुरानी भारतीय संस्कृति का और गीता रामायण वर्णित शुद्ध धर्म का प्रचार किया जाय तो जिस शीघ्रता से आदिवासी ईसाई बने हैं उसी प्रकार वे फिर विरसा भगवान् के पुराने धर्म में आ जावेंगे।

गोधन

डाक्टर रामस्वरूप

महाराजा पृथ्वीराज के समय में (अब से लगभग ७५० वर्ष पूर्व) एक रुपये में एक मन घृत मिलता था। वह मन भी वर्तमान से बड़ा था। अलाउद्दीन खिलजी देहली में बादशाह थे। उनके समय में (लगभग ६२० साल पहले) घी एक रुपये का ३३ सेर, गेहूं ।=) मन, चावल ।) मन, शक्कर एक आने में दो सेर, दूध एक रुपये का ६ मन बिकता था। (देखिये तवारीख फरिश्ता)। अकबर बादशाह के समय में (अब से लगभग ३७५ वर्ष पहले) घी २॥) मन, दूध ॥=) मन, चावल ॥) मन था। आ.ईने अकबरी के पृष्ठ ५३ पर लिखा है कि गाय को माङ्गलिक, सुन्दर वसुन्धरा समझा जाता था, रोजाना बीस सेर दूध देती थी और बैल २४ घण्टे में १६० मील चलते थे। ब्रिटिश राज्य के साथ २ भारत में भारी मुसीबत आ गई। ईस्टइन्डिया कम्पनी के समय (अब से लगभग ३२५ साल पहले) गेहूँ ३६ सेर, चना २ मन १६½ सेर, घी एक रुपये का ४ सेर था। सन् १८१० से भाव चढ़ने आरम्भ हो गये। श्रीमती विक्टोरिया के समय में (अब से १०० वर्ष पूर्व) गेहूँ २५ सेर, दूध तीन पैसे सेर, घी २ सेर था। इस समय गेहूँ २½ सेर, घी दो छटांक और वह भी मिलावट का है। गौ माता का आदर न होने से दिनों दिन कैसी हानी हो रही है। वनस्पति घी तथा नकली व निर्घृत दूध से गायों, किसानों और जनता को कठिन हानि पहुँच रही है। वनस्पति घृत के कारखाने दुधारू पशुओं का सर्वनाश कर रहे हैं; किसानों को निर्धन बना रहे हैं। डाक्टर राइट ने अपनी रिपोर्ट के पृष्ठ ३४ पर लिखा है कि नकली घृत ६० प्रतिशत मिलावट के लिये बरता जारहा है, कहीं-कहीं तो शुद्ध घृत की जगह भी बिकता है। असली घी दूध को नकली घी निकालता जारहा है। रायल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट के पृष्ठ २३२ की चौथी पंक्ति में लिखा है कि बुरा भले को भगा देता है, निर्घृत दूध व नकली घृत ऐसा छल है जो गौ रक्षा को बड़ा आघात पहुँचाता है।

यह भविष्य की सन्तानों को फूलने फलने में बाधक होकर राष्ट्र की महान् हानि करेगा क्योंकि देश की रक्षा के लिये वीर युवक नहीं बनेंगे। डाक्टर राइट के कथनानुसार १९३७ में यहां के कारखानों में लगभग ७००००० मन घी तैयार होता था। १९४५ के अन्त तक ६०००००० मन से अधिक तैयार हो गया है। दस वर्ष में साढ़े आठ गुना बढ़ गया यह कितने आश्चर्य की बात है। कृषि कमीशन, डाक्टर राइट और अन्य दूध कमेटियों की रिपोर्टों में बड़े-बड़े विशेषज्ञों की सिफारिश नकली घी के विरोध में थी लार्ड लिनलिथगो ने अपनी रिपोर्ट में यह लिखा था। परन्तु इतने अधिक उच्चाधिकारी होते हुए भी वे उसके उत्पादन पर कुछ भी प्रतिबन्ध नहीं लगा सके। अब तो उत्पादन और भी बढ़ता जा रहा है। एक कारखाने में ३०० टन घी तैयार होता है। भारत के अनेक डाक्टरों और वैद्यों का अनुभव है कि जब से वनस्पति घृत चला है पेट के रोग, क़ब्ज़, वायुशूल, गर्भवती व बच्चे वाली स्त्रियों की पाचन शक्ति नष्ट होना, दिल व मस्तिष्क के अनेक रोगों का होना बढ़ता जा रहा है। आँखों की शक्ति क्षीण हो रही है। गले में खुश्की, खराश, प्यास की ज्यादती, खाँसी आदि अनेक रोगों का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। मई-जून १९४३ में पौष्टिक खुराक और कृषि सम्बन्धी पदार्थों के अधिक उत्पादन के लिए [illegible]

जिसमें ३८ मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे और भारत का प्रतिनिधि भी उसमें सम्मिलित था। कैनाडा ने तो १९४३ में गेहूँ और राई की काश्त कम करके मक्खन के उत्पादन में १४ प्रतिशत की वृद्धि करके उसका उत्पादन ३२ करोड़ ३० लाख पौंड कर दिया था और उसने खाद्य पदार्थों का उत्पादन कम करने का और पशुओं के लिये सूखी घास लूसेन, बारली तथा ओट के उत्पादन का निश्चय किया था। दूध चूर्ण के उत्पादन में ४१ प्रतिशत वृद्धि करके उसका उत्पादन ५१ करोड़ ६० लाख पौंड कर दिया क्योंकि उसके पास खपत के बाद दूध बहुत बच जाता था। आस्ट्रेलिया भी इसके पथ का ही अनुसरण कर रहा है। इङ्गलैन्ड ने भी राष्ट्रीय स्वास्थ्य के लिये पोषक पदार्थों का उत्पादन अधिकाधिक अपने ही देश में पैदा करके स्कूलों में मुफ्त दूध देने की योजना के अनुसार प्रतिदिन ४ में से ३ विद्यार्थियों को दूध दिया जिसके फलस्वरूप उसके शारीरिक और मानसिक विकास में अपूर्व वृद्धि हुई है।

डाक्टर राइट ने १९३७ में अपनी रिपोर्ट में बताया था कि भारतीयों को भारत की विशेषताओं में ध्यान रखते हुए यहां की दूध, दही, छाछ, मक्खन, घृत आदि की उपज को बढ़ाते रहना चाहिए यह भारत का परम्परागत और लोकप्रिय स्वास्थ्यप्रद पदार्थ हैं। विदेशी पनीर, मलाई अथवा दूध के चूर्ण का प्रयोग करके अपने भारतीय दूध के अस्तित्व को नहीं मिटाना चाहिए। यदि मलाई व निर्घृत दूध अच्छा भी हो तो भी उसका उपयोग प्रथम न होकर दूसरा स्थान ग्रहण करेगा और डाक्टर साहब ने यह भी सिफारिश की थी कि बच्चों को मुफ्त दूध दिया जावे। क्योंकि दूध पीने वाले बच्चे तोल तथा क़द में बिना दूध पीने वालों से ज्यादा होंगे। यह उन्नति हर तिमाही पर तोल में ४ पौंड और ऊंचाई में एक इञ्च होती है। (रिपोर्ट के पृष्ठ ५, १४४, १५७ पर देखिये) उपरोक्त बात को ध्यानपूर्वक विचार करने पर इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि भारत में गोरक्षा न होने से और दूध घृत की कमी से मानव समाज रसातल को जा रहा है। और करोड़ों रुपया हस्पतालों और स्वास्थ्यसुधार औषधों पर नष्ट होता है। पोषक पदार्थों जैसे कि गौ दूध, मक्खन, घृत की वृद्धि के लिए, राज्य व जनता को इस महान यज्ञ में लग जाना चाहिए।

वैदिक सूक्तियां। सार्वदेशिक, देहली की समालोचना—

गुरुकुल कांगड़ी के वेदोपाध्याय प० रामनाथ जी ने इस पुस्तक में अथर्व वेद की १००० सूक्तियों का अत्युत्तम संग्रह किया है जिन का बालक, बालिका, युवक, युवती सब सुगमता से स्मरण कर सकते हैं। पुस्तक को 'प्रभु चरणों में, उन्नति के पथ पर, शरीर रक्षा, विविध विषय इन ६ अध्यायों में विभक्त करके प्रत्येक विषय से सम्बद्ध सरल और छोटे-छोटे वैदिक सुभाषितों का संग्रह सुयोग्य लेखक ने सरल अनुवाद सहित कर दिया है। इस से वेदों के प्रचार और लोकप्रिय होने में सहायता मीलेगी। इस परिश्रम सूचक उत्तम संग्रह के लिए प० रामनाथ जी धन्यवाद के पात्र हैं। विविध-विषयों में मातृभूमि, गोपालन, राजा, कृषि, भोजन जीवात्मादि विषयक सूक्तियों को संकलित किया गया है। पुस्तक सर्वथा उपादेय और प्रचार योग्य है। मूल्य १।।)

मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।

योगक्षेमो नः कल्पताम्

श्री वासुदेव शरण अग्रवाल

महते जानराज्याय स्वस्ति नोऽस्तु। समुद्रापर्यन्तायाः पृथिव्याः स्वाराज्येनायं देशोऽद्य दिष्ट्या वर्धताम्। सर्वाणि भूतानि मित्रस्य चक्षुषा समीक्षते भारती महाप्रजा। आ राष्ट्रे सर्वो निरामयो भवतु, सर्वः सर्वत्र नन्दतु। नानाधर्माणं विवाचसं बहुधा जनं विभ्रत माताभूमिर्वर्धमाना नो वर्धयतु। सत्यं बृहदृतमुग्रं तपो ब्रह्म दीक्षा यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। सा जन्मभूमिः स्वर्गादपि गरीयसी। सशैलवनकानानायामस्यां निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षतु, फलवत्यश्चौषधयः पच्यन्ताम्। इक्षुशालिगोमहिषीसम्पन्नोऽयं देशो देशानामग्रः यत्र पुण्या मंगलया नदी गंगा, यत्र ऋषयो भद्रं राष्ट्रं कामयमानास्तपो दीक्षामग्रं उपनिषेदुः।

पुराणो राजधर्मो न हातव्यः। सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः। राष्ट्रे जागृयाम वयम्। यथायं संघो नोत्सीदेत्तथा सर्वैरेकच्छन्दसाक्रियताम्। समानो मन्त्रः समितिः समानी नो जायताम्। अस्मिन् देशे नेतारः शुचेः पथो दर्शयितारो भवन्तु। न कश्चिज्जनो मलीमसां पद्धतिमाददाताम्। न स्तेनो न कदर्यो न मद्यपः जानपदः कश्चिद्भवतु। प्रजानां क्षेमोहि राष्ट्रस्य शीतोवायुः, स सर्वान् सुखयतु। पुण्यक्षेत्रेऽस्मिन् देवाः गीतानि गायन्तु। भूमे स्वस्ति नो भव। माताभूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। अपीदं भरतवाक्यं भवतु—गणा नस्तृप्यन्ताम्॥

हमें अपनी शुद्धि करनी है

राजा श्री महेन्द्रप्रताप

कदाचित् कोई कोई सनातन धर्मी कहेंगे कि यदि ये आर्य समाजी न जन्मे होते तो अच्छा था। इसी प्रकार धर्म छिन्नभिन्न होता है और हिन्दू धर्म ढील पड़ता है। इसका उत्तर आर्यसमाजी देता है कि ईश्वर का धन्यवाद करो कि स्वामी दयानन्द पधारे और हिन्दू धर्म को बचा लिया। यदि स्वामी जी न हुए होते तो करोड़ों हिन्दू या मुसलमान हो जाते और या ईसाई!

यह बात तो आर्यसमाज के घोर शत्रु को भी माननी पड़ेगी कि आर्यसमाज ने हिन्दुओं में एक उत्साह उत्पन्न कर दिया। विद्या की ओर विशेषकर पुरानी विद्या की ओर हिन्दुओं का रुझान कर दिया।

हम आज इस बहस में नहीं पड़ेंगे कि क्या हुआ या होना चाहिये था। जो हो गया सो हो गया। जो हो गया उसे आज मिटाया नहीं जा सकता। प्रश्न केवल यह है कि आगे क्या? आज इन लोगों का, जो अपने आप को आर्यसमाजी कहते हैं, क्या कर्तव्य है?

मेरा कहना है कि हमारे भाई बहन आर्यसमाजियों को वे सब बातें निकाल फैंकनी चाहियें जिन के कारण वे लोग दूसरे दीन वालों से उलझ जाते हैं और समाज में अशान्ति फैलाने के कारण बनते हैं। आप जो वेदों को पूजने वाले हैं संसार को साबित कर दिखाइये कि आप झूठ नहीं बोलते, धोखा नहीं देते, चोरी नहीं करते, समाज की सेवा करते हैं, आप ऐसी समाज बनाना चाहते हैं कि सभी सुखी रहें। आर्यसमाजियों को आर्यसमाजियों की शुद्धि करनी है।

निष्ठावान पूजक : पूरन

श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन

आज फिर पूरन ने दर्शन किये । दर्शन क्या किये, वे स्वयं दर्शन देने आ गए और उनसे कुछ क्षणों वार्तालाप करने के उपरांत ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कल्मष धुल गए और जीवन में एक आस्था का संचार हो गया। पूरन को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। वे पुराने साथी हैं, वे निष्ठावान हैं, दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, निस्संग कर्मठ हैं, जैसे उनका जीवन सतत प्रज्वलित रहने वाली दीपशिखा के समान है और दीपशिखा भी ऐसी कि गीताकार के शब्दों में मैं कह सकता हूँ..."यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।"

पूरन से जेल में परिचय हुआ था और उसी समय मैं समझ गया था कि वह वो पुरुष है, जिसके कन्धों पर सर्वदा लोकसंग्रह का भाव रहेगा ही । यदि वह उस भार को उतार कर फेंकना भी चाहेगा, तो वह फेंक नहीं सकेगा। इसलिये कि पूरन स्वाभावतः संस्कारेण जन नारायण का निष्ठावान पूजक है ।

उन दिनों पूर्णचन्द्र विद्यालङ्कार ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं किया था। इसलिये हम सब लोग कारागार में उन्हें पूर्णचन्द्र ब्रह्मचारी कहते थे । गुरुकुल कांगड़ी में विद्याध्ययन समाप्त कर उन्होंने अपने को देश की स्वतन्त्रता के युद्ध में समर्पित कर दिया था। हमारे प्रांत में गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद भी वे ब्रह्मचारी के नाम से प्रख्यात रहे और आज भी मेरा यह विश्वास है कि चार बालकों के पिता होने के उपरांत भी वे सन्निष्ठ ब्रह्मचारी ही हैं। उन्होंने जन सेवा को ही ब्रह्मआचार माना है ।

समुज्ज्वल परम्परा

उनकी जीवन संगिनी दयावती मेरी अनुजवधू के सदृश हैं । और मैं दयावती को सीता और सावित्री की कक्षा में रखता हूँ । अपने से भिन्न स्वभाव, भिन्न प्रकृति, भिन्न आदर्शवादी, हठी, सनकी, अपनी धुन पर सतत आरूढ़ रहने वाले पति को पाकर भी दयावती ने जिस प्रकार अपने को पूरनमय बना लिया है, वह प्रकार भारतीय नारी की समुज्वल परम्परा का द्योतक है। मैं दयावती के चरणों में प्रणाम करता हूँ। मेरी छोटी बहू की कक्षा में होते हुए भी मैं उस देवी की वन्दना करता हूँ ।

पूरन मेरे अपने हैं। उनका मुझ से कोई दुराव नहीं, जीवन का उन्हें कोई मोह नहीं है, संकट का कोई भी बन्धन उन्हें मार्ग से डिगा नहीं सकता। पूरन अच्युत है, बात ही बात में नितान्त सहज रूप से उन्होंने मुझ से कहा, 'शर्मा जी, यदि आप आज दयावती को देखेंगे तो उसे पहचान न पावेंगे। सीमांत बन्नू की वह बालिका मेरे उत्तरीय में अपने अञ्चल छोर को बांध कर जब मेरे साथ आई, तो मैंने उसे अपने गांव के चुड़ियाला (सहारनपुर) घर का वह बाड़ा दिखा दिया जहां पशु बंधते थे और कह दिया हमें यहीं रहना है। वह अवाक् थी, किन्तु उसके अंतस् में कुछ ऐसा प्रकाश था, जिसने उस बाड़े के अंधेरे में जगमगाहट कर दी। आज इतने वर्षों से वह मेरे साथ है। मेरी समस्त सनकों को वह सहन करती है। आप जानते हैं, मेरे जीवन में कुछ फेड्स "सनक' हैं। मेरे शरीर पर जो वस्त्र हैं, या होते हैं, वे दयावती के ही कते सूत के होने चाहियें। घर में मशीन चक्की का आटा नहीं आ सकता। घर में मशीन के कुटे चावल नहीं आ सकते। गांव के निरक्षर वातावरण में बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध होना ही चाहिये और दयावती इस समूचे भार को अकेले वहन करती

है। कई बार ऐसा हुआ है, शर्मा जी! कि मेरे मन में तूफान उठा है और ग्लानि एवं विषाद तो बना ही रहता है। मुझे यह व्यथा बराबर सताया करती है कि मैंने दयावती के प्रति निर्दय व्यवहार किया है। मैंने अपने गृहस्थ धर्म का पालन नहीं किया।"

तीर्थयात्रा है

पूरन कह रहा था, मैं सुन रहा था और मेरे मन में, मेरे हृदय में ज्वारभाटा आ रहा था। नंगे पांव, एक खद्दर कुरता, एक पुलोवर पहने, कंधे पर लोई डाले, नंगे सिर दृढ़ता की मूर्ति, वीरता का समुच्चय, निष्ठा का प्रतीक पूरन मेरे सामने बैठा था। पूरन गृहस्थ धर्म का पालन कैसे करता? वह अपने समाज धर्म का पालन सेवा धर्म का पालन जो कर रहा है।

और मैंने देखा कि पूरन अडिग है। मेरे मन में, मेरे निराश इंगित डगमगाते आस्था शून्य मन में यह विश्वास जागृत हुआ कि इस देश का अकल्याण नहीं हो सकता, इसका अशुभ नहीं हो सकता क्योंकि अभी हमारे बीच पूरन के ऐसे निष्ठावान सनकी विद्यमान हैं।

जाते समय पूरन ने कहा, "शर्मा जी, एक बार मेरे गांव आइये। उनका यह निमन्त्रण बहुत दिनों का है। अभी तक मैं वहां, उनकी सेवाकुटीर के दर्शन करने के लिये नहीं जा सका। कदाचित् अभी मेरे पुण्य उदय नहीं हुए हैं। पूरन के घर जाना एक तीर्थ यात्रा है। ऐसा विश्वास है कि एक न एक दिन मैं यह पुण्यलाभ करूंगा। जब तक ऐसा सुअवसर प्राप्त नहीं होता, तब तक मैं पूरन को और उसकी जीवन संगनी को अपना मानसिक प्रणाम अर्पित करता हूँ।

पूरन एक बल है, एक ओज है, एक तेज है। और हृदय से मैं यह प्रार्थना कर रहा हूँ—

बलोऽसि बलं मे देहि,
ओजोऽसि ओजो मे देहि,
तेजोऽसि तेजो मे देहि।

वेदों का प्रामाण्य

श्री मनोहर वद्यालङ्कार

भारतीय संस्कृति का आधार वेद हैं। भारतीय लोगों के मन पर प्रामाणिकता की छाप बैठाने के लिए किसी भी वस्तु विषय या प्रतिपाद्य का मूल वेद में निकालना आवश्यक सा हो गया है। चाहे राजनीति हो या अर्थनीति, धर्म का क्षेत्र हो या नैतिकता का, पारिवारिक प्रश्न हो या सामाजिक, भक्ष्याभक्ष्य का निर्णय करना हो या सत्यासत्य का। प्रत्येक वक्ता या लेखक, विद्वान् या विचारक अपने पक्ष की पुष्टि के लिए वेद के किसी वाक्य या अंश उद्धृत करता है। और यदि वह वेद को अपने सिद्धान्त या कथन के अनुकूल सिद्ध कर दे तो अपने मन्तव्य को पूर्णतः युक्तियुक्त, अकाट्य, नैतिकता की कसौटी से निर्णीत और मानवसमाज के लिए हितकर समझता है।

इसका कारण है। वेद स्वतः प्रमाण माने गए हैं। अर्थात् वेद में वर्णित किसी बात को सिद्ध करने के लिए किसी अन्य प्रमाण या आप्तवाक्य की आवश्यकता नहीं। वेद को स्वतः प्रमाण मानने का अर्थ है कि वेद में वर्णित कोई भी बात युक्ति और बुद्धि की कसौटी से खोटी या असत्य नहीं सिद्ध की जा सकती। इस की त्रिकाल सत्यता पर बल देने के लिए ही इन को अपौरुषेय माना जाता है। अपौरुषेय का अर्थ है किसी पुरुष द्वारा निर्मित न हो कर साक्षात् सर्वज्ञ परमेश्वर के द्वारा प्रकट किए गए हैं। और क्योंकि परमेश्वर द्वारा प्रकट हुए हैं इस लिए स्वतः प्रमाण हैं।

वेदों की प्रामाणिकता में भी शायद ही कोई भारतीय विद्वान् संदेह करता होगा। और अगर किसी विदेशी विद्वान् ने इन का यौगिक शब्दार्थ शैली से अध्ययन किया होगा तो वह भी इस की प्रामाणिकता को अशुद्ध नहीं सिद्ध कर सकेगा।

वेद की प्रामाणिकता की कसौटी बुद्धि है। क्योंकि वेद में जो कुछ है, वह सब सत्य है; उसे बुद्धि के विरुद्ध सिद्ध नहीं किया जा सकता, इस लिए वेद निर्भ्रान्त और स्वतः प्रमाण हैं। और इस लिए वेद के जो अविरुद्ध है वह सत्य है।

इस सिद्धान्त को मानने के बाद हमारा ज्ञान उदारतम बन जायगा। इस को सर्वमान्य बनाने में सरलता हो जायगी। जो दार्शनिक या विद्वान् ईश्वर को नहीं मानते, वे भी इस की प्रामाणिकता को मानेंगे। और अन्त में निर्भ्रान्त होने से इन को अपौरुषेय भी माना जा सकता है।

वेद के सार्वदेशिक सिद्धान्त

वेद के सिद्धान्त सार्वदेशिक हैं। वेद केवल भारत के लिए ही नहीं बना है इस लिए इस में कोई भी बात बहुत विस्तार में नहीं हो सकती। उदाहरण के लिए विवाह का प्रश्न है। भारतीय संस्कृति में पुरुष की विवाह योग्य आयु २५ वर्ष और स्त्री की विवाह योग्य आयु १६ वर्ष निश्चित की गई है। किन्तु युरोप में स्त्री की विवाह योग्य आयु २० वर्ष स्थिर की गई है। अब प्रश्न यह है कि कौन सी आयु ठीक मानी जाय। उत्तर में वेद चुप हैं। अर्थात् दोनों पक्ष वेद के अविरुद्ध हैं, इस लिए दोनों को समय और देश के अनुसार ठीक मानना चाहिए। किन्तु यदि वेद के अविरुद्ध होना ही सत्य है तो बाल विवाह क्यों हानिकर या वेद विरुद्ध समझे जाएं? इस का उत्तर यह है।

क्योंकि बालविवाह वेद के विरुद्ध है। वेद में स्पष्ट लिखा है कि 'कन्या युवानँ विन्दते पतिम्' अथर्व ११. ५. १८. । अर्थात् विवाह युवक और युवती में संभव है। इसी प्रकार "सो मो वधूयुरभवत्" अथर्व १४. १. ६ स्पष्ट निर्देश कर रहा है कि जब भी वीर्य की रक्षा करने वाला अर्थात् संयमी, कामुक नहीं वधू

भारतीय शिक्षा पाठ्यक्रम में परिवर्तन की आवश्यकता

प्रोफ़ेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए०

हमारी जीर्ण शीर्ण शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। अभी तक हमारी शिक्षा गुलाम देश की शिक्षा पद्धति पर चल रही थी। हमारे देश का इतिहास इस दृष्टि से लिखा गया कि जिसमें भारतवासियों की हीनता और दीनता स्पष्ट हो, हमारे नवयुवक अपने आप को असमर्थ मानते रहें, दीन हीन समझें। हमें इङ्गलैन्ड का इतिहास अनिवार्यत: पढ़ना पड़ा जिससे भारत के नवयुवकों पर अंग्रेजों की महत्ता की छाप बनी रहे। हमें अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी साहित्य पढ़ाया गया, जिससे उस जाति की महत्ता की भावनाएं भारतीय बालकों के कोमल हृदय पर पड़ें और वे अंग्रेजों को महाप्रभु मानते रहें।

हमारा ज्ञान बासी, हमारी पुस्तकें बासी, हमारी शिक्षा पद्धति बासी हो गये हैं। हमारे साहित्य से हमें विलग रक्खा गया। स्वतन्त्रता एवं आज़ादी के पाठ हमें नहीं पढ़ाये गये। हमारा मन ग़ुलामी की भावनाओं से भर दिया गया। हमें स्वतन्त्रता पूर्वक सोचने का अवसर प्रदान नहीं किया गया। हमारी शिक्षा हमें केवल नीचे दर्जे का क्लर्क बनाने के लिए काफ़ी हुई। हमारी पौशाक, रहने के तरीक़े सब पाश्चात्य देशों जैसे बना दिए गए। हमें भारतीय संस्कृति, भारतीय साहित्य और भारत से प्रेम करना नहीं सिखाया गया।

आज का भारतीय नवयुवक दिमाग़ी ग़ुलामी का शिकार है। वह यह नहीं समझता कि उसका देश स्वतन्त्र हो चुका है। उसके मन में वे ही पुराने विचार, पुरानी धारणाएं आ रही हैं। वह किताबी ज्ञान में डूबा है।

हमारी शिक्षा में परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता है। हमें पुरानी पुस्तकें हटा कर नये सिरे से पुस्तकें लिखानी चाहिएं। इन पुस्तकों का पाठ्यक्रम इस प्रकार हो, जिससे हमारे नवयुवकों में स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता और आत्मनिर्भरता की भावनाएं दृढ़ हैं। वे अपने आत्मविश्वास को पुनः प्राप्त कर सकें, अपनी खोई हुई महानता एवं महत्ता को प्राप्त कर सकें। अपनी मौलिकता का विकास करने में सहायक हो सके।

पृष्ठ २४ का शेष—

की कामना करने लगे तब उसका विवाह हो जाए। एवं वेद ने विवाह के लिए सर्वमान्य काल (आयु) बतला दिया। स्थान और देश भेद से आयु का भेद हो सकता है।

यहां स्पष्ट है कि विवाह तब होना चाहिए जब संयम से रहने वाला ब्रह्मचारी वधू की कामना करे, ना कि असंयम से रहने वाला अथवा अब्रह्मचारी वधू की कामना करे, क्योंकि इस प्रकार के लोग तो जल्दी कामना करने लगेगें।

यदि हम अपना दृष्टिकोण उदार रक्खेगें तो हम कहेगें कि हम उन सब बातों को मानते हैं, जो वेदों के अनुकूल तथा अविरुद्ध हैं। और अपनी इस स्थापना को स्वीकार करने के बाद वैदिकधर्मी कभी जमाने से पीछे नहीं रह सकेगा। वह सदा प्रगतिशील और बुद्धियुक्त परिवर्तन को स्वीकार करने के लिये उद्यत रहेगा। अपने को हर परिस्थिति के अनुकूल बना लेगा। विश्व को पथप्रदर्शन करने में समर्थ रहेगा।

शिक्षा का अर्थ है, गुप्त शक्तियों का विकास। हम अपने नवयुवकों को ऐसी शिक्षा दें जिससे उनकी गुप्त शक्तियां विकसित हो सकें। वे अपने मस्तिष्क की प्रत्येक शक्ति का उचित उपयोग कर सकें।

हमारा इतिहास नये ढंग से लिखा जाय। हमार पाठ्य पुस्तकें इस दृष्टिकोण से लिखी जाँय कि विद्यार्थियों की मौलिकता और महत्ता प्रकट हों। वे स्वतन्त्रता पूर्वक मनन और चिन्तन कर सकें। उनके मन पर कोई खास विचार थोपे न जाँय, वरन् वे स्वतन्त्रता से सब कुछ विचारें और विश्वज्ञान के विस्तार में अभिवृद्धि करें।

टेकनिकल शिक्षा के लिए अधिक से अधिक प्रयत्न किए जाँय। सभी प्रकार की टेकनिकल शिक्षा की परीक्षा के लिए एक केन्द्रिय बोर्ड तथा एक राष्ट्रीय टेकनीकल विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय। वर्तमान इन्जीनियरिङ्ग कालेजों की संख्या बढ़ाई जाय और अधिक से अधिक संख्या में विद्यार्थियों को भरती किया जाय। डाक्टरी शिक्षा के लिए सरकार द्वारा समुचित प्रयत्न किए जाँय। देश भर में डाक्टरी शिक्षा के स्तर को समान बनाने के लिए प्रयत्न किए जाँय। बंगलौर स्थित भारतीय विज्ञान संस्था के विकास के लिए चार वर्षीय योजना बनाई गई है। और एक जर्मनी वैज्ञानिक उसके प्रधान के रूप में नियुक्त किया गया है। सरकार का अपनी ओर से छात्रवृत्तियां देकर इस संस्था से छात्रों को उच्चतम शिक्षा दिलानी चाहिए। विदेश में छात्रों को भेज कर उच्च शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। उत्तम तो वह है कि १४ से १६ वर्ष के छात्रों के लिए टेकनीकल शिक्षा अनिवार्य बना दी जाय। इसके अतिरिक्त देश में साक्षरता आन्दोलन को सफल बनाने के सतत प्रयत्न चलते रहने चाहिए।

पुस्तक परिचय

पुस्तक की दो प्रतियां मिलने पर ही उसका परिचय दिया जाता है। एक प्रति मिलने पर केवल प्राप्ति स्वीकार दिया जायगा

—सम्पादक।

रवे औफ मैटीरिएलिज्म ओवर इण्डिया—लेखक श्री स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती-प्रकाशक कैरियंस, करोल बाग, देहली। पृष्ठ संख्या ७८ मूल्य १॥)। पुस्तक के लेखक से गुरुकुल पत्रिका के पाठक महानुभाव भली भांति परिचित हैं। लेखक की वर्तमान पुस्तक आजकल के प्रचलित भौतिकवाद के दुष्परिणामों को देखते हुए अत्युपयुक्त प्रतीत होती है। पुस्तक में अत्यन्त स्पष्ट रूप से आध्यात्मिक तथा भौतिकवाद के मूलभूत सिद्धान्तों के भेद को प्रतिपादित किया गया है। कई बार वर्तमान आध्यात्मिकवाद भी आत्मा (जीवन) ईश्वर, आचार शास्त्र और परलोक को किसी प्रकार मानते हुए भी ईश्वरी ज्ञान, गुरु शास्त्र तथा योग से इनकार करते हैं। लेखक ने सुन्दर रूप से यह प्रतिपादित किया है कि शास्त्र, योग, यज्ञ, उपासना आदि का ईश्वर आदि से अटूट घनिष्ठ संबंध है। आध्यात्मिक दृष्टि कोण के लिए शास्त्र गुरु तथा योग पर विश्वास करना कितना आवश्यक होता है। आज के शिक्षित भारतीय समाज के वे प्रसिद्ध विद्वान् जो अपने आपको विदेशों में भारतीय अध्यात्म ज्ञान के प्रचारक मानते हैं, वे स्वयं भी किस प्रकार पश्चिम के भौतिकवाद से प्रभावित हुए हैं और किस प्रकार उन्होंने भी आध्यात्मिकता के आधार भूत योग तथा नित्य नैमित्तिक शास्त्रीय आचार पद्धति यज्ञादि का तिरस्कार किया है इसको प्रमाणों द्वारा दर्शाया गया है और आध्यात्मिक पक्ष को युक्ति युक्त तरीके से प्रमाणित किया गया है। इसके साथ ही भारतवर्ष जो अनेक युगों से अध्यात्म प्रधान देश रहा है इन पिछली पराधीनता की शताब्दियों में विशेषतया आङ्गल काल में किस प्रकार अपनी उस आध्यात्मिक स्थिति से च्युत हुआ है इसका सकारण विवेचन किया गया है। इस जड़ भौतिकवाद का शिक्षित और अशिक्षित समाज पर जो बुरा प्रभाव पड़ा है उसका विवेचन करते हुए सच्ची आध्यात्मिकता को विश्वास तथा तर्क दोनों की कितनी अपेक्षा है यह दिखाया गया है। अन्त में आध्यात्मिकवाद से ही जगत् में तथा मनुष्यों को शान्ति मिल सकती है इसका प्रतिपादन किया गया है।

वर्तमान पाश्चात्य विकासवाद को ही लेखक महोदय भौतिकवाद की वर्तमान विशेष वृद्धि का कारण मानते हैं और इस वाद का खण्डन भी किया गया है।

पुस्तक पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित व्यक्तियों को अवश्य पढ़नी चाहिए! छपाई, कागज़ आदि सुन्दर है।

आनन्द मार्ग—लेखक तथा प्रकाशक उपर्युक्त। मूल्य सजिल्द २)। यह पुस्तक चार भागों में विभक्त है। पहिले भाग में योगीराज श्री परमहंस स्वामी सियाराम जी का जीवन चरित्र—दूसरे भाग में उनकी विचार सरणी—तीसरे में उपदेश संग्रह तथा चौथे भाग में कुछ विवादास्पद विषयों का स्पष्टीकरण किया गया है।

पुस्तक का २य भाग विचार धारा ही इस पुस्तक का हृदय है। श्री स्वामी सियारामजी महाराज के उपदेश तथा जीवन चरित्र पहिले भी प्रकाशित हो चुके हैं परन्तु उनकी विचार धारा इस प्रकार के शुद्ध

वैज्ञानिक रूप में प्रकाशित नहीं हुई। उनका विचार था कि विषय, सम्बन्ध, मान अपमान, कर्म, ज्ञान आदि किसी भी सांसारिक पदार्थ में भावरूप सुख का अभाव है। इनमें मनुष्य को जो सुख प्रतीत होता है। वह पूर्व सस्कारों से हो रहे मानसिक क्षोभके नाश द्वारा प्रतीत होता है। पुस्तक के इस भाग में इन सब सांसारिक पदार्थों में सुख नहीं है इसको स्वर्गीय स्वामी सियाराम जी के तर्क, युक्तियों तथा अनुभव करने के उपायों से अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया है। यह भाग उन्हीं जिज्ञासुओं को लाभ प्रद हो सकता है, जो इस मार्ग के पथिक हैं और अध्यात्म में कुछ रुचि रखते हैं।

जीवनचरित्र के भाग में भी उपयोगी सब सामग्री का समावेश हुआ है। उपदेश संग्रह में भी विषय वार उपदेशों का संग्रह हुआ है। परिशिष्ट रूपी चतुर्थ भाग विशेष मननीय है इसमें विवादास्पद विषयों का सामञ्जस्य किया गया है।

पुस्तक जिज्ञासुओं के लिए बहुत काम की है। मूल्य भी इस महंगाई के समय में बहुत कम है।

स्वामी श्रद्धानन्द—लेखक पण्डित धर्मदेव विद्या-वाचस्पति। प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्स, नई सड़क, देहली। प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या १२८, आकार २०×३०/१६, मूल्य १)। अनेक वर्षों तक स्वामी जी के शिष्य रहने और बाद में उनके साथ काम करते रहने का सौभाग्य प्राप्त होने से लेखक ने इस पुस्तक में अपने अनुभव भी दिये हैं। स्वामी जी के जीवन की मुख्य शिक्षाप्रद घटनाओं का युवकों पर निश्चय ही बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। यह पुस्तक युवकों में आत्मविश्वास पैदा करती है। श्री जनमेजय और पण्डित सोमदत्त जी की स्वानुभूतियां (पृष्ठ ६२, ६८) कर्तव्य सेवा के महान् व्रत को जीवन में ढालने के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं। आदर्श कर्मयोगी नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी की इस जीवनी को विद्यालयों में पाठ्य-पुस्तक के रूप में अपनाने से हमारे देश के युवकों को शाश्वत चेतना और प्रेरणा मिलती रहेगी। दूसरे देशों के महापुरुषों के जीवन चरित्रों को हम अपने विद्यालयों में पढ़ाते हैं। इस जीवनी को हमारे देश की तथा विदेश की भाषाओं में अनु-वाद करा के अन्य देशों के बच्चों तक भी इसे पहुँचाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

आयुर्वेद प्रकाश (प्रथम भाग)— टीकाकार पण्डित सोमदेव शर्मा शास्त्री। प्रकाशक—श्री सोमदेव भवीगढ़, पो० बरला, अलीगढ़। प्रथमावृत्ति, सन् १९४२, पृष्ठ संख्या ६५२, आकार २०×३०/१६, मूल्य ५)। आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थों के लेखक तथा विविध आयुर्वेदिक कालेजों में आयुर्वेद के अध्यापक के रूप में लेखक ने बहुत ख्याति प्राप्त की है। आज-कल आप लखनऊ मेडिकल कॉलेज के अन्तर्गत फार्माकोलोजी डिपार्टमेंट में सफलता से कार्य कर रहे हैं। लगभग तीन सौ साल पहले उपाध्याय माधव ने आयुर्वेद प्रकाश नामक यह ग्रन्थ लिखा था। रसा-र्णव, रसरत्नाकर, रसरत्नसमुच्चय, रसराजलक्ष्मी, रसेन्द्रचिन्तामणि, रसमंजरी, शार्ङ्गधरसंहिता, भावप्रकाश आदि प्राचीन और रसतरङ्गिणी आदि नवीन ग्रन्थों के आधार पर आयुर्वेद प्रकाश का निर्माण किया गया है। अपेक्षाकृत नवीन होने पर भी वैद्यों में इसका प्रचलन काफ़ी हो गया है। अनेक कॉलेजों में यह पाठ्यय-क्रम में स्वीकृत पुस्तक है। इस उपयोगी ग्रन्थ की कोई टीका उपलब्ध नहीं होती थी। पंडित सोमदेव जी ने बड़े प्रयत्न से इसकी संस्कृत और हिन्दी टीकाएं की हैं। माधव ने कौनसा श्लोक किस-किस ग्रन्थ से लिया इसकी विवेचना विद्वान् टीकाकार ने स्थान-स्थान पर की है। वैद्यों के लिए उपयोगी निर्देशों से युक्त सरल टीका की इस उप-योगी पुस्तक का हम स्वागत करते हैं।

हिन्दी पर्यायवाची कोष— लेखक पण्डित श्री कृष्ण शुक्ल। प्रकाशक, भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस। द्वितीय संस्करण, सवत् २००५, पृष्ठ संख्या ८२६, मूल्य ४॥) । वर्णानुक्रम से हिन्दी में कुछ कोश निकले हैं। परन्तु ऐसे कोश नहीं हैं जिनमें वर्गों के अनुसार क्रम रखा गया हो। इस कोश में चार खण्डों के अन्तर्गत उनतालीस वर्ग हैं जिनमें २२७६ मूल शब्दों के पर्याय दिये हैं। ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विषयों को भी लेखक ने सम्मिलित किया है। संस्कृत के कोशों में एक चीज़ के कितने पर्याय मिलते हैं लेखक ने उन सब को इस में देने का प्रयत्न किया है। लेखकों, कवियों और विद्यार्थियों के काम की पुस्तक है।

सरल होम्योपैथिक चिकित्सा—लेखक डाक्टर एस. एस. मिश्र। प्रकाशक उपर्युक्त। चतुर्थ संस्करण. १६४८, पृष्ठ संख्या ८७०, मूल्य ८)। चिकित्सा की यह पद्धति हमारे देश में खूब लोकप्रिय हो रही है। हिन्दी जानने वालों के लिए इस विषय की पुस्तकों की कमी को पूरा करने के लिए प्रकाशक का यह उद्योग सराहनीय है। इस पुस्तक में प्रायः सब रोगों के लक्षणों का संक्षिप्त परिचय कराने के बाद उस की औषधियां लिखी गई हैं। औषधियां किन भिन्न अवस्थाओं और लक्षणों में दी जानी चाहिएं यह विस्तार से और स्पष्ट रूप से बताया है। चिकित्सकों के लिए यह काम की पुस्तक है।

सन्तान शास्त्र— लेखक पण्डित गणेश दत्त गौड़। प्रकाशक, उपर्युक्त। पांचवा संस्करण, १६४८ पृष्ठ ४४७, सजिल्द, मूल्य ५)। सन्तान के प्रति और स्वयं अपने प्रति अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्व को बिना समझे सन्तान पैदा करना पाप है। हमारे क्या कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व हैं, यह लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में बताया है। मनुष्य और स्त्री के प्रजनन संस्थान की रचनाओं को समझाते हुए लेखक ने उन में उत्पन्न होने वाले रोगों की चिकित्सा भी लिखी है। गर्भवती स्त्री की देखभाल, प्रसव के समय और बाद की परिचर्या, शिशु को पालने में आवश्यक सावधानियों का वर्णन प्रत्येक गृहस्थ को जानना चाहिए। हम लेखक के इस दृष्टिकोण से सहमत हैं कि गृहस्थ आश्रम में भी ब्रह्मचर्य के पवित्र व्रत को पालन करते हुए हम जीवन सुखी रह सकता है और सन्तान अधिक स्वस्थ और नीरोग बन सकती है। पुस्तक में चार तिरंगे और पन्द्रह सादे चित्र हैं।

गृहस्थी की तस्वीरें— लेखक श्री व्यथित हृदय। प्रकाशक— भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस। प्रथमावृत्ति, १६४७, पृष्ठ संख्या २४६, मूल्य ३)। प्रस्तुत कहानी संग्रह में पन्द्रह कहानियां हैं। गृहस्थी के विभिन्न पहलुओं की इन तस्वीरों में लेखक ने गृहस्थ जीवन के रहस्यों को प्रकट करने का सफल प्रयत्न किया है। हमारे चरित्र और व्यक्तित्व के निर्माण में पारिवारिक जीवन महत्वपूर्ण भाग लेता है। इसलिए पारिवारिक जीवन की समस्याओं पर विश्लेषणात्मक ढंग द्वारा विचार करने से हम अनेकों कुरीतियों और गृहस्थ जीवन की विकट अवस्थाओं से बचने का प्रयत्न कर सकते हैं। इस दृष्टि से लेखक का प्रयास प्रशंसनीय है।

आर्थिक कहानियां— ठाकुर देशराज। प्रकाशक. नवजीवन प्रकाशन लि., संगरिया, बीकानेर। प्रथम संस्करण. १६४६ पृष्ठ संख्या ६८, मूल्य नहीं लिखा। अर्थशास्त्र जैसे कठिन विषय को सरल ढंग से कहानी के रूप में लेखक ने सफलता से रखा है। धन और उसका माध्यम, मुद्रा, मापतोल, व्यापार, यातायात, उत्पादन, सहकारिता, बैंक, हुण्डी, आर्थिक विषमता आदि विषयों को कहानियों की बातचीत में लेखक ने बच्चों को समझाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार की सरल, रोचक शैली में लिखा

गई पुस्तकें बच्चों के लिये निस्सन्देह बहुत उपयोगी होंगी।

विज्ञान के चमत्कार— लेखक प्रिन्सिपल छबीलदास। प्रकाशक, मरुभूमि जीवन ग्रन्थमाला, संगरिया, बीकानेर। प्रथम संस्करण, १९४८, पृष्ठ संख्या ६२, मूल्य १)। गुड़ से पेट्रोल, कृत्रिम ऊन, न जलने वाले वस्त्र, बारहमासी गेहूं। बर्फ के मकान आदि पदार्थ कैसे बनते हैं इस प्रकार की अनेक ज्ञातव्य बातें इस में बताई गई हैं। सृष्टि के वैचित्र्य की यह वैज्ञानिक व्याख्या पाठकों की ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ मनोरंजन भी करती है।

कल्याण— मासिक पत्रिका २४ वें वर्ष का विशेषाङ्क (हिन्दू-संस्कृति-अङ्क)— कल्याण अपने विशेषाङ्कों के लिए प्रसिद्ध है। इतनी बृहत-उपयोगी सामग्री से भूषित, चित्रों से अलंकृत, सुरुचिपूर्वक सम्पादित विशेषाङ्क अन्य किसी भी मासिक पत्र के किसी भाषा में दृष्टिगोचर नहीं हुए। हमें हर्ष है कि इस वर्ष भी कल्याण के सम्पादक तथा प्रबन्धक महानुभाव अपनी पुरानी प्रतिष्ठा को स्थापित रखने में सफल हुए हैं। यह संस्कृति विशेषाङ्क पाठकों के लिए बहुत गम्भीर उपयोगी सामग्री को उपस्थित कर रहा है। लेखों में हिन्दू संस्कृति के सभी अङ्गों पर प्रकाश डाला गया है। लेख प्रसिद्ध महात्मा, संन्यासी, आचार्यों, उच्चकोटी के राजनैतिक नेताओं द्वारा लिखवाए गये हैं। आशा है यह अङ्क पाठकों के हृदय तथा मस्तिष्कों को आहार देगा। वर्तमान-काल में बढ़ रही भौतिक भाव की विचार धारा में बह रहे मनुष्यों को भारत की अनुपम देन आध्यात्मिकता का दर्शन कराएगा और अपने प्राचीन सच्चे शान्ति देने वाले मार्ग की ओर फिर उनकी दृष्टियां आकर्षित करेगा।

हम 'कल्याण' के सम्पादकीय विभाग को यह अङ्क प्रकाशित करने के लिए साधुवाद देते हैं।

प्रदीप— (मासिक, शिमला) का वार्षिक विशेषांक कहानी विशेषांक के रूप में प्रकाशित हुआ है। इस में लब्ध प्रतिष्ठित हिन्दी साहित्यकों की उत्तमोत्तम रचनाएं देने का प्रयत्न किया है। तृतीय वर्ष में पदार्पण करते समय हम प्रदीप का अभिनन्दन करते हैं।

पाणिनीयाष्टकम्— नया परिवर्द्धित संस्करण। लेखक— स्वामी शुद्धबोधतीर्थ (भूतपूर्व आचार्य पं० गङ्गादत्त शास्त्री)। मूल्य पूर्वार्ध ७)। प्रकाशक— प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार। संस्कृत भाषा सीखने और उसमें अधिकार प्राप्त करने के लिए आचार्य पाणिनी के प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी का पठन पाठन नितान्त आवश्यक है। इस पुस्तक में व्याकरण शास्त्र के पारंगत विद्वान् ने पाणिनी की उसी प्रसिद्ध अष्टाध्यायी की सरल और सुबोध व्याख्या की है। अष्टाध्यायी की इस व्याख्या को पढ़ने के पश्चात् व्याकरण के कौमुदी आदि किसी अन्य ग्रन्थ के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रह जाती। उपलब्ध व्याख्याओं में सब से उत्कृष्ट व्याख्या है। अनेक विद्यालयों में पाठ्य-क्रम में पढ़ाई जा रही है। इस नये संस्करण को अनेक प्रकार से विस्तृत और उपयोगी बनाया गया है।

रामेश बेदी।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु रंग

ज्येष्ठ मास उग्ररूप से तप रहा है। दिन में गरम हवाएँ भी चलती हैं। प्रभात और रात्रियाँ शीतल और सुहावनी रहती हैं। अधिक गरमी होने से सायंकालिन क्रीडाओं का क्रम बन्द सा है। वाली-बॉल (जाल कन्दूक) के सिवाय अन्य खेले बन्द हैं। उनके स्थान पर नहर स्नान और तैरी की बड़ी रौनक रहती है। छोटे बड़े सभी ब्रह्मचारी दूरदूर से तर कर आते हैं। छोटे छात्रों को तैरी का अभ्यास भी कराया जाता है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य सामान्य रूप से अच्छा है। पिछले दिनों गुरुकुल में खसरे का कुछ प्रभाव अवश्य रहा है। अब सब छात्र अच्छे हैं। रोगी गृह में छात्रों की संख्या नगण्य सी है।

छात्रों के वन-भ्रमण और पर्वतयात्राएँ चालू हैं। शिवालिक की उपत्यकाओं पर प्यालों की बहार है। छात्र उनका खूब आनन्द उठा रहे हैं। बिल्व फल भी पक रहे हैं। समीप के बागों में लीचियाँ भी तैयार होने को आई हैं। रामदेव मार्ग पर स्थित अमलतास की वसंती पुष्प मंजरियाँ अपूर्व सुषमा फैला रही है। ग्रीष्म कालिन पक्षियों के कलकूजन से कुल के उपवन गूंजते रहते हैं। प्रेक्षक अतिथियों का आवागमन भी आज कल पर्याप्त है।

विशेष व्याख्यान

गुरुकुल के कुलपति श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति आजकल कुल में ही विद्यमान हैं। आप के प्रवचनों और उपदेशों से छात्रगण तथा अन्य कुलवासी भी खूब लाभ उठा रहे हैं। अभी पिछले दिनों अपने-अपने निजू अनुभवों के आधार हिन्दी पत्रकारित्व के भूत,, वर्तमान और भविष्य के विषय में एक बहुत उपयोगी और रोचक भाषण दिया था। आज-कल आप विद्यालय विभाग के ब्रह्मचारियों में महाभारत की मनोहर कथा धारावाहिक रूप में बड़ी ही शिक्षाप्रद, रोचक और मनोहारी शैली में सुना रहे हैं। उस की मनोहारिता ने वयस्क छात्रों और अन्य सज्जनों को भी आकृष्ट कर लिया है। फलतः प्रतिसभा में श्रोताओं की संख्या बढ़ती जा रही।

गुरुकुल में आयुर्वेद कमीशन

उत्तर प्रदेश में स्थित आयुर्वेद महाविद्यालय के कार्यकलाप तथा गति विधियों का निरीक्षण करने के लिए आयुर्वेद--कमीशन के सदस्य (श्रीयुत कुलकर्णी जी, श्री डॉक्टर जवाहरलाल भार्गव तथा श्री पण्डित राजेश्वर दत्त जी शास्त्री) गुरुकुल में पधारे। कुल की ओर से आप का सप्रेम स्वागत किया गया। भोजनानन्तर अपराह्न में आप लोगों ने गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय के समस्त विभागों और साधन सामग्रियों का विशेष रूप से अवलोकन किया। विभागों की सुव्यवस्था, स्वच्छता और कार्य शैली निहार कर आप लोगों ने बड़ी प्रसन्नता और परितोष का अनुभव किया। छात्रों की सभा में आप लोगों ने गुरुकुल शिक्षा विधि की सराहना करते हुए उद्बोधन और आशीर्वादपरक संक्षिप्त प्रवचन किए।

गुरुकुल संग्रहालय में नई वृद्धि

पिछले दिनों में गुरुकुल संग्रहालय में डाक्टर शिवनाथ राय जी के सतत परिश्रम से कुछ बहुमूल्य सामग्री की वृद्धि हुई है। इस में विशेष उल्लेखनीय ताड़ पत्र पर लिखी उड़िया लिपि में एक बहुत प्राचीन हस्तलिखित गीता है जिसे देहरादून आर्यसमाज ने गुरुकुल संग्रहालय को भेंट किया है। इस के अतिरिक्त देहरादून के प्रसिद्ध वैद्य श्री अमरनाथ जी ने कुछ पुरानी हस्तलिखित पुस्तकें संग्रहालय को प्रदान

की हैं। इन में श्रीमद् भगवद् गीता सचित्र एवं भावार्थ, दीपक, व्याख्या से युक्त हस्तलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय है। देहरादून के अन्य भी प्रतिष्ठित महानुभावों ने प्राचीन सिक्कों तथा टिकटों का संग्रह प्रदान किया है गुरुकुल इन सब का आभारी है।

आजकल डाक्टर शिवनाथ राय गुरुकुल संग्रहालय के लिये उपयोगी पुरातत्वीय सामग्री एकत्रित करने के लिये घूम रहे हैं। आशा है कि जनता उदार भाव से इस पुनीत कार्य में सहायता करेगी।

राष्ट्रपति जी के लिए आरोग्य कामना

भारत संघ के राष्ट्रपति श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद के निजू मंत्री द्वारा गुरुकुल के आचार्य जी के प्रति लिखे गये एक पत्र द्वारा यह जानकर गुरुकुल वासियों को विशेष दुःख हुआ कि सम्प्रति राष्ट्रपति का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। गुरुकुल वासियों ने प्रार्थना-भवन में एकत्र होकर बृहद् यज्ञ के पश्चात् कुलवासियों ने राष्ट्रपति के स्वास्थ्य सुधार के लिए प्रार्थना की है।

भगवान् हमारे राष्ट्रपति को शीघ्र ही सुखद आरोग्य प्रदान करें।

श्री नैय्यड़ जी का धन्यवाद

गुरुकुल के अनन्य भक्त श्री लब्भूराम जी नैय्यड़ लुधियाना निवासी ने अति वृद्ध और रुग्ण होते हुए भी गुरुकुल स्वर्णजयन्ती के उपलक्ष में २८००) रुपये एकत्र करके प्रेषित किए हैं। गुरुकुल विश्वविद्यालय मान्य लाला जी के पवित्र पुरुषार्थ के लिए धन्यवाद करता है तथा उनके आरोग्य की सत्कामना करता है।

शोक प्रकाशन

प्रसिद्ध देशसेवक, लेखक, वक्ता और पत्रकार तथा प्रवासी भारतवासियों के कर्मठ अग्रनायक श्री स्वामी भवानी दयाल जी सन्यासी का निधन वार्ता सुनकर समस्त गुरुकुल वासी अतिशय दुःखी हुए हैं। कुलवासियों ने प्रशंसित स्वामी जी की अमूल्य देशसेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित करते हुए उनके आत्मिक जनों के प्रति आश्वासन और समवेदना का सन्देश प्रेषित किया है।

दिवंगत श्री स्वामी जी गुरुकुल के पुराने मित्र और आर्यसमाज के परम सेवक तथा नेता थे। दक्षिण अफ्रीका में आर्यसमाज और आर्यभाषा के प्रभाव और प्रसार के लिए सबसे अधिक प्रयत्न किया था। वे प्रभावशाली वक्ता और सुलेखक थे। उनके निधन से आर्यजगत की उदार क्षति हुई है। कुलवासी उनकी स्मृति में नतमस्तक होते हैं।

वरुण की नौका—लेखक—श्री पं० प्रियव्रत जी आचार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी। इस पुस्तक में वरुण सूक्तों में आये वेदमन्त्रों की विद्वत्तापूर्ण सरल व्याख्या की है। प्रतिपद के अर्थ के साथ मन्त्र के अर्थ को सुबोध और सुगम बनाने के लिये विस्तृत व्याख्या की गई है और अन्त में अपने आत्मा को ही सम्बोधित करके मन्त्र से प्राप्त होने वाली शिक्षा का सार संक्षेप में दिया गया है। पुस्तक के आरम्भ में स्वाध्यायशील लेखक ने वरुण-सम्बन्धी ३५ पृष्ठों की एक गवेषणापूर्ण भूमिका भी दी है।

कर्मफल, पुण्य, पाप, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की इस पुस्तक में मीमांसा है। राजा वरुण प्रभु की आंखें सब जगह पर हैं। कर्मफल विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए यह पुस्तक एक वरदान है। लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में सच्चे सुख का सच्चा उपाय इसमें बताया है। प्रभु की कृपा किस पर होती है और कैसे कर्म करके हम प्रभु के प्यारे हो सकते हैं, इत्यादि विषय पुस्तक में दार्शनिक गहराइयों के साथ सरल रूप में वर्णित हैं। मूल्य प्रथम भाग २) द्वितीय भाग ३)

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

रजिस्टर्ड संख्या ए—८२७

गुरुकुल मुद्रणालय

गुरुकुल पत्रिका

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय-हरि

वर्ष २। अङ्क ११। आषाढ़ २००७

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

विषय	लेखक	पृष्ठ

अगले अंकों में

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

यह स्पष्ट है कि अनामी लोग इन शब्दों को युरो- ... शब्दों से सरल समझते हैं।

यंत्रों के लिए, चाहे वे दैनिक कार्य के लिए हों ... विशेषज्ञों के काम आते हों अनामियों के पास ...नके अपने नाम हैं।

अंग्रेजी

रेडिओ — वो तुयेन दिएन

रेडिओ गोनिओमेट्री — फेप सुवो तुयेन दिएन दो गोक

रेडिओ से आरम्भ होने वाली शब्द-माला बड़ी मनोरञ्जक है। स्थानाभाव से मैं उसे यहां उद्धृत नहीं करूंगा।

अंग्रेजी — अनामी

[गुरुकुल कांगड़ा विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

अनामी भाषा की वैज्ञानिक शब्दावली

डॉक्टर रघुवीर पी. एच. डी.

गत मास मुझे अनामी भाषा की बड़ी सुन्दर वैज्ञानिक शब्दावली की एक प्रति भेंट रूप में प्राप्त हुई है। इसे मेरे मित्र श्री होआंग जुआन हान ने बनाया है। यह प्रति साइगोन से ६ दिसम्बर १९४८ को मेरे नाम भेजी गई थी और मुझ तक पहुँचने में इसे पूरा एक वर्ष और एक मास लगा। इस पुस्तक का नाम "दान्हतु खाओ होक" है। इस में तोआन (गणित) ली (भौतिकी), होआ (रसायन), को (यान्त्रिकी) और थिएन वान (ज्यौतिष) की वैज्ञानिक शब्दावली दी गई है। इसे साइगोन के प्रसिद्ध प्रकाशक "विन्ह बाओ" ने प्रकाशित किया है।

फ्रांसीसी भारत-चीन की भौगोलिक परिधि में अनाम, टोंकिङ्ग और कम्बोज तथा कुचीन और लाओस के उपनिवेश आते हैं। भारत, चीन की पूर्व तटीय मेखला "अनाम" नाम से प्रसिद्ध है जिस की लम्बाई ७॥ सौ ८०० मील है और क्षेत्रफल ५९००० ...मील। १९३२ में इस की जन संख्या पचास लाख ... जिसमें १० लाख ईसाई थे जो विगत दो शतियों ... प्राचीन बौद्ध धर्म से ईसाई बना लिए गए थे। ...ष बौद्ध हैं। यहां शिक्षा फ्रेंच और फ्रेंच-अनामी ... प्रकार की होती है और ... १९१७ में जन-शिक्षा-संहिता में यह भी नियम बनाया गया कि प्रारम्भिक पाठशालाओं में फ्रेंच की शिक्षा अनिवार्य की जाय। कुछ असन्तोष के कारण १९२४ में इस नियम के कुछ अपवाद माने गए जिनकी व्याख्या १८ सितम्बर १९२४ के परिशिष्ठ में की गई है। भारत चीन का विश्वविद्यालय हानोई में है। वास्तव में अनुष्ठानिक और सिद्धान्तिक शिक्षा देने वाली यह एक बहु शाखी उच्च पाठशाला मात्र है। १९ वीं शती के भारत के समान इस का उद्देश्य भी फ्रांसीसी शासकों के लिए अनामी सहायक और वकील, व्यापारी तथा निर्माणियों में काम करने वाले व्यक्ति प्रस्तुत करने थे।

अनाम का इतिहास ईसा से ३०० वर्ष पूर्व आरम्भ होता है, जब कि चीनियों ने इस देश पर आक्रमण किया था और अपने प्रभुत्व की स्थापना की थी। यह प्रभुत्व ईसा की दसवीं शती तक रहा। ९६८ ई० में दिन्ह बोलान्ह ने सफलतापूर्वक चीनियों को निकाल बाहर किया और दिन्ह नामक स्वतन्त्र राजवंश की स्थापना की। उस समय तक अनाम के अधिकांश भाग पर चामों ने अधिकार कर लिया था। इन पर हिन्दू सभ्यता का प्रभाव था। १४०७ ई० के लगभग अनाम पर पुनः चीनियों का अधिकार हो गया और

वर्ष २ । अङ्क ११ । **गुरुकुल-पत्रिका** आषाढ़ २००७

व्यवस्थापक
श्री [illegible]

सम्पादक
श्री सुखदेव श्री रामेश बेदी

च.न पर फ्रांसीसी प्रभाव का आरम्भ होता है।

आजकल समाचार पत्रों में वीत नाम की चर्चा बहुत हो रही है। हमारे देश के विद्वत्समाज को वीत नामियों के विषय में यह जानना रुचिकर होगा कि ये लोग किस प्रकार अपनी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं और अपने भावों को प्रकट करने के लिए किस प्रकार वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण की समस्या को सुलझा रहे हैं। अनामियों का यह शब्दावली फ्रांसीसी भाषा से अनामी भाषा में बनाई गई है। विषय-प्रवेश में विद्वान लेखक ने अपनी मानसिक पृष्ठ-भूमि का बड़े स्पष्ट शब्दों में दिग्दर्शन कराया है। अनामी भाषा चीनी परिवार की है। पास-पड़ौस की भाषाओं की तुलना में इस भाषा का साहित्य पर्याप्त अच्छा है।

श्री० हान ने अनामी शब्दावली का निर्माण करने के लिए तीन विकल्प रखें हैं:

(१) फ्रेंच शब्दों का अनामी रूप में उच्चारण

(२) चीनी कोश से शब्द लेकर उनका अनामी रूप में उच्चारण

(३) पश्चिमी शब्द के अन्तर्गत विचार को व्यक्त करने के लिए अनामी भाषा के असमस्त और समस्त शब्द अथवा शब्द-माला का निर्माण शब्द-निर्माता की दृष्टि से श्री हान पहले विकल्प को सब से सरल मानते हैं। किन्तु वे कहते हैं कि यूरोपीय शब्द दुर्भाग्यवश बहुत लम्बे होते हैं और उनका उच्चारण अनामी भाषा के अनुरूप बनाना कठिन है। अनामी लोग उनकी ध्वनियों का उच्चारण जाते हैं। अनामी भाषा म पहले ही सहस्त्रों चीनी शब्द विद्यमान हैं। श्री हान को इस में केवल एक आक्षेप है, कि चीनी शब्दों का प्रयोग सब प्रान्तों में समान नहीं।

श्री हान को तीसरा विकल्प अनामी शब्दों का निर्माण अत्याधिक स्वाभाविक लगता है। किन्तु उनका कहना है कि यह विकल्प प्रत्येक शब्द के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता।

उनके प्रस्तावित कुछ शब्द यहां उदाहरण रूप में देना मुझे उचित प्रतीत होता है रसायनिक कतिपय उपसर्गों के लिए उन का अनुवाद इस प्रकार है।

अंग्रेज़ी	अनामी	अंग्रेज़ी	अनामी
पाइरो	होना	डाई	हाइ
मेटा	त्रिएन	मोनोपर	दोंगिआ
आर्थो	चिन्ह	डिपर	हाइगिना
मेसो	गिउआ	पर	गिआ
मांनो	दोन	हाइपो	नोन

यूरोपीय मासों के सब नामों का अनुवाद किया गया है। जनवरी के लिए थांग गिएंग दुओंग-लिच रखा है।

अंग्रेज़ी	अनामी
आक्टोबर	थांग मुओई दुओंग-लिच
डिसेम्बर	थांग चाप दुओंग-लिच
नावेम्बर	थांग मोत दुओंग लिच
सेप्टेम्बर	थांग चाम दुओंग-लिच

यह स्पष्ट है कि अनामी लोग इन शब्दों को युरो-[illegible] शब्दों से सरल समझते हैं।

यंत्रों के लिए, चाहे वे दैनिक कार्य के लिए हों [illegible] विशेषज्ञों के काम आते हों अनामियों के पास [illegible]नके अपने नाम हैं।

अंग्रेज़ी	अनामी
एक्सेलैरेटर	लाम चो चोंग थेम
एक्सेलोग्राफ	गिश्रा तोक के
ऐक्टिनोमीटर	होश्रा क्वांग के
एरोप्लेन	माय बाय
ऐम्प्लिफायर	माय खुएच दाइ
बाइसिकल	क्शे हाइ बन्ह
ब्यूरेट	ओंग न्हि गिश्रोत
इलेक्ट्रिक रेलवे	दुश्रोंग सात दिएन
एञ्जिन	खिकु
कैलाइडोस्कोप	किन्ह बान होश्रा
कैमेरा	माय होश्रात अन्ह
रेलवे	दुश्रोंग सात
पेन्सिल	बुतचि
गाइरोस्कोप	कोन क्वाय
लोको मोटिव	दाउ माय क्शे लुश्रा

मेशीन के लिए साधारण शब्द माय है और [illegible]ट्यूमेटिक मेशीन के लिए माय हुत खि।

मोटर	दोंग को
इलैक्ट्रिक मोटर	दोंग को दिएन
हाइड्रौलिक मोटर	दोंग को नुश्रोक
ओसिलोस्कोप	दाश्रो दोंग न्धिएम
थर्मामीटर	न्हिएत के
[illegible]रिश्रोग्राफिक फोटोग्राफी	अन्ह त्रोंग नोइ
[illegible]मीटर	क्वांग के
[illegible]ग्राफी	सु काच चुप अन्ह
[illegible]फ़ोन	क्वांग थोश्राइ

रेडिश्रो	वो तुयेन दिएन
रेडिश्रो गोनिश्रोमेट्री	फेप सुवो तुयेन दिएन दो गोक

रेडिश्रो से आरम्भ होने वाली शब्द-माला बड़ी मनोरञ्जक है। स्थानाभाव से मैं उसे यहां उद्धृत नहीं करूंगा।

अंग्रेज़ी	अनामी
सेक्स्टैंट	किन्ह लुक फ़ान
टेलीग्राफ	माय दिएन बाश्रो
टेलीफोन	दिएन-थोश्राई
टेली वज़न	फ़ेप-दिएन-थि
टेली फ़ोटोग्राफी	थुश्रात फेप चुप अन्ह कमा
ट्राम वे	ताउ दिएन
ट्राली	काइ हुँग दिएन
अल्ट्रामाइक्रोस्कोप	किन्ह सिएउ हिएनवि
ऐनाइसोट्रापिक	दि हुश्रोंग
ऐंटिकैथोड	दोइ-श्राम कुक
एना टेना	दाय त्रोइ
ग्रीगोरियन कैलेण्डर	तान लिच

यहां यह देखने की बात है कि व्यक्ति के नाम ग्रीगोरी के लिए वर्णनात्मक शब्द "तान" का उपयोग किया गया है।

जुलियन कैलेण्डर	कुउ लिच
सेंटिमीटर	फान
सेंटिग्रेड	फ़ान त्राम गात
सिनेमा	चोप बोंग
डेकामीटर	चुक थोउक
डायनमोमीटर	लुक-के
इलैक्ट्रोड	दिएन-कुक
इलैक्ट्रोन	दिएन तु
यूकैलिप्टस	खुयन्ह दीएथ
गैस	खि
इनौर्गेनिक	वो-को
मिलिमीटर	ली

क्यूबिक मिलिमीटर	लीखोई
मिनिट	फुट
मोलिक्यूल	फान–तु
न्यूट्रॉन	त्रुंग-होंआ-तु
न्यूक्लीअरफ़िजिक्स	हाच ली होक
पेट्रोल	दाउ ताय
पाज़िट्रॉन	दुओंग तु

अनाम की राष्ट्रीय-लिपि चीनी है। किन्तु फ्रांसीसियों के लाभ को दृष्टि में रख कर यह पुस्तक रोमन–लिपि में प्रकाशित की गई है, राष्ट्रीय–लिपि में नहीं। रोमन–लिपि में अनामी शब्दों के लिए ध्वनि चिन्हों की भरमार करनी पड़ी है। ऊपर, नीचे, दाएं बीच में अनेक चिन्हों का प्रयोग किया गया है। यदि यूरोपीय भाषाओं में स्पेनवासियों, पुर्तगालियों, जर्मनों, ...ों, डेनमार्क निवासियों, स्वेडन वासियों, पोलैंड ... हंग्री के निवासियों आदि के द्वारा जितने ध्वनि ...न्हों का उपयोग होता है उन सब को एकत्र किया जाय तो वे सब मिल कर भी इन चिन्हों के सामने तुच्छ हो जाते हैं। रोमन के "ए" अक्षर पर अनामी विभिन्न ध्वनियों को प्रकट करने के लिए एक चिन्ह नीचे और एक, दो या कभी-कभी तीन चिन्ह ऊपर लगाते हैं।

यदि कोई अनामी इन अक्षरों को ध्वनि-चिह्न रहित देखे तो पहिचान नहीं सकता। किन्तु भारतीय के लिए ये चिह्न एक गोरख-धन्धा है और भारतीय मुद्रक तो उन्हें छापना ही अस्वीकार कर देगा। वीतनाम के ही मुद्रणालय वह कार्य कर सकते हैं।

बड़े ध्यान से इस पुस्तक को आदि से अन्त तक अध्ययन कर मैं कह सकता हूं कि अनामी भाषा के अत्यन्त परिमित होने के कारण इस कोश के निर्माता को समुचित शब्दों के चुनने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। संस्कृत और यूरोपीय भाषा के उपसर्गों की सहायता से शब्दार्थ की छोटी से छ... विभिन्नता को भी प्रकट किया जा सकता है। कि... अनामी भाषा के पास इस प्रकार की सहायता ... कोई साधन नहीं है। उलझन, लोप और विल... तानों के लिए अनामी भाषा में अकेला "तान" श... है। विज्ञान में जिन अनेक प्रत्ययों की आवश्यकता होती हैं उनकी पहिचान के लिए भी अनामियों के पास कोई उपाय नहीं है। रसायनिक प्रत्यय **"इक"** (ic) और "अस" (ous) तक के लिए उनके पास कुछ नहीं है।

उनके अधिकांश शब्द समस्त और कभी कभी असाधारण रूप के लम्बे होते हैं जिससे कभी कभी उनका पारस्पारिक सम्बन्ध अविच्छिन्न नहीं रहता जो कि वैज्ञानिक प्रविधि के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अनामी भाषा की वैज्ञानिक शब्दावली को पढ़ कर यह भले प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की आवश्यकता को पूरा करने की कितनी बड़ी सामर्थ्य भारतीय भाषाओं में विद्यमान है। इस प्रकार क सामर्थ्य संसार की बहुत थोड़ी भाषाओं में है। इससे पूर्व हमने अरबी. चीनी और जापानी आदि अन्य कई भाषाओं की पारिभाषिक शब्दावली का परीक्षण किया था और उस समय भी हम इसी परिणाम पर पहुँचे थे कि भारतीय भाषाओं में ही वह सामर्थ्य है कि वे यूरोपीय विभिन्न पारिभाषिक शब्दावली के लिए सूक्ष्मता के साथ उपयुक्त शब्द दे सकती है। इतना ही नहीं इस विषय में वह उन से भी आगे बढ़ सकती है। किन्तु इस पर फिर कभी चर्चा की जायगी। इस समय तो हमें इतने से ही सन्तोष है कि हम अपने शब्दों में वह सब ठीक-ठीक व्यक्त करने में समर्थ है जिसे यूरोपीय अपनी विभिन्न भाषाओं में व्यक्त कर सकते हैं।

भाई और बहन

डाक्टर डोरिस ओडलुम

यदि आप से कहा जाय कि पुरुष या स्त्री किसी भी लिंग की सन्तानें आप अपने लिये चुन लें तो सम्भवत: आप दोनों ही वर्गों में से एक एक या दो दो अथवा यदि आप आबादी बढ़ाने के बहुत इच्छुक हुए तो तीन तीन पाना अधिक पसन्द करेंगे। मैं समझती हूं कि हम सबकी दृष्टि में दोनों वर्गों की समान संख्या होने में ही परिवार की पूर्णता है। इससे दोनों आपस में एक दूसरे से बहुत कुछ सीखते हैं। लड़कों को अपनी बहनों की सहेलियों तथा लड़कियों को अपने भाइयों के साथियों से मिलने का भी अवसर मिलता है जिससे आगामी जीवन में वे दूसरे वर्ग के प्रति अधिक संतुलित और उचित दृष्टिकोण अपनाते हैं।

फिर भी कुछ कठिनाइयां हैं जिन्हें हटाने के लिये माता पिता को अपने व्यवहार में अधिक सचेत, पूर्णतया निष्पक्ष तथा न्यायपूर्ण होना चाहिये। अन्यथा बच्चे आपस में एक दूसरे से ईर्ष्या करने लगते हैं। वह घर वस्तुतः नरक है जहां माता अपने व्यवहार से बालक का तथा पिता लड़की का जीवन नष्ट कर देते हैं और जहां माता पिता में या बच्चों में परस्पर सदैव विवाद और मनमुटाव होते रहते हैं।

सभी बच्चों को समान संख्या में मिठाइयां या एक जैसे सुन्दर वस्त्र देकर तथा यथावसर एक समान दण्ड या पुरस्कार देकर सहज ही आप समझ सकते हैं कि आप बच्चों के प्रति पूर्णतया निष्पक्ष हैं। परन्तु आप किसी भी बच्चे को धोखा नहीं दे सकते कि वस्तुतः आप उसके प्रति कैसे भाव रखते हैं—उसे क्या समझते हैं। वह आपके स्वर से, हावभाव से और सहस्रों ऐसी छोटी छोटी बातों से, जिनकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते, समझ जाता है कि कौन सी सन्तान आपको सर्वप्रिय है।

कुछ दिन पूर्व निराशा तथा चिन्ता से आक्रान्त एक बालक मेरे चिकित्सालय में लाया गया। उसकी आयु ९ वर्ष की थी और वह भाइयों में मध्यवर्ती था। उसकी माता ने मुझे विश्वास दिलाया कि वह या उसके पति किसी भी बच्चे के प्रति विशेष पक्षपात या प्रेम नहीं रखते और सबके साथ एक सा व्यवहार करते हैं। परन्तु बच्चे ने मुझे कहा "अम्मा छोटे भाई को तथा पिता जी बड़े भैया को प्यार करते हैं।" जब मैंने उसके बारे में पूछा तो उसने कहा। "मुझे कोई भी कुछ नहीं समझता।" यह बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण बात है कि प्रत्येक बच्चा अनुभव करे कि माता पिता के प्रेम में उस का यथोचित्त स्थान है। उसे यह अनुभव होने देना कि वह इन के लिये अवाञ्छित और विपरीत योनि का है माता पिता की निर्दयता को सूचित करता है।

खिन्नता और दुर्भावना को उत्पन्न करने वाला दूसरा विचार यह है कि बहनें तो भाइयों की प्रतीक्षा करती रहें और उनसे घर के काम काज में हिस्सा बटाने की आशा की जाय और भाई अपने मित्रों के साथ मौज उड़ाते फिरें। यह भाव धीरे २ हटता जा रहा है और जितनी शीघ्र इसका अन्त हो अच्छा है। लड़के इतने नासमझ नहीं होते कि लड़कियों की तरह घरेलू कार्यों में हिस्सा बटाने की आदत उन्हें न सिखाई जा सके। घर को स्वच्छ और सुन्दर बनाने या अतिथियों को स्वच्छ उत्तम भोजन देने में कोई छोटापन या हीनता का भाव नहीं है। एक सबल और स्वावलम्बी नाविक की सभी प्रशंसा करते हैं क्योंकि वह पकाने, सफाई रखने और सीने में कुशल होता है और कोई भी एक सामान्य नाविक को मूर्ख या हीन नहीं समझता।

कितनी दयनीय वह स्थिति है जब माता पिता

अपने ही कार्यों में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि मानव शिशु के रूप में अपने बच्चों में वे रुचि भी नहीं ले सकते। बच्चे भोजन वस्त्र और आवास स्थान पाने की ही आशा रखते हैं और इन्हें अपना अधिकार समझ माता पिता के प्रति किसी प्रकार की कृतज्ञता अनुभव नहीं करते। परन्तु वे पसन्द करते हैं कि उनसे व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाये जांय उनके दृष्टिकोण को समझा जाय।

बहुधा मैंने युवकों से पूछा है कि अपने बचपन के कौन से क्षण तुम्हें सब से अधिक मधुर लगते हैं। प्रायः वे उत्तर देते हैं: "रविवार की प्रातः जब हम पिता जी के साथ घूमने जाते थे" अथवा "वे संध्यायें जब मां हमारे साथ खेलती थी और जोर २ से पढ़ती थी।" स्पष्टतः यह स्मरण रखना चाहिये कि बच्चा आपके मनोरंजन और हास्य भाव के कारण आपसे उतना ही स्नेह करेगा जितना उसके हित में उचित आस्था और ध्यान रखने पर। निस्सन्देह ज्यादा लाड़ बच्चों को आसानी से बिगाड़ देता है। वे अति तथा सदा रक्षा में तत्पर रहने वालों से घृणा लगते हैं और मुख्यतः किशोरावस्था में चाहते उन्हें स्वतन्त्र होने के लिये प्रोत्साहित किया ज वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें।

यदि लड़कों और लड़कियों का पालन प्रसन्न और ईर्ष्यारहित वातावरण में होता है तो विकास के इस काल में उन्हें एक दूसरे से बहुत सहायता मिलती है। प्रायः बच्चे अपनी समस्याओं और कठिनाइ की चर्चा परस्पर कर लेते हैं परन्तु बड़ों को न कहते। कुछ माता पिता बच्चों को उनकी समझ के अनुसार चलते तथा अपने को सम्मान पूर्वक उपेक्षि होते देखकर कुछ व्यथित होते हैं परन्तु यदि बच्चों ने विकास करना है, अनुभवी बनना है और जीव संघर्ष में सफल योद्धा सिद्ध होना है तो ऐसा होन नितान्त आवश्यक है।
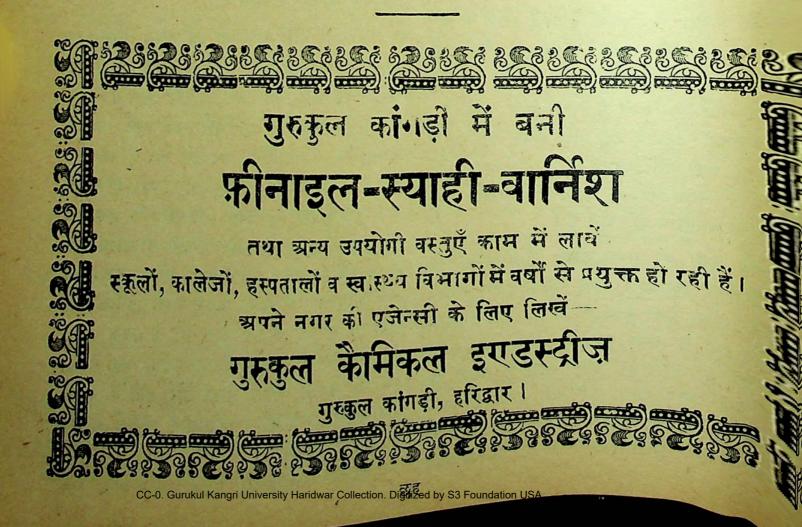
मूल तत्त्व संबंधी अज्ञेयवाद की भ्रान्ति के कारण

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज

यदि अनुमान से अतिरिक्त अन्य कोई विचित्र, शक्तिसम्पन्न साधन परतत्त्व के साक्षात्कार करने के लिए जगत् में नहीं है; अथवा साधन के होते हुए भी मनुष्य के लिए उस की उपलब्धि इसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार पशु के लिए वाक् शक्ति की तो फिर परतत्त्व विषयक मनयीय पिपासा की शान्ति हो नहीं सकती। अनेक युरोपियन दार्शनिकों ने केवल शुष्क तर्क के आधार पर ही मूल तत्त्व को अज्ञेय कहा है। क्योंकि वे केवल तर्क की ही शरण लेने वाले हैं। यह तो निश्चित सत्य है कि श्रुति निरपेक्ष तर्क से मूल तत्त्व अज्ञेय ही है। मूल तत्त्व सम्बन्धी अदम्य जिज्ञासा और तर्क की इस जिज्ञासा पूर्ति में असफलता ही, इस विषय में किसी अन्य विलक्षण प्रमाण के अस्तित्त्व के द्योतक हैं। जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है कि तर्क और सामान्य बुद्धि तक ही मानवीय बुद्धि के विकास का अन्त नहीं हो जाता।

सामान्य बुद्धि तो पिपीलिका के समान अति मन्द गति से किसी तत्त्व को प्रमाणित करती है। परन्तु न्यूटन तथा शंकर सरीखे प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों के आविष्कार यह सिद्ध करते हैं कि सामान्य बुद्धि को यदि बैल-गाड़ी समझा जावे तो आभ्यन्तर दिव्य चक्षु को शक्ति शाली हवाई जहाज़ मानना होगा। यह दिव्य अभ्यन्तर चक्षु किसी तत्त्व को बिना किसी क्रम के यूं ग्रहण करती है और ऐसे हस्तामलकवत देखती है जैसे कि रूप को आंख ? उस दिव्य साधन को मूल तत्त्व के ग्रहण करने के लिए सामान्य बुद्धि की तरह विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता और न ही किसी प्रकार की आनुमानिक कल्पना से सहायता लेनी पड़ती है। यही कारण है कि उस में किसी प्रकार के संदेह या भ्रान्ति का लवलेश भी नहीं होता। वह उसका सर्वथा निर्भ्रान्त तात्त्विक प्रत्यक्ष ही होता है। ऐसे दिव्य साधन सम्पन्न महापुरुष का वचन मात्र ही सर्व-साधारण जन के लिए इस विषय में प्रमाण है।

मूल तत्त्व सम्बन्धी अज्ञेय वाद के निम्न लिखित दो कारण हैं:—

(क) श्रुति निरपेक्ष केवल शुष्क तर्क बुद्धि को ही परम प्रमाण मानना। किन्तु इन की तो मूल तत्त्व तक गति ही नहीं है। जैसे श्रोत्र इन्द्रिय की गति रूप प्रत्यक्ष में नहीं। विस्तृत वबेचना पहले हो चुकी है।

(ख) मूल तत्त्व को जड़ मानना (व्याख्या आगे की गई जा रही है)।

मूलतत्त्व के ज्ञान की आकांक्षा तथा श्रुति

मूलतत्त्व के ज्ञान की आकांक्षा ही हमें यह स्वीकार करने को बाधित करती है कि वह मूलतत्त्व चेतन हो। यदि वह सर्वाधार, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्व नियन्ता ही जड़ हो तो वह स्वयं ही अपने स्वरूप तथा अस्तित्त्व से अनभिज्ञ होगा ऐसी परिस्थिति में उसकी सन्तान बुद्धि आदि तो वहां क्या पहुँच सकेगी। चेतन मान लेने पर भी यह आकांक्षा अनिवार्य है कि वह पशुवत् मूक न हो। उसके पास वाणी हो जिसके द्वारा वह अपने स्वरूप का संकेत तो कर सके। जिस संकेत को पाकर हम उसके स्वरूप को समझकर उसकी प्राप्ति तथा अनुभूति का साधन कर सकें; और साथ ही अपनी अनुभूति की परीक्षा भी कर सकें कि ठीक उसी मूलतत्त्व को हमने पा लिया है; जिसका कि

उसने हमें अपनी वाणी द्वारा संकेत किया था।

उस चित्स्वरूप परम तत्त्व ब्रह्म की वाणी ही वेद है। इस को दूसरे शब्दों में शब्द ब्रह्म कहते हैं। यही उस परम तत्त्व ब्रह्म तथा अन्य धर्मादि में स्वतः निरपेक्ष, निर्भ्रान्ति, एक मात्र परम प्रमाण है। "न वेदविद मनुतेतम् बृहन्तम्" (तै० ब्राह्मण ३-१२-६-७) वेद को न जानने वाला उस सर्व जगत् के कारण अनादि, अनन्त, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, ब्रह्म को केवल तर्क से नहीं जान सकता। क्योंकि ब्रह्म (ईश्वर) को जानने के लिए केवल वेद ही परम प्रमाण है। जैसे पिता के ज्ञान के लिए पिता अथवा माता के वचन ही प्रमाण होते हैं। इसी प्रकार ईश्वर के ज्ञान के लिए ईश्वरीय ज्ञान के भण्डार स्नेहमयी वेद माता के वचन ही प्रमाण हो सकते हैं। उसके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं जिसके द्वारा उस परम तत्त्व भूत ईश्वर का ज्ञान हो सके। "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" (बृ० उपनिषद् ३-६-२६) जिज्ञासु विनम्र भाव से ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय से विनय करता है कि भगवान् मैं उस उपनिषद् (वेदान्त) प्रतिपादित परम तत्त्व ब्रह्म पुरुष को जानना चाहता हूँ। कृपया उसके विषय में बताकर मुझे कृतार्थ करें। वास्तव में सम्पूर्ण वेदान्त वाक्यों (उपनिषदों) तथा वेदों का परम तात्पर्य ब्रह्म के वर्णन में ही है। ब्रह्म का पूर्णतया वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। यदि इस समय अन्यत्र कुछ वर्णन मिलता भी है तो उसका मूल स्रोत वेद ही है। जैसे सब प्रकार के मिष्टान्नों में मधुरता खाण्ड की ही होती है।

श्रुति प्रतिपादित तत्त्व की अनुभूति के साधन

जैसे ऊपर वर्णन हुआ है कि मूल तत्त्व के विषय में परम तथ्य अपूर्व प्रमाण श्रुति ही है। सामान्यतः या भूलोक वासी मनुष्य को इसके अतिरिक्त अन्य साधन या प्रमाण से उसका बोध नहीं हो सकता। जैसे चक्षु के बिना रूप का बोध असम्भव है। इस परम प्रमाण भूत श्रुति के उपयोग के लिए श्रद्धा अत्यन्त आवश्यक तथा अनिवार्य है। पर[illegible] का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि हमें अन्त तक [illegible] अपनी अनन्य श्रद्धा से ही श्रुति प्रतिपादित त[illegible] श्रद्धाजन्य सामान्य परोक्ष ज्ञान पर ही निर्भर [illegible] सन्तोष करना पड़ेगा। श्रुति केवल मूल तत्त्व[illegible] वर्णन ही नहीं करती प्रत्युत इसके साक्षात्कार के लिए उपयोगी साधनों का भी निरूपण करती है। इतने मात्र से श्रुति के महत्व में कुछ बाधा नहीं पड़ती। यह अवस्था तो सब प्रमाणों की समान ही है। जैसे केवल चक्षु से रूप का प्रत्यक्ष नहीं होता। उसके सहकारी अन्य प्रकाशादि साधन होने ही चाहिए। हां! रूप प्रत्यक्ष में प्रधान मुख्य कारण चक्षु ही है। परन्तु जब तक आत्मा और मन के चक्षु के साथ संयोग न हो, बाह्यालोक तथा दूर-सामीप्य आदि प्रतिबन्धकों का अभाव न हो तब तक चक्षु क्योंकर रूप का प्रत्यक्ष कर सकती है। लोक में भी यह सर्वविदित है कि जब किसी व्यक्ति से पूछा जाए कि अमुक व्यक्ति यहां तुम्हारे निकट से गया है? तो वह यह उत्तर देता है कि मेरा मन कहीं अन्यत्र संलग्न था इसलिये चक्षु खुले होने पर भी मैंने उसे जाते नहीं देखा। इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। इसी प्रकार औपनिषद् तत्त्व के साक्षात्कार के लिए अनन्य श्रद्धा के अतिरिक्त अन्य साधन भी श्रुति ने प्रतिपादित किये हैं। जिन अन्य साधनों का उल्लेख श्रुति करती है, वे इस प्रकार हैं:— (१) इस लोक तथा परलोक के विषय भोगों की वासनाओं का सर्वथा त्याग— (२) वर्णाश्रम विहित कर्मों के ईश्वरार्पण बुद्धि तथा निष्काम भाव से अनुष्ठान द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि— (३) भक्ति, योग, उपासनादि द्वारा स्वच्छ स्थिर, सूक्ष्म, पर तत्त्व ग्रहणोपयोगी बुद्धि— (४) तथा परतत्त्व ग्रहण के लिए अनन्य तीव्र रुचि और जिज्ञासा आदि आदि इन सहकारी

का यथायोग्य सुविशद यथोचित वर्णन किया गा।

जैसे रेडियो स्टेशन में भेजे गये सन्देश वायु ल में सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं, परन्तु वे सुनाई देते हैं जहां उन के ग्रहण करने वाले यन्त्र होते हैं। इसी प्रकार श्रुति में भी सर्वत्र मूल तत्त्व का वर्णन है, परन्तु उस के ग्रहण के लिए एतदुपयोगी सूक्ष्म बुद्धि रूपी यन्त्र की अपेक्षा होती है। जिस प्रकार रेडियो यन्त्र प्रकृति से स्वतः पीतल, लोहे, मृत्तिका आदि के बने बनाए उत्पन्न नहीं होते अपितु उन के बनाने की कला में कुशल, विज्ञ व्यक्ति द्वारा बनाए जाते हैं। इसी प्रकार सर्वसाधारण मनुष्य उत्पत्तिकाल से ही मूल तत्त्व ग्रहणोपयोगी, अत्यन्त उज्ज्वल तथा सूक्ष्म बुद्धि से सम्पन्न नहीं हुआ करता। उस के लिए भी महान् प्रयत्न तथा अनेक श्रौत साधनों की अपेक्षा होती है।

साधारणतया सब विद्याओं (Sciences) को प्राप्त करने का यही क्रम है। एक बालक शनैः २ बड़े प्रयत्न के पश्चात् किसी भौतिक विज्ञान के रहस्यों को समझने के योग्य होता है। किस बालक में यह सामर्थ्य है कि वह जन्म काल से ही ज्युमेट्री के पाइथागोरस के सिद्धान्त को समझ सके। गणित के किस उद्भट विद्वान् में सामर्थ्य है कि वह आरम्भ में ही किसी बालक को ये गणित के नियम हृदयङ्गम् करा सके। ऐसे ही ब्रह्मविद्या को समझने के लिए प्रत्येक मनुष्य सामान्यतया उस के लिए आवश्यक, स्थिर, स्वच्छ, सूक्ष्म बुद्धि से युक्त नहीं होता। अनन्य धैर्य से युक्त होकर निरन्तर दीर्घकाल तक अनवच्छिन्न धारणा, महान् प्रयत्न करने पर भी पचास प्रतिशतक व्यक्ति ही अपने अनुभव के आधार पर उस अतीन्द्रिय अध्यात्म तत्त्व के विषय में कुछ आस्तिकता व्यक्त कर सकते हैं। पारमार्थिक साधकों की योग्यता तथा रुचि को दृष्टि में रखते हुए शास्त्रकारों ने अनेक उपयोगी साधनों का वर्णन किया है। परन्तु सामान्य व्यक्ति केवल शास्त्र को सामने रख कर उन साधनों का आचरणात्मक उपयोग नहीं कर सकता। क्योंकि शब्द क्रिया शिक्षा में पंगु है। इस लिए साधक किसी शास्त्र निष्णात् तथा तत्त्वनिष्ठ सुविज्ञ व्यक्ति की देख रेख में ही उन साधनों पर आचरण करके लाभ उठा सकता है। अन्यथा हानि की सम्भावना है। जन्मतः प्राप्त साधारण बुद्धि के आधार पर, या किसी अन्य भौतिक विज्ञान आदि की शिक्षा से संस्कृत बुद्धि के बल पर इस ब्रह्म विद्या को समझने का आग्रह करना उचित नहीं है। क्योंकि अध्यात्म विद्या इस प्रकार की सामान्य बुद्धि की पहुँच से बाहर हैं; इस लिए आध्यात्मिक तत्त्वों के मिथ्या होने की निश्चयात्मक अथवा असंदिग्ध घोषणा कर देना किसी उदार की, दूरदर्शी तथा सूक्ष्मबुद्धि वाले व्यक्ति का कार्य नहीं है। क्या कोई रसायन शास्त्र का दक्ष वैज्ञानिक केवल अपने रसायन शास्त्र के ज्ञान के आधार पर जीवन विज्ञान के सूक्ष्म सिद्धान्तों को भ्रान्त कहने का दुस्साहस कर सकता है। इसी प्रकार क्या हम आध्यात्मिक विद्या के साथ ऐसा अयोग्य व्यवहार कर के अपना महानतम अनिष्ट नहीं कर रहे ? हमें इस विषय में पक्षपात छोड़ कर गम्भीरता पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। तभी तत्त्वज्ञान की ओर ले जाने वाली जिज्ञासा तथा मति की उपज हो सकेगी।

श्रुति और प्रत्यक्ष का विषय भेद

भारतवासियों के हृदयों में भी आजकल वेदादि सच्छास्त्रों के प्रति जो अश्रद्धा तथा अविश्वास और तर्क, अनुमान (Reasoning) में प्रबल रुचि और आस्था दृष्टि गोचर हो रहे हैं उनका मूल कारण पाश्चात्य सभ्यता तथा तर्क प्रधान दार्शनिक विचारों का प्रभाव है। पाश्चात्य लोगों को अपने बाईबल, अंजील आदि पवित्र धार्मिक ग्रन्थों में अविश्वास का

एक मुख्य कारण यह है कि उनके इन ग्रंथों में सांसारिक पदार्थों का जो वर्णन आता है वह नवीन विज्ञान की दृष्टि से सत्य सिद्ध नहीं होता और कई स्थानों में सर्वथा विपरीत प्रमाणित होता है। जैसे पृथ्वी को चपटा, ईश्वर को सातवें आकाश पर रहने वाला बताना इत्यादि।

जब अभी वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रादुर्भाव हो ही रहा था। उन दिनों बात सच्ची होने पर भी बाइबल का विरोध करना साधारण बात नहीं थी क्योंकि चर्च के ईसाई पादरियों, पोपों का प्रभुत्व इतना अधिक था कि तत्कालीन राजा महाराजा भी उनसे भय खाते थे। पोपों का आदेश राजाओं को भी मानना पड़ता था। उस काल में बाइबल के विरुद्ध विचार रखने वालों पर अत्यन्त क्रूर तथा रोमाञ्चकारी अत्याचार किये गये। कइयों को जीवित अग्नि में जला दिया गया। कइयों के साथ अन्य घृणित अमानुषिक व्यवहार किये गये।

जब बाइबल में प्रत्यक्ष तथा अनुमान सिद्ध बातों का भी विरोधी वर्णन पाया गया, तब इस का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि बुद्धिमानों को बाइबल में श्रद्धा तथा विश्वास नहीं रहा। कोई भी पवित्र धार्मिक ग्रंथ चाहे वह वेद हो या बाइबल, भौतिक पदार्थों के स्वतः सिद्ध स्वाभाविक गुण आदि विषयक तथ्यों में परिवर्तन नहीं कर सकता। जैसे अग्नि का स्वतः सिद्ध स्वाभाविक गुण उष्णता तथा प्रकाश है यदि वेद में ऐसा कथन हो कि अग्नि ठण्डी तथा अन्धकारमय है तो यह कथन मानवीय बुद्धि को स्वीकृत नहीं हो सकता यदि वे ऐसी अनधिकार चेष्टा करें तो वे स्वयं ही अप्रमाणित हो जावेंगे।

वस्तुतः प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण के विषयों का ज्ञान प्राणीमात्र को बिना शिक्षा आदि के भी होता है। श्रुति का विषय इन प्रमाणों के विषयों से सर्वथा भिन्न तथा अपूर्व है। जैसे ऊपर श्रुति के प्रतिपाद्य विषय शीर्षक के अन्तर्गत वर्णन [illegible] गया है। हां! यदि श्रुति में कहीं पर प्रत्यक्ष [illegible] प्रमाणों से सिद्ध पदार्थों का वर्णन आता है तो उस[illegible] तात्पर्य केवल अनुवाद मात्र है न कि प्रमाण रूपे[illegible] अतः प्रत्यक्ष, अनुमान तथा वेद का स्वतन्त्र [illegible] क्षेत्र भिन्न २ है। वेद के अलौकिक कार्य क्षेत्र[illegible] अनुमान आदि सहायक होने से अनुग्राहक मात्र हैं।

प्रमाणों के परस्पर सम्बन्ध प्रायः चतुर्विध होते हैं। (१) प्राणप्रद (२) उपजीव्य (३) अनुग्राहक (४) पार्षद। अनुमान का श्रुति के साथ अनुग्राहक (सहायक) तथा पार्षद (सेवक) का द्विविध संबंध है। इन सब सम्बन्धों का विस्तृत वर्णन करने की यहां आवश्यकता नहीं।

प्रमाण निष्कर्ष

उपर्युक्त ऊहापोहात्मक विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि त्रिविध दुःख का अत्यन्तोच्छेद तथा अखण्ड अद्वयानन्द की नित्य प्राप्ति रूप प्राणीमात्र की स्वाभाविक इच्छा तथा लाभ में सब मतों का ऐक्य है। इसमें किसी को कोई आक्षेप करने का अवकाश नहीं है। परन्तु ऐसे विलक्षण तत्त्व की उपलब्धी में बाह्य इन्द्रियां तथा तर्क वितर्क वाली सामान्य बुद्धि सर्वथा असमर्थ है; इस विषय में उन लोगों के शोक मोह ग्रस्त, अप्रमेय चिन्ता तथा अपूर्णता युक्त दुःख मय जीवन ही जाज्वल्यमान प्रमाण हैं। ये लोग इन सामान्य इन्द्रियों आदि करणों के उपयोग में अपने आप को अत्यन्त विचक्षण मानते हैं और उन उन करणों द्वारा जो जो भोग सामग्री प्राप्त की जा सकती है उस सर्वविध सामग्री से वे सम्पन्न हैं। परन्तु इतने पर भी वास्तविक शान्ति तथा सुख उनसे कोसों दूर है नित्य नये नये दुःखों तथा तृष्णा का आघात पर आघात उन पर पड़ता रहता है।

मानव का मूल्य

श्री सुरेन्द्र शैलज

कोई बड़ा सा रेलवे स्टेशन था, नाम ध्यान नहीं, अपने एक सम्बन्धी को गाड़ी पर चढ़ाने आया था। मैंने उनसे विदा ली क्योंकि गार्ड सीटी बजा चुका था और हरी झण्डी हिलने लगी थी। गाड़ी ने एक हलका सा झटका दिया और दबी सी चूं चूं की ध्वनि के साथ सरकना आरम्भ किया। यह चूं चूं की आवाज़ कुछ ऐसी ही वेदनामय थी जैसे कोई थका हुआ व्यक्ति अपने घुटनों पर हाथ रख कर उठते समय करता है। मैंने जैसे ही बाहर जाने के लिये गाड़ी की ओर अपनी पीठ फेरी वैसे ही प्लेटफार्म पर एकाएक शोर उठ खड़ा हुआ, रोको-रोको गाड़ी रोको। आदमी गिर गया, जंजीर खींचो, और किसी ने जंजीर खींच दी। गाड़ी फिर उसी वेदनामय ध्वनि के साथ झटका दे कर खड़ी हो गई। प्लेटफार्म पर खड़े व्यक्ति दुर्घटना स्थल की ओर दौड़ पड़े। मैं भी दौड़ा, देखा हमारे नगर के एक प्रसिद्ध चोरबाज़ारू सेठ थे मेरी ही तरह अपने किसी सम्बन्धी को छोड़ने आये थे। गाड़ी ने जब चलने के लिए झटका दिया तो उस में असावधानी के कारण लपेट में आ गये और धड़ाम से आटे की बोरी की तरह प्लेटफार्म पर जा गिरे। निस्सन्देह उन का पैर कुछ इस तरह दुहरा हो गया था कि स्पष्ट था कि कोई हड्डु टूट गई है। यह निश्चित था कि सेठ जी को कुछ दिन के लिए यह पैर चोर बाज़ार की सैर न करा सकेगा। हल्ला बहुत था और भीड़ के बीच में सेठ जी अपने करारविन्द से पदारविन्द को पकड़े बैठे थे तथा रेलवे के भंगी से लेकर जनरल मैनेजर तक को गालियां सुना रहे थे। मैं उन्हें इसी तरह छोड़ कर घर चला आया।

इस घटना के लगभग छ महीने बाद सेठ जी से घूमने जाते समय भेंट हुई। उनके साथ एक दलाल था जिसके कारनामों से मैं परिचित था। सेठ जी लंगड़ा कर चल रहे थे मैं भी साथ हो लिया। दलाल और सेठ जी कुछ सीमेंट की बोरियों और लोहे के अनियमित सौदे के विषय में बातचीत कर रहे थे। मुझे यह सब बातें अच्छी नहीं लग रहीं थीं। निकले घर से घूमने के लिए, स्वास्थ्य लाभ के लिए और करने लगे बातें सीमेंट लोहे की और वह भी चोर बाज़ारी की, मुझे लंगडे सेठ और दलाल पर क्रोध आ रहा था मैंने बात बदलने के लिये पूछा.........

कहिये सेठ जी अब तो आपके पैर में दर्द नहीं होता।

दर्द तो नहीं होता पर कुछ झटका सदा को रह ही गया। सेठ जी ने उत्तर दिया। पर सालों को मैंने भी बता दिया किससे पाला पड़ा था।

क्यों क्या हुआ, मैंने ज़रा आश्चर्य से पूछा क्योंकि उस दिन की दुर्घटना के बाद आज ही मुझे सेठ जी के पैर के विषय में कुछ ज्ञात हुआ।

होता क्या, सेठ ज अपने लंगडे पैर को झटका देते हुए मुस्करा कर बोले। साले रेलवे वालों पर मैंने दावा कर दिया। छै हज़ार वसूल किये, सेठ जी संतोष की हंसी हंसने लगे मानो उन्होंने कोई बिज़नैस किया था जिसमें बड़े परिश्रम से छै हज़ार का मुनाफ़ा हुआ हो।

मैं अवाक था। एक चर्बी भरे बेडौल पैर के लिये जो घूम-घूम कर बाज़ारी घूसखोरी और भ्रष्टाचार बढ़ाने में सहायता करता था छै हज़ार रुपये और वह भी दावा करके अदालत द्वारा खुले आम डंके की चोट।

कलकत्ते के एक दैनिक समाचार पत्र में संक्षिप्त

समाचार के कालम में एक छोटा सा समाचार इस प्रकार था........

"आज प्रातः हावड़ा के ऊंचे पुल पर रंग करते समय एक मज़दूर गिर पड़ा नीचे गिरते ही उसकी मृत्यु हो गई"

जब जब मैं कलकत्ते जाता हूँ तो हावड़ा स्टेशन से बाहर निकलते ही लोहे के इस विशाल दानव के सम्मुख मेरा मन श्रद्धा मिश्रित भय से प्रभावित हो जाता है और मानव सामर्थ्य के विकाश की इस विशाल देन के सम्मुख आते ही मस्तक मानव बुद्धि के प्रति श्रद्धा से नत हो जाता है।

सुना है, देखा नहीं, राम के शिल्पकारों ने समुद्र पर सेतु रचना कर दी थी किन्तु मानव सभ्यता की उन्नति के पथ में मील के निशान के सदृश इस जीवित प्रमाण से कैसे इन्कार किया जा सकता है, इस विकास में मानव की बुद्धि और काया ने महत्वपूर्ण भाग लिया है। इन्जीनियर के कल्पनाशील मस्तिष्क से साहसी मज़दूर का भाग किसी प्रकार भी कम 'नहीं' जो उस कल्पना को सत्य का रूप देता है। जो मानव जाति को विकाश के पथ में एक कदम आगे बढ़ाता है।

पर क्या वो मज़दूर आज गिर कर मरा है मानव सभ्यता के विकाश में सहायक नहीं था? उसने अपने रक्त को पसीने के रूप में बहा सभ्यता के निर्माण में सहायता नहीं दी है? तो उसके जीवन का क्या मूल्य है उसके रक्त की क्या कीमत है हमने—जो पुल की विशालता मज़बूती और रंगीन चमक की प्रशंसा करते नहीं अघाते—उस मज़दूर के पसीने का क्या मूल्य चुकाया है जिसके लिये वह किसी अदालत में दावा नहीं कर सकता।

और उस मज़दूर के जीवन का मूल्य मुझे तब विदित हुआ जब मैंने दो दिन बाद उसी समाचार पत्र में पढ़ा कि पुल पर रंगाई करने वाली कम्पनी ने मृत मज़दूर के परिवार को सौ रुपये की सहायता दी है।

मेरे मानस पट पर धीरे धीरे अंकित होने लगे दो तथ्य ....

एक भ्रष्टाचार में सहायक पैर का मूल्य ६०००)

एक मानव विकास में सहायक जीवन का मूल्य १००)

मनुष्य सांपों को भी खाता है

श्री रमेश बेदी

...ण्डी के मन्दिर की ओर भक्तों की भीड़ चली जा ...थी जिसमें बहुत सी श्रद्धालु हिंदू देवियां, उन्हीं की तरह के कुछ आदमी और मुझ जैसे कुछ जिज्ञासु थे। अधेड़ उम्र के काले से रंग के एक दिगम्बर ने इतने लोगों को जो दूर-दूर से खींच लिया है, उस में कुछ खूबी होनी ही चाहिए। 'कष्ट सहनं तपः' यदि तपस्या की सही व्याख्या है तो उसका कृश बदन साक्षी था कि धूप, बारिश और ठण्ड से हार न मानने में उसने शरीर की अमूल्य शक्तियों को निछावर कर दिया था। कौतुकपूर्ण इस अवधूत को अघोरी कहते हैं। देखने में तो यह सामान्य लोगों से बहुत भिन्न नहीं दीखता परन्तु इस के काम निश्चय ही असाधारण हैं। आदमी की खोपड़ी को अघोरी ने कटोरा बनाया हुआ था। मनुष्य के ताज़े मल को उसने कटोरे में लिया, थोड़ा सा मूत्र मिलाया, तर्जनी अंगुली से अच्छी तरह मिला कर सब लोगों के देखते-देखते वह उसे रबड़ी की तरह पी गया। खोपड़ी में पुते रह गये मल को भी जीभ से चाट कर उसने साफ़ कर दिया। ये थे अघोरी बाबा!

सांप खाने का प्रदर्शन

इस से मिलते जुलते एक प्रदर्शन को देखने का अवसर भी अनेक पाठकों को हुआ होगा, जिस में मैले कपड़ों में एक अभागा स्टेज पर आता है। थैले में से वह लपलपाती जीभ वाले एक लम्बे जीव को निकालता है। थियेटर हाल की हज़ारों चौकन्नी आंखें सन्नाटे में उसे देख रही हैं। डेढ़-दो फ़ीट लम्बे उस जीव को वह पूंछ से पकड़ कर अपने सिर की ऊंचाई से ज़रा ऊपर उठा लेता है। लम्बे, चिकने शरीर के सिरे से बारबार बाहर निकलती हुई दो जीभें और छुटकारा पाने की कोशिशों में सरीसृप का तड़फड़ाना दर्शकों को और भी भयभीत कर देता है। खेल दिखाने वाले ने अब अपना मुख खोल लिया है। सांप के मुख को वह अपने मुख के पास ले आया है। छूटने की कोशिशों में सहारा लेने के लिए सरीसृप ने ज्यों ही अपना मुंह खुले हुए मुख में टिकाया वह उसी क्षण चबा लिया जाता है। कचर-कचर की सी आवाज़ के अन्दर उस की मज़बूत दाढ़ें सांप की उभरी हुई आंखों और खाल तथा हड्डियों तक को चबा जाती हैं।

सांप भोज्य पदार्थ है

इस साहसपूर्ण प्रदर्शन को देखते हुए पाठकों को घृणा और भय की अभिभूति हुई होगी। ये दोनों प्रदर्शन वस्तुतः असाधारण घटनाएं हैं। परन्तु कुछ जातियों में सांप बाकायदा भोजन का अंग बन गये हैं यह असाधारण बात नहीं है। उदरपूर्ति के लिए स्वादु प्लेटों को तय्यार करने में उन देशों में सांपों का बहुत मूल्य होता है। अकेले टोकियोमें करीब हज़ार सांप रोज़ खप जाते होंगे। सिर काट कर फेंक दिया जाता है और खाल उतार कर मांस पका लिया जाता है।

इस लेख के लेखक

चर्बी से घी

सांपों के शरीर से लगभग पचास प्रतिशतक तक चरबी प्राप्त की जाती है। यह भी कहा जाता है कि

भारत के कुछ हिस्सों में इस चरबी से घी बनाया जाता है। एक बड़े अजगर से पन्द्रह-बीस सेर तक घी निकल आता है।

ग़रीबों का सहारा

इटली के कुछ हिस्सों में बहुत से ग़रीब लोग सांप खा कर निर्वाह करते हैं, और इसे वे ईल की तरह बढ़िया चीज़ समझते हैं। दक्षिणीय फ्रांस में बहुतेरे लोगों का भोजन मण्डली सांप है। कैसल की नेचुरल हिस्ट्री के एक रोचक लेख में अमेरीका में घूमते हुए एक यात्री का उल्लेख है। उसी प्रदेश में घूमते हुए यात्रियों के एक दल से परोसे गये थाल के सामने वह भोजन करने बैठा। उस विशेष भोजन का नाम 'म्यूज़िकल जैक' था। वह कर्कर सांप (रैटल स्नेक) से तैयार किया गया था। इसे वे बड़ी लज़ीज़ चीज़ समझते थे। इस का स्वाद चूज़े की तरह कहा जाता था। हार्टविग (दि ट्रॉपकल) वर्ल्ड, पृष्ठ ३१६) ने भी लिखा है कि अमेरीकन इण्डियन्स दावतों में प्रायः कर्कर सांप को परोसते हैं।

आस्ट्रेलिया में

आस्ट्रेलिया पर लिखी एक पुस्तक में सर टी. मिचेल लिखते हैं कि उन्होंने स्वयं एक बार बोआ कन्स्ट्रिक्टर सांप का स्वाद लिया है। वे इसे अत्यधिक सफेद, मज़बूत और बछड़े के मांस के सदृश बताते हैं। आस्ट्रेलिया के आदिम निवासियों को उन्होंने बहुधा सांप खाते देखा है। बुकलैण्ड (क्युरिऑसिटीज़ ऑफ़ नेचुरल हिस्ट्री, फ़र्स्ट सीरीज़, पृष्ठ १०२) ने भी इस बात की पुष्टि की है— 'ग़रीब बुशमेन और आस्ट्रलिया के मूल निवासियों में सांप खाने की प्रथा आम है।'

अजगर सब जगह खाया जाता है

अजगर का मांस नरम और स्वादु होता है। दूसरे सांपों की तरह इसे भी बर्मी चाव से खाते हैं और केरन लोगों में यह बहुत पसन्द किया जाता है। ति... (कैटेलौग ऑफ़ स्नेक्स ऑफ़ ब्रिटिश बर्मा, पृष्ठ ...) ने भी लिखा है कि कैरन अजगर के 'मांस को ... जाते हैं और वास्तव में यह सफ़ेद और लुभाने ... दीखता है।' इवान्स ने अपनी यात्रा में एक अ... को मारा था। शाम को लौटते हुए उस ने देखा ... बर्मियों ने उसे पका डाला है। कर्नल एच. युले के अनुसार अजगर सांप लङ्कावासियों का अत्यन्त प्रिय आहार है। त्रावनकोर में पहाड़ी लोग अजगर और उस के अण्डों को भी खा जाते हैं। चीनी, दूसरे बहुत से सांपों की तरह, अजगर भी खाते हैं। हाँगकाँग में इस का नाम 'होआङ् जो' है, जिस का अर्थ 'सुरभीवान सांप है। मार्को पोलो (बुक २, अध्याय XLIX, पृष्ठ ७६-७८) ने कराज़ान (दक्षिणी चीन में मिलने वाले बड़े-बड़े सांपों का वर्णन करते हुए बताया है कि शिकारी 'इस सांप का मांस बेच देते हैं। खाने में यह अच्छा स्वादु लगता है। लोग इस के बहुत शौकीन हैं।' गाइना निवासियों में केवल चीनी बोआ कन्स्ट्रिक्टर के मांस को खाने में उपयोग करते हैं। अफ्रीका में बकलहारी और बुशमेन अजगर के मांस को बहुत लज़ीज़ समझते हैं। जब कोई अजगर मार लिया जाता है तो बांटने के लिए उस के टुकड़े कर डाले जाते हैं। हरेक आदमी अपने हिस्से को कन्धे पर लाद कर इस तरह ले जाता है जैसे लकड़ी का लट्ठा ले जा रहा हो। जेम्स चैपमैन (चैपमैन्स ट्रैवल्स, पृष्ठ १६२) उत्तर बेचुएनलैण्ड में मारे गये एक बोआ का उल्लेख करते हैं जिस के पेट में खरगोश निकला था। उन के साथ के बुशमेनों ने न केवल खरगोश को खाया परन्तु वे सांप को भी हड़प कर गये। सी. जे. एण्डरसन (लेक उगामी, पृष्ठ ४५२) उगामी झील के पास दलदलों में रहने वाले बड़े सांपों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि वहां के निवासी उन्हें अक्सर मार डालते हैं और बड़े चाव से खा जाते हैं।

शेषनाग भी उत्तम आहार

बहुत से दूसरे सांप विभिन्न जातियों के आहार शामिल हो गये हैं। कैरन शेषनाग (किंग कोबरा) सांप को भी नहीं छोड़ते और इसे बढ़िया मांस खाते हैं। अण्डेमन के लोग भी शेषनाग को खाते हैं। पाठकों को मालूम होगा कि यह सांप दुनियां में सबसे अधिक विषैला सांप है और इससे डसा गया आदमी बीस-पच्चीस मिनिट में ही मर जाता है।

भारत में सांपों का आहार

रिचर्डसन के अनुसार छोटा नागपुर के सन्थाल और ढांगर सर्पभोजी हैं। कोल लोगों के प्रीतिभोजों में सांपों का ऊंचा स्थान होता है। अवध और रुहेलखण्ड के कंजर सांप को, सिर और गुदा से नीचे का हिस्सा अलग करके खा जाते हैं।

धामन शौक से खाया जाता है

भारत की बहुत सी स्त्री जातियों के भोजनों में धामन सांप (जैमिनिस म्यूकोसस) आ गया है। बंगलौर में कैप्टन वाल को ठिगाला जाति के एक तामिल ने बताया कि उस की जाति के लोग भोजन और दवाओं के लिए दूसरे सब सांपों को हेय समझते हैं, लेकिन धामन के मांस को बड़े शौक से खाते हैं। पकाने पर यह सफ़ेद और मछली के सदृश होता है। इस के स्वाद और रूप की तुलना वह चूज़े से करता था। शरीर को क्षीण करने वाली बीमारियों में इस की ख्याति प्रतीत होती है। बर्मी और कैरन इसे बहुत लोलुपता से खाते हैं।

अनेक देशों में प्रायः सब सांप खाये जाते हैं

अफ्रीका के बेपी कबीले एक प्रकार के निरापद जलीय सांप को खा जाते हैं। ताहीती एक समुद्रीय सांप (हाइड्रस प्लैटुरस) को खा लेते हैं। न्यूगिनी, मलका प्रायद्वीप और ओताहित में भी यह सांप आहार का द्रव्य है। अण्डेमन के निवासी अपने भोजनों में समुद्रीय सांपों को भी सम्मिलित करते हैं। पश्चिमीय ब्राज़ील में बसने वाली जंगली जातियां वोटोकड, पुरी और कैरोडो दूसरे जानवरों के साथ-साथ सांप भी खाती हैं। केलिफ़ोर्निया के लोगों की खुराक के बारे में लिखते हुए कैम्पवेल बताते हैं कि वे स्तनपोषितों और पक्षियों की अपेक्षा सरीसृपों, कीड़ों तथा गिण्डोलों को अधिक पसन्द करते हैं और कर्कर सांप के सिवाय सब सांपों को चट कर जाते हैं। [कॉपी राइट—हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट।]

संस्कृत भाषा का व्याकरण

श्री गंगाप्रसाद एम. ए.

[ये विचार लेखक के अपने हैं। इस विषय पर अन्य विद्वानों के विचार भी प्रकाशित कि[ये] जा सकते हैं। —सम्पादक।]

हिन्दी राष्ट्र भाषा हो जाने से संस्कृत भाषा की बहुत उन्नति होगी, क्योंकि बिना संस्कृत की कुछ शिक्षा पाये कोई मनुष्य हिन्दी का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो नहीं कर सकता। इस लिये सब यूनिवर्सिटियों में संस्कृत अनिवार्य कर दी गई है। भारत स्थित मुसलिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ व उसमानिया यूनि-वर्सिटी हैदराबाद का तो क्या कहना, अफगानिस्तान यूनिवर्सिटी में भी संस्कृत शिक्षा अनिवार्य हो गई है।

ऋषि दयानन्द ने बहुत पहले संस्कृत शिक्षा को बढ़ाने के अभिप्राय से कुछ पत्र व लेख लिखे थे जो उनके पत्र-संग्रह में छप चुके हैं। उनके आदेश के अनुसार आर्यसमाजियों ने संस्कृत के पठन पाठन को बढ़ाने का समुचित यत्न किया। अब जो हिन्दू लोग आर्यसमाजी नहीं वे भी संस्कृत सीखने के लिये उत्सुक हैं। परन्तु लोगों की कुछ ऐसी धारणा है कि संस्कृत भाषा और विशेषकर संस्कृत व्याकरण बहुत कठिन है। कुछ अंश में यह ठीक भी है। जिन लोगों ने कुछ फार्सी भाषा को पढ़ा है वे जानते होंगे कि संस्कृत की अपेक्षा फार्सी भाषा व व्याकरण बहुत सुगम है। परन्तु संस्कृत व्याकरण भी सरल की जा सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि उसको सरल बनाया जाय। हाल में आगरा नगर में एक संस्कृत सम्मेलन हुआ था जिसमें नेताओं ने इस विचार को माना था और शायद एक सभा व समिति भी इस कार्य के लिये बनाई गई थी।

संस्कृत व्याकरण को सरल करने के कुछ उपाय नीचे लिखे जाते हैं।

सन्धि संस्कृत की एक मुख्य विशेषता है।

अर्थात् एक अक्षर के आगे दूसरा अक्षर आता है तो बहुधा सन्धि होकर दोनों के या एक के रूप में कुछ परिवर्तन होजाता है जिसके कुछ नियम हैं। जब तक उस सन्धि का विश्लेषण न हो तब तक सन्धि वाले शब्द समझ में नहीं आते। संस्कृत के विद्यार्थी को प्रारम्भ ही में यह बड़ी कठिनाई प्रतीत होती है। इस को दूर करने का यह सीधा उपाय है कि सन्धि करना आवश्यक न समझा जाय। सन्धि के नियम तो सब विद्यार्थियों को अवश्य पढ़ने होंगे,—और सन्धि के लगभग वैसे ही नियम हिन्दी भाषा में भी हैं। परन्तु हिन्दी भाषा में शब्द इस प्रकार जोड़े नहीं जाते और न हिन्दी में इस प्रकार पदच्छेद करने की आवश्यकता होती है। प्राचीन या वर्तमान पुस्तकों को पढ़ने में सन्धी के नियमों को जानना आवश्यक होगा परन्तु नवीन पुस्तकों व लेखों में सन्धि करना अनिवार्य न रहे। नवीन विद्यार्थी जहां सन्धि करना चाहें करें जहां न करना चाहें वहां न करें, अशुद्धि न मानी जाय। इसमें नये विद्यार्थियों को संस्कृत बोलना वा लिखना बहुत सुगम हो जायगा।

संस्कृत भाषा की एक यह भी विशेषता है कि उस में तीन वचन हैं।

अर्थात् एक वचन, द्विवचन और बहुवचन, सरल

...ा एक यह उपाय है कि द्विवचन छोड़ दिया ... और उसका काम बहुवचन से लिया जाय। ...से सुबन्त (संज्ञा) व तिङन्त (क्रिया) दोनों ... के पदों की रूपावली सरल हो जायगी, अर्थात् ... शब्दों के रूप दो तिहाई रह जायेंगे। विद्यार्थियों ... प्रारम्भ में तीनों वचन पढ़ने होंगे पर कण्ठस्थ करना केवल एक वचन और बहुवचन का ही पर्याप्त होगा। एक तिहाई परिश्रम कम हो जायगा।

प्राकृत भाषा में भी दो ही वचन हैं जिससे हिन्दी, बंगला, मरहटी आदि भाषा निकली हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जब तक संस्कृत जीवित अवस्था में सुशिक्षित लोगों में शुद्ध रूप से बोली जाती थी पर साधारण लोग प्राकृत अपभ्रंश वा अशुद्ध रूप में बोलते थे तब भी प्राकृत में तीन वचन नहीं थे।

जब संस्कृत व प्राकृत के स्थान में वर्तमान प्रान्तीय भाषायें बनीं तो उन सब में केवल दो वचन ही रहे।

योरुप की प्राचीन भाषाओं में भी (जिनका संस्कृत भाषा से बहुत मेल है) संस्कृत के समान तीन वचन थे। पुरानी ग्रीक, लैटिन, ऐं० सैक्सन आदि में द्विवचन Dual है। पर जब उनके स्थान में नवीन भाषाएँ (यूनानी, रोमन, फ्रेंच अँग्रेजी आदि) बनीं तो किसी भाषा में भी द्विवचन नहीं रहा, केवल दो वचन रहे, जैसा कि भारत की वर्तमान प्रादेशिक भाषा हिन्दी आदि में है।

संस्कृत भाषा में काल Tense को भी सरल करने की आवश्यकता है।

१० लकार हैं जो क्रिया के काल को सूचित करते हैं। उनमें केवल ५ लकार रखने से साधारण रीति से काम चल सकता है, अर्थात् लट (वर्तमान काल Present Tense), लिट (भूत काल Past Tense, लृट् (भविष्य काल Future Tense), लोट (आज्ञा सूचक Imperative mood) और विधि लिङ्ग (अर्थात् आदेश सूचक Optative mood)।

लिंग (Sex) का विषय भी संस्कृत में कुछ कठिन है।

लिङ्ग अधिकतया व्याकरण के अन्य नियमों के आधार पर बनता है। कुछ शब्द विचित्र हैं, जैसे गृहा, लज्जा, पत्नी वा स्त्री के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। परन्तु हैं पुलिङ्ग (Mesculine)। लिङ्ग का विषय हिन्दी भाषा में भी बहुत जटिल है। जिनकी मातृ भाषा हिन्दी ही है वे तो अभ्यास से शब्दों के माने हुए रूप को ठीक मान लेते हैं। परन्तु जिनकी मातृ भाषा हिन्दी नहीं (जैसे बगाली, वा दक्षिणी) उन को हिन्दी भाषा के बहुत से शब्दों के लिङ्ग अनोखे व युक्तिहीन ही प्रतीत होते हैं उदाहरण के लिये मेज़ व कुर्सी स्त्रीलिंग हैं, स्टूल पुलिङ्ग है; कुर्ता पुलिङ्ग है, जाकट स्त्रीलिंग है, पुस्तक स्त्रीलिंग है (यद्यपि यह शब्द संस्कृत का है और नपुंसक लिंग है, हिन्दी में पुलिंग होना चाहिये था), और पत्र व कागज़ पुलिंग, आत्मा स्त्रीलिंग है (यह भी संस्कृत में पुलिंग है और हिन्दी में भी पुलिंग होना चाहिये था), शरीर पुलिंग है, इत्यादि। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संचालक विद्वान हिन्दी भाषा के लिंग विषय में संशोधन व परिवर्तन करने में यत्नवान् हैं।

मैंने ये कुछ सुझाव विद्वानों के विचारार्थ रक्खे हैं। आशा है संस्कृत के अन्य विद्वान् (विशेषकर गुरुकुल व संस्कृत विद्यालयों के अध्यापक), अपने अनुभव से संस्कृत को सरल बनाने के अन्य उपाय भी सोचेंगे जिससे संस्कृत के शिक्षार्थियों का मार्ग सुगम हो जाय।

गुरुकुल कांगड़ी और राष्ट्रीय सरकार

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति, कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय।

लगभग ४० वर्ष पहले की बात है कि अंग्रेजी सरकार के बड़े-बड़े अफसरों ने गुरुकुल कांगड़ी में जाने का काम जारी किया था। उस से पहले गुरुकुल सरकार की दृष्टि से दो युगों में से गुजर चुका था। प्रारम्भ के कुछ वर्षों तक सरकार ने यह समझ कर गुरुकुल की उपेक्षा की कि यह एक छोटी पाठशाला है, जैसे देश में और बहुत सी अन्य पाठशालायें हैं। थोड़े से वर्षों में ही सरकार को और सर्वसाधारण को भी अनुभव होने लगा कि वह केवल एक नई पाठशाला नहीं है, प्रत्युत शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न करने वाली एक अनूठी संस्था है, जो आग की चिनगारी की तरह सारे वन में फैल जाने की शक्ति रखती है। विदेशी सरकार क्रान्ति से बहुत डरती थी। जब उस ने अनुभव किया कि गुरुकुल कांगड़ी शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति पैदा करने वाली संस्था है, तो वह घबरा उठी और गुरुकुल के दमन का यत्न करने लगी।

कुछ वर्षों तक सरकार ने गुरुकुल को दबाने का यत्न जारी रखा, परन्तु उस से कोई लाभ न हुआ। दबने की जगह गुरुकुल की लोकप्रियता बढ़ती ही गई। यह देख कर सरकार के ऊंचे अधिकारियों ने अपना रुख बदला और दमन के मार्ग को छोड़ कर गुरुकुल के प्रति साम और दाम की नीति का आश्रय लिया। यू. पी. के उस समय के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सरजेम्स मेस्टन एक से अधिक बार गुरुकुल में आये, और उन्हीं की प्रेरणा से उस समय के वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने भी गुरुकुल की यात्रा की। उस यात्रा के प्रसंग में बात चीत के सिलसिले में वायसराय की ओर से उस समय के आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता महात्मा श्री मुन्शीराम जी को यह इशारा दिया गया कि यदि गुरुकुल के संचालक चाहें तो उन्हें सर[कार] की ओर से एक लाख रुपये की वार्षिक ग्रांट के अ[ति]रिक्त अंजनी का जंगल भी दिया जा सकता है। महात्म[ा] जी ने उस उदारता भरे संदेश को मछली पकड़ने का एक जाल समझा और उस में फंसने से इन्कार

इस लेख के लेखक

कर दिया। उस के पश्चात् अंग्रेजी सरकार की ओर से गुरुकुल के साथ उपेक्षा का व्यवहार होता रहा जब राष्ट्रीय आन्दोलन अधिक उग्र हो गया, और गुरुकुल के ब्रह्मचारी तथा अध्यापक उस में भाग लेकर जेलों में जाने लगे, तब नौकरशाही सरकार का रुख फिर बदला और गुरुकुल पर तरह-तरह की कठोरतायें होने लगी। गुरुकुल के संचालकों ने प्रारम्भ काल की उपेक्षा और मध्यकाल की कृपा की भांति आन्दोलन काल के दमन और अत्याचारों को भी शान्तिपूर्वक सहन किया।

...त्येक रात्रि के पश्चात् प्रभात आता है और ... भारत के अन्तरिक्ष में दासता के अन्धकार ... छिन्नभिन्न करके स्वाधीनता के सूर्य का उदय ...। गत ५० वर्षों में गुरुकुल कांगड़ी के अति- ... अन्य भी अनेक संस्थायें विशुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण ... शिक्षा देने के लिये बनाई गई परन्तु उन में से बहुत ही कम जीवित रह सकी। जो जीवित रह सकी वह भी नौकरशाही सरकार से थोड़ा बहुत सहयोग प्राप्त करके। गुरुकुल एक ऐसी संस्था थी जिसने नौकरशाही सरकार से कोई सहयोग प्राप्त नहीं किया और जीवित बच गई।

१९४७ के शुभ वर्ष में भारत में स्वाधीनता शासन का अवतरण हुआ। स्वाधीनता के इस नये युग में गुरुकुल का दृष्टिकोण भी नया हो गया। अब उस की दृष्टि में सरकार से सहायता प्राप्त करना कोई अपराध नहीं रहा, जब सरकार अपनी है, तो उससे सहयोग और सहायता लेना न केवल इतना ही कि बुरा नहीं, वह तो आवश्यक है। कोई भी सांस्कृतिक संस्था राजसहायता के बिना यथेष्ठ उन्नति नहीं कर सकती गुरुकुल को यदि भारत की प्राचीन तक्षशिला और नालिन्दा के विद्यालयों की भांति एक महती संस्था बनना है तो उसके लिये राष्ट्रीय सरकार से सहायता प्राप्त करना अनिवार्य है इस विचार से गुरुकुल के संचालकों ने राष्ट्रीय सरकार से सहायता की मांग की और मैं सन्तोष पूर्वक कह सकता हूँ कि वह प्राप्त हुई। उत्तर प्रदेश की सरकार ने न कोई विलम्ब किया और न संकोच। जैसे किसान अपनी खेती को सींचने के लिए समय पर पानी देता है, उत्तर प्रदेश की सरकार ने उसी तरह गुरुकुल की और सहायता का हाथ बढ़ा कर अपनी सहृदयता का परिचय दिया है और निरन्तर दे रही है। देश के पंजाब, बिहार, मध्यप्रदेश, बम्बई आदि प्रान्तों की सरकारों ने भी गुरुकुल की विद्यालङ्कार उपाधि को अन्य विश्वविद्यालयों की बी. ए. उपाधि के समान अंगीकार करके गुरुकुल के प्रति आत्मीयता दिखाई है।

जहां स्वराज्य की स्थापना के प्रारम्भ से ही प्रान्तों की सरकारों को ओर से गुरुकुल के प्रति नैसर्गिक आत्मीयता का प्रदर्शन किया जाता रहा है। वहां अब तक इस बात पर थोड़ी बहुत मानसिक बेचैनी रही है कि केन्द्रीय सरकार ने गुरुकुल के प्रति आत्मीयता की भावना को स्थूल रूप से प्रकाशित नहीं किया। स्वभावतः सरकार की मशीन भारी होती है। वह किसी काम के लिये आसानी से नहीं चलती। सम्भव है इसी कारण अब तक केन्द्रिय सरकार का ध्यान गुरुकुल की ओर आकर्षित नहीं हो सका था, लेकिन स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर भारत सरकार के लोकप्रिय राष्ट्रपति श्री डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी पधारे थे, और दीक्षान्त भाषण देते समय कहा था "आप का गुरुकुल एक प्राचीन ढंग पर चलने वाला नये प्रकार का विद्यालय रहा है। जब सारे देश में अंग्रेजी का बोल बाला था, और सभी विद्यालयों में अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही शिक्षा दी जा रही थी, आप के दूरदर्शी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने हिन्दी माध्यम द्वारा उच्च कोटि की शिक्षा देने का निश्चय किया और इस संस्था को आज से ५० वर्ष पूर्व स्थापित किया इतने वर्षों के प्रयोग से यह प्रमाणित हो गया कि उच्च कोटि की शिक्षा भी हिन्दी माध्यम द्वारा दी जा सकती है। और जो विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं वह दूसरे विद्यालयों में जहां अंग्रेजी माध्यम है। शिक्षा पाये हुये विद्यालयों से किसी बात में भी कम नहीं हैं। आप की दूसरी विशेषता यह रही है कि आप ने गुरुकुल की प्राचीन प्रथा को पुनर्जीवित किया। अन्त में उन्होंने कहा कि स्वाधीनता प्राप्ति से पहले गुरुकुल कांगड़ी ने तत्कालीन सरकार से असहयोग कर रक्खा था, लेकिन आज तो सरकार ही अपनी है। इस लिये गुरुकुल और सरकार के बीच सहयोग स्थापित हो

जाना चाहिए। मौजूदा सरकार भी गुरुकुल को अपना ही समझती है। अतः गुरुकुल को सरकारी शिक्षण व्यवस्था का अंग बन जाना चाहिए, मगर किसी भी देश के निर्माण में स्वतन्त्र शिक्षण संस्थाओं का अपना एक विशिष्ट स्थान हुआ करता है। ऐसी संस्थाएँ शिक्षा में क्रान्ति कर सकती है। इस अवस्था में यदि गुरुकुल कांगड़ी अपना पृथक् अस्तित्व बनाए रखना चाहेगा तो सरकार को कोई आपत्ति न होगी। सरकार उसे सब प्रकार की सहायता देती रहेगी।

गुरुकुल कांगड़ी के संचालकों ने ५० व[र्ष] स्वाधीनता के आश्रम में घोर तपस्या की है। उस[का] फल वह सिवाय इस के कुछ नहीं चाहते कि [केन्द्र] और राष्ट्र की सरकार मिल कर उन्हें गुरुकुल कां[गड़ी] को भारत की प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति [का] सर्वोत्कृष्ट शिक्षण केन्द्र बनाने में सहायता दे औ[र] हमारी ३० लाख रुपये की अपील जिसमें अभी तक केवल ४½ लाख रुपया गुरुकुल को प्राप्त हुआ है। उस की शेष धन राशि को इस बार पूरा कराने में सहायता और सहयोग दें।

'दांती तृण धरणे' लोकोक्ति का ऐतिहासिक विवेचन

प्रोफ़ेसर पी. के. गोडे, एम. ए. ।

भारतवर्ष के इतिहास में भारतीय लोकोक्तियों का ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन एक उपेक्षित विषय रहा है। इन लोकोक्तियों के कोषों पर दृष्टि-पात करने पर इतिहास के विद्यार्थी को इनके ऐतिहासिक अध्ययन की आवश्यकता अवश्य अनुभव होगी। आज कल इन लोकोक्तियों के काल्पनिक समाधान देने की जो परम्परा प्रचलित हो गई है उसका निराकरण करने का एकमात्र उचित उपाय उनका ऐतिहासिक पद्धति से अध्ययन करना ही है।

मैं आज पाठकों के सन्मुख एक सुप्रसिद्ध महाराष्ट्रीय लोकोक्ति—"दांती तृण धरणे"—के विषय में कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयत्न करूंगा। प्रो. मोलसवर्थ ने अपने मरहाठी इंग्लिश कोष (पृष्ठ ४०८) में इस लोकोक्ति के निम्न अर्थ दिये हैं—"किसी के सम्मुख झुक जाना, वशंवदता स्वीकार करना, आत्मसमर्पण करना।, प्रो. मोलसवर्थ ने अपने कोष में इस कहावत के प्रयोग उद्धृत नहीं किये। नाहीं कर्वे तथा दाते ने अपने शब्दकोष में (१९३५) के पृष्ठ १५५५ में इस लोकोक्ति का कोई प्रयोग दिया। इस लिये यह कहना कठिन है कि महाराष्ट्र साहित्य में कब से इस लोकोक्ति का प्रचलन हुआ।[१]

बम्बई के "सन्डे क्रानिकल" पत्र के २४ दिसम्बर १९३९ के अंक में "टीपू सुलतान के 'दरया दौलत' तथा उस के अस्तरकारी के चित्र" पर एक लेख प्रकाशित हुआ था। इन में से एक अस्तरकारी के चित्र में एक युद्ध का दृश्य चित्रित हैं। इस में कर्नल बेली को मुंह में तृण धारण किये हुए चित्रित किया गया है। उक्त पत्र के लेखक ने इसे आत्मसमर्पण का चिन्ह बताया है। यहां उक्त मराठी लोकोक्ति के चित्रमय प्रदर्शन मे सिद्ध होता है कि यह लोकोक्ति १७९९ से पूर्व भी प्रचलित थी। चितराव शास्त्री ने अपने "मध्ययुगीन चरित्रकोष" में टीपू विषयक (१७५३—१७९९ सन्) लेख में इस चित्र का उल्लेख किया है। "दरया दौलत" टीपू सुलतान के कावेरी नदी के तट पर लालबाग तथा किले के बीच में अवस्थित एक राजप्रासाद का नाम था।

सन् १९२५ में हुबली से श्री. रमा वल्लभदास 'तुकोपन्त' रचित चमत्कारी गीता नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जिस की भूमिका (पृष्ठ ३) में इस ग्रन्थ का रचनाकाल १६३३—१६३६ सन् बताया गया है। इस ग्रन्थ के ५ वें पृष्ठ पर १६२७ सन् में, जबकि तुकोपन्त लगभग १८ वर्ष के थे, देवगिरि दुर्ग पर आक्रमण किये जाने का वर्णन है। इस वर्णन में[२] लेखक ने 'अधीर दांती तृण धरनी' के आत्मसमर्पण करने का वर्णन करते हुए लिखा है—"पुर्तगालियों ने टोप उतारे और मुंह में तिनका रखते हुए पेशवा के प्रति आत्मसमर्पण किया।"

(१) य. र. दाते C. R. कर्वे कृत मराठी लोकोक्तियों के कोष (महाराष्ट्र वाक्य प्रदाय कोष) के १९४२ के १ म भाग के ६४३ पृष्ठ पर मुख में तृण रखने की प्रथा तथा लोकोक्ति का निम्न वाक्य प्रयोग से स्पष्टीकरण किया है— "आणि ते टोप्या काढून दांती तृण धरून श्रीमन्त अप्पा साहेबाना शरण आले"

इस वाक्य में सन् १९३९ में बसीन पर कब्जा हो जाने पर पुर्तगालियों द्वारा पेशवा अप्पा साहब

(२) यह वर्णन इस प्रकार है—

धीर ने 'वीर भोद्म' पावनी। अधीर दांतीं तृण धरनी। 'कोणी अश्व सांडूनी पडती। कोणी भागती जीवदान।

लोकोक्ति का आत्मसमर्पण अर्थ में प्रयोग किया है। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि उक्त महाराष्ट्र लोकोक्ति ३५० वर्ष से भी पूर्व प्रचलित थी।

श्री के. एन. साने द्वारा सम्पादित १६१८ के 'सभासद् बाखर' नामक महाराष्ट्र पत्र में उक्त कहावत के निम्न उद्धरण पाते हैं।

"भांड ते लोकांनी तोडी तृण धरून शरण आले"
—पृष्ठ २४

"राम वागीण कोड ली तिने दांतीं तृण धरून"।
—पृष्ठ ६५

इस घटना का समय लगभग १६६५ सन् है। वेंकटाध्वरी कृत विश्वगुणादर्शचम्पू-जिसका समय लगभग १६५० है—में आन्ध्र देश का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है—

युद्धाय प्रमिसन्तु हन्ते परवो योधाः सहस्राधिकाः
यद्येको ऽपि बलात्तुरुष्क यवनेष्वारूढघोढो भटः।
निस्त्रिंशं परिकम्पयन् स्वकान्निष्क्रामति क्रोधनः
सर्वे ते कृपणास्तृणान्यशरणाः खादन्ती च ॥ १६ ॥

इस श्लोक के चतुर्थ पाद में उल्लिखित लोकोक्ति की व्याख्या करता हुआ टीकाकार लिखता है।

"तृण भक्षकान् बल्मीकारूढांश्च वीरास्त्यजन्ति इति प्रसिद्धेः"।

अर्थात् यह प्रसिद्ध है कि योद्धा लोग [...] तिनका रखने वाले तथा वल्मीक पर चढ़े हुए सै[...] का पीछा नहीं करते।

रुद्र कवि 'राष्ट्रौढ़ वंश महाकाव्य (ग्यालि[...] ओरियन्टल सीरीज़ बड़ौदा १६१७ पृष्ठ ७१) नाम[...] अपने काव्य में बागलाण के राजा द्वारा जवाह[र] (बम्बई प्रान्त) के राजा के पराजय का वर्णन कर[ते] हुए लिखता है—"मुखे तृणं कण्ठतटे कुठारं"[3] अर्थात् मुख में तिनका तथा गर्दन पर शत्रु [के] कुठार रखकर उपस्थित हुआ। इस वर्णन में कवि ने जवाहर के राजा का बागलाण के राजा के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण दर्शाया है। रुद्र कवि ने यह महा-काव्य १५६६ में रचा था।

सम्राट् बाबर ने अपने संस्मरण ग्रन्थ में (डब्लु[...] एरस्किन द्वारा १८२६ सन् में अनूदित) १५०० ईस्वी में अफगानिस्तान में आत्मसमर्पण प्रकट करने के लिए मुख में तिनका रखने की प्रथा का उल्लेख किया है। वह लिखता है- "जब अफगान लोग युद्ध में विजय की आशा छोड़ बैठते हैं तो मुख में तिनका धारण किये हुए अपने शत्रु के सम्मुख उपस्थित होते हैं। इस से उनका तात्पर्य यह होता है कि मैं आप का बैल हूं- सेवक हूँ।[4] यह प्रथा सब से पहले मैंने इस युद्ध के अवसर पर देखी। जब अफगान लोग युद्ध में हमारे सामने ठहर नहीं सके, वे मुख में तिनका धारण किये मेरे सन्मुख उपस्थित हुए। जो लोग

कोणी शस्त्रास्त्र त्यजिनी। दीनत्वे पाया लागनी। कोणी धायाड कुंथिनी। प्राण सोडिती भये कोणी। देखतां शस्त्रांचा लखलखाट। आणि अस्त्रां चा सणसणात। आणि यन्त्राचा धडधडात। भये पोटे फुगली कोणा।

इस वर्णन में 'यन्त्राचा धडधडाट' का तात्पर्य तोपों की गड़गड़ाहट से है। इन दिनों युद्धों में इनका पर्याप्त प्रयोग होता था। (इस विषय में सर डेनीसन रासकृत प्रथम खण्ड में 'सन् १४०० से परवर्तीकाल में भारतवर्ष में तोपों तथा बारूद का प्रयोग' नामक लेख देखिए। सन् १६३६ पृष्ठ ११७—१२४)।

(३) मुखे तृणं कण्ठतटे कुठारं
कृत्वा जवारि क्षितिपः सकम्पः।
दयासमुद्रं शरणं शरण्यं
नारायणं भूपतिमाजगाम ॥
—राष्ट्रौढ़ वंश महाकाव्य १२। ६१ ॥

(४) इस संस्करण के अनुवादक एरस्किन महोदय के विचार में यह प्रथा शाहनामा के रचयिता फिरदौसी के समय भी विद्यमान थी।

..त दशा में लाये गए मैंने उनके सिर काढ़ने की ..ज्ञा दे दी और अगले पड़ाव पर उन के सिर एक ..ीनार पर टांग दिये गए।" (पृष्ठ १५६)।

अब बाबर काल (१४८३-१५३० सन्) से पीछे १३०५ ईसवी में आते हैं, जब कि मेरुतुंग ने अपने 'प्रबन्ध चिन्तामणि' काव्य की रचना की। इस ग्रन्थ में इस प्रथा की विद्यमानता का ज्ञान निम्न श्लोक से होता है- "जबकि मुख में तिनका धारण करने वाले मरणासन्न वैरियों को भी छोड़ दिया जाता है[५] तो तुम इन भोले-भाले पशुओं का क्यों संहार करते हो जो तिनका खाकर निर्वाह करते हैं (पृष्ठ ५५)।

प्रबन्ध चिन्तामणि के अंग्रेजी अनुवादक श्री टानें इस ग्रन्थ की समाप्ति पर मेरुतुंग के उक्त वचन पर नोट लिखते हुए कहते हैं कि मुख में तिनका रखना आत्मसमर्पण का एक चिन्ह है।

इस अत्यन्त प्राचीन परम्परा का उल्लेख 'हर्षचरित'[६] में तथा 'चण्ड कौशिक' के ३ य अंक में भी उपलब्ध होता है।

कावेल तथा थॉमस अपने अनुवाद के पृष्ठ १०१ के ४ र्थ नोट में लिखते हैं कि मुख में तृण का धारण आत्मसमर्पण का चिन्ह है।

श्री लीव्रेख्त इलिएट कृत 'भारतीय परिभाषाओं की अनुक्रमणिका' से उद्धरण देते हुए लिखते हैं कि जब कोई अपने विरोधी के क्रोध को शान्त करना चाहता है तो अपने मुख पर तृण धारण करता है और एक पैर के सहारे खड़ा हो जाता है। उस के विचार में यह प्रथा युरोप में भी प्रचलित थी। आप ने कैम्बल कृत 'पापुलर टेल्स आव दी वेस्टर्न हाई लैण्ड्स (२ य भाग पृष्ठ ३०४) से एक उद्धरण दिया है, जो अत्यन्त मनोरञ्जक है।- 'वह एक मेले में गया। और यह दिखाने के लिए कि वह नौकरी करता है, उस ने मुख में तिनका धारण कर लिया।'[७] संभवत: प्राचीन काल में इंग्लैण्ड में भी यह प्रथा थी। क्योंकि जो झूठी गवाही देने के लिये अपने आप को प्रस्तुत करते थे, वे मुख में तिनका धारण कर के बैठते थे।

चण्डकौशिक में इस का उल्लेख—'शिरसि तृणं कृत्वा'— राजा हरिश्चन्द्र द्वारा दास के रूप में आत्म-विक्रय करने के समय किया गया है। (देखो कलकत्ता संस्करण सन् १८८४ का ६६ पृष्ठ)।

श्री सानें द्वारा हर्षचरित्र का उपरिलिखित उद्धरण अत्यन्त महत्व पूर्ण है। क्योंकि इससे इस कहावत का काल १३०५ ई० से भी अत्यन्त पूर्व हर्षचरित रचयिता बाणभट्ट कवि का समय (६३० ई० सन्) निश्चित होता है। इसी प्रकार लीव्रेख्त द्वारा युरोप

---

(५) सुभाषित रत्नभाण्डागार (पृष्ठ २४४) में ऐसे मृग पर एक सुभाषित है, जिस के मुख में घास होते भी व्याध उस का पीछा नहीं छोड़ रहा—

तृणमुखमपि न खलु त्वां त्यजन्ति हे हरिण वैरिणः शबराः। यशसैव जीवतमिदं त्यज यो जितशृङ्ग संग्रामः॥

(६) यः परकीयेनापि कातरवल्लभेन रणमुखे तृणेनेव धृतेनालज्जत जीवितेन॥ हर्षचरितम्, ४ र्थ उच्छ्वास॥ अर्थात् एक कायर शत्रु को भी- जिस ने मुख में तिनका धारण किया हुआ हो- देख कर उसे लज्जा आ जाती थी। इस की टीका करते हुए टीकाकार शंकर लिखते हैं- "कातरेति तृणं कातरैः मुखे ध्रियते। तृणेति सहोपमा मुखे तृणमनौचित्यमेव पोषयति॥"

(७) ब्रूअर ने डिक्शनरी ऑफ़ फ्रेज़िज़ एण्ड फेबल्स में निम्न वाक्य में संभवतः इसी प्रथा का निर्देश किया है।-"To give grass- To confess yourself vanguished"। ब्रूअर नेहस ने कहावत के प्रयोग का कोई उदाहरण उद्धृत नहीं किया।

में इस प्रथा का उल्लेख भी कम महत्व का नहीं।

कर्नल जी. ए. जैकब ने निर्णयसागर से प्रकाशित अपने 'लौकिक न्यायाञ्जलि' के इस भाग के ५८-५६ पृष्ठ पर तृण भक्ष न्याय' के नीचे इस प्रथा का निर्देश किया है। इसी स्थल पर आपने मेरुतुंग कृत 'प्रबन्ध चिन्तामणि' का निम्न श्लोक उद्धृत किया है—

"वैरिणो ऽपि विमुच्यन्ते प्राणान्ते तृणभक्षणात्।
तृणाहाराः सदैवैते हन्यन्ते पशवः कथम्॥"

अर्थात् मुख में तृण धारण करने से शत्रु को भी प्राणभिक्षा मिल जाती है तो सदा तृण ही भक्षण करने वाले इन गरीब पशुओं का क्यों हनन किया जाता है।

लेखक महोदय एकवर्थ कृत 'मराठा बैलाड्स' का 'धावे तोडांत तृण' वाक्य उद्धृत करता हुआ प्रबन्ध चिन्तामणि का एक और श्लोक प्रस्तुत करता है—

नाथो नः परमर्धनेन वदनन्यस्तेन संरक्षितः।
पृथ्वीराज नराधिपादिति तृणं तत्पत्तने पूज्यते॥

अर्थः—परमर्धन के नगर में अब तृण की पूजा होती है। क्योंकि इस तृण के मुख में धारण करने से हमारे राजा परमर्धन के राजा पृथ्वीराज से प्र[illegible] रक्षा हुई थी।

स्वर्गीय कर्नल मीडोज़ टेलर, जो भारतीय जीव[न] से अत्यन्त परिचित थे, 'सीता' में अपने एक पा[त्र] के मुख से कहलवाते हैं—

"हमारे यहां बहुत से कैदी हैं। क्योंकि मैं उन भीरु जनों को कत्ल नहीं कर सका, जिन्होंने मुख में तृण धारण करके प्राणभिक्षा मांगी। (अध्याय ४७)।

कोभम ब्रूटपर अपनी 'रीडर्स हेण्ड बुक' (लन्दन १६११ पृष्ठ ४४४) में अंग्रेजी कहावत-'टू गिव ग्रास'-पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं।

'Grass (To give)—to acknowledge yourself vanguished. A latin phrase Herbam dare out porigere. Pliny: Natural History xxii, 4".

यदि Herbam dare कहावत ग्रीक ऐतिहासिक प्लिनी के समय (२३-७६ सन्) प्रचलित थी, तो इस बात की भी सरलता से कल्पना की जा सकती है कि यह लोकोक्ति लेटिन भाषा में ईसवी सन् से पूर्व भी प्रचलित होगी। [अनुवादक श्री धर्मदेव वेदवाचस्पति।]

मच्छरों से मुठभेड़

पण्डित मदन मोहन विद्यासागर

मैं इतिहास का विद्यार्थी हूं। विश्व इतिहास की पुस्तकों में बहने वाली खून की नदी के किनारे, पीड़ित परास्त पददलितवर्ग की ठण्डी आहों के बीच में अक्सर अपने को भूल जाया करता हूँ। कतरे खूँ दिल के अन्धेरे में खो जाने वाला इन्सान और कहां अपने को भूले ?

मानव इतिहास की पगडंडी पर जब मैं किसी सत्य शिव सुन्दर की खोज में भटकता हूँ तो उस राह पर खून के धब्बे, भाई द्वारा काटे भाई के गले को पाकर विक्षिप्त हो जाता हूँ और उस समय मनुष्येतर प्राणियों के विषय में खोजने लगता हूँ। यही मेरा इनके प्रति झुके रहने का कारण है।

वर्त्तमान युग की समानता स्वतंत्रता व भ्रातृभाव के विचार की विद्युत मैं समझता हूं क्यों न मनुष्येतर प्राणियों में भी जागृति का संचार करे ? क्यों न वे भी इन उदात्त भावों के प्रभाव में पड़कर अपनी पीठ पर पड़े मानव को फेंक कर पुनः सुखद स्वतन्त्रता की सांसें लें ? क्यों न उन्हें भी स्वतंत्रता रूपी कच्चे सूत्र में बान्धकर स्वायत्तशासन की शराब पिला दीजावे ?

इस लेख के लेखक

एक दिन मैंने देखा कि मशकराज का एक दूतमंडल मेरे पास इस इरादे से आया कि सृष्टि के प्रारम्भ से तिरस्कृत मशक जाति के भूत वर्त्तमान के सुवर्णीय या अन्धकारमय इतिहास की मैं खोज करूं। उनका यह भी इरादा था कि सभी ज्वरों के कारण होने के दोषारोपण का भी निराकरण किया जावे।

ऋतु में ताप और आर्द्रता कुपित युवती की लाल तप्त आंखों में का लाली और पानी की तरह थी। सांझ झपटी चली आ रही थी। पिछले दिन वर्षा पड़ने के कारण भूमि कुछ गीली थी। जगह २ पर पानी अब भी जमा हुआ था। इन्हीं स्थानों पर मशक राज की असंख्य सेना कई टुकड़ियों में विभक्त डेरा डाले विराजमान थी। मानों समुद्रगुप्त या हिटलर की रिपुगर्वमर्दिनी सेनायें दिग्विजय की तैयारी में हों। जल सेना, स्थल सेना और हवाई सेना अपनी-अपनी परेड में मस्त थी। मुगल बादशाहों के खेमे की तरह नाच गान हो रहा था। किराये पर लाये गये मेंढकों का वाद्यदल राष्ट्रीय गान के साथ ढोल दमाके बजा रहा था।

ततः शंखाश्च भेर्यश्च, पणवानक गोमुखाः।
सहसैवाभ्यहन्यन्त, स नादस्तुमुलो अभवत ॥

संसार पर चंगेज़ खां की क्रूर सेना की तरह आपत्ति का बादल सा छा रहा था, सूरज भी इससे भयभीत होकर मानों आश्रय की खोज में झाड़ की ओट लेकर समुद्र में गिरा चाहता था।

मैं आंगन में कुर्सी पर बैठा था। दूत-मंडल सामने भक्ति भाव से पैर बान्धे खड़ा था। उनकी नेत्री विजय-कालिमा ने अभिवादन करने को पैर छुए। हृदय में कोई डंक चुभा रहा था और अब पैरों में ...। धीरे-धीरे सिखाये सैनिकों की तरह कुछ ने मेरी सलामी की और विनीत ब्रह्मचारियों की तरह कुछ ने दंडवत हो चरण वन्दना की।

खुशामद की शराब पर प्रतिबन्ध नहीं। ज्यों ही साकी वाणी की बोतल में मीठी खुशामद भर लाकर कहता है तो बड़े-बड़े पंडित सरदार महात्मा भी ना ना करते हुए इसके नशे में बह जाते हैं। यह एक ऐसा यंत्र है जिसमें पड़ कर मनुष्य समझता तो अपने को बड़ा है पर हो छोटा रहा होता है। ... मैंने भी मन ही मन अपने को उस एक दिन का सुलतान समझ लिया।

मैंने इस प्रकार अपने पर टूटने से उन्हें रोकते हुए अचानक बिना इन्टर्व्यू का समय नियत किये फुन्सियों या चेचक के दाग की तरह प्रगट होने का कारण पूछा।

जब विचार एक हों तो वाणी भी एक ही हो जाती है। वे पीछे हटे और एक साथ बोले "संसार में हमें जय के प्रकाश में लाने वाला कोई दरिद्र नारायण नहीं है।"

"मैं हूँ तो। निस्संकोच भाव से कहिये। मैं प्रत्येक क्षण मन वाणी से आपकी सेवा करने को तैयार हूँ।" मुझे इस का ख्याल न रहा कि उनका सहायक बनने से भी कोई कष्ट आ सकता है।

इस पर उन्होंने पुनः भक्ति भाव से साष्टांग चरण स्पर्श किया। मैंने पीछे हट कर मुस्कराते हुए कहा भाइयो इतना क्यों झुकते हो? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि सब के सामने सिर झुकाते २ इस भारत जाति ने अपनी कमर भी तुड़वा ली है।

अपने को इस कदर ऊपर उठाने की चिन्ता में व्यस्त और अपने से इतना खुलकर मिलते देख उन्होंने कहा: यद्यपि आजकल साम्यवाद का युग है तथापि किस तरह से बेबस प्राणीवर्ग, किस तरह से अब भी गरीब प्रजा शक्तिशालियों के स्वार्थ साधन की पूर्ति में उपयोग की जा रही है, यह आप से छिपा नहीं।

"सबै सहायक सबल के कोई न निबल सहाय"।

मैंने कहा: नहीं! नहीं!! "निर्बल के बल राम"।

ठीक है पर शायद मृत्यु के बाद?" उन्होंने कहा।

मैंने कहा: नहीं। नहीं। ऐसा नहीं। यदि उसका बल और प्रेरणा न होती तो शायद निबल का कोई भी न होता। मैंने तो परोपकार का व्रत ले लिया है। बहुत से ऐसे सेठ और बाबा हैं, जिन्हों ने गो सेवा व्रत लिया है, बहुत से ऐसे नवाब और महाराजा हैं जिन्होंने स्वपोषण दीक्षा ली है। बहुत से मधुमक्षिका भक्त भी हैं। मैंने तो आप की सेवा करने का ही निश्चय किया है।

मनुष्य जब अपने को बड़ा दिखाना चाहता है तो स्वाभाविक ही है कि दूसरों की आलोचना कर उन्हें नीचा दिखाने का प्रयत्न करे।

मैंने भी उन्हें इसी प्रकार असली सेवकों, फसली त्यागियों, नकली नायकों और नकली बगुलाभक्तों का विशद वर्णन कर सेवा दर्शन का परम गूढ़ रहस्य समझाया।

खल्विदं ज्ञानमाख्यातं, गुह्याद्गुह्यतरं मया॥

इस पर मच्छरों ने दाद दी, वन्स मोअर। वन्स मोअर के नारे लगाये। विजयकालिमा ने कहा:

नष्टा भीतिः स्थितिर्लब्धा, त्वत्प्रसादात्तर मया श्रेष्ठ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहा, करिश्ये वचनं तव॥

'हां तो' मैंने जारी रखते हुए कहा: "इस संसार में निस्वार्थ भाव से सेवावृत्ति में निमग्न पुरुषों की संख्या दाल्दा घी में स्वाद और पोषकतत्वों की तरह न के बराबर है।"

"कुछ सेवापरायण युगपुरुष हिमाचल के शुभ्रकिरीट की तरह सबकी आंखों में होते हैं, परन्तु कुछ भव्य-प्रसाद की नींव की तरह अदृश्य रहते हैं। यद्यपि उनका महत्व किसी भी दृष्टि से कम नहीं होता। जनता की वाहवाही या पत्रपुष्पफलतोय (मानपत्र, पुष्पमाला, पुरुस्कारफल और टकाफीतोय) के लालच से दूर रह कर घने वृक्ष की शाख पर परार्थभाव से मधुरस एकत्रित करने वाली मधुमक्षिका की तरह सेवा करने वाले 'और भी सच्चे सेवक हैं' पर बहुत कम।"

इस और भी हैं का अर्थ ठीक-ठीक समझ मच्छरों ने एक साथ कहा: महाराज जब तक आप सप्राण हैं परमेश्वर आपकी उमर द्रौपदी के चीर या भारतीय-विधान की तरह लम्बी करे तब तक हम गरीबों को

...रू के रहते मुसलमानों की तरह किसी का डर नहीं।

मैंने कहा : मैं आपका हूं, आपके लिये सब कुछ करने को तैयार हूँ। मुझे और मेरे घर को अपना ही समझिये।

मेरे इतना कहने की देर ही थी कि उन्होंने सचमुच मेरे शरीर को अपना समझ उस पर स्वच्छन्द विहार प्रारम्भ कर दिया। सबके सब मेरे बन गये थे। दूत मंडल के पीछे कई अन्य सैनिक टुकड़ियां भी आगई थीं। जो पहले दब रहे थे वे परिचय से सिर चढ़ गये, जो चुप थे वे एटम बनेम्ब हो गये, जो सदा दूर रहते थे वे सिर हो गये, जो चरणों पर लोट रहे थे वे कन्धों पर उछलने लगे, जो चारों ओर मडराते हुए हवा में लटक रहे थे वे सिर पर सवार हो गये, कुछ मुखकमल पर बच्चों की तरह हाथ मारने लगे, कुछ किलोल करने को कपोलस्थली पर जमा हो गये जिन्हें आंखों में सीढ मिलने की उम्मीद थी वे पलकों पर जा बैठे, कुछ कान खाये जाते थे। कुछ नाक काटे जाते थे।

कई बार समझाने के लिये दिमाग में कील लगानी पड़ती है। मालूम पड़ता था उनमें कई डाक्टर भी थे। उन्हें अपने परीक्षण की बलि का बकरा मै ही मिला। एक ने आव देखा न ताव झट कील के स्थान पर सीधा दिमाग में गुद्दला ही दे दिया। एक ने कनपटी में ही इंजेक्शन लगा दिया।

खुशी के मारे वे मानों आपे से बाहर हो रहे थे। संकीर्तन भक्तों के आत्मबिस्मृत हो स्त्री पुरुष के भेद को भी भूल जाने के समान कुछ स्थान अस्थान का भेद भी भूल बैठे थे। नाच प्रारम्भ होने लगा, घुंघुरू बज उठे, सुमुधुर संगीत की ध्वनि आने लगी ...

इस समय मेरी दशा की कल्पना आप नहीं कर सकते। किसी ने सच कहा है "नादान दोस्त से दाना दुश्मन अच्छा है। पर जब फंस गया था तो निकलना कठिन हो रहा था। जिस ढौंग के लिये मैं बन रहा था वैसा हुआ या न हुआ यह तो भविष्य के ऐतिहासिक की पीढ़ियां बतावेंगी पर अब मैं अच्छी तरह बन रहा था। उन की स्थिति उस एम० एल० ए० की सी थी जिसे न ही पास रक्खा जा सकता था और न आसानी से हटाया ही जा सकता था। इन्हीं की बदौलत तो मैं अपने को बड़ा पा रहा था। मैंने ज़रा बनावट की हंसी से कहा; बहुत हुआ। इतना सब करने की क्या जरूरत? आपके स्नेह पूर्ण व्यवहार से कृतज्ञ हो अपनी अक्षमता जान मरा जा रहा हूँ। यद्यपि आपका भार उठाने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है तथापि यथाशक्ति ...।

इस पर प्रसन्न होकर एकबार सबने मिल कर पुनः अपने प्रेमप्रदर्शन के इतिहास को दुहराया। सबने फिर प्रशंसा का गान प्रारम्भ किया। मैंने पूछा तुम्हारे इस स्वर को कौन सा स्वर कहूं। क्योंकि काकपिक-मयूरमेनाश्वगर्दभ आदि सभी स्वरों का मिश्रण तुम मुझे पिला रहे हो।

इस पर उनमें उत्साह की बाढ़ आ गई। प्रशंसा की हवा भरते ही किसकी जीवन साइकिल नहीं चलती। अब ये मानों इसी बात पर झगड़ने लगे कि "अहं पूर्वं अह पूर्वं" मैं पहले सुनाऊंगा मैं पहले सुनाऊंगा। मैंने देखा कई आपस में टकरा भी रहे थे। भीम और जरासन्ध की तरह कई जोड़ियां आकाश में ही भिड़ गई थीं। सब की इच्छा अपना-अपना राग अलग-अलग सुनाने की थी। मिल कर गाना मानव ने ही न सीखा तो इनसे उनकी आशा करना सत्य अहिंसा के अवतारों से मिलकर लड़ने की आशा के समान असम्भव था।

उस समय भी कई मनचले अपनी ही धुन में मस्त थे। बारबार किसी से ठुकराये जाने पर भी वे पीछे लगने से बाज नहीं आ रहे थे। ... उन्होंने मिलने का अवसर पाकर चूकना ठीक न समझा। इस गड़बड़ी में उनका धक्का अपनों को ही लगता।

उनकी देह अपनों पर ही जा पड़ती। लंका विजय का दृश्य था। ...

वहां कुछ निष्काम स्वयं सेवक भी थे। जहां ऐसे दो को देखा झट एक की इज्जत बनाने पहुँचे। शायद आप में से भी कुछ को इन स्वयंसेवकों से पाला पड़ा होगा और बुरा न मानें, तो कई शायद अवसर बनने पर स्वयंसेवक बने भी होंगे। ...

वहां कुछ घुन्नी जमात के भी थे। इस संघर्ष में हाथ मारना कठिन समझ औरों की आंख बचाकर अपना काम निकाल रहे थे।

पर अब भी बंसियों का केन्द्र मैं ही बना हुआ था। उन्होंने मेरे सारे शरीर को ही कपोल समझ रखा था। लगे दांत मारने। ... कईयों ने मेरे कंठ पर भी अपनी पतली-पतली बांहियां रक्खीं। कई मेरी गोदी में सोने के बहाने कमीज़ के अन्दर ही घुस गये। परन्तु धन्य ... कई ऐसे श्रद्धालु भक्त भी थे जो कि अब तक चरणामृत पर ही सन्तुष्ट थे। ...

उनका मज़ा मेरी सज़ा। मैं द्विविधा में फंस रहा था। मैंने अपना हाथ उन्हें हटाने को ऊपर हटाया। पर यह क्या ? कुछ हस्तकमल पर चिपके, कुछ भुज-लता पर लटके। अजब परेशानी थी, सिर में चक्कर आने लगा था। निष्काम सेवा का अर्थ अब मैं ठीक समझ रहा था कि काम करना पर विपत्तियों की इच्छा न करना। कार्य का फल विपत्ति दीखती थी और "मा फलेषु कदाचन" यह परम वाक्य है।

अपने ऊपर आ पड़ी इस विपदा के निवारण निमित्त लाचार होकर 'मषकमेधयज्ञ' करने का निश्चय किया।

आग जलाई, औषधिगणों का आवाहन कर उनसे सामग्री बनाई। मंत्र पढ़ कर आग में डाल दी। ... पश्चात् आचमन कर ज्यों ही शाप देने के लिए नमः मषकेभ्यः नमनः हिंसनः कहा, त्योंहि सारी सेना भाग खड़ी हुई। यद्यपि विषैली घातक गैस का प्रयोग अन्तर्जातीय संघ के नियमानुसार निषिद्ध था तो भी शीघ्र समाप्ति की दृष्टि से जापान पर अणु बम के प्रयोग की तरह इसका प्रयोग मुझे करना पड़ा। आगे आने वाली सन्तति ही इसका निर्णय करेगी कि इसका प्रयोग कहां तक नीतिधर्मानुसार था। ... फिर भी मैंने सोचा कि चलो थोड़ी और गैस छोड़ दूं ताकि मेरा घर मशकाशेष हो जावे।

कहते हैं कि जब कुत्ते को पिटने की खाज होती है तो वह अपने आप ही किसी आश्रम में या इन्द्र-प्रस्थ पर बनी लम्बी बैरक में घुस जाता है। गाव की मारी गीदड़ा ग्राम की ओर भागती है। मैं और सामग्री लेने चला। ड्योढ़ी की अन्धेरी गुफा में उसका शस्त्रागार था।

मैंने ज्योंहि झुक कर उठाने को किया तो एक-दम मशकराज की जय' का नारा लगाती एक टोली मुझ पर झपट पड़ी। मुझे यह नहीं पता था कि वहां से रिट्रीट करके मशकसेना के कई दस्ते यहां छिपे हैं।

काटो, मारो, की ड्योढ़ी–व्यापिनी आवाज़ करते हुए कई हवाई लड़ाके सामने आये। सुना है कि प्राचीन काल में देवता और राक्षस एक ऐसी विद्या जानते थे, जिसके बलपर वे आकाश में छिप कर शत्रु पर आक्रमण कर सकते थे। उसका अवशेष ही इन में मालूम पड़ता था। परन्तु इतना विकास और हो गया था कि ये प्रगट होकर भी बिना चोट खाये लड़ सकते थे। ... उलटे पांव भागा। हारी किस्मत ! एक ठोकर लगी और जमीन चूमने लगा। शायद उन्होंने इसे बिना शर्त सरेन्डर समझा।

बाहर आया तो हांफ रहा था। ठंडी हवा खाने के लिये अपने आश्रम विद्यापीठ के साथ वर्षों से चुपचाप पड़ी माल रोड पर घूमने चल पड़ा। वह छोटे-छोटे आम्रद्रुमों से परिवेष्टित थी। एक पेड़ पर पका कलमी आम देखकर जीभ लार

से तर हो गई। तोड़ने के लिये ज्योंहि हाथ आगे बढ़ाया कि मशकराज के एक और छापामार दस्ते ने हमला किया। मैं फिर सरपट भागा। जिधर देखता था उधर वे ही वे थे। जिधर भागता था उधर वे छिपे थे॥

मालूम पड़ता था कि उन्होंने सर्वत्र बेतार की तार द्वारा खबरदार होने की सूचना पहुँचा रक्खी थी। अब तक दस कदम दूर नहीं हुआ बराबर काटो मारो की आवाज आती रही।

सुनते हैं कि भाग्य का मारा एक गंजा एकबार धूप से बचने के लिये नारियल के पेड़ के तले चला गया। विधिवशात् नारियल का एक फल अपने चिर परिचित साथी से मिलने का लोभ संवरण न कर सकने के कारण झट सिर पर हांफता सा आ लगा। मैं दौड़ने के कारण पसीने से तरबतर हो गया था। पास में स्नानागार था, पीछे से उसमें घुसा। वहां, यह पता नहीं था कि भूण्डराज अपने दल बल के साथ छावनी डाले पड़े थे। विकासवादियों का विश्वास है कि मशक का विकसित रूप ही भूंड है। उस नाते भून्डराज ने भी अपनी सीमा में मेरे ऊपर सेक्सन लगा दिया। होनहार को कौन टाल सकता है? सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति। घुर्रं घुर्रं की आवाज ने ढीला कर दिया। एक दो मन चलों ने आगे बढ़ कर बड़े इतमीनान के साथ मुख पर ...। उनका कथन था कि मेरा मुख उनके सामने पड़ गया था। किसी किसी ने ओंठो पर भी ......

साथी पूछ रहे थे कि आज मुंह फुलाये क्यों बैठे हो? क्या किसी से अनबन हो गई है? बताइये कि उन्हें क्या जवाब दूं? वे कहते हैं :

तव इदं सस्मृत्य संस्मृत्य रूप सम्वादमदभुतम्।
विस्मयो अस्ति महान् भ्रातः, हृष्यामश्च मुहुर्मुहुः॥

देश का नेतृत्व—गुरुकुल के सिद्धान्त करेंगे।

मुझे गुरुकुल विश्वविद्यालय की स्वर्णजयन्ती के शुभ अवसर पर आने का सौभाग्य हुआ, कई वर्षों के बाद मेरा यहां पर आना हुआ और मुझे जो परिवर्तन दिखाई पड़ा उसे देख कर बहुत प्रसन्नता हुई। स्वतन्त्र भारत में गुरुकुल जैसी संस्था जिस ने आजादी के सग्राम में पूरा सहयोग दिया और जिसके कारण बहुत सी कठिनाइयों का मुकाबला करना पड़ा आज देश के लिये न केवल पथदर्शक ही रहेगी बल्कि देश को उन्नति के रास्ते पर ले जाने में भी उतना ही सहयोग देगी जितना उस के विद्यार्थियों और अध्यापकों ने उन को प्राप्त करने में दिया है। मुझे पूर्ण आशा है कि यहां के स्नातक देश का नेतृत्व उन सिद्धान्तों और उद्देश्यों को लेकर करेंगे जिन को लेकर यहां के संस्थापक स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने ऐसी संस्था स्थापित की थी।

५. ३. ५०।　　　　　　　　　　　　　　　　जुगलकिशोर बिड़ला

भारतीय सभ्यता का पुनरुद्धार करने साधन.

मैंने आज कांगड़ी गुरुकुल संस्था का और उस की भिन्न भिन्न प्रवृत्तियों का निरीक्षण किया, संतोष हुआ, भारतीय सभ्यता और अध्यात्म का पुनरुद्धार करने का अच्छा साधन बना सकते हैं।

४. ३. ५.।　　　　शंकर राव देव—प्रधान मंत्री, अखिल भारतीय, कांग्रेस कमेटी नई देहली।

स्नातकों की शानदार सफलता

आगरा विश्वविद्यालय में इस वर्ष गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों को शानदार सफलता मिली है। संस्कृत एम० ए० में आगरा विश्वविद्यालय में जिन पांच व्यक्तियों ने पहले पांच स्थान प्राप्त किये थे, उनमें चार गुरुकुल के स्नातक हैं। पहला स्थान प्राप्त करने का गौरव श्री रामनाथ जी वेदालंकार को है, दूसरे स्थान का सम्मान श्री हरिदत्त जी वेदालंकार को प्राप्त हुआ है। चौथा और पांचवां स्थान क्रमशः श्री जनमेजय जी विद्यालंकार और श्री जयदेव जी वेदालंकार (जोधपुर) को हैं। राजशास्त्र (पालिटिक्स) की एम. ए. परीक्षा में श्री रोहिताश्व जी वेदालंकार आगरा विश्वविद्यालय में चतुर्थ रहे हैं।

राष्ट्रीय शिक्षणालय होने से गुरुकुल की उपाधियां १९४८ तक सरकारी विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत नहीं थी। स्नातक इन की उच्चतम परीक्षाओं में नहीं बैठ सकते थे। आगरा विश्वविद्यालय ने सर्वप्रथम १९४८ में अन्य राष्ट्रीय शिक्षणालयों के स्नातकों के साथ, गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों की उपाधियां स्वीकार कीं और उन्हें अपनी परीक्षाओं में बैठने की सुविधा दी। इस का लाभ उठाने वाले स्नातकों ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। इस वर्ष प्रायः सभी स्नातक संस्कृत एम. ए. में प्रथम विभाग में उत्तीर्ण हुए हैं। आशा है अगले वर्षों में यह परिणाम और भी अधिक उज्ज्वल होगा।

गुरुकुल आगरा विश्वविद्यालय के अधिकारियों का कृतज्ञ है कि उन्होंने गुरुकुल के स्नातकों की उपाधियां स्वीकृत की हैं। उस यह आशा है कि देश के अन्य सरकारी विश्वविद्यालय भी आगरा का अनुकरण करते हुए गुरुकुल की उपाधियों को मान्यता प्रदान करेंगे।

आगरा विश्वविद्यालय में विशेष सम्मान सहित एम. ए. पास करने वाले स्नातकों का परिचय इस प्रकार है।

श्री रामनाथ जी वेदालंकार

आप आगरा वि० वि० संस्कृत एम. ए. में प्रथम आये हैं। आप गुरुकुल कांगड़ी में वेद के उपाध्याय हैं। सामयिक और सामाजिक पत्रों में वैदिक साहित्य संबन्धी लेख प्रायः लिखते रहते हैं। आप ने 'वैदिक वीर गर्जना' और 'वैदिक सूक्तियां' नामक वैदिक मन्त्रों के दो संग्रह लिखे हैं। दोनों पुस्तकें बड़ी लोक प्रिय हुई हैं।

श्री हरिदत्त जी वेदालंकार

आप एम. ए. में द्वितीय रहे हैं। गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापन कार्य करते हैं। हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं। आपने हिन्दू-विवाह, हिन्दू परिवार, प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास, भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय और सांस्कृतिक इतिहास पर ग्रन्थ लिखे हैं। पहली दो पुस्तकों पर बगाल हिन्दी-मंडल द्वारा दो बार १९४५ व १९४६ में उच्चतम पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं।

श्री हरिदत्त जी वेदालंकार

श्री जनमेजय जी विद्यालंकार

आप ने आगरा विश्वविद्यालय में चौथा स्थान प्राप्त किया है। आप संस्कृत-साहित्य के गम्भीर विद्वान

गुरुकुल समाचार

ऋतुरंग—

आषाढ़ मास प्रारम्भ होते ही कुल उपवन में मेघ राजा की सवारी अवतीर्ण हो चुकी है। जिससे सर्वत्र आह्लाद, आमोद और रमणीयता फैल गई है। वन, वाटिकाएं और मैदान हरे हो उठे हैं। आमों की मौसम प्रारम्भ हो गई है। जामुन भी रंग ला रहे हैं। गुरुकुल के प्रधानपथों पर स्थित जामुन के कुजों में बटुमंडली की बड़ी रौनक रहती है। पावस के आगमन से साथ ही रंग-बिरंगे प्रवासी पक्षी भी कुल-उपवन में उतर आगए हैं। चातकों और कोकिलों के कल कूजन से कुल फुलवारी आबाद रहती है। वनभ्रमण, पर्वत-यात्रा और तैरी का क्रम भी चालू है। छात्रों का स्वास्थ्य अच्छा है।

मान्य अतिथि

इन्दौर के सुप्रसिद्ध नागरिक, भूतपूर्व नायबदीवान और इतिहास और पुरातत्व के विद्वान् श्री माधव विनायक किबे जी अपनी विदुषी धर्मपत्नी श्रीमती कमलाबाई किबे सहित गुरुकुल पधारे। आपने गुरुकुल के पुरातत्व संग्रहालय, वेद कालेज, पुस्तकालय आदि विभाग देखकर बड़ी प्रसन्नता और परितोष अनुभव किया। आपने कुल के संस्थापक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के विषय में अपने निजू संस्मरण सुनाते हुए कुल की पुरानी पुण्यभूमि की अपनी यात्राएं भी सुनाई।

विशेष व्याख्यान

मद्रास प्रांत से एक विद्वान् संन्यासी महानुभाव आजकल गुरुकुल में हिन्दीभाषा के अध्ययन और शांत जीवन व्यतीत करने के लिए पधारे हुए हैं। आपका शुभ नाम है स्वामी प्रेमानन्द जी। आप मद्रास प्रांत में विभिन्न कालेजों में कोई बीस वर्ष तक मनोविज्ञान और पाश्चात्य दर्शन-शास्त्र के प्रोफेसर रहे हैं। आपकी उपस्थिति से छात्र बहुत लाभ उठा रहे हैं। कालेज यूनियन की ओर से आपका 'व्यक्तित्व' विषय पर बहुत ज्ञानप्रद और खोजपूर्ण व्याख्यान हुआ था। सभापति थे उपाध्याय श्री प्रो० नन्दलाल जी खन्ना।

इसी प्रकार भारतीय सेना विभाग में कार्य करने वाले और मनोविज्ञान के विशेषज्ञ केप्टन कृष्णचन्द्र घाई महाशय का 'प्रगति का स्रोत' विषय पर अंगरेजी में एक बहुत ही प्रभावोत्पादक तथा तथ्यों से भरा हुआ व्याख्यान हुआ। आपने जीवन और व्यवसायों के विकेन्द्रीकरण के विषय में बड़ी खूबी से अपने विचार प्रस्तुत किए। आपने कहा कि यंत्रवाद, व्यवसायवाद और उसके केन्द्र करण ने विश्व के मानव का जीवन रस चूस लिया है। उसका एक मात्र यही उपाय है कि हम प्रकृति और ग्रामों की

(पृष्ठ तास का शेष)

हैं। पहले लाहौर में अध्यापन कार्य करते थे, देश का विभाजन होने के बाद आप को लाहौर छोड़ना पड़ा, आजकल आप कानपुर डी. ए. वी. कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर हैं।

श्री जयदेव जी वेदालंकार

आप जोधपुर निवासी हैं। आप ने गुरुकुल से स्नातक होने के बाद मेरठ कालेज में अध्ययन किया, एम. ए. परीक्षा में पांचवां स्थान प्राप्त किया है।

इन के अतिरिक्त श्री ज्ञानेन्द्र जी विद्यालंकार, श्री निरूपण जी विद्यालकार, श्री विद्यासागर जी विद्यालंकार ने संस्कृत एम. ए. प्रथम विभाग में उत्तीर्ण किया है।

श्री रोहिताश्व जी वेदालंकार

आप ने आगरा विश्वविद्यालय के राजशास्त्र के एम. ए. में चतुर्थ स्थान प्राप्त किया है। आप बड़े सीपत (जि० बिलासपुर) मध्य-प्रदेश के वासी हैं। विनोदपूर्ण गद्य और व्यंग्य लिखने में पटु हैं।

ओर लौटें। वही हमारी प्रगति के सच्चे स्रोत हैं। व्याख्याता महोदय पर्यटक थे और सुकवि भी थे। आपका व्याख्यान अनुभवों और तथ्यों के अतिरिक्त कविताओं के कारण बहुत उपादेय और प्रभावशाली हो गया था।

आयुर्वेद परिषद्

गुरुकुल कांगड़ी की आयुर्वेद परिषद् की पाक्षिक व्याख्यानमाला के सिलसिले में गुरुकुल के जीव विज्ञान और वनस्पति शास्त्र के प्रोफेसर श्री चम्पत-स्वरूप जी एम. एस. सी. ने मानव-वंश के विकास पर एक अध्ययन और खोजपूर्ण व्याख्यान प्रस्तुत किया। व्याख्यान प्रोजेक्टर के द्वारा प्रदर्शित चित्रों के कारण बहुत ही मनोरंजक, ज्ञानप्रद उपादेय रहा। सभाध्यक्ष का स्थान गुरुकुल के पाश्चात्यदर्शन के उपाध्याय श्री नन्दलाल जी खन्ना ने ग्रहण किया।

दिल्ली के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री० घनानन्द जी पंत पिछले दिनों गुरुकुल में पधारे और आपने आयुर्वेद परिषद् के तत्वावधान में अपने निजू अनुभवों से भरा हुआ एक व्याख्यान आयुर्वेद के विषय में दिया। गुरुकुल का आयुर्वेद विभाग देखकर आप बहुत प्रसन्न हुए।

शोक संवाद

बड़े शोक का विषय है कि गुरुकुल के फार्मेसी विभाग के बड़े पुराने और कर्मठ सेवक श्री० तेज-राम जी 'ऋषि' का पिछले दिनों टाईफाईड से स्वर्ग-वास हो गया है। गुरुकुल कांगड़ी में आप कोई तीस वर्ष से सेवा कर रहे थे। आप बड़े ईमानदार, निष्ठावान् और जम कर कार्य करने वाले व्यक्ति थे। स्वभाव के सरल, मिष्टभाषी और उपकारी थे। अपने सरल और सत्य स्वभाव के कारण ही वे कुल में 'ऋषि जी' इस उपनाम से बुलाए जाते थे। उनके अवसान के कारण फार्मेसी विभाग को सर कर्मठ और ईमानदार सेवक की क्षति हुई है। जो शीघ्र पूर्ण नहीं होगी। समस्त कुलवासी स्वर्गीय 'ऋषि जी' की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करते हैं तथा उनके परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकाशित करते हैं।

आषाढ़ मास में रोगी ब्रह्मचारियों का विवरण

श्रेणी	नाम ब्र०	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा।
१४	भारत भूषण	मोच	८ दिन
१३	हरिप्रसाद	मलेरिया ज्वर	१२ ,,
६	ताराचन्द्र	प्रतिश्याम ज्वर	६ ,,
७	विक्रम	मलेरिया ज्वर	३ ,,
७	हरिराज	,,	३ ,,
६	विद्यासागर	शीतपित्त	५ ,,
६	कर्मवीर	मलेरिया ज्वर	३ ,,
६	नरेन्द्र	खुजली	४ ,,
५	रमेश	ज्वर	३ ,,
५	जगदीश	,,	३ ,,
४	विनोद	मम्पान	४ ,,
३	योगेन्द्र	ज्वर	२ ,,
३	शारदा	,,	४ ,,
३	श्यामसुन्दर	,,	[illegible] ,,
३	जितेन्द्र	,,	३ ,,
३	प्रेम प्रकाश	,,	३ ,,
२	सुरेश	,,	३ ,,

इस मास उपरोक्त ब्रह्मचारी रुग्ण हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

T. B. टी॰ बी॰ "तपेदिक" चाहे फेफड़ों का हो या अँतड़ियों का बड़ा भयङ्कर रोग है

(१) पहली स्टेज	(२) दूसरी स्टेज	(३) तीसरी स्टेज	(४) चौथी स्टेज	अन्तिम स्टेज
मामूली ज्वर खांसी	ज्वर खांसी की अधिकता	शरीर सूखना, ज्वर खांसी की भयंकरता	इन्हीं बातों की भयंकरता शरीर पर वर्म, दस्त आदि का शुरू हो जाना	रोगी की मौत और भयंकर वर्मों का इधर उधर फैलना

जबरी———(JABRI)———जबरी———(JABRI)

भारत के पूज्य ऋषियों की अद्भुत खोज (Research) जबरी एक मात्र दवा है।

सज्जनो—"जबरी" के बारे में भारत के कोने कोने से आप पचासों प्रशंसा पत्र प्रति दिन अखबारों में देखते ही होंगे। आज एक ताजा पत्र मिस्त्री मानसिंह बान्सल दलाटी गेट शहर नाया [पू॰ पंजाब] का भी देखें। श्रीमान् पूज्य पण्डित जी नमस्कार। हमको यह लिखते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि परमात्मा और आपकी कृपा से हमारी लड़की को काफी आराम है। १६ दिन में शरीर का वजन घटने के स्थान पर ४ पौंड बढ़ गया है। बुखार बिलकुल नहीं रहा। स्वास्थ्य पहले से बहुत अच्छा है। अब तो लड़की मील मील भर चल फिर लेती है। श्रीमान् जी आप ब्राह्मण कुल भूषण जगत्-गुरु हैं। फिर भला आप की दवा क्यों न आराम करे? हम काफी समय तक डाक्टरों, हकीमों से इलाज कराकर और लगभग ४ हजार रुपया अंग्रेजी औषधियों आदि पर बरबाद करके ना उमेदी की हालत में आपके चरणों में उपस्थित हुए थे। आपकी अनमोल औषधि और परमात्मा की कृपा से लड़की अब ठीक हो गई है। परमात्मा ने आपको यह दवा नहीं बल्कि एक "जौहर" (अमृत) प्रदान किया है। जितनी भी प्रशंसा की जावे कम है। भगवान् आपके कार्यालय को निन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति दे।

T. B. टी॰ बी॰ 'तपेदिक व पुराने ज्वर के हताश रोगियो

अब भी समझो अन्यथा फिर वही कहावत होगी—'अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत' इसलिए तुरन्त आर्डर देकर रोगी की जान बचावें। सैकड़ों हकीम, डाक्टर, वैद्य अपने रोगियों पर व्यवहार करके नाम पैदा कर रहे हैं और तार द्वारा आर्डर देते हैं। तार आदि के लिए हमारा पता केवल 'जबरी जगाधरी' (JABRI JAGADHRI) लिख देना ही काफी है। तार से यदि आर्डर दें तो अपना पूरा पता लिखें। मूल्य इस प्रकार है—

'जबरी स्पेशल नं॰ १ अमीरों के लिए जिसमें साथ साथ ताकत बढ़ाने के लिए सोना, मोती, अभ्रक आदि की मूल्यवान भस्में भी पड़ती हैं। मूल्य पूरा ४० दिन का कोर्स ७५) रु॰। नमूना १० दिन के लिये २०) रु॰। 'जबरी' नं॰ २ जिसमें मूल्यवान् जड़ी-बूटियां हैं, पूरा कोर्स २०) रु॰, नमूना १० दिन के लिए ६) रु॰ महसूल आदि अलग है। आर्डर में पत्र का हवाला तथा नं॰ १ या २ साफ-साफ लिखें। पार्सल जल्द प्राप्त करने के लिए मूल्य आर्डर के साथ भेजें। यदि Air mail से मंगाना पो तो २) रु॰ खर्च अधिक भेजें। विदेशों के ग्राहक मूल्य पेशगी भेजें।

पता—रायसाहब के. एल. शर्मा एण्ड सन्स, रईस एण्ड बैंकर्स, (७५) जगाधरी (E. P.)

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल पत्रिका

श्रावण २००७

वर्ष २
अङ्क १२

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष २। अङ्क १२। श्रावण २००७

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

विषय	लेखक	पृष्ठ
इन्डोनेशिया में हमारी शब्द श्री	श्री लोकेश चन्द्र, डी० लिट्०	१
संकल्प शक्ति में कल्पना का समन्वय	प्रोफेसर राम चरण महेन्द्र एम. ए.	६
कीट जगत् के शस्त्रास्त्र	श्री राधा कृष्ण कौशिक एम. एस. सी.	८
सोवियत संघ में नींबू-जाति के फलों की खेती	श्री त्सित्सिन	१२
युरोप में भी गुरुकुल खोले जायें	श्री हरबट ट्रिची	१४
पूर्व और पश्चिम की श्रेष्ठ सभ्यता का समन्वय	श्री चन्द्र भान अग्रवाल, जज हाईकोर्ट	१४
समाज-उद्धारक प्रेमचन्द	श्री महेन्द्र रायजादा साहित्य रत्न एम. ए.	१५
आत्म संयम	श्री माँ	१८
धरती की छाया	श्री सुरेन्द्र शैलज	२१
साहित्य, समाज के उत्थान का सौपान है	ठाकुर रामसिंह	२३
रोग निवारण के लिये सांप	श्री रामेश बेदी	२६
पुस्तक परिचय	श्री रामेश बेदी	३०
गुरुकुल समाचार	श्री शंकर देव विद्यालंकार	३१

अगले अंकों में

विषय	लेखक
जोनसार बावर और : उसका उज्ज्वल भविष्य	श्री धर्म देव शास्त्री
जीव-जन्तुओं का सामाजिक जीवन	श्री सुषेण
गौ का दूध	डाक्टर रामस्वरूप
काली मिर्च का इतिहास	श्री रामेश बेदी
बड़ा कौन	श्री विष्णु मित्र

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति छः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

इन्डोनेशिया में हमारी शब्दश्री

श्री लोकेशचन्द्र, डी० लिट्०

'जावा' शब्द का प्रादुर्भाव संस्कृत के यवद्वीप की संक्षिप्ति से हुआ है। रामायण में पहिली बार यह शब्द मिलता है। परन्तु यह कहना बहुत ही कठिन है कि यह स्थल रामायण में किस शताब्दि में लिखा गया। सम्भावना यही है कि विक्रमाब्द की प्रारम्भिक शतियों का होगा। 'जावा' इन्डोनेशिया का सबसे महत्वपूर्ण और सबसे बड़ा द्वीप है। सांस्कृतिक दृष्टि से और आज राजनैतिक दृष्टिकोण से भी यह अपना विशेष स्थान रखता है। इसी महत्व के कारण आज हम अपने अधिकांश उदाहरण इसी प्रदेश से लेंगे। यह वह प्रदेश है जहां पर भारतवर्ष के अनेकों शिल्पियों ने जाकर संसार की स्थापत्य कला का आश्चर्य 'बोरोबडूर' स्तूप बनाया था, जो आज कराल काल की थपेड़ों के पश्चात् भी पूर्ववत् गरिमा के साथ खड़ा है, भले ही उसकी भव्यता आज पुरानी हो चुकी हो। यह वह प्रदेश है जहां पर कि दक्षिण भारत से गई हुई वर्ण-माला समयानुसार परिवर्तन होती हुई आज भी सुरक्षित है। यह वही भूमि है जहां पर कि आज की जनता मुसलमान होते हुए भी महाभारत पर आश्रित वायाङ्, अर्थात् छाया चित्रों को बहुत उत्सुकता के साथ देखने के लिए इकट्ठी होती है। अर्जुन इन खेलों में सदा ही अभिनेता रहता है [illegible] भारतीय परम्परा के अनुसार उसने उस कथानक में भाग लिया हो या न लिया हो। जावा निवासियों को रामायण और महाभारत पर बहुत गर्व है और वे भारतीयों से कहते हैं "रामायण और महाभारत की घटनाएं हमारे देश में घटी थीं, उनमें वर्णित राजा, राणियें, तथा अन्य पात्र हमारे देश में जन्मे थे, उनमें वर्णित नग-रियां हमारे देश की विलुप्त नगरियां हैं।" वे यह कभी मानने के लिए उद्यत नहीं कि रामायण और महा-भारत उनके यहां कहीं बाहर से आई हो क्योंकि वे उन के सभ्य बनने से लेकर आज तक उनका एकमात्र प्रमोद का साधन रहा है, इतना ही नहीं वे उनके जीवन के साथ इतना अधिक ओतप्रोत हैं जितना कि खानापीना, क्योंकि वे जीवन को आमोद और प्रमोद स्वरूप ही जानते हैं।

जावा भाषा की ऐतिहासिक दृष्टि से तीन अवस्थाएं हैं—(१) प्राचीन, (२) मध्यकालीन, और (३) अर्वाचीन। प्राचीन भाषा को प्रायः "कवि" कहा जाता है। वैदिक काल में कवि विद्वान् का पर्याय-वाची था और जिस काल में यह भारत से जावा में गया तब भी इसका यही अर्थ रहा होगा। कवि भाषा में अधिकांश ग्रन्थ संस्कृत के अनुवाद है अथवा उसकी परम्परा से पूर्णरूपेण ओतप्रोत हैं। यथा—कवि में आपको पूरा रामायण और महाभारत मिलेगा। कई स्थानों पर ये अनुवाद हैं और कई स्थलों में

सन्तेप। इनकी भाषा में संस्कृत की शब्दावली भरी पड़ी है और यदि कोई इसका कोष देखे तो वह कहेगा कि इस भाषा में बंगला की अपेक्षा भी अधिक संस्कृत शब्द हैं। भारतीय परम्परा पर आश्रित ग्रन्थों में नवीन विचार धारा का निर्माण भी हुआ है। अगस्त्य-पर्व एक इस प्रकार का ग्रन्थ है। भारत की आज सबसे अधिक पढ़ी जाने वाली धर्मकृति भगवद्गीता का अनुवाद भी "कवि" में मिलता है और यह वर्तमान भारतीय शाखा से बहुत प्राचीन है। कवि में संस्कृत के व्याकरण रचे गए और कोष भी, उदाहरणार्थ 'कृतभाषा,' 'अमरमाला' आदि। ये दोनों कोष अमरकोष की भांति विषयानुसार हैं। प्राचीनकाल में अमरकोष एशिया की लगभग प्रत्येक साहित्यिक-भाषा में अनूदित हुआ या अनुकरण किया गया। पिछली शती में अंग्रेजी में Roget का Thesaurus of English words and phrases भी इस पर आधृत है। कृत भाषा का अर्थ संस्कृत भाषा है। जावा में त्रिवर्ण शब्दों को संक्षिप्त करके द्विवर्ण बनाने की प्रवृत्ति बहुत प्रबल है। इसी प्रवृत्ति के कारण 'संस्कृत' शब्द का पहिला वर्ण लोप करके 'कृत' बना दिया गया।

मध्यकालीन जावा की भाषा प्राचीन से बहुत दूर नहीं गई थी—न हीं विचार धारा में और न हीं व्याकरण में। इस में पूर्ववत् संस्कृत प्रभावित ग्रन्थ लिखे जाते रहे।

अर्वाचीन जावा भाषा कई प्रकार की है। मुख्यतः उसके तीन भेद कहे जा सकते हैं—(१) 'क्रम', (२) पुस्तकों की भाषा जिसे 'आधुनिक कवि' कहते हैं, (३) और डोको। 'क्रम' शिष्ट और कुलीन लोगों की भाषा है। आधुनिक कवि साहित्य और कुछ अंश तक समाचारपत्र, पत्रिकाओं की भाषा है। डोको सर्व-साधारण बोलचाल में प्रयुक्त भाषा है। इन तीनों में ही संस्कृत शब्द मिलते हैं परन्तु पहिला और दूसरी में विशेषरूप से प्राधान्य है। प्राचीन काल में शिला लेख आदि संस्कृत में लिखे जाते और राजकाज का कार्य उसी में होता। राजवंश और राज भाओं में वही भाषा सामान्यरूप से प्रचलित थी। आधुनिक कवि प्राचीन कवि से विकसित हुई है और अपनी शैली, विचार, पदावलि आदि के लिए उसकी ओर देखती है। इसमें प्राचीन कवि का अंश बहुत है और सामान्य व्यक्ति इसे सरलता से नहीं समझ पाते। भारतीय प्रभाव के हेतु दार्शनिक और धार्मिक अभिरुचि स्पष्ट झलकती है यद्यपि उसमें आजकल की राजनैतिक मनोवृत्ति का आभास होने लगा है और कोई आश्चर्य नहीं कि यह आभास ही उसका प्रमुख रूप बन जाय। डोको सर्वसाधारण सामान्य की भाषा है। यहां पर यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि इण्डोनिशियाई भाषाओं में अपने से उच्च और आदरणीय व्यक्ति के लिए मानवाची पदावली इतनी अधिक और भिन्न है कि वह एक स्वतन्त्र भाषा ही कही जा सकती है। क्रम में इस प्रकार की मानवाची पदावली का समावेश है। डोको में इसका अभाव है यद्यपि डोको भाषी जब अपने से बड़े व्यक्ति के साथ बातचीत करेगा तब वह क्रम की मानवाची पदावली का प्रयोग करेगा ही। यथा डोको, में 'रूप' शब्द है, परन्तु क्रम में उसके लिए 'वर्नि' का प्रयोग करते हैं। जावा की लिपि, जैसा कि ऊपर कहा गया है, भारत से ली गई थी। जावा की देशीय भाषाओं में महा-प्राण वर्णों का अभाव है। वे संस्कृत शब्दों को लिखने के लिए प्रयोग होते हैं, और वह भी विरले। उदाहरणार्थ धनवाची अर्थ को वे 'अर्त' ('त' के साथ) लिखते हैं। संस्कृत शब्दों में ही आने के कारण महा-प्राण अक्षरों वाले पद आदरद्योतक बन गए। आजकल यदि किसी का सन्मान-पूर्वक नाम लिखना हो तो महाप्राण अक्षरों का अधिक प्रयोग करने का प्रयास किया जाता है—'द' के स्थान पर 'ध' 'क' के स्थान पर 'ख'।

किसी भाषा के अपभ्रंश से उसके प्रसार और प्रभाव की मात्रा का अनुमान किया जा सकता है। संस्कृत के अपभ्रष्ट शब्द जावा में बहुतायत से विद्यमान हैं। उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

'सए' अच्छा जो कि सत्य का रूपान्तर है। क्रम में ही 'सलीर' शरीर। प्राचीन कवि में 'मार्गि' मार्ग में। 'बाग्य' भाग्य, 'दिव्य' दिव्य, 'कार्य' काम, 'कुर्द' क्रोध, 'कुर्दक' क्रोध (क्रोध के साथ-क प्रत्यय लगाकर जैसे कि बाल के आगे-क लगा कर बालक)। डोको अथवा सामान्य भाषा में आग के अर्थ में 'गनि' शब्द बोला जाता है जो प्राचीन कवि में 'अगनि' था। प्राचीन कवि में संस्कृत के दूसरे पर्याय भी प्रयुक्त हुए हैं—अनल, दहन, वह्नि, पावक। वे 'क्रम' में भस्म के लिए 'बस्मि' चलता है। जहां पर कि आदर दिखलाना हो वहां पानी के लिए 'तोय' पद है। 'सुख' का जावा में महाप्राणाक्षरों के अभाव से 'सुक' रूप मिलता है।

संस्कृत के अपभ्रंशों के अतिरिक्त जावा में शब्दों को संस्कृत रूप देने की चेष्टा की गई है। उदाहरणार्थ–उन्हें 'रस' शब्द बहुत सरल और असंस्कृत प्रतीत हुआ इसका संस्कृत रूप 'रस्व' बना दिया गया। इसी प्रकार अनेकों शब्दों में 'व' अथवा 'य' वाला संयुक्ताक्षरमय पद बनाने की चेष्टा की गई है—मत्स्य का 'मत्स्व', विष का 'विस्य' अथवा 'विस्व'। संस्कृत करण में सब से अधिक 'र' का प्रयोग किया गया है। जैसे कि सूर्यवाची पतग को 'पतंग' कर दिया गया और प्राचीन कवि में सूर्य के लिए 'ह्यङ् प्रतंगपति' कई वार मिलता है। इसी प्रकार प्राचीन कवि में पश्चिम 'प्रचिम' सिद्धान्त का 'श्रीदान्त', पादप का 'प्रद५', जलधि का 'जलाद्रि'। इन में 'श्रीदान्त' और 'जलाद्रि' विशेष ध्यान देने योग्य हैं। ऊपर की मनोवृत्ति के विपरीत कभी २ संस्कृत शब्दों को जावा की भाषा के अनुकूल रूप देने के उपाय भी किए गए हैं—उदाहरणस्वरूप साहित्यिक जावा भाषा में दयिता का 'दयिन्ता' रूपान्तर (अनुनासिक जोड़ कर)।

इधर-उधर कुछ प्राचीन संस्कृत प्रयोग मिलते हैं जो हमारी आधुनिक भारतीय भाषाओं में प्राप्य नहीं। यथा—'इन्द्र' आंख की पुतली। 'इन्द्र' और 'इन्द्राणि' शब्द संस्कृत के योग ग्रन्थों में खब्बी और सज्जी आंखों की पुतलियों के लिए प्रयुक्त होते थे। इसी प्रकार जीविका के अर्थ में 'यात्रा' शब्द भी कुछ विचित्र है। क्रम में अग्निवाचक 'ब्म' अथवा 'ग्म' ब्रह्मा से व्युत्पन्न है। यह अर्थ नवीन प्रतीत होता है।

जावा की भाषा द्विवर्ण प्रिय है। यह प्रवृत्ति इसकी अपनी शब्द संहति के विकास में भी पाई जाती है। जैसे कि प्राचीन कवि में 'करातुआन्' का अर्थ राजकीय निवास स्थान था। रातु' राजा, क उपसर्ग और आन् प्रत्यय सप्तम्यर्थ थे। परन्तु आजकल यह द्विवर्ण 'क्रातोन्' में परिवर्तित हो गया। इसका प्रभाव भारतीय शब्दावली पर भी पड़ा है। संस्कृत 'अभिप्राय' का अर्वाचीन जावा भाषा में केवल 'प्राय' ही रह गया, कुसुम का 'सुम'। इस संक्षिप्ति की प्रवृत्ति के कारण अनेकों भारतीय शब्द, आज बिना ऐतिहासिक संतति जाने पहिचानने कठिन हो गए हैं। उदाहरण—तबे। 'तबे' क्षन्तव्य का रूपान्तर है। प्रारम्भिक 'क्षन्' और अन्तिम मकार का लोप करके 'तव्य' रह गया। मध्यकालीन जावा भाषा में 'य' का 'ए' हो गया और 'ब' और 'व' के अभेद से 'तबे' रूप बन गया। 'तबे' प्राचीन काल में अपने से ऊंचे व्यक्ति को संबोधित करते हुए कहा जाता था। परन्तु आजकल यह नमस्ते के स्थान पर प्रयोग होता है। यह जावा से हॉलण्ड में भी पहुँच गया है—शासकीय संबन्धों के कारण। वहां पर यह श्रमिकों, सैनिकों आदि निम्नवर्ग के लोगों में प्रचलित है।

भारतीय शब्दों के रूप परिवर्तन के अतिरिक्त अर्थपरिवर्तन भी हुए हैं। "मन्त्री" आधुनिक जावा में पुलीस के अर्थ में प्रयोग होता है। प्राचीनकाल में

भारत के समान वह मन्त्री अथवा सचिव वाचक था। परन्तु डच लोगों के आने के पश्चात् सामान्य जनता को शासन के साथ जो संपर्क होता था वह पुलीस से और यह कोई आश्चर्य नहीं कि वे इसे राजा के मन्त्री के साथ घड़बड़ा गए। इसी प्रकार "देस" का आधुनिक जावा भाषा में गांव अर्थ है। आधुनिक जावा की भाषा में "मिर्यंग" मेंडक को कहते हैं। यह "व्यंग" का विकृत रूप है। व्यंग का शब्दार्थ वि+अंग = "विविध वर्ग के अङ्गों वाला है।

शब्दों में कई बार मानव की स्मृतियां सुरक्षित रहती है और इनसे पुराणी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अवस्थाएं अनुमान की जा सकती हैं। भवनवाची "यसन्" इसका उज्ज्वल उदाहरण है। प्राचीन समय में मन्दिरों, स्तूपों, चरिडयों के बनाने से मनुष्यों को यज्ञ की प्राप्ति होती थी। साथ ही साथ महलों को छोड़ यदि विशाल और पक्के भवन उस समय बनते तो वे केवल उपासनागृह होते थे। यज्ञ के साधन होने के कारण उपासनागृहों को 'यसन्' कहा जाने लगा होगा और धीरे धीरे अर्थ विस्तार करते हुए वह प्रत्येक विशाल भवन के अर्थ में प्रयोग होने लगा। यह शब्द उस प्राचीन काल की स्मृति नवीन करा देता है जब कि जावा द्वीप के ग्राम ग्राम में विशाल मन्दिर बनाएं जाते थे, जिनका प्रोज्ज्वल प्रतिनिधि बोरोबड्डर का महान् स्तूप है जो आज के अभियन्ताओं के लिए भी आश्चर्य है।

राजाओं और सुल्तानों के नामों के पहिले 'दूलि' शब्द अंग्रेजी के Your Majesty के समान आदरार्थ जोड़ा जाता है। लोकतन्त्र के अभ्युदय के साथ-साथ अब यह 'है' शीघ्र ही 'था' में परिणत हो जायगा। हमारे यहां, भी पदरज और पदधूलि संमानार्थ प्रयुक्त हैं। प्राचीन भारतीय शिलालेखों में 'देवपाद' और प्राचीन जावा भाषा में 'पादुका' इसी अभिप्राय के द्योतक हैं।

आधुनिक जावा की भाषा अपनी नवीन जागृति के साथ-साथ नवीन शब्दों की आवश्यकता को अनुभव करने लगी है। यह आवश्यकता बहुत कुछ सीमा तक संस्कृत से पूरी की जा रही है। जैसे कि समाचार पत्र के लिए 'वार्ता शब्द। द्वीचक्र (Bicycle) के लिए 'पादयन्त्र'। मराठी में 'पैरगाड़ी' प्रयोग होता है। अंग्रेजी के Secretary के लिए 'सतियरहसिय' (संस्कृत में–सत्य–रहस्य) बनाया है जो सत्य में ही रहस्य रखता हो। संकृत से पारिभाषिक शब्दावली लेना कोई नई बात नहीं। यह प्राचीन परम्परा से चली आई है। प्राचीनकाल में व्याकरण, दर्शन आदि अर्थ पारिभाषिक विषयों के शब्द संस्कृत पर आश्रित होते थे अथवा उसे सीधे लिए जाते थे। आधुनिक जावा की व्याकरण से कुछ शब्द लेंगे— 'अक्सर' (उच्चारण बंगला के समान अक्सोरो), स्वर। द्वित्वकरण जावा की भाषा की विशिष्टता है। यह प्रकार का है। यदि प्रारम्भिक वर्ण समूह का द्वित्वकरण हो तो उसे जावा वैय्याकरण 'द्विपूर्व' और यदि अन्तिम वर्ण समूह का हो तो 'द्विवसान' (संस्कृत–द्वि–अवसान) कहते हैं।

इसके अतिरिक्त उनके आधुनिक ग्रन्थों के संस्कृत नाम रहते हैं। नवीनतम स्त्रियों की पत्रिका निकली है जिसका नाम 'वनिता' है। इसका अभी पहिला अंक ही प्रकाशित हुआ है। मुसलमान होते हुए भी वे संस्कृत शब्दों को अपना समझते हैं। एक कला पर पत्रिका है जिसका नाम 'विद्यावती' है। आज भी जावा के मुस्लिम संस्कृत नामों को कुलीनता का प्रतीक मानते हैं और उन पर गर्व होता है।

बहुत से इण्डोनीसिया के भौगोलिक नाम संस्कृत के हैं। यथा—सुकबूमि (शुद्धरूप–सुखभूमि), इन्द्रमायु, पूर्वोलिंगो (शु. रू. पूर्वलिंग—बंगला की भांति अ का जो उच्चारण होता है), मदुरा,नगर (बालि के नगर विशेष का नाम)। सिंगराज (शु. रू. सिंहराज बालि-

द्वीप की राजधानी) । इण्डोनीसिया में बहुत से नगरों के नाम 'कार्ता' शब्द जोड़ कर बनाए गए हैं । संस्कृत में इस प्रकार का कर्त प्रत्यय का विकृत शब्द (जैमिनी-या ब्राह्मण में, सामान्य रूप त्रिगर्त) पंजाब की कांगड़ा घाटी के लिए आता है । जावा में इसके अनेक उदाहरण हैं—

पूर्वकार्ता, सुरकार्ता, योग्यकार्ता, जाकार्ता । योग्यकार्ता (Jogyakarta डच में J का उच्चारण 'य' है) और जाकार्ता अपनी राजनैतिक स्थिति के कारण आज भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गए हैं । जाकार्ता में प्रारम्भिक 'जा' जय का रूपान्तर है ।

विश्वविख्यात कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर (Rabindranath Tagore) की जावा यात्रा की एक घटना स्मृति में जग उठती है । कवि एक सुल्तान के अतिथि थे । ये दोनों केवल दुभाषिए द्वारा ही वार्तालाप करते । एकबार सुल्तान कवि को प्राकृतिक दृश्य दिखाने ले जा रहे थे । उनकी मोटर जब एक नदी पार करने लगी तब सुलतान ने कवि को नदी के बहुत से पर्यायवाची सुनाए । इनमें अधि-कांश शब्द संस्कृत के थे । कवि प्रफुल्लित हो उठे और दोनों में अतीत की स्नेहमयी स्मृति जागृत हो उठी और कुछ क्षण पूर्व के विदेशी चिर परिचित मित्रों की भांति स्नेह सूत्रों से बन्ध गए ।

ऊपर से स्पष्ट है कि पुराने सांस्कृतिक संपर्क नवीन एक जगत् के निर्माण में कितने सहायक होंगे । मानव यदि अपनी खोई हुई शान्ति को खोजना चाहेगा तो उसे अनुभव होगा कि भंगुर व्यापारिक कूटनैतिक सम्बन्ध ही पर्याप्त नहीं अपितु उसे चिरस्थायी और निष्काम सांस्कृतिक सम्बन्धों की आवश्यकता भी है ।
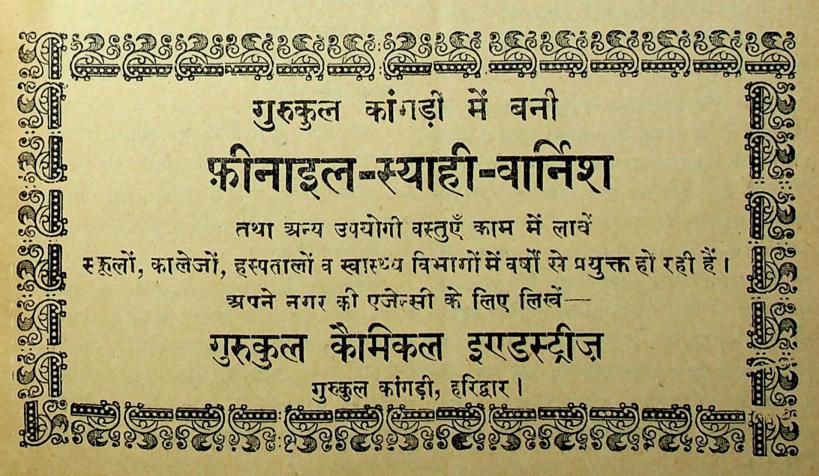
संकल्प शक्ति में कल्पना का समन्वय

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

विजयी कल्पना

संकल्प शक्ति ही हमारे मानसिक जगत् में सर्वोपरि शक्ति नहीं है। प्रायः लोग यही समझ बैठे हैं कि चरित्र का सब कुछ आधार यही है। वास्तव में संकल्प का स्थान महत्वपूर्ण अवश्य है किन्तु कल्पना शक्ति के मुकाबले में--जिसके द्वारा मानव अपने गुप्त मन का अथाह शक्तिभण्डार खोलता है—यह गौण ही है।

जब संकल्प (इच्छा शक्ति) और कल्पना शक्तियों में परस्पर संघर्ष होता है, तो निश्चय ही कल्पना की विजय होती है।

यह आवश्यक नहीं कि इन दो शक्तियों में पारस्परिक संघर्ष हो। जब यह संघर्ष होता है, तो बहुत सी शक्तियों का अपयय होता है, आन्तरिक अवस्था विक्षुब्ध हो उठती है, और मनोविकारों का उत्पात प्रारंभ होता है।

स्वस्थ और उन्नत मन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि कल्पना और संकल्प दोनों शक्तियां अपने अपने स्थान पर मज़बूती से कार्य करें। दोनों आपस में एक दूसरे की पूरक और एक दूसरे को शक्तियां प्रदान करने वाली हों। हम ऊंची बातों का, साहित्य, कला, व्यापार, में सफलता का निश्चय तो करें ही, साथ ही अपनी कल्पना द्वारा ऐसे शुभ्र चित्र भी निर्माण करें जिनसे हमारा संकल्प उत्तरोत्तर बढ़ता और दृढ़तर होता रहे। इसी प्रकार हमारा संकल्प हमारी कल्पना को उत्तरोत्तर शक्ति देता रहे। संकल्प में शक्ति है, पर उत्पादक कल्पना के साथ उसका समन्वय होने से उसमें आलोकिक शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

मान लीजिये कि हम यह चाहते हैं कि अपने व्यापार में सफल हों। पहले हमें दृढ़ संकल्प निर्माण करना चाहिये। अर्थात् अपने गुप्त मन में यह निर्देश देना चाहिये--"हम अपने मन वचन, कर्म द्वारा इस बात का संकल्प करते हैं कि अमुक व्यापार में सफलता लाभ करेंगे; कठिनाइयों से नहीं हटेंगे; स्वयं अपना काम अपने हाथ से करेंगे; हानि होने के हर पहलू को निकाल डालेंगे।"

इस संकल्प को पुष्ट करने के निमित्त आप अपनी कल्पना को भी सजग कीजिये। हमारी मानसिक शक्तियां हमारी सेविकाएँ हैं। कल्पना द्वारा आप ऐसा चित्र बनाइये जिसमें आप अपने व्यापार में पूर्ण सफलता का चित्र देखिये; समृद्धि और प्रतिष्ठा को आने दीजिए; अपने व्यक्तित्व को पुष्प के समान विकसित होता हुआ देखिये; अपनी परिस्थितियों को अपने पक्ष में झुकया हुआ देखिये।

आप जिन परिस्थितियों का निर्माण कल्पना में करते हैं, कालान्तर में ये ही मानस चित्र पुष्ट हो कर आपके सामने आते हैं। अतः सदैव अपनी कल्पना को विजय के लिए, सुस्वास्थ्य, सुख और प्रतिष्ठा के लिए सजग रखिये

संकल्पशक्ति में उत्पादन और तीव्रता तब आती है, जब यह मस्तिष्क के विचारों के साथ मिलकर चले। कल्पना उसका मार्ग दर्शन करती है। आकर्षक चित्र निर्माण कर उन्नत और परिपुष्ट जीवन की ओर लुभाती है। अभिलाषा को सर्वशक्तिमान बनाती है। भविष्य का पथ इसी के शुभ्र प्रकाश से आलोकित होता चलता है।

कल्पना और स्व-संकेत

संकल्प के संचालन में ठीक मार्ग का निर्देश हमारा स्व-संकेत किया करता है। स्व-संकेत और कल्पना में घनिष्ट सम्बन्ध है। स्व-संकेत हमें अपनी कल्पना का उपयोग करना सिखाता है हम अपने गुप्त मन को कल्पना से भरे हुए पुष्ट संकेत देते हैं और अपने संकल्प का अचल बनाते हैं। संकल्प और कल्पना के मध्य में स्व-संकेत का स्थान है।

यदि हम अपने गुप्त मन को शुद्ध सकेत दिया करें। उन संकेतों में उत्पादक कल्पना का सम्मिश्रण कर दिया करें तो हमारे संकल्प बड़े पुष्ट हो सकते हैं। जब आप अपने गुप्त मन को स्व-संकेत देते हैं; अर्थात् पुराने जीर्ण शीर्ण विचारों पर नये प्रेरणा भरे उच्चतम और पवित्रतम विचार डालते हैं, तो आप अपनी कल्पना और संकल्प दोनों शक्तियों का उपयोग करते हैं। कल्पना से नये मानसिक संस्थान का निर्माण करते हैं और संकल्प द्वारा उन्हें जमाते हैं। विरोधी विचार हमारे मार्ग में बाधा उपस्थित करते हैं किन्तु अपने संकल्प की दृढ़ता और उच्चतम जीवन की कल्पना से हम निरन्तर आगे चलते रहते हैं। इन्हीं दोनों शक्तियों द्वारा हमारी पुरानी आदतें नष्ट होकर नई आदतें बनती जाती हैं।

उत्पादक मानसिक प्रकृति

आशावाद और निराशावाद—दोनोंही हमारी इन शक्तियों के फल हैं। जिसमें आशाप्रद कल्पना का प्रभुत्व है, वह आत्मविश्वास में वृद्धि करता है। जिसमें निराशावाद है, वह विसंधात्मक प्रवृत्तियों का दास है। निराशावाद में हमारी कल्पना संकल्प की विरोधिनी होकर प्रकट होती है। निराशावादी की कल्पना उसकी शक्तियों को निरन्तर पंगु किया करती है। आशावादी कल्पना के द्वारा अपनी महत्ता के भव्य चित्र निर्माण करता है; निराशावादी उसी महान् शक्ति को अपनी उत्पादक शक्तियों के ह्रास में लगाता है; उसकी प्राथमिक शक्ति मारी जाती है, वह जीवन का अंधकारमय पक्ष ही देखता है।

सम्पूर्ण संसार हमारे व्यक्तिगत मानसिक जगत् अपने निजी दृष्टिकोण, और आन्तरिक मनः स्थिति पर अवलम्बित है। अन्तः वृत्ति का निर्माण हमारे पूर्व सकलित अनुभवों और भावी कल्पना से बनता है। संचित अनुभवों की राशि पर कल्पना अपना रंग चढ़ाती है। हमारा दृष्टिकोण कल्पना के अच्छे या बुरे प्रयोग पर ही अवलम्बित रहता है।

हमें अपने दृष्टिकोण में बड़ा सतर्क रहने की आवश्यकता है। हम मानते हैं कि संसार में अप्रिय और कटु अनुभव होते हैं; भौतिक अवस्थाएं कभी कभी असह्य हो जाती है। ये व्यक्तित्व पर अपना प्रभाव डालती हैं। परिस्थितियाँ भी ऐसी होती हैं जिनसे मनुष्य स्वस्थ नहीं रह पाता किन्तु फिर भी कल्पना द्वारा आन्तरिक मनः स्थितियां बदली जा सकती हैं।

अनेक व्यक्ति केवल अपनी मानसिक मरोड़, ऊटपटांग सोचने, अन्धकामय बाजू को देखने के कारण परेशान हैं। उन्हें यह निशेधार्थक प्रकृति जल्दी से जल्दी बदल डालनी चाहिए।

निशेधात्मक मानसिक प्रकृति मनुष्य की भारी विघातनी है। यह कल्पना का दुष्प्रयोग है। इससे संसय, भय और आत्मविश्वास की न्यूनता उत्पन्न होती है। यह उत्पादक और स्वभाविक शक्ति को सम्पूर्णतः नष्ट कर देती है। निसंधात्मक मन दोषपूर्ण है।

उत्पादक और निश्चयात्मक प्रकृति सबसे बड़ा वरदान है, साक्षात् कल्पवृक्ष है। मन को सर्जन कल्पना द्वारा उत्पादक रखकर सर्वोच्च उत्पादक शक्तियां अपने अन्दर विकसित की जा सकती हैं।

अपनी गुप्त मानसिक शक्तियों—संकल्प तथा कल्पना को पुनः उपरोक्त वैज्ञानिक ढंग से संगठित करने की आवश्यकता है। ये गुप्त शक्तियां आपके

कीट जगत के शस्त्रास्त्र

श्री राधाकृष्ण कौशिक एम. एस .सी.

एक जीव के लिए दो ही बातें सबसे अधिक महत्व रखती हैं। सर्वप्रथम अस्तित्व और द्वितिय रक्षा। इन दोनों ही ध्येय की पूर्ती के लिए जीव-जन्तुओं ने अनेकों उपायों का आश्रय लिया हुआ है। यहां तक स्वार्थ सिद्धि के लिए छल-छिद्र, मायाजाल, धोखाधड़ी और आकषर्ण अथवा आंतक सब ही शस्त्रों का प्रयोग करते है। यदि नैसर्गिक वातावरण का सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक प्राणी ने इसविश्व में किस भली प्रकार प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित किया हुआ है और अपने हितों की रक्षा के साधन जुटाये हुये हैं; जिनके तात्पर्य अत्यन्त ही गूढ़ एवमं विचारोद्दीप हैं। कुछ प्राणी तो प्रथम श्रेणी के दौड़ने वाले हैं, कुछ शिथिल परन्तु सुरक्षा के लिये कठोर कवच से पूर्ण, कुछ अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित हैं, कुछ छल-कपट का प्रयोग करते हैं, और कुछ रक्षोप-वर्णों (protective colours) के द्वार अपने प्राणों की रक्षा करते हैं।

जन्तु-जगत में रक्षा के सबसे आश्चर्यजनक साधन कीटों (insects) में पाये जाते हैं, जिनमें से कुछ एक का निम्न पंक्तियों में वर्णन करने का प्रयास किया गया है।

पक्ष (wings) तथा देह-रूपान्तर (metamorphosis) के आधार पर कीट वर्ग अनेकों गणों (orders) में विभाजित किया गया है। उन में से केवल चार प्रमुख गणों का ही यहां विचार करेगें।

(१) ऋजु-पक्षा (Orthoptera)- झींगुर आदि।

(२) कञ्चुक-पक्षा (Coleoptera)- मकोड़े आदि।

(३) सामि-पक्षा (Hemiptera)- खटमल आदि।

(४) शल्क-पक्षा (Lepidoptera)- इल्ली, तितली आदि।

सम्भवतः ऋजु-पक्षा में सबसे अद्भुत व चकित कर देने वाले पत्र व तृण कीट (Leaf and stick insects) हैं, जिनकी वेषभूषा और वर्ण प्राकृतिक पत्ती व टहनी के इतने सादृष्य है कि किसी प्रकार का कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। पत्र-कीट का आकार व रंग पत्ती की सही प्रतिलिपि है और सूक्ष्म से सूक्ष्म नसों का जाल व डंठल भी उसी के समान हैं। सादृश्यता केवल यहीं तक सीमित नहीं है, प्रत्युत पत्र-कीट के पैरों का बनाव भी इस प्रकार का है कि वे छोटे छोटे नव-पल्लव व कोंपल से प्रतीत होते हैं। तृण कीट (stick insect) निश्चल दशा में एक शुष्क शाखा ही दृष्टिगोचर होता है। टहनी के समान इसमें भी पर्व (nodes) और पर्व-सन्धि (internodes) दिखाई देते हैं। यह अनुकरण इतना सही

पृष्ठ सात का शेष–

मस्तिष्क में सुप्त-अविकसित पड़ी हुई है। आप उनसे काम लेते इसलिए वे अभि अविकसित ही हैं। जिस क्षण आप इनका प्रयोग करना प्रारम्भ करेंगे, उसी क्षण वे उठ कर आपकी सहायता में सलग्न हो जायेंगी। कल्पना संकल्प के साथ उचित समन्वय द्वारा ही सुख, संतोष, समृद्धि, ऐक्य, प्रेम, दया, सहानुभूति के वृक्ष पल्लिवित और पुष्पित किये जा सकते हैं। शुभ और सात्विक कल्पना संकल्प से मिल कर ऐसा मानसिक भाव उत्पन्न करती है जिसका हमारी कीर्ति से, हमारी सफलता से घनिष्ट सम्बन्ध है।

होता है कि अच्छे अच्छों की आँखें धोखा खा जाती हैं। राम जी का घोड़ा अर्थात भक्त-टिड्डा (praying mantis) अचल दशा में अपनी अग्रिम शाखाओं को इस प्रकार सिकोड़े रहता है मानों हाथ जोड़ कर प्रार्थना में लीन हो। परन्तु यह सब छल है। किसी पतिंगे के समीप आते ही सरोते जैसे अगले पैर शिकार को पकड़ने का काम करते हैं और इस प्रकार इनकी वास्तविकता का प्रदर्शन हो जाता है। अग्रिम शाखा के सरोतों में आरी के समान दाँते होते हैं जो कि अन्य छोटे मोटे जन्तुओं को अपने शिकंजे में पकड़ने का काम देते हैं। यथार्थ में यह प्राकृतिक सरोते कीट जगत के सबसे भयानक रक्तरंजक शस्त्र हैं, और यदि इनके स्वामी पत्ती, टहनी आदि का रूप धारण कर लेते हैं तो इनकी भयंकरता के परिणाम का महत्व और भी अधिक हो जाता है, यह स्वांग इतना स्वाभाविक होता है कि योग्य और अनुभवी संग्रह-कर्ता भी धोखा खा जाते हैं। रूप-परिवर्तन और प्रकृति के साथ सादृश्यता स्थापन की चरम सीमा पत्रकीट और तृण-कीट में पहुँच गयी है, जिनका पहिले वर्णन किया जा चुका है। बहुत से टिड्डों का रङ्ग रेत से मिलता जुलता होता है जिसके कारण घूमते फिरते भी वे निगाह में नहीं आते। इसी प्रकार अन्य टिड्डों और झिंगुरों में भी रक्षोप-वर्ण (protective colouration) होते हैं। टिड्डों के अन्तिम पैरों में यह विशेषता पायी जाती है कि शत्रु के पञ्जे छूते ही उडान मार कर बच जाते हैं। वर्ण-लाभ के उपरान्त झींगुर अति-उत्तम ध्वनि उद्दीपक अगों (stridulating organs) से भी परिपूर्ण हैं, जिनके द्वारा अविरल तीक्ष्ण स्वर उत्पन्न करके शत्रुओं को यह घोषणा करने का सफल प्रयत्न करते हैं कि वे उनकी तुलना में कहीं अधिक शक्तिशाली हैं।

वर्ण सादृश्य (Colour adaptation) वर्ण सादृश्य के अनेकों दृष्टान्त कञ्चुक पक्षा गण में भी पाये जाते हैं इनमें से प्राकृतिक दरारों, कूड़ा-कर्कट अथवा वृक्षों की छाल में रहने वाले भृगों (beetles) का नैसर्गिकनिवास स्थान के अनुकूल माद स्याह अर्थात मटियाला रंग होता है जिसके कारण ऐसा वर्ण-सादृश्य स्थापित हो जाता कि वे दिखलाई नहीं पड़ते। अन्य भृगों में रंग गहरा हरा होता है, जिससे वे पत्तों की हरियाली में छुप जाते हैं। इस गण में मांद से मांद रंग से लेकर चटकीले से चटकीले रंग पाये जाते हैं, यहां तक कि पारिस्थिकी-वेत्ता (Ecolagists) विविध प्रकार के वर्ण-विन्यास का पूर्णतया स्पष्टीकरण करने में असमर्थ हैं। वे केवल कुछ एक सरल-वर्णों के उद्देश्य समझने के प्रयत्न कर सके हैं। रक्षोप-वर्णों के उपरान्त भृगों ने रक्षा के अन्य साधन जुटाए हुए हैं। भृगों के दृढ़-कवच, कठोर पक्ष-आवरण (elytra) व सरोते जैसे जबड़े न केवल उनकी रक्षा ही करते हैं अपितु शत्रु पर आक्रमण करने के समय शस्त्रों का भी काम देते हैं। वीविल्स (Wee vils) नामक भृग का सिर थुथड़ी (Snout) अथवा शुंड (Proboscis) की मानिन्द प्रवर्धित होता है। यह आक्रमण के समय शस्त्र की तरह प्रयोग में नहीं लिया जाता परन्तु एक छिद्रक (Borer) की प्रकार फलों तथा वृक्षों की छाल में छेद करने का काम देता है। विभिन्न जातियों में शुंड का आकार भांति-भांति का होता है, जिसके कारण ये जन्तु एक दूसरे से और भी अधिक भयानक और खूंखार प्रतीत होते हैं। गैंडा-भृंग (Rhinoceros beetle) में गैंडे के अनुकूल एक मध्यस्थ शुंड होती है, जिसके द्वारा यह शत्रुओं को अति समीप आने पर आपत्ति आ जाने का प्राबोधन करता रहता है।

भ्रमर आदि भृंग ध्वनि उत्पन्न करके अपनी रक्षा करते हैं। ... भृंग (Screetch beetle) केवल

छूजाने से तीव्र ध्वनि उत्पन्न कर अपने प्रतिरोध को व्यक्त करता है।

अपकर्षक-गंध(Offensve sdour) इस प्रकार के भी भृंग हैं जिनमें शरीर से सुगध अथवा दुर्गंध निकालने की क्षमता होती है। सुगंध प्रेमिका को आकर्षित करने के लिए और दुर्गंध शत्रुओं को दूर रखने में सहायक होती है। भू-भृंग (Ground beetle) देखने में सुन्दर लगता है परन्तु पकड़ते ही अपने मुखारबिन्द से दुर्गंधित द्रव की पिचकारी छोड़ देता है। इसी प्रकार दैत्यअश्व (Devil coach horse) नामक भृंग भी तीव्र दुर्गंध छोड़ कर अपनी रक्षा करता है। सम्भवतः समर-क्षेत्र में विषैली "गैसों" का प्रयोग इसी आधार पर हो। इससे भी उच्च-काटि के रक्षा-साधन के लिए कुछ कीट प्रकाश फैलाते है। जुगनू व पट-बीजना (Fire-fly) इसी श्रेणी के कीट हैं जो रात्रि के अंधकार में जगमगाते फिरते हैं। ये शायद ही कभी दुश्मन के चंगुल में फँसते हो क्योंकि यकायक प्रकाश होने से शत्रु चकाचोंध हो जाता है और इतने में ये अंधकार में फिर विलीन हो जाते हैं।

इनके उपरान्त भृंग-जाति में अन्य प्रकार के रक्षा-साधन भी पाये जाते हैं। स्पर्श-सूत्र (Antennae) और अवयव (limbs) इत्यादि विभिन्न आकार के होते हैं जिनके कारण ये कीड़े-मकोड़े बड़े भयानक प्रतीत होते हैं।

सामि-पक्षा(Hemiptera)गण के अनेकों शाखा जीवी (arboreal) कीट रक्षोप-वर्ण से सुसज्जित है जिन के कारण ये अपने नैसर्गिक-निवास से एक रंग होकर अपनी रक्षा करते हैं और ऐसी परिस्थिति में ये शत्रु की निगाह से बच जाते हैं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस गण में रक्षोप-वर्ण के बनिस्पत अपकर्षक-गंध (repulsive odour) रक्षा के दृष्टि कोण से कहीं अधिक महत्व रखती है। कई सामि-पक्षा पूर्णतया परोपजीवी (total parasite) हैं और जन्तु अथवा वनस्पति यूप पर निर्भर करते हैं। वनस्पति-जू (plantlice) और खटमल इसी श्रेणी में आते हैं। परोपजीवी को भोजन प्राप्त के लिए कोई कठिन परिश्रम अथवा आपत्ति का सामना नहीं करना पड़ता। खाद्य-सामग्री इतनी आसानी से प्राप्त होने के कारण उड़ने की क्षमता और साधन अनावश्यक है, इसलिए पक्षों का भी ह्रास है।

तितलियों का छल-छिद्रः— रक्षा के सब से आश्चर्यजनक साधन, अनुकृति (mimicry) तथा छल-छिद्र का व्यवहार शल्क-पक्षा (Lepidoptera) अर्थात तितली-गण में पाया जाता है। जो तितलियाँ व शलभ (molts) रक्षा के साधनों से वंचित हैं वे प्रायः प्रथम श्रेणी के उड़ाका हैं और जो आलस्य से केवल पंख ही फड़फड़ाती रहती हैं, उन्हें प्रकृति ने रक्षा के अन्य उपाय प्रदान किये हुये हैं। प्रकृति ने इन तितलियों को सैकड़ों प्रकार के वर्ण-विन्यास से सुसज्जित किया हुआ है और प्रत्येक वर्ण-विनयास के पीछे उसके महत्व की कहानी छिपी है। केलीमा (Kaltima) नामक पर्ण-चित्र पतंग (leaf butterfly)) शाख पर बैठे हुए एक पत्ती के अनुरूप दिखाई देता है, यहां तक कि सूक्ष्म से सूक्ष्म रचना में भी पत्ती के सदृश्य प्रतीत होता है। और पत्ती की तरह उसमें वृन्त (Stalk) और नाड़ी जाल बिछा होता है। कुछ तितलियों के पक्ष का पिछला भाग पूंछ के आकार की तरह प्रवर्धित होता है और उसके सिरों पर नेत्राकार बने होते हैं। पक्षी इस भाग को सिर समझकर इनको पकड़ने के लिए चोंच मारते हैं परन्तु तितली बिना किसी विशेष टहनी के उड़ जाती है। केवल पूंछ का कुछ भाग अवश्य टूट जाता है। तितलियों के प्रायः पृष्ठ पार्श्व ही विभिन्न वर्णों से सुसज्जित और आकर्षक होते हैं और निम्न पार्श्व का माद रंग होता है। उड़ते समय पृष्ठ-पार्श्व के सुन्दर रंग ही पक्षियों को तितलियों के पीछे पड़ने के लिए लालायित करते हैं, परन्तु जैसे ही

चोंच मारने की चेष्टा करते हैं वैसे ही तितली पत्तों में बैठ जाती है जिससे केवल भद्दरंग निम्न पार्श्व ही निगाह में आता है। इस दशा में मांद रंग के कारण तितली पेड़-पत्तियों में ऐसी मिल जाती है कि शत्रु की आंखे धोखा खाजाती हैं और तितली पकड़ाई में नहीं आती। तितलियों की कुछ जातियां अत्यन्त ही आक्रमणकारी और अस्वाद होती हैं, तथा उनके शरीर से एक तीव्र दुर्गंध सदैव निकलती रहती हैं जिसके कारण छिपकली और पक्षीगण दोनों ही उनको निकृष्ट समझ कर त्याग देती हैं। परन्तु कुछ सुस्वाद तितलियाँ भी अपनी रक्षा के लिए इन "निकृष्ट" तितलियों के रूपरंग व हावभाव का अनुकरण कर लेती हैं। स्वार्थ के लिए इस प्रकार के छल-कपट व "अनुकृति" (mimiery) के द्वारा ये अपनी रक्षा करने में सफल मनोरथ होती हैं।

प्राकृतिक देन का यदि सूक्ष्म विवेचन किया जाये तो ज्ञात होगा कि प्रत्येक विशेषता उसके स्वामी के लिए कितनी महत्वपूर्ण है, और उनको भोजन प्राप्ति तथा रक्षा के लिए कितना उपयुक्त बना देती है। उपरोक्त वर्णन में केवल गिने चुने कीटों के दृष्टान्त लिए गये हैं परन्तु इनसे भी अधिक आश्चर्यजनक देन प्राणी जगत के अन्य जीवों में पाये जाते हैं। जन्तुओं के आकार-प्रकार वर्ण-विन्यास व शरीर-रचना आदि संसार में केवल सुन्दरता व आकर्षण बढ़ाने के लिए ही नहीं है, प्रत्युत उनकी रक्षा तथा अन्य स्वार्थ सिद्धि के साधन भी हैं।

सोवियत संघ में नींबू-जाति के फलों की खेती

श्री त्सित्सिन

सोवियत संघ में समाजवादी कृषि की बदौलत नींबू जाति के फलों की खेती हो रही है अक्टूबर की महती समाजवादी क्रांति के पश्चात इस प्रकार की खेती का अधिक महत्व बढ़ गया है और अब तो यह सामूहिक कृषिशाला तथा स्टेट कृषिशाला की आमदनी का एक साधन बन गयी है। क्रांति से पूर्व रूस में नींबू के किस्म के पेड़ उगाने के लिए केवल जहां-तहां छिटपुट प्रयत्न हुए थे परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से इनका कुछ भी महत्व नहीं था। उन दिनों केवल जार्जिया के जमीदरों ने अपने बगीचों में लगभग १५० हेक्टर (१ हेक्टर =२.४७ एकड़) भूमि में इस प्रकार के पेड़ लगाये थे जबकि आजकल २० हजार हेक्टर भूमि में इस किस्म के पेड़ लगे हुए हैं। यह सर्व विदित सत्य है कि नींबू, सन्तरे तथा इसी जाति के अन्य फलों में चीनी, एसिड (तेजाब) तथा अन्य पौष्टिक द्रव्य अधिकता से पाये जाते हैं। यही कारण है कि लोग इन फलों को इतना चाहते हैं।

सोवियत सरकार तथा स्वयं जेनरलिस्मो स्टालिन ने नींबू जाति के पौधों की खेती करने की ओर बहुत ही ध्यान दिया है। अल्पकाल में ही अनेकों बड़ी मशीनों द्वारा परिचालित नींबू जाति के फलों की नर्सरियां बना दी गई हैं। नींबू जाति के पेड़ लगाने के लिए सोवियत सरकार सामूहिक कृषकों को नियमित रूप से सहायता प्रदान करती है; लम्बी अवधि के लिए आर्थिक सहायता, लगाने के लिए अच्छे अच्छे पौधे ट्रैक्टर, कृषि करने की मशीने तथा कृषि सम्बन्धी टेक्निकल शिक्षा।

सोवियत संघ में नींबू जाति के पेड़ लगाने में विज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अनेकों अनुसन्धान शालाओं तथा प्रयोगशालाओं ने मिट्टी एवं जलवायु की स्थिति का अध्ययन किया है तथा पौधों की ऐग्रोटेक्नीक, उत्पत्ति, बनावट तथा रसायनिक तत्वों से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं पर विचार किया है। इन पौधों को बीमारी तथा कीड़ों से रक्षा करने की समस्या पर भी विचार किया गया है।

इस प्रकार के पौधे गर्मी बहुत पसन्द करते हैं, अतः उनके विकास के लिए अर्ध ग्रीष्म कटिबन्धीय जलवायु की आवश्यकता है। यही कारण है कि काकेशस के कृष्णसागर तटवर्ती जनपदों में जहाँ औसत सालाना तापमान १४—१५ सी. (सेंटीग्रेड) है ये इतनी अधिकता से उगते हैं। तो भी कभी २ जब शीत आंधी चलती है तो इन पौधों को बहुत क्षति पहुँच जाती है। इसलिए सोवियत वैज्ञानिकों तथा इस क्षेत्र के कार्यकर्ताओं का एक मुख्य काम इस किस्म के नींबू के पौधे तैयार करना था जिनमें शीत सहन करने की शक्ति हो। सोवियत अन्वेषकों ने संसार के समस्त भागों से अनेक प्रकार के नींबू, संतरे तथा नींबू जाति के पौधे इकट्ठे किये तथा ट्रांस काकेशिया के विभिन्न भौगोलिक कटिबंधों में उन पर अनेक प्रकार के वैज्ञानिक प्रयोग किए। इस प्रकार बहुत वर्षों के वैज्ञानिक अन्वेषण के पश्चात उक्त प्रकार का (शीत की परवाह नहीं करने वाला) पौधा तैयार हुआ और उसे सामुहिक तथा स्टेट कृषिशालाओं में उगाया गया।

इसके साथ २ सोवियत संघ में पौधे उगाने वाले मिचुरिन प्रणाली के आधार पर अनेक प्रकार के स्वदेशी नींबू जाति के पौधे उगाने लगे। उदाहरण के लिए टैंजेरीन (एक प्रकार की नींबू) और संतरे

को मिलाकर, नींबू और टैंजेरीन को मिलाकर, जंगली नींबू तथा घरेलू नींबू को मिलाकर बिल्कुल नये किस्म के नींबू जाति के पौधे तैयार किये गये हैं। इस प्रकार के हजारों दोगले पौधे नर्सरियों में लगाये गये हैं तथा इनमें से बहुत फलने भी लगे हैं।

सोवियत संघ में "दो मंजिले" नींबू जाति के पौधे उगाने की प्रणाली ईजाद की गयी है। प्रथम मंजिल में ऐसे नींबू लगाये गये हैं जो शीत सहन करने की क्षमता रखते हैं पर कोमल एवं नाजुक संतरे और नींबू दूसरे मंजिल में हैं जो पहिले मंजिल के पौधे में ग्राफ्ट (कलम) किये हुए हैं। इस प्रकार दूसरे मंजिल के नींबू और संतरों की रक्षा पाला और बर्फ से होती है तथा हर पेड़ के फलों की फसल में वृद्धि होती है।

प्रगतिशील सोवियत वैज्ञानिक नींबू जाति के पौधे उगाने की ऐग्रोटेक्निकल प्रणाली को बिल्कुल दुरुस्त बनाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। प्रकृति को बदलने वाले महान् रूसी वैज्ञानिक इवान मिचुरिन के बनाये हुये मार्ग पर नींबू जाति के पौधों की खेती उत्तर की ओर फैलाने के उद्देश्य से सोवियत वैज्ञानिक नींबू लगाने के नये तरीके ईजाद कर रहे हैं: उदाहरण के लिये मिचुरिनवादी प्रयोगकर्ताओं ने बिल्कुल छोटे २ नींबू के पौधे जिनकी ऊंचाई मुश्किल से१ -१-५ मीटर होगी तैयार किये हैं। उन्होंने अपने प्रयोगों द्वारा दिखला दिया है कि यदि जाड़े के दिनों में इन पौधों को अच्छी तरह ढक दिया जाये तो वे-१५ सेंटीग्रेड तक पाला अच्छी तरह बर्दाश्त कर सकते हैं। साथ ही यदि इन ठिगने २ नींबू के पौधों को सटासटा कर लगाया जाए तो फी हेक्टर (१ हेक्टर = २.४७ एकड) तीन लाख फल पैदा होंगे। सब से मजेदार (आश्चर्यजनक ?) बात तो यह है कि सोवियत वैज्ञानिक ने एक ऐसा नींबू जाति का पौधा निकाला है जो बेल की तरह जमीन पर फैलता है। जाड़ों में बोरी और बर्फ से ढक कर पाले से इसकी रक्षा की जा सकती है। इस प्रकार के नींबू के पौधों के फल साधारण नींबू के फलों से २-३ हफ्ते पहिले पकते हैं तथ प्रति हेक्टर २ लाख फल देते हैं।

नगरों और गांवों में लोगों ने अपने घरों की दीवारों से बिल्कुल सटे नींबू के पौधे लगाये हैं। दीवाल के बिल्कुल पास होने से दीवाल से जो गर्मी निकती है वह पाले से पौधों की रक्षा करती है।

ओडेस्सा के बोटानिकल गार्डन ने थालों में नींबू जाति के पौधे उगाने के सब से बेहतरीन और उपयोगी तरीका निकाला है। दक्षिणी यक्रेन में ०-१०० सेंटीमीटर गहरे सुरक्षित थालों में लगाये हुये नींबू -२८ सेंटीग्रेड तक पाला बर्दाश्त कर सकते हैं और ६-७ वर्षों के ही अन्दर पेड़ पीछे ७०-८० फल देने लगते हैं।

इसके सिवाय घर के अन्दर टब और गमलों में नींबू लगाना बिल्कुल साधारण बात हो गई है। यदि गमले के नींबू पर अच्छी तरह ध्यान दिया जाये तो इनके फल दक्षिण प्रदेश के उत्कृष्ट से उत्कृष्ट नींबू से किसी तरह घटिया नहीं होते।

इवान मिचुरिन ने पाला बर्दाश्त करने वाले विभिन्न प्रकार के नींबू जाति के पौधे तैयार करने की सम्भावना की ओर संकेत किया था। मिचुरिन ने लिखा है कि: "शनै शनै, एक मात्र सही तरीका अर्थात दोगले किस्म के पौधों के दो तीन पुश्तों को ट्रेन करके पाले (तुषार) बर्दाश्त करने वाले अर्धग्रीष्म कटिबन्धीय पौधे लगाना बिल्कुल सम्भव है।"

सोवियत संघ के पौधे उगाने वाले द० प्रदेश के पौधों की किस्म बदलने तथा उन्हें उत्तर प्रदेश में उगाने में महान् रूसी वैज्ञानिक मिचुरिन की शिक्षा कार्यान्वित कर रहे हैं। मिचुरिन प्रणाली के द्वारा आज सोवियत संघ के उन भागों में नींबू जाति के पौधे उगाये जा रहे हैं जिसकी कोई कल्पना भी पहिले

नहीं कर सकता था।

जे० वी० स्तालिन की पहल की बदौलत सोवियत सरकार ने १९४९ में बहुत बड़े पैमाने पर जाजिया के कृष्णसागरीय तट क्रीमिया, क्रास्नोदर प्रदेश, आजरवेजान, दागेस्तान, मध्यएशिया तथा यूक्रेन और मोल्डाविया के ८० प्रदेशों में नींबू जाति के पौधे लगाने के लिए अपना ऐतिहासिक निश्चय किया। विगत वर्ष इस क्षेत्रों में चार लाख से अधिक नींबू के पौधे लगाये गये। इस साल एक निर्दिष्ट योजना के अनुसार पिछले साल की अपेक्षा दूने पौधे लगाये जायेंगे।

उत्तर की ओर नींबू जाति के पौधों का विस्तार करने के लिये सोवियत सरकार व्यापक पमाने पर सहायता दे रही है। कृषि बैंक बिल्कुल मामूली शर्तों पर सामूहिक कृषिशालाओं को नींबू जाति के पौधे लगाने के लिये दीर्घकालीन ऋण देता है। जिन क्षेत्रों में नींबू जाति के पौधे लगाये गये हैं अथवा लगाये जा रहे हैं उन्हें पांच साल के लिये कर से मुक्त कर दिया गया है। सोवियत संघ के विज्ञान मन्दिर तथा लेनिन कृषि विज्ञान कालेज की अध्यक्षता में बीस से अधिक अनुसंधानशालाएं नींबू जाति के पौधे नये क्षेत्रों में उगाने के सम्बन्ध में अध्ययन कर रही है। नींबू जाति के पौधे उगाने के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के विशेषज्ञ तैयार किये जा रहे हैं।

बहुत ही व्यापक पैमाने पर सोवियत संघ के नये जनपदों में नींबू, संतरे तथा नींबू जाति के पौधे लगाना स्तालिन योजना का मुख्य अंग है जो सोवियत भूमि की प्रकृति को बिल्कुल परिवर्तित कर देने के लिये बनायी गयी है।

सोवियत संघ में नींबू और संतरों के बाग लगाकर उसे हरा भरा चुहचुहाता उद्यान बना देना एक मात्र समाजवादी आर्थिकतंत्र, सोवियत सरकार की भरपूर सहायता, प्रगतिशील मिचुरिन विज्ञान तथा महान् स्तालिन द्वारा उपेक्षित कृषकवर्ग के निःस्वार्थ श्रम के ही द्वारा सम्भव हुआ है।

युरोप में भी गुरुकुल खोले जायँ

मैं गुरुकुल के आश्चर्यजनक शांतवातावरण तथा उत्तम कार्य से जो कि मैंने यहाँ देखा बड़ा प्रभावित हुआ। क्या ही अच्छा हो कि ऐसी संस्थाऐं योरोप में हों।

२५. ३. ५०,

हरबट ट्रिची, हैकेयूटसी—६७, वी न्यू १८।

पूर्व और पश्चिम की श्रेष्ठ सभ्यता का समन्वय

मुझे यह विशाल शिक्षा क्षेत्र देखने की उत्कट इच्छा थी। मैंने उसे आज पूर्ण किया। मुझे यह कहते हर्ष होता है कि जो कुछ मैंने देखा उससे पूर्णतया संतुष्ट हूँ। इस बड़े विश्व-विद्यालय में पूर्वीय और पश्चिमी श्रेष्ठ सभ्यता का सम्मिश्रण है। ब्रह्मचारी सादा, शांत एवं स्वतंत्र जीवन में रहते हुवे स्वस्थ और प्रसन्न मालूम हुए। आयुर्वेद फार्मेसी आधुनिक ढंग पर चल रही है। मेरी यह प्रबल अभिलाशा है कि गुरुकुल विश्व-विद्यालय के संचालक एक शिल्प महाविद्यालय भी आरम्भ करें।

२०. ५. ५०,

चन्द्रभान अग्रवाल, जज हाई कोर्ट, इलाहाबाद।

समाज-उद्धारक प्रेमचन्द

श्री महेन्द्र रायजादा साहित्यरत्न, एम. ए.

प्रेमचन्द भारतीय समाज के एक युग प्रवर्तक साहित्यकार थे। युग की चीत्कार को उन्होंने भली-प्रकार सुना और युग की मांग के अनुरूप ही साहित्य प्रस्तुत किया। साहित्य और समाज के ऐतिहासिक-विकास पर दृष्टिपात करने पर हमें कभी-कभी ऐसे स्थल भी उपलब्ध होते हैं जब कि साहित्य की धारा का समाज की धारा से विच्छेद हो जाता है। परन्तु यह सम्बन्ध विच्छेद अधिक काल तक नहीं चल सकता। अतएव जब जब ऐसा होता है तब तब कुछ प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार प्रादुर्भूत होकर समाज और साहित्य के बीच की खाई को पूरकर दोनों का सम्बन्ध पुनः स्थापित कर देते हैं। प्रेमचन्दजी का आविर्भाव काल कुछ इसी प्रकार का था। प्रेमचन्द से पूर्व का साहित्य विलासिता की भावना से दबकर कुछ पिछड़ गया था। ब्रिटिश राजतन्त्र काल में उस काल का साहित्य कुछ राजरोग से ग्रसित होकर संकुचित हो गया था। फिर पूँजीवाद के उत्कर्ष ने परिस्थितियां परिवर्तित कर दीं। अब साहित्यकार के समक्ष दो मार्ग थे---या तो इने गने पूँजीपतियों का समर्थन करे अन्यथा जीवन की अनेक विषमताओं में जकड़े हुये उस विशाल जन समूह को अपनायें। प्रेमचन्द ने जीवन की विषमताओं की अनुभूति में अपने आप को तपाया तथा आर्तमानवों के करुणाक्रन्दन का अभिनन्दन किया। उन्होंने पूंजीपतियों के विषयानन्द की व्यञ्जना न करते हुए दलित, पीड़ित एवं शोषित मानवों की मूक वाणी को अपने साहित्य द्वारा मुखरित किया।

प्रेमचन्द ने अपने समाज की जरजरावस्था का विस्तृत अनुभव किया। रूढ़ीवादी भारतीय समाज अंधविश्वास अशिक्षा तथा सामाजिक कुरीतियों का शिकार बना हुआ था। पाशविकता हमारे समाज का गला घोंट रही थी। कृषकों, श्रमजीवियों, विधवाओं एवं वेश्याओं आदि को हमारा समाज अनेक शतियों से तिरस्कृत एवं अपमानित करता चला आ रहा है, प्रेमचन्द ने इन्हीं को अपने साहित्यासन पर प्रतिष्ठित किया। उन्होंने भारतीय समाज का ऐसा यथार्थ एव सजीव चित्र अंकित किया जिसने कि हमारे समाज की आंखें खोल दीं। उन्होंने हमारे समाज का अवस्था का दिग्दर्शन मात्र ही नहीं कराया वरन् उन कठिनाइयों का समाधान बतलाया। मेरे विचार से प्रेमचन्द के उपन्यासों एवं कठिनाइयों का उद्देश्य यह है कि वे हमारे समाज को अंधकार के गर्त से निकाल कर प्रकाशमय पथ पर अग्रसर करना चाहते हैं। उनके आदर्शोन्मुख—यथार्थवाद का यही तात्पर्य दीख पड़ता है।

प्रेमचन्द का प्रथम उपन्यास है 'प्रेमा' और अन्तिम 'गोदान'। उनके प्रथम उपन्यास से लेकर अन्तिम उपन्यास तक का अध्ययन करने पर हम यह बात देखते हैं कि उनका भारतीय समाज का अनुभव अत्यन्त विस्तृत था। हमारे समाज की तत्कालीन समस्याओं को उन्होंने अपने साहित्य (उपन्यासों) का विषय बनाया है। 'प्रेमा' प्रेमचन्द के उर्दू 'हमखुरमा व हमसवाब' का अनुवाद है। इसमें लेखक ने विधवा-समस्या को लिया है। विधवाओं के प्रति सहानुभूति दरसाते हुये विधवा विवाह के रूप में इस समस्या का समाधान किया गया है। उनके दूसरे उपन्यास 'सेवासदन' में दहेज की कुप्रथा के दुष्परिणाम का मार्मिक चित्रण है। 'प्रेमाश्रम की रचना कृषकों एव जमीदारों की समस्या को लेकर की गई है। इस समस्या का लेखक ने उपन्यास के अन्तिम भाग में समाधान भी सुझाया है। वास्तव में प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' में भारतीय कृषकों के लिये एक नव जागृति

का संदेश लेकर सामने आते हैं। गांधीजी की आदर्श-भारतीय-ग्रामों की कल्पना को हम प्रेमाश्रम के रूप में साकार होता हुआ पाते हैं। पर खेद है कि प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' की कल्पना आज भी हमारे देश में साकार न हो पायी और न एक भी जमीदार मायाशंकर ही बन सका। यथार्थवादी होते हुये भी 'प्रेमाश्रम' सुधारवादी भावना से ओत-प्रोत है।

'रंगभूमि' के अन्दर हमारे देश की राजनीतिक समस्याओं का सुन्दर समावेश किया गया है। सन् १६२० में देश में सत्याग्रह संग्राम छिड़ा तथा विदेशी शासन के प्रति विद्रोह की अग्नि भड़क उठी। जनता में गांधीजी के अहिंसात्मक-सत्याग्रह का खूब प्रचार हो रहा था। 'रंगभूमि' में हम इसी गांधीवादी विचार-धारा का पोषण एवं समावेश पाते हैं। इसके पश्चात् श्री प्रेमचन्द ने हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य की गुत्थी को भी 'काया कल्प' की रचना द्वारा सुलझाने का प्रयत्न किया। 'काया कल्प' के पश्चात् 'निर्मला' और 'प्रतिज्ञा' दो छोटे छोटे उपन्यास सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखे गये हैं। 'निर्मला' में अधिक अवस्था में विवाह करने का दुष्परिणाम चित्रित किया गया है। 'गबन' के भीतर मानव जीवन की दुर्बलताओं एवं असमर्थताओं का सजीव चित्र देखने को मिलता है। मनुष्य परिस्थितिओं के हाथ एक खिलौना मात्र है। 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द फिर देश के स्वातन्त्र युद्ध, पुलिस के अत्याचार कृषकों का शोषण तथा भारतीय समाज के वीरतापूर्ण कृत्यों का चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

निश्चय ही प्रेमचन्द सुधारवादी थे। उन्होंने अपने स्वप्न को जब फलीभूत होते हुये नहीं देखा तब अन्त में वे 'गोदान' लेकर हमारे समक्ष आये और भारतीय समाज का नग्न परिचय कराया। प्रस्तुत उपन्यास में एक भारतीय कृषक के जीवन की करुण कहानी है। होरी किसानों का एक प्रतिनिधि है। वह भारतीय कृषकों का एक जीता जागता चित्र है। वह अनेक विषमताओं में जकड़ा हुआ एक वास्तविक किसान है जिसमें गुण और दोष दोनों वर्तमान हैं। दूसरी ओर नागरिकों के प्रतिनिधियों के रूप में हैं मि० खन्ना और प्रो० मेहता। खन्ना पक्का शोषक हैं। 'गोदान' में भारतीय ग्रामीण जीवन और नागरिक जीवन की विषमता का यथार्थ चित्र देखने को मिलता है।

श्री प्रेमचन्द के उपन्यासों का अध्ययन करने पर एक बात यह भी दिखलाई देती है कि वे भारतीय संस्कृति और सभ्यता के पोषक थे। प्रेमचन्द इस बात से भली प्रकार परिचित थे कि इस समय हमारे देश में पश्चिमी एवं पूर्वी संस्कृतियों में एक संघर्ष चल रहा है। भारतीय समाज की उन्नति के लि[ए] वे पाश्चात्य संस्कृति को अनुपयुक्त समझते हैं। विशे[ष] रूप से भारतीय शिक्षित नारियों का पाश्चात्य संस्कृ[ति] का अन्धानुसरण उन्हें पसन्द न था। स्त्री समा[ज] को समानाधिकार दिलाने के पक्ष में होते हुये [भी] वे भारतीय नारी को पश्चिम की नारी की भ[ांति] उच्छृंखल बना देना नहीं चाहते थे। 'गोदान' [में] प्रेमचन्द ने फारवर्ड मालती को श्रीमती मालती ब[ना]कर भारतीय संस्कृति को पाश्चात्य-संस्कृति से श्रे[ष्ठ] ठहराया है। प्रेमचन्द ने पाश्चात्य-संस्कृति में [जो] अच्छाइयाँ हैं उन्हें ग्रहण करने तथा जो अन्[य] बुराइयां हैं उन्हें त्यागने का आदेश दिया है।

प्रेमचन्द के लगभग सभी उपन्यासों की क[था] थोड़े बहुत अन्तर के साथ मिलती जुलती सी [है।] कारण यह है कि वे बार-बार भारतीय समाज [का] नग्न चित्र उपस्थित कर हमारे देशवासियों के [हृ]दयों को जागरित करना चाहते हैं। उनके विभि[न्न] उपन्यासों में भारतीय समाज का विविध रूप से स[जी]व चित्र देखने को मिलता है। आर्त मानवों एवं दलि[त] कृषकों के प्रति उन्होंने अपनी गहन सहानुभूति प्रदर्शि[त]

की है। विशेषरूप से निम्न एवं मध्यम वर्ग का उन्होंने अत्यन्त सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द ने राष्ट्र की गम्भीर एवं व्यापक समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए मनोवैज्ञानिक ढंग से विषद व्याख्या की है। उनके पात्र लगभग सभी क्षेत्रों एवं वर्गों से लिये गये हैं। प्रेमचन्द की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने युग का साथ दिया है एवं युग की मांग की पूर्ति की है। आर्त मानवों का पक्ष ग्रहण कर उन्होंने पाशविकता एवं आततताइयों के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलन्द की है।

प्रेमचन्द को कुछ लोग प्रचारक भले ही कहें, पर निश्चय ही वे समाज का उद्धार करने वाले एक बहुत बड़े समाज सुधारक थे। भारतीय समाज में व्याप्त आज जो अनेक विषमतायें हैं उनका उन्होंने अच्छी प्रकार अनुभव किया तथा उनके बिदूरीकरण के निमित्त साहित्य सृष्टि की। किसी वाद विशेष के चक्कर में न पड़कर उन्होंने चिरन्तन साहित्य का प्रणयन किया। यही कारण है कि आदर्शवादी और यथार्थवादी दोनों ही प्रेमचन्द को अपना-अपना बतलाते हैं। आज भी हम देखते हैं कि हमारा समाज अनेक विषमताओं का शिकार बना हुआ है, जब कि गण-राज्य की स्थापना हो चुकी है। सौभाग्य से हिन्दी आज जन-जन की भाषा बन राष्ट्रभाषा के आसन पर प्रतिष्ठित हो चुकी है। आज भी हमें हिन्दी भाषा में प्रेमचन्द जैसे समाज उद्धारक एवं मार्गदर्शक की आवश्यकता है।

आत्म-संयम

श्री मां

हम एक जंगली घोड़े को तो वश में कर सकते हैं, परन्तु एक बाघ के मुंह में लगाम नहीं लगा सकते।

यह क्यों? क्योंकि बाघ के स्वभाव के अन्दर एक ऐसी क्रूरता होती है जो किसी प्रकार सुधारी नहीं जा सकती। इसी कारण हम उससे किसी भी अच्छे व्यवहार की आशा नहीं करते और उसे मार डालने के लिए विवश हो जाते हैं जिससे वह हमें कई हानि न पहुँचा सके।

इसके विपरीत, एक जंगली घोड़े को, प्रारम्भ में वह चाहे कितना उद्दंड और अड़ियल क्यों न हो, थोड़े से धैर्य द्वारा वश में किया जा सकता है। कुछ समय बाद वह हमारी आज्ञा का पालन करना तथा हमसे प्रेम करना भी सीख जाता है। और अंत में तो वह लगाम चढ़वाते वक्त अपना मुंह ही आगे बढ़ा देता है।

मनुष्यों में भी कुछ विद्रोही और उद्दण्ड प्रवृत्तियाँ तथा इच्छाएँ होती हैं, पर ऐसा कभी शायद ही होता हो कि वे बाघ की भांति वश में न लाई जा सकें। अधिकांश में तो ये जंगली घोड़े के सदृश होती हैं और उनके सुधार के लिए आवश्यकता होती है केवल एक लगाम की। और सबसे बढ़िया लगाम वह है जो मनुष्य स्वयं अपनी प्रवृतियों पर लगाता है। इसे ही हम आत्मसंयम कहते हैं।

हुसैन पैगम्बर मोहम्मद के नाती थे। उनके रहने का मकान खूब आलीशान था, थैलियाँ अशर्फियों से भरी थीं। उनको नाराज करना एक धनी मनुष्य को नाराज करना था। और धनी का क्रोध बहुत भयंकर होता है।

एक दिन की बात है एक दास खौलते हुए पानी का बर्तन लिए हुसैन के पास से गुजरा। वे उस समय भोजन कर रहे थे दुर्भाग्यवश थोड़ा सा पानी उछल कर पैगम्बर के नाती के ऊपर गिर पड़ा। वे क्रोध से चिल्ला उठे।

दास घुटने टेककर बैठ गया। उसका मन उस समय इतना स्वस्थ और संयम था कि मौके पर उसे कुरान की एक आयत स्मरण हो आई।

"स्वर्ग उन लोगों के लिए है जो अपने क्रोध को वश में रखते हैं," उसने कहा।

"मैं क्रोधित नहीं हूं," हुसैन जो इन शब्दों का अर्थ भलीभांति समझते थे बीच में ही बोल उठे।

"और उन लोगों के लिए है जो मनुष्यों को क्षमा करते हैं," दास बोलता गया।

"मैं तुझे क्षमा करता हूं," हुसैन बोले।

"क्योंकि भगवान् दयालु व्यक्तियों को प्यार करते हैं," दास ने अंत में कहा।

इस बातचीत के समाप्त होते न होते हुसैन का सारा गुस्सा काफूर हो गया। इन्होंने अनुभव किया कि उनका हृदय अत्यन्त कोमल हो उठा है। दास को उठाते हुए उन्होंने उससे कहा—"ले, ये चार सौ दिरहम ले, तू आज से स्वतन्त्र है।"

इस प्रकार हुसैन ने अपने उतावले मन पर—जो बेशक उदार भी था। लगाम लगानी सीखी? उनका स्वभाव जो न तो बुरा था और न ही कठोर इस योग्य था कि वश में किया जा सके।

इसलिए, बालकों, यदि तुम्हारे माता पिता या तुम्हारे अध्यापक कभी तुम्हें अपने स्वभाव को वश में करने के लिए कहते हैं तो इसलिए नहीं कि उनके उन

के विचार में तुम्हारे छोटे बड़े दोष किसी भी तरह सुधारे नहीं जा सकते, बल्कि इसलिए कि तुम्हारा वेगी और उतावला मन उस अच्छी नसल के बछड़े के समान हैं जिसको लगाम की जरूरत है।

एक दरिद्र झोंपड़ी एक राजमहल में से तुम अपने रहने के लिए किसे पसन्द करोगे ? निःसन्देह महल को।

एक कहानी है कि जब हज़रत मोहम्मद स्वर्ग देखने के लिए गये तो वहाँ उन्होंने कुछ ऊँचाई पर बने हुए कई बड़े बड़े महल देखे। उनकी सुन्दरता के सामने सारे देश की सुन्दरता फीकी पड़ रही थी।

"ऐ जिब्राइल" मोहम्मद ने उस देवदूत से जो उनको स्वर्ग दिखा रहा था पूछा, "ये महल किन लोगों के लिए बनाये गये हैं ?"

देवदूत ने उत्तर दिया—"उन लोगों के लिए जो अपने क्रोध को वश में रखते हैं और अपने को हानि पहुँचने वालों को भी क्षमा कनरा जानते हैं।"

सत्य ही, शांत और द्वेषरहित मन एक वास्तविक महल के समान है। पर यह बात एक आवेशयुक्त और प्रतिहिंसा से परिपूर्ण मन के बारे में नहीं कही जा सकती। हमारा मन हमारा घर है। इस को हम अपनी इच्छानुसार स्वच्छ, शांत और मधुर बना सकते हैं—ऐसा घर जो सुरीले और तालमय स्वरों से भरा है। पर हम यदि चाहें तो इसको दुःखप्रद शब्दों और बेसुरी चिल्लाहटों से भरी हुई एक भयावह और अंधेरी गुफा भी बना सकते हैं।

उत्तर फ्रांस के एक शहर में रहनेवाले एक लड़के से मेरा परिचय था। वह लड़का था तो मन का बड़ा सरल पर उसका हृदय बड़ा जोशीला था। क्रोध में आने के लिए वह मानों सदैव तैयार बैठा रहता था।

एक दिन मैंने उससे कहा—"जरा सोच कर बताओ तो, तुम्हारे जैसे हृष्टपुष्ट लड़के के लिए कौन-सी बात अधिक कठिन है-थप्पड़ के बदले थप्पड़ लगाना मारनेवाले साथी के मुंह पर घूंसा जमा देना या ठीक उसी समय अपनी मुट्ठी को जेब में डाल लेना ?"

"अपनी मुट्ठी को जेब में डाल लेना", उसने उत्तर दिया।

"अच्छा, तो अब यह बताओ कि तुम्हारे जैसे साहसी लड़के के लिए सबसे आसान काम करना उचित है या, उसके विपरीत, सबसे कठिन काम ?"

एक मिनट सोचकर कुछ हिचकिचाते हुए उसने उत्तर दिया- "सबसे कठिन काम।"

"बहुत ठीक, अब अगली बार जब ऐसा अवसर आए तो यही करने का यत्न करना।"

उसके कुछ दिन बाद वह युवक एक दिन मेरे पास आया और उसने मुझे समुचित गर्व के साथ बताया कि वह "सबसे कठिन कार्य" करने में सफल हुआ है।

उसने कहा, "कारखाने में मेरे साथ काम करने वाले मेरे एक साथी ने जो अपने बुरे स्वभाव के लिए प्रसिद्ध हैं क्रोध में आकर मुझे मार दिया क्योंकि वह जानता था कि मैं साधारणतया क्षमा नहीं किया करता और मेरे बाहुओं में बल भी है, वह अपनी रक्षा करने के लिए तैयार हो गया। ठीक उसी समय मुझे जो बात आपने सिखाई थी स्मरण हो आई। वैसा करना जितना मैंने सोचा था उससे कहीं अधिक कठिन लगा, पर मैंने अपनी मुट्ठी जेब में डाल ही ली। जसे ही मैंने ऐसा किया मेरा गुस्सा न जाने कहां गायब हो गया। उसका स्थान मेरे उस साथी के प्रति दया ने ले लिया। जब मैंने उसकी ओर अपना हाथ बढ़ा दिया। इससे उसको इतना आश्चर्य हुआ कि एक क्षण तो वह मुंह बाये मेरी ओर ताकता रहा, एक शब्द भी न बोल सका; फिर

वह शीघ्रता से मेरे हाथ की ओर लपका, उसको जोर से दबाया और एक दम पिघलाकर बोला आज से तुम जो चाहो मुझ से करा सकते हो। मैं सदा के लिए तुम्हारा मित्र बन गया हूँ।

उस लड़के ने अपने क्रोध को उसी तरह वश में कर लिया था जैसे कि खलीफा हुसैन ने किया था।

परन्तु इसके अतिरिक्त कई और चीजें हैं जिनको वश में करने की जरूरत है।

अरब देश के कवि अल-कोजई रेगिस्तान में रहा करते थे। एक दिन उन्हें नाबा का एक सुन्दर पेड़ दिखाई पड़ा। उन्होंने उसकी टहनियों से एक धनुष और कई तीर बनाए।

रात के समय वे जंगली गदहों का शिकार करने के लिए निकले। शीघ्र ही उन्हें गदहों के एक झुन्ड की पदचाप सुनाई पड़ी। उन्होने एक तीर छोड़ा। पर उन्होंने धनुष की डोरी इतने जोर से खींची थी कि तीर झुन्ड के एक जानवर के शरीर को भेदता हुआ पास की एक चट्टान से जा टकराया। चट्टान से तीर के टकराने की आवाज़ सुन कर अल-कोजई ने सोचा कि उसका वार निष्फल गया है। अब उन्होंने दूसरा तीर छोड़ा, और इस बार भी वह एक जानवर के शरीर में से पार होता हुआ चट्टान में जा लगा। अल-कोजई ने अब भी यही समझा कि निशाना चूक गया। उन्होंने इसी तरह तीसरा, चौथा, पाचवां तीर चलाया और प्रत्येक बार उन्होंने वही आवाज सुनी। अब तो क्रोध में आकर उन्होंने अपना धनुष ही तोड़ डाला।

अगले दिन सबेरा होने पर उन्होंने पांचो गदहों को चट्टान के पास मरा हुआ पाया।

यदि उनमें कुछ भी धैर्य होता, यदि उन्होंने दिन निकलने तक की प्रतीक्षा की होती तो अपनी शांति के साथ वे अपने धनुष को भी बचा लेते।

एक नवयुवक ब्रह्मचारी बड़ा चतुर था और वह स्वयं अपने इस गुण को जानता था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह अपनी योग्यताओं को अधिक से अधिक बढ़ाए जिससे सर्वत्र उसकी प्रशंसा हो। इस के लिए उसने एक के बाद एक कई देशों की यात्रा की।

एक तीर बनाने वाले के यहां उसने तीर बनाना सीखा।

कुछ दूर आगे जाकर उसने नाव बनाना तथा उसे खेना सीखा।

एक जगह उसने गृह-निर्माण की कला सीखी।

फिर एक और जगह उसने कई और कलाएं सीखीं।

इस प्रकार वह सोलह देशों का पर्यटन कर वापिस घर लौटा और बड़े गर्व के साथ कहने लगा, "इस पृथ्वी पर मेरे समान चतुर और दूसरा मनुष्य कौन है?"

एक दिन भगवान् बुद्ध ने उस ब्रह्मचारी को देखा और उन्होंने सोचा कि इसको उस कला की शिक्षा देनी चाहिए जो उन सबसे, जो उसने अब तक सीखी है, अधिक महान हो। वे एक बूढ़े श्रमण का रूप धारण करके उस नवयुवक के पास गए। उनके हाथ में एक भिक्षापात्र था।

"तुम कौन हो?" ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया।

"मैं अपने शरीर को वश में रखने वाला एक मनुष्य हूँ।"

"तुम क्या कहना चाहते हो?"

"एक धनुर्वेदी तीर चलाना जानता है" बुद्ध ने उत्तर दिया, "एक नाविक नाव खेता है; एक शिल्पी अपनी देख-रेख में मकान बनवाता है; पर एक ज्ञानी स्वयं अपने ऊपर शासन करता है।"

धरती की छाया

श्री सुरेन्द्र शैलज

धरती चुपचाप बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ती जा रही थी, जब चलते चलते उसे युग हो गए तो एक दिन अचानक ही उसने अपने पीछे की ओर घूम कर नज़र डाली। जो कुछ उसने देखा उससे वह कुछ घबरा सी गई। एक बहुत लम्बी, गहरी काली छाया न जाने कब से उसका पीछा कर रही थी............

'तुम इतनी काली और डरावनी क्यों हो?' धरती ने छाया से पूछा, फिर कहा 'देखती हो मेरी छाती के आभूषण ये हिमशृंग और ऊंचे महल जिनकी चोटियों को सूर्य की पहली किरण चूमती है, और ये विस्तृत लहराते सागर देखे हैं जिनकी चंचल लहरों पर चन्द्रमा अपनी असंख्य रूपहली किरणें न्योछावर करता है, तुम इतनी काली क्यों? डर लगता है तुम्हें देख कर। बुरा न मानो, मेरा तुम्हारा साथ क्या ठीक है?'

छाया ने सुन कर एक मन्द मुस्कराहट छोड़ी जो धरती के मुख पर उत्सुकता बना कर छा गई, फिर उसने कहा—

'जब तुम्हारी ऊंची अट्टालिकाओं के भव्य, जगमगाते सभा भवन में बैठ कर दुनियां के चोटी के राजनीतिज्ञ समझौते की शर्तें तय कर रहे होते हैं उसी समय मेरे अंधेरे आंचल में उन शर्तों को तोड़ कर उन्हीं के अनुचर दूसरे देश की सीमा में घुस आते हैं और निर्दोष मूक जनता को सङ्गीन की धार की आज़मायश का साधन बनाते हैं। जब सुनहली धूप तुम्हारे वक्ष पर खेलते हुए गोलमटोल शिशुओं के गुलाबी गाल चूमती है तब मेरे काले आंचल के नीचे असंख्य भ्रूण हत्यायें होती हैं और शिशुकंकाल नष्ट किए जाते हैं। जब तुम्हारे गर्व से उन्नत वक्ष पर दुग्ध फुहार की तरह बरसती हुई चांदनी में तुम्हारे लाड़ले युवक युवती यौवन के मद में सराबोर होते हैं तभी मेरी गहरी कोख में तुमसे ठुकराये असंख्य अभागे गन्दी नालियों का पानी पी कर अपनी भयानक प्यास बुझाने का असफल प्रयत्न करते हैं।'

छाया ज़रा देर के लिए चुप हुई फिर बोली—

'तुम जितनी ऊंची हो मैं उतनी ही लम्बी हूँ, तुम जितनी ठोस हो मैं उतनी ही गहरी हूँ, और तुम जितनी ही उज्ज्वल हो मैं उतनी ही काली हूँ, मेरा तुम्हारा साथ सदा रहेगा, वह ज़रा मुस्कराई और फिर बोली, आखिर को मैं हूँ तो तुम्हारी ही।

[पृष्ठ बीस का शेष]

"सो किस तरह'

"यदि कोई उसकी प्रशंसा करे तो उसका मन चंचल नहीं होता; यदि कोई उसकी निंदा करे तो भी उसका मन स्थिर रहता है; वह सर्वहित के महानियम के अनुसार कर्म करता है और इस प्रकार वह सदा शांति में निवास करता है।'

अच्छे बच्चो! तुम भी अपने ऊपर शासन करना सीखो। और अगर अपने स्वभाव को वश में करने के लिये तुम्हें कठोर लगाम भी लगाने की आवश्यकता पड़े तो शिकायत मत करो।

एक चंचल युवा घोड़ा जो धीरे-धीरे संयत हो जायगा उस मूक काठ के घोड़े से कहीं अच्छा है क्योंकि सदा वैसा ही रहता है और जिस पर केवल हँसीखेल के लिये ही लगाम चढ़ाई जाती है।

ब्रह्मचर्य

श्री अरविन्द

अपने अन्दर की शक्ति को बढ़ाना तथा उसे ऐसे कामों में लगाना जिनसे व्यक्ति को या मनुष्य-जाति को लाभ पहुँचे-इसके लिये सबसे पहली और सबसे आवश्यक शर्त है ब्रह्मचर्यपालन । समस्त मानवीय शक्ति का एक स्थूल आधार होता है। यूरोपीय जड़वाद में दोष यह है कि वह आधार को ही सब कुछ मानता है और इसे ही उद्गम समझने की भूल करता है। जीवन और शक्ति का उद्गम जड़प्राकृतिक नहीं, आध्यात्मिक है; किन्तु जिस आधार वा नींव पर स्थित होकर जीवन और शक्ति कर्म करते हैं वह भौतिक है। प्राचीन हिन्दुओं ने उद्गम और आधार के, कारण और प्रतिष्ठा के, सत्ता के उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव के, इस भेद को स्पष्ट रूप में अनुभव किया था। पृथ्वी का स्थूल जड़तत्त्व है प्रतिष्ठा, ब्रह्म या आत्मा है कारण। भौतिक को आध्यात्मिक तक ऊँचा ले जाना ही ब्रह्मचर्य है, कारण, जो शक्ति एक से प्रारम्भ करके दूसरे को पैदा करती है वह इन दोनों के मिलन से ही बढ़ती और परिपूर्ण बनती है।

यह दार्शनिक सिद्धान्त है। इसे कार्यान्वित करने के लिये शक्ति के मानवीय आधार की शारीरिक तथा मानसिक गहन का ठीक-ठीक ज्ञान होना आवश्यक है। मूल भौतिक इकाई है रेतस्, जिसमें तेज, अर्थात् मनुष्य का भीतरी ताप, प्रकाश और विद्युत् अंतर्लीन और गुप्त है। समस्त शक्ति रेतस् में अंतर्निहित है। इस शक्ति को हम चाहें तो स्थूल रूप में व्यय कर सकते हैं या हम इसे सुरक्षित रख सकते हैं। समस्त विषय-विकार, वासना, कामनाशक्ति को स्थूल रूप में उदान्तीकृत सूक्ष्मतर रूप में शरीर से बाहर उंडेलकर नष्ट कर देती है। दुराचार इसे स्थूल रूप में बाहर फेंकता है; दुर्विचार सूक्ष्म रूप में। दोनों की अवस्थाओं में अपव्यय होता है, और मन, वाणी तथा शरीर सभी अपवित्र होते हैं। दूसरी ओर, सब प्रकार का आत्म-संयम रेतस् की शक्ति को सुरक्षित रखता है और संरक्षण से सदा ही शक्ति की वृद्धि होती है। परन्तु स्थूल शरीर की आवश्यकता परिमित हैं और अतएव इस प्रचुर शक्ति में सब कुछ फालतू बच रहती है जिसे स्थूल से भिन्न किसी और काम में लगाना आवश्यक है। प्राचीन सिद्धान्त के अनुसार रेतस् है जल जो प्रकाश, ताप और विद्युत् से, एक शब्द में, तेज से पूर्ण है। रेतस् की अतिरिक्त मात्रा पहले ताप या तपस् में बदलती है जो फिर संपूर्ण देह में शक्ति संचारित करता है; और इसी कारण आत्म-संयम और कठोर जीवनचर्या के सभी रूपों को तप या तपस्या कहा जाता है, क्योंकि उनसे ताप या उत्तेजना पैदा होती है जो प्रबल कर्मण्यता और सफलता का मूल स्रोत है; दूसरे. यह परिणत होती है वास्तविक तेज में, प्रकाश और बल में जो ज्ञानमात्र का उद्गम है; तीसरे यह विद्युत् के रूप में परिवर्तित होती है जो बौद्धिक या शारीरिक सभी शक्तिशाली कर्मों के मूल में विद्यमान है। और फिर विद्युत् में निलीन है ओज या प्राणशक्ति, अर्थात् आकाश से उद्भूत होने वाली आद्या शक्ति। रेतस् जल से तप, तेज और विद्युत् के रूप में तथा विद्युत् से ओज के रूप में परिष्कृत होता हुआ शरीर को भौतिक शक्ति, स्फूर्ति और बुद्धि से भर देता है और अपने ओज-आत्मक अंतिम रूप में मस्तिष्क में आरोहण कर उसे आद्या शक्ति से अनुप्राणित करता है। यह आद्या शक्ति जड़तत्त्व का अत्यन्त परिशुद्ध रूप है और आत्मा के निकटतम है। यह ओज है; यह आध्यात्मिक शक्ति या वीर्य उत्पन्न करता है। इसी से मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान, आध्यात्मिक प्रेम एवं श्रद्धा और आध्यात्मिक बल प्राप्त करता है।

साहित्य, समाज के उत्थान का सोपान है

ठाकुर रामसिंह

आज का संसार सौ वर्ष पहले वाले संसार से अधिक उन्नत, अधिक धनवान् और अधिक सभ्य है। हमारे चार-पांच पीढ़ी पहले वाले पूर्वज आज के इस संसार की कल्पना स्वप्न में भी नहीं कर सकते थे। उनके समय का जीवन आज न रहा। मनुष्य ने सभी क्षेत्रों में उन्नति की है। इस परिवर्तनशील संसार में प्रतिदिन परिवर्तन होता रहता है, जिस प्रकार हमारा शरीर परिवर्तन में कई रंग बदलता है। उसी प्रकार संसार भी मनुष्य के मस्तिष्क-विचार के साथ साथ अपना रूप बदला करता है। जो जीवन का ढंग आज है वह न तो कल था और न कल रहेगा। आज जिस वस्तु को हम जिस दृष्टि से देखते हैं वह कल किसी नवीन वस्तु से अपदस्थ हो सकती है। कपड़ों के नये-नये डिजाइन प्रतिदिन तैयार होते हैं। और जनता प्राचीन को छोड़कर नवीन की ओर आकृष्ट होती है। इस प्रतिक्षण होने वाले परिवर्तन का मुख्य कारण यही है कि मानव-मस्तिष्क प्रत्येक समय काम करता रहता है। कोई न कोई नवीन बात होती रहती है। यही मस्तिष्क मनुष्य को समाज की सीढ़ी पर चढ़ने में सहायता देता है।

जिस प्रकार मनुष्य पैदा होने के बाद दिन प्रतिदिन बढ़ता है और धीरे-धीरे विविध अवस्थाओं का अनुभव करता हुआ जीवन में संघर्ष करता है उसी प्रकार मनुष्य का सामाजिक जीवन भी धीरे धीरे विकसित होता है और प्रतिक्षण उन्नति करता हुआ चरम की ओर अग्रसर होता है। यदि हम मनुष्य की उत्पत्ति और विकास का सारा इतिहास यहां लेखबद्ध करना चाहें तो लेख लम्बा हो जायगा। यहां यह कहना पर्याप्त होगा कि मानव के बनने में सैंकड़ों वर्ष लगे हैं। जैसे जैसे मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़ती गईं, वैसे ही वैसे उन्हें पूर्ण करने के लिये नये उपाय भी निकालने पड़े। "आवश्यकता आविष्कार की जननी है" वाली कहावत के अनुसार धीरे-धीरे अपनी उत्तरोत्तर आवश्यकताओं की वृद्धि के साथ-साथ विचार और मनन से नवीन नवीन जीवनोपयोगी सिद्धान्तों एवं उपायों को बनाने लगे। जब कभी भी हम पर कोई आपत्ति आती है तो हम एकान्त में बैठकर एकाग्र ध्यान से अपने मस्तिष्क के विचारों की चक्की जोर से चलाते हैं, इसी कारण मनुष्य के सामाजिक जीवन के साथ उसकी मस्तिष्क शक्ति भी अधिक बलवती और फलवती होने लगी। परिपक्व सभ्यता तभी कही जा सकती है, जब कि मनुष्य किसी बाह्य अंकुश के बिना अपने और दूसरे के अधिकारों को समान समझे और मनुष्य प्राणी मात्र को अपने आत्मा की उपमा से समझने लग जाँय। किन्तु मनुष्य बिना मस्तिष्क रूपी पैरों के सभ्यता के सोपान पर नहीं चढ़ सकता! जितना ही उसका मस्तिष्क तेज और बलवान होगा, उतना ही वह सभ्यता के सोपान पर अधिक बढ़ने में सफल होगा। यह बात हमारे पूर्वजों ने अच्छी तरह समझी

पृष्ठ बाईस का शेष

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जितना ही हम ब्रह्मचर्य से तप, तेज, विद्युत् और ओज का भंडार बढ़ा सकें उतना ही हम अपने को देह, अन्तःकरण, मन और आत्मा के कर्मों के लिये पूर्ण सामर्थ्य से परिप्लुत कर सकेंगे।

थी, वे संसार के हित को अपना हित समझते थे। वे केवल अपनी उन्नति से ही संतुष्ट न थे बल्कि सामाजिक उन्नति में ही अपनी उन्नति समझते थे। अंत में प्रश्न उठता है कि सभ्यता कहते किसे हैं? यही जिसे सामाजिक उन्नति कहते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि समाज अपनी उन्नति चाहता है तो पहले उसे अपने मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ाना होगा।

जिस प्रकार व्यायाम से शारीरिक बल बढ़ता है ठीक उसी प्रकार साहित्य से मस्तिष्क का विकास होता है। जैसे हमारे भौतिक शरीर का बनना बिगड़ना बाह्य पंच-भूतों पर निर्भर है ठीक वैसे ही मस्तिष्क भी पूर्णतया साहित्य पर निर्भर है। जितना ही किसी देश का साहित्य क्षेत्र बड़ा होगा, उतनी ही उसकी मस्तिष्क शक्ति अधिक होगी और वैसी ही उसकी सभ्यता उच्चकोटि की होगी। उन्नति विचार की अनुगामिनी है और विचार साहित्य का अनुसरण करते हैं।

सहित अर्थात् संग्रह के भाव को साहित्य कहते है। सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिये जो भाव-सामग्री निकाल कर समाज को सौंपता है उसी के संचित भंडार का नाम साहित्य है। इसी कारण "साहित्य" सभ्यता अथवा सामाजिक शक्ति का निर्देशक कहा जा सकता है। हमारे विचार भाषा का चोला पहनाकर जब एकत्रित कर दिये जाते हैं, तब वे संरक्षित रहते हैं, घटनाओं की स्मृति स्थाई हो जाती है।

साहित्य शब्द बड़ा व्यापक है साहित्य द्वारा प्रकट हुए हमारे विचार दीपक के प्रकाश की तरह सर्वत्र पहुँच जाते हैं। उनमें सौरभ सी प्रसरण शक्ति है जितनी ही भाषा सुन्दर और गठीली होगी, उतने ही विचार शीघ्र सर्वत्र फैल सकेंगे। एक विचार के आने पर अन्य उसी प्रकार के अनेक विचारों का उठना स्वाभाविक है, जिस प्रकार भोजन के पुष्टिकारक होने से शरीर दृढ़ और अपथ्य से कमजोर होता है वैसे ही अनुकूल साहित्य से मस्तिष्क का विकास होता है और प्रतिकूल-साहित्य से शक्ति का ह्रास। प्राकृतिक अवस्था का भी विचारों पर प्रभाव पड़ता है। प्रकृति मनुष्य के जीवन को जैसा बनाती है वैसे ही विचारों से वैसा ही साहित्य बनता है। शीत कटिबन्ध के निवासियों को अपनी रक्षा के लिये अनेक प्रकार के उपाय करने पड़ते हैं। इसी कारण वे परिश्रमी होते हैं। और संसार से अधिक ममत्व रखते हैं यही कारण है कि उनका ध्येय वैभव-प्राप्ति है. किन्तु भारत जैसे प्रकृति के गढ़ में निवास करने वाले लोगों को अपना जीवन निर्वाह करने के लिये अधिक कष्ट की आवश्यकता नहीं। इसलिये दूसरे विचारों से हटाकर उनका मस्तिष्क या तो जीवात्मा के अन्वेषण और भक्ति की ओर आकृष्ट हुवा या विलासिता से हुआ। इसी कारण भारतीय साहित्य में अन्य भावों की अपेक्षा धार्मिक और शृंगारिक काव्यों की प्रधानता रही। अतः यह स्पष्ट है कि सामाजिक जीवन और साहित्य में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

साहित्य मानव जीवन का परिवर्तन कर सकता है। इतिहास साक्षी है कि अनेकों देशों में किसी लेखक से प्रभावित होकर जनता ने अपने जीवन को बदल दिया है। और उसमें शीघ्र ही आश्चर्यजनक परिवर्तन देखा गया है। रूसो और वाल्टियर के लेखों से प्रभावित होकर फ्रांस वालों ने महान् क्रांति पैदा कर दी, जिसने समस्त योरोप पर अपना प्रभाव डाला और महाद्वीप में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। रोम ने यूनान पर राजनैतिक विजय पाई किन्तु यूनान ने अपने समृद्ध साहित्य के ज़ोर से रोम पर ही नहीं प्रत्युत सारे योरोप पर ही मानसिक विजय प्राप्त की। ल्यूथर के साहित्य ने कैथोलिक धर्म का ध्वंस करके धार्मिक अंधविश्वास को मिटाया। आ

भारत में धर्म में अश्रद्धा और प्राचीन संस्कृति में घृणा होने लगी है। इसका कारण विदेशी साहित्य का प्रभाव है। महात्मा गांधी ने साहित्य में एक नया युग पैदा कर दिया है। लोगों में जागृति और स्वतंत्रता के प्रेम का आविर्भाव इसी साहित्य से हुआ। तुलसी ने भारत में सुख का स्रोत बहाया। भूषण के समय में भारतवासी वीरसाहसी बने, और शिवाजी छत्रसाल आदि वीरों ने साहित्य से प्रभावित होकर मुगलों के दांत खट्टे कर दिये, कबीर और नानक के काव्यों से हिन्दू मुसलमानों की कूप मंडूकता जाती रही। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि सामाजिक गति में साहित्य बड़े गौरव का है। जो तलवार परिवर्तन नहीं कर सकती वह साहित्य अपने प्रभाव से अल्पकाल में सरलता से कर सकता है।

हर्ष का विषय है कि देश ने परतन्त्रता की जंजीर को तोड़ दिया है। अब हमें राष्ट्र निर्माण के लिये साहित्य की आवश्यकता है। देश के बालकों के हाथ में अब उच्च कोटि का साहित्य देना चाहिये, जिससे कि वे सच्चे नागरिक बन सकें।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने आर्य भाषा हिन्दी तथा भारतीय इतिहास की सुन्दर पाठ्य-पुस्तकें बनाने की योजना की है। इस विभाग को सुचारू रूप से चलाने के लिये एक अच्छी राशि की आवश्यकता है।

गुरुकुल जैसे विश्वविद्यालय से जिसमें पाठ्य-क्रम पिछले ५० वर्षों से हिन्दी में ही हो रहा है और जिस बात की आवश्यकता को हम आज अनुभव करते हैं हमारे पूज्य कुलपिता अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज, जिन्होंने देश और आर्य जाति की सेवा करते हुवे अपना रक्त भी समर्पण कर दिया था उन्होंने इसे आधी राती पूर्व ही सोच लिया था। अब हमें ऐसे साहित्य की आवश्यकता है, जो मन वेगों का परिष्कार तथा संजीवनी शक्ति का संचार करने वाला हो। जीवन को सुन्दर ढांचे में ढालने वाला और बुद्धि को तीव्रता प्रदान करने वाला हो। जब हमारे देश में ऐसा साहित्य बालक और बालिकाओं के हाथ में दिया जायगा, तभी हमारा समाज उन्नति के सोपान पर अग्रसर होगा।

वैदिक अध्यात्म विद्या (बलासुर वध) लेखक—श्री भगवद्दत्त वेदालंकार। प्रकाशक—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, जिला सहारनपुर, उत्तरप्रदेश। मूल्य १)

इस पुस्तक में श्री पं० भगवद्दत्त वेदालङ्कार ने जो गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में अनुसंधान विद्वान् हैं मुख्यतया ऋगवेद दर्शन मण्डल के ६७, ६८ सूक्त के मन्त्रों के आधार पर वेदों में वर्णित अध्यात्म विद्या का वर्णन किया है। यह प्रकरण बलासुर वध का है जिस का वर्णन वेदों के अतिरिक्त ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मणों में भी आया है। सुयोग्य लेखक ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि बलासुर का तात्पर्य दुर्वासनाओं से है, उन पर कैसे विजय प्राप्त की जा सकती है, इस का वेदों के आधार पर प्रतिपादन किया गया है और ब्राह्मण ग्रन्थों के कुछ वचन भी इस की पुष्टि में दिये गये हैं। सार्वदेशिक, देहली।

रोग निवारण के लिए सांप

श्री रमेश बेदी

सांपों के मांस, रुधिर, केंचुली, हड्डियां, विष, मल, मूत्र आदि प्रत्येक भाग अनेक दवाओं में बहुत प्राचीन काल से संसार के विभिन्न प्रदेशों में प्रयोग किए जा रहे हैं।

कोढ़ की चिकित्सा

फनियर को मार कर हाण्डी में बन्द कर के जङ्गली उपलों की आग में फूंक लेते हैं। इस तरह बनी सांप की भस्म को बहेड़े के तेल में घोट कर मरहम की तरह बना लेते हैं। सुश्रुत वाग्भट और बताते हैं कि सफ़ेद कोढों में इस का लेप करने से सफ़ेद दाग जल्दी ही मिट जाते हैं। फ़ेरोहा के समय कोढ़ियों को सांप की खुराक पर रखने की प्रथा थी। रिचर्ड्स (लैण्डमार्क्स ऑफ़ स्नेक पॉयज़न लिटरेचर, पृष्ठ ६५) लिखते हैं कि गैलन ने मण्डली सांप के मांस की कोढ़ में बहुत ज़ोर से सिफ़ारिश की है और इटली तथा फ्रांस के चिकित्सक मण्डली सांप का शोर्वा या जेली इसी प्रयोजन के लिए अपने मरीज़ों को दिया करते हैं। मालूम होता है कि यह इङ्गलैण्ड में भी दिया जाता रहा है, क्योंकि मीड का ख्याल था कि 'बीमार को प्रायः मण्डली की जेली (वाइपर जेली) खानी चाहिए अथवा पुराने तरीके के अनुसार मण्डलियों को उबाल कर मछली की तरह खाना चाहिए। यदि भोजन पचता न हो तो शराब में सूखे मण्डलियों को छोड़ कर पांच या सात दिन तक ज़रा गरम जगह पर रखने के बाद बनी शराब का प्रयोग करना चाहिए।'

मीड एक प्रसिद्ध चिकित्सक हुआ है जिस ने सांपों के बारे में बहुत सी खोजें और परीक्षण किए हैं। १७५४ में यह परलोक सिधारा है। यही विद्वान् लिखता है कि मण्डली की शराब लन्दन के फ़ार्माकोपिया में वस्तुतः एक अधिकृत योग था।

क्षय में

भोपाल रियासत में जङ्गलों के कन्ज़रवेटर ने एसोशियेटेड प्रेस द्वारा अखबारों में एक सूचना वितरित कराई थी (१९४६)। उन्हें सांपों की आवश्यकता थी। एक विशेष प्रकार के गन्ने को पैदा करने में इन सांपों का खाद दिया जायगा। कन्ज़रवेटर महोदय का दावा है कि यह गन्ना क्षय की शर्तिया चिकित्सा है। वे इन गन्नों को पिछले आठ साल से पैदा कर रहे हैं और वे दावा करते हैं कि इस को सेवन करा के उन्होंने भोपाल रियासत के और रियासत के बाहर भी क्षय के हज़ारों रोगियों को राज़ी कर दिया है। रोगी को इन की गण्डेरियां एक या दो महीने तक रोज़ चूसने के लिए दी जाती हैं। इस दवा से, वे कहते हैं कि, कम से कम पचास प्रतिशतक रोगियों में तो अवश्य सफलता हुई है। मेरे एक पत्र के उत्तर में इन कन्ज़रवेटर महोदय ने लिखा था कि इस प्रयोजन के लिए वे केवल फनियर सांपों को मोल लिया करते हैं। 'स्थानीय लोगों को मैं दो आने प्रति सांप दे रहा

श्री बेदी

, परन्तु यदि आप लाहौर से भेजने का प्रबन्ध कर
कें को मैं प्रति फनियर चार आने देने के अतिरिक्त
ाक व्यय भी सहन करने को तय्यार हूँ ।'

चरक के समय क्षय के रोगियों का सांप का मांस
वलाया जाता था । जिन रोगियों को इस से सहज
णा हो उन्हें यह इस तरीके से बना कर दिया जाता
जैसे कि वर्मी मछली होती है । बंगाल में फनियर
मांस क्षीण करने वाले रोगों में दिया जाता है ।
श्चिमीय पञ्जाब के कुछ ज़िलों में सांप की रीढ़ की
ड्डियों को एक साल तक खाद में गाड़ रखते हैं ।
न की माला बना कर उन रोगियों के गले में पहनाई
ती है जिन्हें हजीरों (गले की क्षयी ग्रन्थियों) की
कायत हो । काले सांप की राख को तेल में मिला
हजीरों पर लेप करते हैं ।

डायनें भाग जाती हैं

बुखार आदि से पीड़ित रोगियों के कमरे में केंचुली
धूनी दी जाती है । बच्चों के बुखार में वृन्दमाधव
की केंचुली, लहसुन, बिल्ली का मल, बकरी के
और शहद आदि को एक जगह मिला कर धूनी
है । चक्रपाणि कहते हैं कि नीम के पत्ते, हींग, सांप
चुली और सरसों को इकट्ठा कूट कर धूनी देने
यनें भाग जाती हैं और दिमाग से भूतों का असर
नकल जाता है । चार्ल्स द्वितीय के चिकित्सक
थॉमास शर्ले ने वहम (हाइपोकौण्ड्रिया) के
इक्सम ऑफ़ वैड्स' नामक जिस दवा की सिफा-
थी वह मण्डली सांप, चिमगादड़, सूअर की
हिरण की मज्जा तथा बैल की जांघ की हड्डी
बनी थी । सांप के मुख और मल के धुएं
मृगी में उपयोग करते रहे हैं ।

वातनाड़ियों के रोगों में

कॉंग में चीनी वैद्यों की दुकानों पर बोतलों में
की कतारों से अलमारियां सजी होती हैं जैसे कि ये किसी म्यूज़ियम के नमूने हों । धामन आदि अनेक जातियों के सांप इन में रखे रहते हैं । चीन के होनान प्रांत में सफ़ेद धब्बों वाले एक सांप की खाल को चीनी चिकित्सक शराब में भिगो छोड़ते हैं । पक्षाघात के लिए उत्तम औषधि के रूप में इस का प्रयोग किया जाता है (डुहल्डे लिखित चीन, भाग १, पृष्ठ १०२) । एन्किस्ट्रोडोन ब्लोम्होफ़ि एक छोटा विषैला सांप है जो जापान और चीन में बहुतायत में मिलता है । वातनाड़ियों के लिए पोषक भोजन के रूप में जापानी इस का भोजन करते हैं ।

आमवात की दवा

ब्राज़ील के कर्कर सांप (क्रॉटेलस होरिडस) की पेट की चरबी आमवात (रहुमेटिज़्म) की मुख्य औषध समझी जाती है । ब्राज़ील के कुकुरिडवा लोग युनेक्टस म्यूरिनस सांप की चरबी को पिघाल कर आमवातिक वेदनाओं की दवाओं में तथा अन्य अनेक प्रयोजनों में बरतते हैं (म्यूज़ियम ऑफ़ नेचुरल हिस्ट्री, भाग २, पृष्ठ ५८) ।

फीलपांव और ज़ख्मों का इलाज

भारत में जिस तरह फनियर सांप को दवाओं के लिए चुनने में वैद्यों और हकीमों का अधिक पक्षपात होता है, वैसे ही कुछ समय पहले तक युरोप के बहुत से भागों में चिकित्सा-प्रयोजनों के लिए मण्डली सांपों का विशेष स्थान रहा है । मिश्र में मण्डली सांपों के मांस और शोर्वे को फीलपांव में दिया जाता था । फीलपांव (श्लीपद) को अंग्रेजी में एलिफेण्टायसिस कहते हैं जिस में रोगी के अङ्ग हाथी के अङ्गों के समान आकार प्रकार धारण कर लेते हैं । प्लीनी और गैलन दोनों ही ने ज़ख्मों में, फीलपांव में और शरीर की दूसरी रुग्ण अवस्थाओं में मण्डली मांस की प्रशंसा की है (एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ नेचुरल हिस्ट्री, भाग ३, पृष्ठ १२१०) । मछली की तरह उबाल कर ही

यह बीमारों को सेवन कराया जाता था, लेकिन चूर्ण रूप में या और किसी सूखी अवस्था में देने से यह अधिक प्रभावकारी समझा जाता था। रक्तवाहिनी के कट जाने से खून बहुत बह रहा हो तो उसे बन्द करने के लिए सांप की केंचुली का चूर्ण घाव के मुख पर रख कर पट्टी बांध दी जाती थी।

बवासीर के मस्से

बवासीर के मस्सों पर फनियर की चरबी लगाने से और सांप की केंचुली की धूनी देने से आराम आ जाता है (चरक, चि., अ. १४; ४६-५०)। राघव का अनुभव है कि बवासीर में सांप की केंचुली, मनुष्य के बाल, भांगरा और आक के फूल आदि से मस्सों को धूनी देने से मस्से सूख जाते हैं (राघवानु., अ. ३; २)।

सांप काटे की चिकित्सा

स्यामी चिकित्सक सांप के काटे को इस नुस्खे से ठीक करते हैं- जंगली सूअर के जबड़े की हड्डी, पालतू सूअर के जबड़े की हड्डी, बत्तख की हड्डी, मोर की हड्डी, मछली की पूंछ और विषैले सांप का सिर (यंग, दि किंग्डम ऑफ दि येलो रोम, पृष्ठ १२४)। कुछ लोग सर्पविष को मुख द्वारा थोड़ी-थोड़ी मात्रा में इस उद्देश्य से लेते हैं कि इस से वे विषों और रोगों के प्रभाव से बचे रहेंगे। विषों की चिकित्सा में महर्षि चरक सांप के सिर का धुआं देने में लाभ समझते हैं (चि. अ. २३; ६८)।

स्त्रियां भी सुन्दर बन सकती हैं

सूतिकागार के कपड़ों को सांप की केंचुली की धूनी दे कर रोग कृमियों से शून्य किया जाता था (च., शा., अ. ८; ६३)। कड़वी तुम्बी का फल, सांप की केंचुली, तोरई और सरसों के दानों को कड़वे तेल के साथ मिला कर योनि में धुआं देने में प्रसव शीघ्र होता है। सांप की केंचुली को हाण्डी के अन्दर बन्द कर के इस तरह जलायें कि धुआं बाहर न निकलने पाये। बच्चा मां के पेट में ही मर गया हो तो इस जली हुई राख को शहद के साथ घोट कर आंखों में आंजने से कष्ट के बिना ही बच्चा बाहर निकल आता है (च. द; स्त्री रोग चि.)। प्रसव के बाद चरक गर्भाशय को संकुचित करने के लिए सांप की केंचुली की योनि में धूनि देते थे। पहिले यह भी विश्वास रहा है कि सांप का मांस खाने से स्त्रियों का सौन्दर्य अक्षुण्ण रहता है। यह भी वर्णन मिलता है कि सर केनेल्म डिग्बी की रूपवती पत्नी उन खस्सी मुर्गों पर पाली गई थी जिन्हें मण्डली सांप का मांस खिला-खिला कर मोटा बनाया गया था।

अन्धों को दीखने लगता है

आंख के रोगों में फनियर के प्रयोग की बहुत ख्याति रही है। काले सुरमे को एक महीने तक मरे हुए काले फनियर के मुख में रखने के बाद निकाल कर सुरमे से आधी चमेली की सूखी कलियां और नमक मिला कर घोटे हुए सुरमे को चरक आंखों के रोगों में आंजा करते थे। वाग्भट इस सुरमे को बनाते हुए फनियर के मुख में अंजन को रख कर कुशा से लपेट देना अच्छा समझते थे। और वे उपर्युक्त तीनों द्रव्यों की दूध के साथ पिसाई करते थे। फनियर की चरबी, शहद और आंवले के रस को एक जगह घोट लें, यह सब प्रकार के नेत्र-रोगों में लाभकारी दवा मानी जाती थी। इस से आंखों में गीद आनी बन्द हो जाती है। आंखों के सब रोगों को दूर करने के लिए चरक ने यह नुस्खा बताया है- फनियर की चरबी, पिप्पली, ढाक के फूल का रस, सेंधा नमक और दस साल का पुराना घी; इन सब को एक जगह घोट लें। शार्ङ्गधर बताते हैं कि काले सांप की चरबी, शङ्खनाभि और निर्मली के बीजों को खरल कर के आंजने से अन्धों को भी सब कुछ दीखने लगता है।

पुस्तक समालोचना

मरुभूमि सेवा कार्य, संगरिया (बीकानेर) की नौ पुस्तकें।

राजनीति ज्ञान कोष—लेखक आचार्य छबीलदास। प्रथमावृत्ति १६४८, मूल्य १)। विद्यार्थियों को भूगोल और राजनीति की जानकारी कराने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है। संसार के इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं की तिथियां, विश्व इतिहास की प्रसिद्ध विभूतियों पर संक्षिप्त परिचयात्मक टिप्पणियां देने के साथ-साथ डाक, बैंक, धारासभा, ओलम्पिक खेलों, संसार की भाषाओं आदि का ज्ञान कराने के लिए उपयोगी अंकड़े दिये गये हैं।

राजनैतिक कहानियां—लेखक वही। मूल्य १)। हमारे देहाती भाइयों को राजनीति का ज्ञान सरल तथा रोचक ढंग से कराने के उद्देश्य से प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। लेखक को अपने प्रयत्न में सफलता मिली है।

क्यों? क्या? तथा कैसे?—लेखक वही। क्या चन्द्रमा में आबादी है, फसलें अदल बदल कर क्यों बोनी चाहिएं, फूलों के आकर्षक रंग क्यों होते हैं, चाय पीने से नींद क्यों भाग जाती है, क्या समुद्र कभी सूख जायगे, क्या रोगों का कभी अन्त होगा; ये और ऐसी अनेक प्रकार की जिज्ञासाएं मनुष्य के मस्तष्क में सदा पैदा होती रहती हैं। विद्वान् लेखक ने ऐसे छप्पन विषयों पर प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाश डाला है।

[पृष्ठ अट्ठाईस का शेष]

शेषनाग और अजगर में औषधीय उपयोगिता

भारत के नल्लामल्ली पर्वतों की एक जाति की ओर संकेत करते हुए मेर्विन स्मिथ (स्पोर्ट ऐण्ड एडवेंचर इन दि इण्डियन जंगली, पृष्ठ २५) लिखते हैं कि गोली से मारे दो शेषनागों की खाल को उतार विषैले दांत, विष की पोटलियां, तालू और पित्ताशय को उन्होंने औषधि उपयोग के लिए बहुत सम्हाल कर रख लिया था।

बोर्नियो के उपासक लोग अजगर की चरबी का मरहमों में प्रयोग करते हैं (कार्ल वाक, दि हेड हण्टर्स ऑफ़ बोर्नियो, पृष्ठ २५२)। चरबी के लिए वे इस का शिकार करते हैं। अफ्रीका की नमाक जाति का विश्वास है कि ओएडोरा अजगर (सम्भवतः पाइथस नेटालेन्सिस) में कुछ औषधीय गुण होते हैं। इस लिए जब उन के हाथ यह लग जाता है तो वे इस के मांस को सावधानी से सुरक्षित रख लेते हैं। किसी व्यक्ति के रोगी पड़ जाने पर वे इस का या तो बाहर लेप के रूप में प्रयोग करते हैं या काढ़ा बना कर पिला देते हैं।

पित्ता—अनेक रोगों की जादू दवा

कैरन लोग अजगर के पित्ते को औषधीय प्रयोजन के लिए बरतते हैं। कराज़ान (दक्षिणीय चीन) में 'पित्ता निकालने के लिए इन का शिकार किया जाता है। यह बड़े दामों में बिकता है, क्योंकि यह बहुत मूल्यवान् दवा है। पागल कुत्ते के काटने पर इस का ज़रा सा अंश पिला देने से वह क्षण भर में ठीक हो जाता है। प्रसव में कठिनाई हो रही हो तो इस की एक खुराक दे देने से तुरन्त प्रसव हो जाता है। खुजली या और कोई खराब रोग भी हो तो इस पित्ते को ज़रा सा लगा देने से जल्दी ही आराम आ जाता है। इस के मंहगे बिकने के कारण यही हैं।' (मार्को पोलो, बुक २; अध्याय XLIX, पृष्ठ ७६–७८)।

आचार्य छबीलदास जी की लेखनी में विषय को स्पष्ट करके समझाने की बड़ी अच्छी योग्यता है। रहस्यमय गम्भीर विषयों की पेचीदगी को बड़े सरल तथा रोचक ढंग से सुबोध बनाने में उन्हें विशेष कुशलता प्राप्त है। हम उनकी तीनों पुस्तकों का खूब प्रचार चाहते हैं। बच्चों को सामान्य ज्ञान के पाठ्य-क्रम में ये पुस्तकें पढ़ाई जानी चाहियें।

ऊर्ध्वाङ्ग व्याधि विज्ञान—लेखक वैद्य लेखराम शर्मा। आयुर्वेद महामण्डल की आयुर्वेद विशारद परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक लिखी गई है। इसमें मुख, कान, नाक, आँख तथा सिर के रोगों की सख्या, नाम, निदान, लक्षण तथा चिकित्सा के वर्णन के साथ-साथ मस्तिष्क और वातनाड़ियों से सम्बन्ध रखने वाले उन्माद, अपस्मार, मदात्यय, संन्यास, मूर्च्छा, पक्षाघात आदि रोगों की चिकित्सा भी लिखी गई है। सम्पूर्ण विषय अत्यन्त संक्षेप में है। अन्त में वैद्यविशारद परीक्षा के प्रश्न पत्र भी दिये हैं। पृष्ठ संख्या १२७। मूल्य नहीं लिखा गया।

सरल चिकित्सा—लेखक वही। मूल्य ।=)। मरूभूमि में होने वाले रोगों की संक्षिप्त चिकित्साएं इस में हैं।

समाज सुधार के गाने—तमाखू आदि को छोड़ने के सम्बन्ध में सात गाने हैं। मूल्य =)।

बाल क्रान्ति गीत—लेखक देवकराम शर्मा 'सुमन'। मूल्य =)॥। विद्याप्रेम, साहस आदि भावों को बच्चों में पैदा करने के कुछ गीत हैं।

मरूभूमि सेवा कार्य—लेखक स्वामी श्री केशवानन्द। मूल्य १)। मरूभूमि की भूमि, वनस्पति, पशु, पानी, रहन-सहन, पहिरावा, आर्थिकदशा, शिक्षा आदि की समस्याओं पर लेखक ने अपने विचार रखे हैं। मरूभूमि के जीवनस्तर को ऊँचा उठाना लेखक ने जीवन का ध्येय बना लिया है। मरूभूमि का नवनिर्माण करके उसे सुन्दर उपनिवेश बनाने के बारे में लेखक ने जो सुझाव दिये हैं उन्हें क्रियान्वित करने के लिए सक्रिय कार्य किया जाना चाहिए।

आयुर्वेद वाणी (गर्भिणी रोगाङ्क) मूल्य ३॥)। वार्षिक मूल्य ५।), सम्पादक वैद्य हरिप्रकाश भारद्वाज। प्रकाशक भारद्वाज आयुर्वेदिक फार्मेसी, विजय गढ़, अलीगढ़। २१० पृष्ठों के इस बृहत विशेषअंक में गर्भिणी के विभिन्न रोगों का विस्तृत विवेचन किया गया है। विषय को स्पष्ट करने के लिये लगभग ५० चित्र भी दिये गये हैं। गर्भिणी को किन-किन नियमों का पालन करना चाहिये जिससे वह स्वस्थ रहती हुई स्वस्थ शिशु को जन्म दे सके इस विषय को समझाने के लिये अनेक लेख दिये गये हैं। आयुर्वेद के विशेषांक किस प्रकार उपयोगी और विशद् निकलने चाहियें, इस बात को सीखने के लिये अन्य आयुर्वेद पत्रों को इस का अनुसरण करना चाहिये। आयुर्वेद वाणी में अपने अल्प कालिन जीवन में ही आशातीत उन्नति कर ली है, यह इस बात से स्पष्ट है।

—रामेश वेदी।

अथर्ववेद की प्राचीनता—लेखक श्री शिव-पूजन सिंह कुशवाहा। प्रकाशक आदर्श साहित्य मण्डल, जंगमवाडी, बनारस, पृष्ठ संख्या २८, मूल्य ।=)। लेखक महोदय ने अथर्ववेद को अर्वाचीन सिद्ध करने वाले विचारकों की आधारमूल युक्तियों का खण्डन किया है और उसकी प्राचीनता सिद्ध की है। मुख्य रूप से लेखक ने दो विचार धाराओं के परिहार करने का प्रयत्न किया है, जिनसे अथर्व को अर्वाचीन सिद्ध किया जा सकता था। प्रथम विचारधारा यह है कि "वेदत्रयी" नाम प्रसिद्ध होने के कारण वेद वस्तुतः तीन ही हैं, अथर्ववेद तो कोई वेद ही नहीं। दूसरी विचारधारा यह है कि

गुरुकुल समाचार

ऋतु

इस समय गुरुकुल की ऋतु अतिशय सुहावनी हो रही है। श्रावण की झड़ियों की बहार है। चहुँ ओर हरियाली छा रही है। कुल के वन उपवन लहा-लहा उठे हैं। जामुन समाप्त हो गए हैं और आमों की बहार अभी चालू। अभी तक मच्छरों का उपद्रव प्रारम्भ नहीं हुआ। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

दीर्घावकाश

महाविद्यालय विभाग का दो मास दीर्घावकाश ६ जुलाई से प्रारम्भ हो गया है। विद्यालय विभाग में पहली अगस्त से डेढ़ मास का अवकाश प्रारम्भ हो जायगा। कुछ छात्र दक्षिण भारत की सरस्वती यात्रा के लिए गए हैं। वे लोग रामेश्वर तक जायेंगे। अन्य छात्र अपने अपने घरों को गए हैं।

मान्य अतिथि

हिन्दुस्तान दैनिक (दिल्ली के) प्रधान संपादक श्री मुकुट बिहारी वर्मा तथा सहायक संपादक श्री शंकरलाल वर्मा पिछले दिनों अपनी हरिद्वार की यात्रा के सिलसिले में गुरुकुल में पधारे। आपने पुरातत्व संग्रहालय आदि विभागों को देखकर बहुत प्रसन्नता और परितोष अनुभव किया।

हिंदी के सुविदित कवि और सुलेखक श्री राम-नरेश जी त्रिपाठी अपने मित्र श्री गोपाल नेवटिया तथा श्री अरविन्द पकवासा सहित गुरुकुल पधारे। आप लोगों ने गुरुकुल की वनस्पति वाटिका का विशेष अभिरुचि से अवलोकन किया।

वन महोत्सव

कुल में एक जुलाई को वनमहोत्सव उत्साह से मनाया गया। प्रातः समस्त कुलवासियों ने मिलकर बड़ी यज्ञशाला में यज्ञ किया जिसमें मातृभूमि सूक्त तथा वनस्पति महिमा के मंत्रों का विशेष रूप से पाठ किया गया। सायंकाल महाविद्यालय के प्रांगण में आचार्य जी तथा अन्य गुरुजनों के हाथों से वृक्ष रोपे गये हैं। इस मास में अन्य फल वृक्षों का रोपण भी किया जायगा।

गुरुकुल कांगड़ी की विद्याधिकारी परीक्षा, यू. पी. बोर्ड द्वारा स्वीकृत

जनता को यह सूचित करते हुवे हर्ष होता है कि इलाहाबाद के हाई स्कूल इण्टर मीजिएट बोर्ड ने गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की विद्याधिकारी परीक्षा को मैट्रिक के समान मान लिया है। इसकी सूचना यू. पी. गवर्नमेंट गजट तिथि ३१ दिसम्बर १९४६ के न० २३४ अध्याय १४ भाग चौथे में प्रकाशित हुई है।

[पृष्ठ तीस का शेष]

क्यों कि अथर्व में मारण, उच्चाटन, अभिचार तथा जादू टोने आदि का वर्णन है अतः यह वेद बहुत पीछे का सम्भवतः तन्त्र काल का बना है। इन दोनों विचारधाराओं की लेखक ने अनुसन्धानपूर्वक अच्छे परिश्रम से आलोचना की है। प्रतीत ऐसा होता है कि सम्भवतः लेखक ने इस विषय को ट्रेक्ट के रूप में प्रकाशित करना था अतः अधिक विस्तार से किये जाने वाले आक्षेपों का आलोचनापूर्वक निर्देश इस पुस्तक में नहीं किया जा सका। दूसरे प्रकाशन में इसके प्रूफ की अशुद्धियां भी पूर्णरूप से दूर कर दी जायगी और पुस्तक का रूप अधिक आकर्षक किया जा सकेगा। पुस्तक सब वेद प्रेमियों तथा विशेषतः वेद के स्वाध्यायशील विद्वानों के लिये उपादेय है।

—सुखदेव।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरद्वार।

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

वैदिक विनय १, २, ३ भाग　श्री अभय २॥), २॥), २॥)
वैदिक ब्रह्मचर्य गीत　श्री अभय　२)
ब्राह्मण की गौ　"　॥)
वैदिक स्वप्न विज्ञान　श्री भगवद्दत्त　२)
वेदगीताञ्जलि [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत　७)
सोम-सरोवर, सजिल्द अजिल्द श्रीचमूपति २), १॥)
योगेश्वर कृष्ण [दूसरी आवृत्ति]　"　४)
वरुण की नौका १, २ भाग　श्री प्रियव्रत　६)
अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या　श्री प्रियरत्न　१।)
सन्ध्या-रहस्य　श्री विश्वनाथ　७)
स्वामी श्रद्धानन्द जी के उपदेश १, २, ३ भाग　श्री लब्भूराम १।), १), १॥)
आत्ममीमांसा　श्री नन्दलाल　२)
प्रार्थनावली [प्रेरणा देने वाली प्रार्थनाएं और गीतियां]　श्री वागीश　।)
वैदिक सूक्तियाँ　श्री रामनाथ जी　२॥)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग　श्री रामदेव　७)
बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द　श्री चन्द्रगुप्त　७, ६)
अपने देश की कथा　श्री सत्यकेतु　१।=)
ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार　श्री श्रद्धानन्द　॥)
हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव　॥)
महावीर गैरीबाल्डी　श्री इन्द्र　१)
भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय　श्री हरिदत्त　॥।)

संस्कृत ग्रन्थ

बालनीति कथामाला　१)
रघुवंश, संशोधित [तीन सर्ग]　।)
नीतिशतक [संशोधित]　=)
साहित्य-दर्पण, [संशोधित]　२)
संस्कृत प्रवेशिका १, २ भाग,　॥=, ॥≠)
साहित्य-सुधासंग्रह प्रथम, द्वितीय, और तृतीय बिन्दु　१।), १।), १।)
अष्टाध्यायी, सटीक, पूर्वार्ध　पं० ब्रह्मदत्त　७)

शालोपयोगी पुस्तकें

विज्ञान प्रवेशिका [दो भाग]—मिडल स्कूलों के लिए　श्री यज्ञदत्त　२॥)
गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए]　२॥
भाषा-प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार]　॥)
आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण]　१॥)
ए गाइड टु दि स्टडी ऑफ़ संस्कृत ट्रान्सलेशन एण्ड कम्पोज़ीशन, दूसरा संस्करण, ३३६ पृष्ठ　१)

स्वास्थ्य सम्बन्धी साहित्य

आहार [भोजन सम्बन्धी पूर्ण जानकारी के लिए]　श्री रामरक्ष पाठक　४)
लहसुन : प्याज　श्री रामेश बेदी　२॥)
तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण]　"　२)
सोंठ [तीसरा परिवर्द्धित संस्करण]　"　१)
देहाती इलाज [दूसरा संस्करण]　"　१)
शहद (शहद की पूरी जानकारी के लिए)　"　३)
मिर्च (काली, सफेद और लाल) दू० संस्करण　१)
प्रमेह और अर्श रोग　१)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

गुरुकुल पत्रिका

भाद्रपद
२००७

वर्ष ३
अङ्क १

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ३ । अङ्क १ । भाद्रपद २००७

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी ।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार ।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

गुरुकुल प्रणाली का भविष्य	श्री रामसिंह ठाकुर
वरटा के उपनवेश और उनके अभ्यागत	श्री सुषेण डी. लिट्.
गौ का दूध	डाक्टर रामस्वरूप
स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान	श्री ज्ञानचन्द्र बी. ए.

अन्य अनेक विश्रुत् लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं ।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

बड़ा कौन

श्री विष्णु मित्र

मूर्धाहं रयीणां-मूर्धाह समानानां भूयासम् ।

इस अथर्ववेद के मन्त्र में बताया है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर समय समय पर यह विचार पैदा होते हैं कि सारी दुनियां में मै सबसे बढ़कर धनाढ्य बनूं और सबसे बढ़कर बड़ा बनूँ। पर सबसे बढ़कर धनी और बड़ा कौन बन सकता है इस बात को बृहदारण्यक और छान्दोग्यउपनिषद् में एक कल्पित कहानी द्वारा बड़ी खूबसूरती से दिखाया है। एक बार प्राण, वाणी, आंख कान आदि इन्द्रियों में झगड़ा हो गया। आप जानते हैं कि जहां भिन्न-भिन्न विचार के महत्त्वाकांक्षी चार इकट्ठे हो जाते हैं वहां झगड़ा हो ही जाता है। चार वर्तन इकट्ठे हो जांय तो टकरा ही जाते हैं ! संघर्ष हो ही जाता है। पहाड़ पर आग लगी देखकर हम सोचते हैं कि इतने ऊँचे पहाड़ पर आग कैसे लगी और किसने लगाई। मालूम हुआ कि पेड़ की डालियां हवा से रगड़ खा गईं जिससे सारे पहाड़ और जंगल का स्वाहा हो गया। झगड़ा या संघर्ष बुरी चीज़ है।

इसका परिणाम नाश होता है। यही बात प्राणियों में भी चरितार्थ होती है। एक कुटुम्ब एक परिवार बड़ा सुखी है। पर कुटुम्ब और परिवार के किसी आदमी में यह भावना पैदा हो जाती है कि मैं इस कुटुम्ब का पालन पोषण करता हूं। मैं बड़ा हूं। इन्हें मेरा आदर करना चाहिये। स्वार्थ के इस भाव से सारे कुटुम्ब का नाश हो जाता है। यही बात संस्थाओं और समाजों की है। जब तक संस्था वा समाज के सभी सभासद् स्वार्थ छोड़ कर निष्काम भाव से मिलकर काम करते हैं अच्छा काम चलता रहता है। पर जब कभी उन्हीं में से किसी एक के मन में यह भाव पैदा हो जाता है कि मेरे कारण यह संस्था वा समाज चल रहा है, मैं बड़ा हूं, मेरा आदर होना चाहिये तब बना बनाया सब काम बिगड़ जाता है। संघर्ष या स्वार्थ सर्वथा बुरा है। स्वार्थ की इसी भावना से इन्द्रियों में भी संघर्ष वा झगड़ा हुआ। सब इन्द्रियां अपने आपको बड़ा कहने लगी।

झगड़ा मिटाने के लिये वे प्रजापति (जीव) के पास पहुँचीं। प्रजापति समझदार थे उन्होंने फैसला दिया कि तुम में से जिसके शरीर से निकल जाने पर शरीर तेजहीन हो जाय वही तुममें बड़ा है। इस फैसले से सब इन्द्रियां प्रसन्न हो गईं क्योंकि सब का यही ख्याल था कि मेरे बिना शरीर का काम नहीं चलेगा। सबसे पहिले लड़ाई की जड़ वाणी शरीर से निकल गई। कुछ समय के बाद उसने आकर देखा कि शरीर का काम चल रहा है। उसने पूछा मेरे बिना कैसे काम चला। इन्द्रियों ने कहा जैसे एक गूंगे का काम चलता है। उसे हारी देख आंखें निकल गईं। कुछ देर बाद उसने आकर देखा कि

शरीर का काम चल रहा है। उसने पूछा कैसे काम चला। इन्द्रियों ने कहा जैसे अन्धे का काम चलता है। ऐसे ही अन्य इन्द्रियां कान आदि के साथ भी यही बीती। पर मन को तो बड़ा अभिमान था कि मेरे बिना शरीर का काम कैसे चलेगा। निकलते ही उसने देखा कि एक आदमी सुषुप्ति की अवस्था में पड़ा है पर वह जीता है और कहता है कि मैं बड़े सुख से सोया।

तब मन ने चुपचाप आकर अपना स्थान ले लिया। अब प्राण की बारी आई। प्राण के बाहर पैर रखते ही सभी इन्द्रियां घबरा गई। और सब की अपनी अपनी शक्ति नष्ट हो गई। उन्हें मालूम हुआ कि हम इसकी शक्ति से ही अपना-अपना काम करतीं हैं। तब उस वाणी ने जिसने सबसे पहिले बाहर कदम रखा था मन की स्तुति की। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तदस्माकं मनः शिव संकल्पमस्तु। और कहा कि हम सबने मान लिया कि आपही सबसे बड़े हैं। इस कहानी से उपनिषद्कार ने यह शिक्षा दी है कि जो स्वार्थ को छोड़ कर मानापमान की भी कुछ परवाह न कर प्राण की तरह निष्काम भाव से दूसरों की सेवा करता है वही सब में सब बातों में बड़ा है। प्राण में अन्य इन्द्रियों से यह विशेषता है कि वह खाये हुये अन्नादि का कोई हिस्सा नहीं लेता। दूसरा इसमें कोई दोष नहीं इसका कोई विषय नहीं। वाणी अच्छा बोलती है बुरा भी बोलती है। कान अच्छा सुनते हैं बुरा भी सुनते हैं। मन अच्छा चिन्तन करता है बुरा भी।

पर यह प्राण तो बिना कुछ भी लिये चौबीस घंटे सेवा करता है। जब सब इन्द्रियां थक कर सो जाती हैं तब यह उनकी रक्षा करता है। इन्द्रियों में अपना-अपना स्वार्थ है प्राण में कोई स्वार्थ नहीं। अतः प्राण की तरह जो निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करता है वही सबमें बड़ा है!

ऊपर के वेद मन्त्र में दूसरी बात है कि मैं सब से बढ़कर धनी बनूँ। यद्यपि यह इच्छा बड़ों में नहीं होती तथापि यदि देखा जाय तो सबसे बढ़कर धनी भी वही होते हैं। उनके तनिक से इशारे से उन्हें धन की कमी नहीं रहती। पर वे उसे अपने पास नहीं रखते। परोपकार में लगा देते हैं। या ठुकरा देते हैं। यह महात्माओं के बड़प्पन की निशानी है।

कनखल के साधु मथुरादास की एक घटना लिखकर इस लेख को समाप्त करूंगा। सन्त जी किसी खेत में आराम कर रहे थे। एक सेठ ने, जिसने अपनी कोई इच्छा पूरी करानी थी, सन्त जी के आगे रेशमी रूमाल बन्धी कुछ अशर्फियां लाकर रखदी। सन्तजी ने कहा, क्या है। सेठ ने कहा, महाराज कुछ अशर्फियां हैं। सन्तजी ने कहा, लेजाओ हमें इनकी जरूरत नहीं। जब सेठ न माना तब सन्तजी स्वयं उठकर चल दिये। सेठ भी पीछे-पीछे चल पड़ा। तब सन्तजी खड़े होकर बोले, बताओ यदि तुमने अपनी रसोई को साफ किया हो और कोई भंगी उसमें मल लाकर फैंकदे तब तुम उससे कैसा व्यवहार करोगे। सेठ बोला, में उसके जूते लगाऊंगा। सन्तजी ने कहा, कि देखो हमने परिश्रम से अपने अन्दर चौका लगाया है और मन शुद्ध किया है तू इस पीले मल से इसे गन्दा किया चाहता है, बताओ तुमसे कैसा व्यवहार किया जाय। चले जाओ फकीरों को तंग मत करो। यह सुन लज्जित हो वह सेठ चलता बना। किसी कवी ने ठीक कहा है कि—

विकृतिं नैव गच्छन्ति संगदोषेण साधवः।
आवेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते।

जौनसार बावर : और उसका उज्जवल भविष्य

श्री धर्मदेव शास्त्री

जौनसार बावर के मुख्य स्थानों का इस लेख में परिचय देने के बाद हम उस प्रदेश में नये उद्योगों को चलाने की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालेंगे।

विराट दुर्ग

विराट दुर्ग की ऊंचाई ७४२३ फुट है। विराट दुर्ग का शिखर कालसी से सीधी चढ़ाई पर छः मील दूर है। देववन कालसी से १५ मील सीधी चढ़ाई पर है। यह स्थान समुद्र से ६३४७ फुट ऊंचा है। जो शिखर सबसे ऊंचा प्रतीत होता है उस पर पहुँचने के लिए साथ ही वह सब से छोटा प्रतीत होता है और दूसरा शिखर ऊंचा दीखता है।

पहाड़ हरे भरे भी हैं। ऊंचे पहाड़ों में देवदार और नीचे के शिखर पर चीड़ के वृक्ष मिलते हैं। देवदार के वृक्ष बौद्ध मन्दिर की बनावट के अथवा प्राचीन शिव मन्दिर के समान मालूम होते हैं। देवदार के वन में बहने वाली वायु सुगन्धयुक्त तो होती है साथ ही उसका शब्द कानों को भी सुन्दर लगता है। ऊपर देववन में आरण्य विभाग ने कुछ पुराने और बहुत मोटे देवदार तथा चीड़ के वृक्ष सुरक्षित वृक्ष बनाकर बचा दिये हैं। इन वृक्षों को जब हमने प्रथम बार छजाड से मुंडाली जंगल के रास्ते आते हुए देखा तो तृप्त हो गये। आज भी जब हम यह पंक्तियां लिख रहे हैं हमारी आंखें उन वृक्षों को देखने के लिए प्यासी हैं। कितना सुन्दर यह देववन है।

असंख्य पर्वत श्रेणियां हैं। उनके ऊंचे शिखर के उस भाग को जहां कुछ खेती होती है लाणी और डांडा कहते हैं। लाणियों में पंजीठी लाणी और मागटी लाणी हमें बहुत कठिन प्रतीत हुई हैं। पहली लाणी तक पहुँचने के लिए एक ही मील में अमला से ऊपर तीन हजार फुट सीधी चढ़ाई है जबकि दूसरी तक पहुँचने के लिए आध ही मील में करीब दो हजार फुट चढ़ना होता है। नराया ग्राम के कुछ आगे क्वाण के मार्ग में हाऊ ग्राम के लिए जो पृथक् पगडन्डी गई है वह हमें सबसे अधिक दुर्गम मार्ग लगा है। कालसी से खणी ग्राम के लिए जो रास्ता गया है वह भी काफी कठिन है। इस मार्ग में सांप बहुत हैं। अजगर सांप भी इस मार्ग में कभी-कभी देखे गए हैं। उक्त स्थानों में से पंजीठी से आगे चन्दौ में तथा हाजा से आगे दसौ में अशोक आश्रम के विद्यामन्दिर चलाये गये थे। डांडों में द्वीना लाछा का डांडा बहुत प्रसिद्ध है। यह डांडा समुद्र से करीब ७००० फुट ऊंचाई पर है। ऊपर पहुँचने पर बहुत लम्बे चौड़े खेत और मैदानों को देख कर चित्त बहुत प्रसन्न होता है। इस डांडे पर पहुँच कर हिमालय का गौरीशङ्कर शिखर तथा नीचे देहरादून के मैदान स्पष्ट दीखते हैं, यहां डांडे पर हजारों मन आलू उपजाते हैं, विशेष कर बीज का आलू इस डांडे का प्रसिद्ध है, आजकल इस डांडे के लिये द्वीना लाछा और सीला इन तीन ग्रामों और शेष १२ ग्रामों की जिनमें बिसोई क्वासा और खटाड मुख्य हैं लम्बा मुकदमा चल रहा है, गत तीन वर्षों से इस मुकदमे की बड़ी चर्चा है। द्रोपदी के चीर की तरह यह मुकदमा लम्बा ही होता जाता है और खतम नहीं हो रहा। यह उक्त १५ ग्राम मिल कर बहलाड् खेत बना है। १२ ग्राम वालों का कहना है कि यह सारे खेत का शामलात डांडा है जबकि द्वीना लाछा और सीला ग्राम वाले कहते हैं कि केवल इन तीन ग्रामों को ही इस डांडे में नौतोड़ करने का हक है।

नोतोड़ का अर्थ है नया खेत बनाने का प्रयत्न। यह डांडा इतना उपजाऊ और बहुमूल्य है कि उक्त मुक़दमे में अब तक दोनों ओर का करीब १०००० रु० व्यय हो चुके हैं। द्वीना ग्राम और डांडे के बीच में नागथात नाम का मसूरी से चकरौता जाने वाली सड़क पर सुन्दर स्थान है। इस स्थान पर सितम्बर १९४५ से माता कस्तूर बा गांधी महिला औषधालय अशोक आश्रम की ओर से चल रहा है। नागथात तक श्रीयुत ठक्कर बापा, श्रीयुत बी. जी. खेर बम्बई प्रान्त के प्रधान मन्त्री तथा श्रीमती डाक्टर सुशीला नायर महात्मा गांधी जी की प्रेरणा से पहुँचे हैं।

भूमि

खेती के योग्य भूमि बहुत कम है। इस प्रदेश के परिश्रमी स्त्री-पुरुषों ने फिर भी वहां खेती के योग्य सुन्दर खेत बनाये हैं जिन में आलू, अदरक, अफीम और हल्दी की अच्छी फसल होती है। आलू तो इस प्रदेश का बहुत मीठा और टिकाऊ तथा स्वादिष्ट होता है। युद्ध के दिनों में सरकार ने अंगरेज़ सिपाहियों के सिवाय औरों को वहां का आलू खाने से रोक ही दिया था। नैपाली स्त्री-पुरुष जौनसारियों से भी अधिक परिश्रमी होते हैं इसका सबूत हाल ही मिला है। कुछ गोरखा परिवारों ने चकरौता के पास मोहना खत में ऐसी भूमि में आलू की बढ़िया फसल की है जहां साधारणतया पहुँचना और पशुओं को पत्ती खिलाना भी कठिन होता है। सीधी ढांग में इन गोरखों ने सैंकड़ों मन आलू पैदा किये हैं।

खाद

पैदा करने का तरीका यहां का उत्तम है, गोबर को यहां के लोग जलाते नहीं। खेत के पास ही पशुओं के ठहरने के लिये स्थान बनाये गये हैं जिन को छाना अथवा गोठ कहते हैं। पास में जंगल से पतझड़ में झड़ने वाली पत्तियों के बीज लाकर उनकी भी खाद बनाई जाती है। खाद की रक्षा यह लोग पूरे ध्यान से करते हैं इसी लिये पत्थर में से अच्छी फसलें लेने में इन्हें सफलता मिली है।

अन्य पैदावार

उक्त मुख्य पैदावार के अतिरिक्त गेहूं, जौ, चावल, लाल मिर्च, मक्का, तम्बाकू, झँगोरा, चौलाई और मंडवा भी यह पैदा करते हैं। मंडवा यहां का मुख्य अन्न है। खाने के अतिरिक्त इसका उपयोग ये लोग शराब बनाने में भी करते हैं। झंगोरे की भी शराब बनाई जाती है। नदियों और कूलों के किनारे क्यारियों में कहीं २ धान की खेती होती है। ऐसे स्थान मुख्यतया हरिपुर, व्यास क्वाणा, खडकोटा और भरम खत में हैं। साहिया के समीप क्यारियों में हज़ारों मन गाजर, टमाटर और फ्रांसबीन उगाई जाती हैं।

सिंचाई

यहा सिंचाई का कोई प्रबन्ध नहीं। उस खुश्क ज़मीन में मुख्यतया मंडवा लगाया जाता है। मडवे का पौधा सख्त होता है, उसके एक ही पौधे पर अनेक मंजरियों में काफी अन्न पैदा हो जाता है। पथरीली और सख्त ज़मीन में भी यह पौदा हो जाता है। पानी की अधिकता से मंडवे का पौदा खराब हो जाता है। मंडवे की गुड़ाई हो जाने पर और फिर कटाई हो चुकने पर इस प्रदेश में उत्सव मनाया जाता है। नाच, गान और खाना-पीना खूब होता है। मंडवे की फसल ठीक होने पर ही इस प्रदेश को भोजन सम्बन्धी निश्चिन्तता होती है।

पहाड़ी की ऊंची चोटियों पर गेहूँ और जौ की फसल होती है। सितम्बर के अन्त में बीज बो दिया जाता है जिस से पाला पड़ने से पहले ही बीज जम जावें, गेहूँ और जौ की यह फसल मुख्यतया बर्फ पड़ने पर ही निर्भर है। जितनी अधिक बर्फ गिरे उतना ही फसल को लाभ है। जिस साल बर्फ न गिरे फसल खराब होती है। पौधे बर्फ से पूर्णतया दब जाते हैं।

धीरे-धीरे बर्फ पिघलती है और उससे ही फसल की सिंचाई होती रहती है।

हल्दी और अदरक की फसल

हल्दी और अदरक की फसल भी कीमती फसल समझी जाती है। इसकी कुछ गज भी भूमि परिवार के लिये बहुमूल्य भूमि है। अदरक को सुखा कर सोंठ भी बनाया जाता है। बाना, विसेल और उत्पालटा खतों में सोंठ बहुतायत से बनाया जाता है।

अफीम की फसल

जौनसार के लिये जिस प्रकार आलू और अदरक कीमती फसलें हैं इसी प्रकार बावर के लिये अफीम कीमती पैदावार है। अफीम केवल ऊंची पहाड़ियों पर ही होती है। पहले जौनसार बावर में अफीम तैयार की जाती थी परन्तु अब कानून द्वारा जौनसार में रोक दिया गया है केवल बावर में ही यह पैदा की जाती है। अफीम की फसल यदि ओले न पड़ें तो अधिक कीमती होती है। बावर के लिये अफीम ही आर्थिक दृष्टि से काम की फसल है। यहां की अफीम प्रायः पटियाला रियासत में जाती है। इसके लिये बढ़िया खाद की आवश्यकता है। अफीम के पौधे के सिरे पर टोपीनुमा फल लगता है उसके चारों ओर चाकू से छेद कर दिये जाते हैं, इनमें से रस निकलता है जो फल के बाहर ही सूख जाता है। दूसरे दिन उस सूखे रस को बरतन में एकत्र कर लिया जाता है। यही अफीम है। पोस्त के फल के भीतर के बीज होते हैं। फल को हाथ से तोड़ कर फल के यह बीज खाये जाते हैं। एक बार जब हम बावर घूम रहे थे हमने अन्न छोड़ा हुआ था तब ग्रामों में हमें खाने के लिये पोस्त के ये बीज ही दिये जाते थे। ये बहुत ही स्वादिष्ट होते हैं। यहां के लोग फल के छिलके को जलाने के कार्य में लाते हैं। तम्बाकू सभी काश्तकार अपने खर्चे भर के लिये पैदा करते हैं। तम्बाकू में सीरा मिला कर उसे पीते हैं। सीरा ये लोग कालसी सहिया और चकरौता की दूकानों से ले आते हैं। अदरक, आलू और अखरोट बेच कर इन भोले लोगों की पीठ पर बदबूदार सीरा लाद कर लाते हुए हमने अनेक बार देखा है और सदा दुःख अनुभव किया है।

लाल मिर्च

लाल मिर्च यहां की बहुत तेज़ होती है। यहां की छोटी सी एक मिर्च भी बहुत तेज मिर्च खाने वाला भी शायद पूरी खा सकेगा।

खेती करने के तीन तरीके

१. क्यारी, २. सीढ़ीनुमा खेत, ३. डांडा।

क्यारी

नदी तथा खालों में से पानी की कूल निकाल कर जहां सिंचाई हो सकती है उन क्यारियों में बढ़िया खेती होती है। खडकोटा की क्यारियों में आलू, टमाटर और शाक बढ़िया किस्म के पैदा होते हैं। खडकोटा में पानी बहुत है। कहीं-कहीं ४००० और ५००० फुट ऊंचे स्थान पर भी चावल की खेती होती है। यमुना के किनारे लाखामण्डल और क्यारी ग्रामों में तथा टोंस के किनारे द्वार में अच्छा धान पैदा होता है। परन्तु यह सब अन्न इन लोगों के अपने ही व्यय के लिये जिस किसी प्रकार पूरा होता है। आलू, टमाटर और अदरक तथा शाक बेचे जाते हैं। युद्ध के दिनों में अंग्रेजी फौजों के लिये गर्मियों में जब नीचे शाक नहीं मिलते तब यहां शलजम, फ्रांसबीन, गाजर और चुकुन्दर की खूब पैदावार कराई गई। टमाटर यहां का बहुत उत्तम होता है। कद्दू यहां बहुत होता है जो नीचे बिकने जाता है। इतना मीठा कद्दू देश में अन्यत्र नहीं मिल सकता। जब यहां आने पर ठक्कर बापा को अशोक आश्रम में कद्दू का शाक खिलाया गया तो उन्होंने पूछा, इस में इतना गुड़ क्यों डाला है। बिना गुड़ डाले यह

इतना मीठा होता है। इस उत्तर में बापा को बहुत आश्चर्य हुआ।

सीढ़ी नुमा खेत

यह तरीका वहां का साधारण खेती का तरीका है। बहुत मुश्किल से खेत तैयार किए जाते हैं। काबुली पठानों से बड़ी मेहनत करके यह खेत तैयार किए जाते हैं। एक खेत के तैयार करने में कभी-कभी सैंकड़ों रुपये लग जाते हैं। चुरानी से सभालटा होते हुए सहया के मार्ग में एक स्थान पर हमने २० खेत एक के ऊपर एक क्रम से देखे हैं। यह खेती की सीढ़ी बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। पत्थरों की दीवार बना कर उसके बाद दूसरा खेत इसी प्रकार ऊपर-ऊपर बनाया जाता है। कभी-कभी अधिक वर्षा के कारण खेतों की दीवारें टूट जाती हैं तो किसानों की आंखों में आंसू आ जाते हैं उनकी जन्म की कमाई उस में बह जाती है। प्रायः दोबारा खेत बनामा सब के लिए सम्भव नहीं होता।

डांडा

ऊंचे शिखरों पर जहां समतल भूमि खेती के लिए मिल जाती है वहां भी खेत तैयार किए जाते हैं। यह खेत प्रायः ऊपर जाकर देखने से नीचे मैदानों के खेतों के समान दीखते हैं। ऐसी चौरस भूमि के बनाने में तथा उस में हल चलाने में बहुत परिश्रम नहीं होता। प्रथम दो प्रकार के खेतों में तो बैलों को और हल चलाने वाले को बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ता है। तीसरे प्रकार की भूमि में खेती सरल और क़ीमती तथा मात्रा में भी अधिक होती है।

दासों द्वारा खेती

यहां के काश्तकारों को जमींदार कहा जाता है इस लिए आगे जहां भी ज़मींदार शब्द का प्रयोग हम करेंगे उसका अर्थ उत्तर प्रदेश के काश्तकार से समझना चाहिए। यहां के ज़मींदारों में जिनके पास बहुत भूमि है वह अपने आधीन कार्य करने वाले कोल्टा से काम कराते हैं। कोल्टा यहां के दास हैं। नीचे मैदानों में चमारों से जो कार्य कराया जाता है उसमें और कोल्टों से काम लेने में बहुत अन्तर है। चमार तो नौकर हैं जबकि कोल्टा दास हैं। कुछ कर्ज़े के एवज में सूद के स्थान पर अनेक पीढ़ियों से ये लोग मालिकों के गुलाम हैं। पशुओं के समान इनका विनिमय आदि भी होता है।

जलवायु

कालसी का जलवायु देहरादून के समान है। ऊपर चल कर चकरौता में शिमला से भी अधिक ठंडक है। देववन में तो सदा शीत ऋतु है।

पशु

यहां के लोग गाय, भैंस, बकरी और भेड़ प्रायः रखते हैं। गाय को ये लोग पूज्य मानते हैं। गाय का दूध नहीं पीते। इन लोगों का विश्वास है कि गाय का दूध केवल महासू ही पी सकता है। मनुष्य गाय का दूध पीवेगा तो बीमारी फैलेगी तथा गौ के थनों में कीड़े पड़ जावेंगे। इसी भ्रम का ही यह परिणाम है कि यहां गौ दुधारू बहुत कम होती हैं। दूध और घी के लिए अब भैंस पाली जाती हैं। घी यहां से नीचे मैदानों में जाता है परन्तु उस घी में दुर्गन्ध रहती है कारण यह है कि ये लोग गर्म किये बिना ही जमा देते हैं तथा अनेक रोज़ बाद उसे बिलोते हैं। बर्तन भी लकड़ी के होते हैं जिन्हें बहुत साफ करने पर भी बदबू साफ नहीं की जा सकती। घी में मिलावट करना ये लोग नहीं जानते थे अब सहिया के दुकानदारों ने इन भोले पर्वतीयों को ऐसा भी सिखा दिया है।

खानें

कालसी के पास बौसाण में पहिले लोहा बनता

था। यह लोहा नीचे भी जाता था। यहां एक लोहे की खान है। अमला के किनारे कालसी में तांबे की खान है परन्तु अभी तक कुछ भी कार्य नहीं हुआ।

जहां अमला यमुना में मिलती है वहां सम्राट अशोक के शिलालेख के पास ही नदी किनारे लोहे के अंश वाले पत्थर बहुत मात्रा में मिलते हैं। टयूनी से परे अनोल के मार्ग में भी लोहे की खान है परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ भी कार्य नहीं हुआ।

अपने निजी अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि यदि राष्ट्रीय सरकार हिमालय की इन खानों का अनुसन्धान करे तो लोहा, तांबा और सीमेंट की अनेक खानें मिल सकती हैं। ग्वालियर में जैसे मिट्टी का कार्य होता है उससे भी बढ़िया मिट्टी यहां अनेक स्थानों पर मिल सकती है। यदि सरकार सहायता करे तो पहाड़ के लोगों में अनेक गृह उद्योग यहां चल सकते हैं। जिन में इस प्रदेश का पुनर्निर्माण होगा और देश की आवश्यकता पूरी होगी।

स्वावलम्बी प्रदेश

सन् १८२७ तक यहां के लोग अपने लिए आवश्यक अन्न पैदा कर लेते थे। लेकिन अब बहुत सा अन्न नीचे से मंगाना पड़ता है। इसके दो कारण हैं।

१. प्रथम यह है कि जिस भूमि में पहले खाने के लिए अन्न उपजाया जाता था अब वहां आलू, अदरक और शाक पैदा होते हैं

२. दूसरा यह कि मँडवा, जौ और झंगोरा को शराब बनाने में काम लाया जाता है।

आर्थिक दृष्टि से तीन भेद

इस प्रदेश को हम आर्थिक दृष्टि से भी तीन भागों में बांट सकते हैं। हरिपुर व्यास, पञ्चगांव, लखवाड़ बाना बिसैल उत्पालटा अठगांव और समालटा तथा दूसरे वे खेत जो चकरौता रोड के पास अथवा सहिया के पास हैं आर्थिक दृष्टि से उन्नत खेत हैं क्योंकि इनकी पैदावार तुरन्त थोड़े से श्रम से मण्डियों में बिक जाने से इन लोगों को अच्छे दाम मिलजाते हैं।

जौनसार के वह खेत जो सड़क से दूर हैं। जहां से आलू, अदरक आदि खच्चरों द्वारा मण्डी में आता है उन्हें अपेक्षाकृत कम आय होती है। किराये में इनकी आय बहुत व्यय हो जाती है। फिर भी ये लोग खाते पीते हैं जिस प्रकार इनकी आय कम होती है। उसी प्रकार दूर रहने से इन लोगों का व्यय भी कम होता है। लाखामण्डल के आस पास के खेतों में कोल्टा स्त्रियों के वेश्यावृत्ति के लिए नीचे जाने के कारण भी एक विशेष रूप से आय हो रही है। चकरौता से लाखामण्डल के मार्ग पर आचरणहीन व्यक्तियों का आना-जाना बहुत बहुत होता है। इधर के सयाना लोग दूसरे एजेन्ट जिनमें कुछ बनिए भी सम्मिलित हैं वेश्यावृत्ति के ही आधार पर बहुत पैदा करते हैं।

ज़मीन के मालिक

दस्तूरुलअमल कानून के द्वारा भूमि का स्वामित्व यहां ब्राह्मण राजपूतों का ही है। कोल्टा और बाजगियों को यहां ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं। अब सरकारी अधिकारियों ने कुछ ऐसे फैसले किये हैं जिनमें कोल्टा को भी स्वामित्व का अधिकार दिया गया है। सन् १८७५ ई० में खेती करने वाले यहां मौरूसी काश्तकार १२६६१ थे जबकि मजदूर १०५९७ थे।

चौलाई के खेत

चौलाई ऐसा अन्न है जो अनेक वर्षों तक खराब नहीं होता। प्रायः प्रत्येक परिवार में आपत्ति काल के लिए नीचे के घर में चौलाई रखी रहती है। सितम्बर अक्तूबर में चौलाई के पके खेत दूर से केसर के खेत प्रतीत होते हैं जो बहुत सुन्दर मालूम होते हैं।

श्रद्धाञ्जलि

श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति

कुलमाता तेरे चरणों में,
मैं श्रद्धाञ्जलि लाता हूँ ।
स्वीकृत करके आशिष देगी,
ऐसी आश लगाता हूं ॥

तूने जो उपकार किये हैं,
उनकी गणना कैसे हो ?
वे अनन्त हैं उन की बाधक,
मेरी रचना कैसे हो ?

दीक्षा देकर धर्म देश का,
प्रेम मातु ! उत्पन्न किया ।
सद् चार के बल से जननी,
फिर तूने सम्पन्न किया ॥

सेवा की जो लगन लगी है,
सब तव शिक्षा का फल है।
सारे भय को दूर भगावे,
तेरे नाम में यह बल है ॥

प्रान्त-प्रान्त में विचरण करते,
माता तेरी याद सदा ।
कर देती है हृदय प्रफुल्लित,
वह वास्तव में दिव्य सुधा ॥

उसके सन्मुख निराशता का,
है कोई भी स्थान नहीं ।
शक्ति मिले विपदाओं में,
मुख होता है म्लान नहीं ॥

श्रद्धा मूल मन्त्र को जपते,
देते सब को दिव्यानन्द ।
तेरी ही गोदी में हमको,
मिले पूज्य श्री श्रद्धानन्द ॥

दिव्य भावना भर कर सब के,
हृदयों को सन्तुष्ट किया ।
परम अनुग्रह करके मन में,
धर्म ज्योति को दीप्त किया ॥

विश्वबन्धु उन धर्म वीर का,
नाम लगा है तेरे साथ ।
उनका हम कुल पुत्रों पर वह,
सदा रहा मङ्गल हाथ ॥

धर्म वेद पर बलि दे कर वे,
अमर धाम को पाय गये ।

जननि ! स्वर्णाक्षर में तेरा,
निर्मल नाम लिखाय गये ॥

उनकी छत्र छाया में था,
हमने तुझ में वास किया।
नहीं भूमि पर दिव्य स्वर्ग में,
हमने विद्याभ्यास किया ॥

योग्य तपस्वी शिक्षक गण से,
धर्म कर्म शिक्षा पाई ।
वही दीखती वास्तव में अब,
अपनी पुण्य कमाई ॥

भागीरथी तीर सुमनोहर,
रम्य हिमालय देश ।
प्रकृति देवि के वे आह्लादक,
खेद विदारक वेश ॥

नहीं कहीं भी ढूंढे मिलते,
माता तू अनुपम है ।
तेरी गोदी पुण्यमयी है,
इस में ज़रा न भ्रम है ॥

सभा वर्ग वा जन्मोत्सव के,
वे अति सरलामोद ।
अरण्य पर्वत की वे सैरें,
गङ्गा में तैरी के मोद ॥

शिक्षक-गण का प्रेम भरा,
व्यवहार ये सन्मुख आते हैं।
तेरे चरणों में ये माता,
मम मस्तक नमवाते हैं ॥

तेरी रम्य वाटिका में था,
कितने वर्ष विहार किया ।
वह स्वर्गोपम समय कि जिस में,
तेरे में संचार किया ॥

श्रुति कुसुमों के मधु रस पीने,
का मुझ को सौभाग्य हुआ।
तेरी थी अनुकम्पा माता,
वेद विषय अनुराग हुआ ॥

यही कामना अब है मन में,
तेरा उज्ज्वल नाम करूं।
जिस से सुरभित तव यश फैले,
ऐसे ही मैं काम करूं ॥

आशिष पूज्य पिता की पाऊं,
दिव्य धाम जो राज रहे ।
धर्म देश पर अर्पित होऊं,
कुल माता की लाज रहे ॥

जीव-जन्तुओं का सामाजिक जीवन

श्री सुषेण

इस सृष्टि में अनेक प्रकार के जीव-जन्तु हैं जिनमें मनुष्य की भी गणना की जाती है। स्थूल रूप से इन्हें तीन भागों में बांट सकते हैं पादप, पशु-पक्षी-अन्य जीव-जन्तु-कीट-पतंग कृमि, मनुष्य। इन सब में मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जिसमें जिज्ञासा और ज्ञान दोनों की विशेषता है। जिज्ञासा की पूर्ति के लिए मनुष्य अपने ज्ञान का उपयोग करता है और जिज्ञासा की पूर्ति का नाम ही ज्ञान है।

मनुष्य इस सृष्टि में जितने प्रकार के जीव-जन्तु और पदार्थ देखता है उनके विषय में कुछ न कुछ जानना चाहता है और उनके गुण-दोष जानकर उन्हें अपने उपयोग में लाने का प्रयत्न करता है। इसी आधार पर आवश्यकता को खोज और आविष्कारों की जननी कहा गया है।

मनुष्य ने सृष्टि के नये-नये रहस्यों को जानने की प्रबल इच्छा से अनेक दिशाओं में खोज और अन्वेषण किये हैं उसने जीव-जन्तु और कीट-पतंगों का भी अध्ययन किया है। इस अध्ययन से जीव-जन्तुओं के विषय में अनेक मनोरंजक और उपयोगी रहस्यों का पता लगा है।

जिस प्रकार मनुष्य अपना सामाजिक जीवन व्यतीत करता है उसी प्रकार अन्य अनेक जीव-जन्तुओं का भी अपना सामाजिक जीवन है। अनेक प्राणी दूसरी जाति के प्राणियों को नष्ट कर उनके रहने का स्थान तक छीन लेते हैं। अनेक प्राणी दूसरे प्राणियों की सन्तान का पालन-पोषण करते और उनकी रक्षा करते हैं। विविध कीट-पतंगों के कारण ही कई प्रकार की वनस्पतियों और फल फूलों का अस्तित्व बना रहता है, क्योंकि फूलों में प्रायः विभिन्न कीट-पतंगों के द्वारा ही परागण होता है। परागण से बीजों की उत्पत्ति होती है और बीजों से उनका वंश चलता है।

यदि बिल्लियों की संख्या अधिक हो तो तिपतिया घास भी अधिक परिमाण में उत्पन्न होगी, यह कथन बड़ा विचित्र सा प्रतीत होता है किन्तु विज्ञान का विद्यार्थी यह जानता है कि इस तिपतिया के लाल और तिरंगे फूलों पर केवल गुंजमक्षी (हम्बल बी) आती है क्योंकि उनके अतिरिक्त अन्य कोई मधुमक्खी इन फूलों के मधु तक नहीं पहुँच सकती। इसलिए गुंजमक्षी तिपतिया की उत्पत्ति के लिए अनिवार्य है। ये मक्खियां अपना छत्ता पृथ्वी के भीतर बनाती हैं। किन्तु जंगली चूहे इन छत्तो को नष्ट कर डालते हैं। चूहे जितने अधिक होंगे उतनी ही अधिक गुंजमक्षी नष्ट होंगी। चूहों को नष्ट करने के लिए बिल्लियां आवश्यक हैं इस प्रकार जितनी ही अधिक बिल्लियां होंगी उतने ही अधिक चूहे नष्ट होंगे। जितने चूहे कम होंगे उतनी ही गुंजमक्षियां बढ़ेंगी और जितनी ही अधिक ये मक्खियां अधिक होंगी उतनी ही तिपतिया की उत्पत्ति अधिक होगी। कीटकीविद् (एनोटामोलॉजस्ट) न्यूमन इन मधुमक्खियों का अध्ययन करने के पश्चात् उक्त परिणाम पर पहुँचा था।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राणियों का पारस्परिक सम्बन्ध कितनी दूर तक पहुँचता है और मनुष्य के लिए इसका ज्ञान कितना आवश्यक है।

विभिन्न जीव-जन्तुओं का परस्पर क्या सम्बन्ध है, वे एक दूसरे के किस उपयोग में आते हैं और

उनके आस-पास की परिस्थितियों का उन पर क्या प्रभाव पड़ता है इत्यादि बातों का अन्वेषण और अध्ययन विज्ञान का विषय है और इस विज्ञान को पारिस्थिकी (एकोलॉजी) कहते हैं।

जीवधारियों के सम्बन्ध में कई शतियों से अन्वेषण का कार्य हो रहा है और वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार के अपने अनुभव और निष्कर्ष लिखे हैं। इस प्रकार इस सम्बन्ध में बहुत सी सामग्री अब तक एकत्र हो चुकी है। किन्तु पारिस्थिकी के सम्बन्ध में जितना कार्य १९वीं शती के उत्तरार्ध में हुआ है उतना पहले कभी नहीं हुआ था।

मनुष्य जीव-जन्तुओं के सम्पर्क में प्रतिदिन आता है और उनके सम्बन्ध में अनेक समस्याएं भी उसके सामने आए दिन आती रहती हैं। वैज्ञानिक अपने अन्वेषणों के द्वारा उन समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करता है। सामाजिक जीव-जन्तुओं के सम्बन्ध में भी अनेक नई-नई समस्याएं वैज्ञानिकों के सम्मुख आती हैं। उनको सुलझाने के लिए उन्हें इन प्राणियों के स्वभाव, दिनचर्या, रहन-सहन, खान-पान और अन्य प्राणियों से उनके सम्बन्ध के विषय में खोज करनी पड़ती है। कई बार किसी एक निष्कर्ष तक पहुँचने में उन्हें वर्षों लग जाते हैं।

श्री जे० डी० ब्राउन एक चिक्कणवल्क (बीच ट्री) की खोखल में रहने वाले प्राणियों का अध्ययन कई वर्षों तक करते रहे। पहले वहां एक उल्लू रहता था किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् उस कोटर का प्रवेश मार्ग चारों ओर की ऊतियों (टिशूज़) के प्रवर्धन से उल्लू के लिए छोटा हो गया। कुछ दिनों के बाद ब्राउन ने देखा कि उस खोखल में एक सारिका रहने लगी है। ऊतियों के निरन्तर बढ़ते रहने से वह प्रवेश मार्ग और भी छोटा हो गया यहां तक कि कोई भी पक्षी उसमें प्रवेश नहीं कर सकता था। तब उसको भिरड़ों ने अपना निवास स्थान बना लिया। किन्तु कुछ दिनों के पश्चात् वह छिद्र सर्वथा ही बन्द हो गया और फिर वहां कोई भी अपना घोंसला न बना सका।

एक दूसरा वैज्ञानिक १० वर्ष तक एक खोखले भूर्ज (बर्च) वृक्ष का अवलोकन करता रहा। उसने वहां देखा कि किस प्रकार कुछ चींटों ने उस वृक्ष का अपना निवास स्थान बनाया और कुछ दिन के पश्चात् किस प्रकार एक दूसरी जाति के काले चींटों ने उन पर आक्रमण किया। दोनों में कई दिन तक घमासान युद्ध चलता रहा और एक दिन उस वैज्ञानिक ने देखा कि सैंकड़ों पीले चींटे उस वृक्ष के चारों ओर मरे पड़े थे, काले चींटों की टांगों में कई उस समय भी लिपटे हुए थे और बचे हुए कुछ चींटे अब भी आक्रमणकारियों से लड़ रहे थे। किन्तु अन्त में काले चींटों ने पीले चींटों की सारी बस्ती उजाड़ डाली, एक भी जीता न छोड़ा और उस स्थान पर अपना अधिकार जमा लिया। इस प्रकार दस वर्षों में उस वैज्ञानिक ने चींटों की अट्ठतीस विभिन्न जातियों को उस स्थान पर पहले निवासियों को मार भगाते और अपना निवास स्थान बनाते देखा।

इन वैज्ञानिकों के सम्मुख कैसी-कैसी समस्याएं आतीं हैं इसके अनेक उदाहरण हैं। चीन में क्लोमपाक (निमोनिया) महामारी के रूप में फैलता है और सहस्रों मनुष्यों को मार डालता है। यह रोग घनी बस्तियों में रहने वाली एक प्रकार की गिलहरियों पर पहले आक्रमण करता है और उन, गिलहरियों से मनुष्यों में फैल जाता है। गरम देशों में इससे भी भयंकर एक महामारी फैलती है जिससे प्रायः सभी परिचित हैं। यह भी पहले चूहों पर आक्रमण करती है और चूहे के शरीर पर रहने वाले लाल पिस्सुओं के द्वारा मनुष्यों में फैल जाती है। इसे ग्रन्थिमारी (प्लेग) कहते हैं।

एक बार आस्ट्रेलिया से गन्ने की पत्तियों पर रहने वाला एक पर्णवल्गी (लीफहॉपर) किसी प्रकार हवाई द्वीप में पहुँच गया जिसका परिणाम कुछ दिनों में यह हुआ कि वहां की गन्ने की उपज को भयंकर हानि पहुँची। बड़ी कठिनाई से यह विपत्ति दूर की जा सकी। क्वीन्स लैण्ड और फीजी से भुजतन्तु वरट (चालसिड वास्प) और एक प्रकार के खटमल लाए गए। पर्णवल्गी इस वरट (भिरड़) का भोजन थे और खटमल इनके अन्डों को चूसकर नष्ट कर देते थे।

विन्डसर फॉरेस्ट में एक वैज्ञानिक ने एक क्रकच-मक्षी (सॉफ्लाई) देखी। इंगलैण्ड में इसकी चार जातियां इससे पहले पाई जा चुकी थीं। पंख निकलने से पूर्व इस मक्खी का पदाति-जातक (कैटर-पिलर) प्रसरल (स्प्रूस) खाकर रहता है। किसी प्रकार यह कीड़ा कनेडा में पहुँच गया और कुछ ही दिनों में वहां के प्रसरल के जंगलों को बड़ी भारी हानि पहुँचाई। वहां की सरकार ने कुछ ऐसे परजीवी (पैरासाइट) कीड़ों को खोज निकालने के लिए एक कैटिकीविद् को नियुक्त किया जो इस मक्खी का नाश कर सकें। उस वैज्ञानिक ने शीघ्र ही ऐसे कीड़े खोज निकाले। ये कीड़े अण्डे देने और परीक्षा के लिए पहले फार्नहम रायल भेजे गये क्योंकि यह आशंका थी कि उनके साथ कोई ऐसा कीड़ा न चला जाय जो आगे चलकर लाभकारी होने की अपेक्षा स्वयं ही विनाशी कीट (पेस्ट) सिद्ध हो। इन कीड़ों के द्वारा कनैडा वासियों ने क्रकच-मक्षी का नाश करके प्रसरल के जंगलों की रक्षा की।

एक विनाश-कीट को नष्ट करने के लिए दूसरे नाशक का उपयोग बड़ी सावधानी से करना पड़ता है। थोड़ी सी भूल से दूसरा नाशक भी आगे चलकर कष्टदायक सिद्ध हो सकता है। एक बार सांपों को नष्ट करने के लिय जमैका में कुछ न्यौले पहले-पहल लाये गये थे। वहां इनके परिवार की बहुत शीघ्र वृद्धि हुई और इन्होंने वहां के सभी सांपों को खा डाला किन्तु जब वहां एक भी सांप न बचा तब उन्होंने गृहधान्य पक्षियों और उनके अंडे बच्चों को नष्ट करना आरम्भ कर दिया और अन्त में जमैका वासियों के लिए न्यौला भी सांप के समान ही विनाशकारी सिद्ध हुआ।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिकों के सम्मुख सामाजिक प्राणियों के सम्बन्ध में कैसी-कैसी समस्याएं आती हैं। हिमज्वर के मच्छर, निद्रा का रोग फैलाने वाली कालमक्षी, उन्मृदा (सॉयल) में होने वाले गण्डूपद (गेण्डुए, अर्थ-वर्म), कृषि को हानि पहुँचाने वाले अनेक प्रकार के कीट-पतंग, लकड़ी और अन्य वस्तुओं को नष्ट करने वाले कीड़े, जंगलों में आखेटों की सुरक्षा, समुद्रों में मछलियों की खेती, अनेक प्रकार के विनाश कीट ये सब इन वैज्ञानिकों की ही समस्याएं तो हैं।

अब हमें यह देखना है कि विकास के सिद्धान्त के अनुसार जीव-जन्तु और कीट-पतङ्ग किस प्रकार अपनी एकल (सॉलिटरी) अवस्था से सामाजिक अवस्था तक पहुँचे। व्हीलर ने इस प्रजाति की सात अवस्थाएं बताई है।

पहली अवस्था में माँ अपने अण्डे अपने रहने के स्थान के इधर-उधर बिखेर देती थी। कभी-कभी वह अण्डे ऐसे स्थान में भी रख देती थी जहाँ उन में से निकलने वाले डिम्भ (लार्वा) के लिए भोजन सामग्री सुलभ हो।

दूसरी अवस्था में माँ किसी ऐसे पत्ते या किसी ऐसी वस्तु पर अपने अण्डे रखती थी जो डिम्भान्न (लार्वल फूड) का काम दे सके।

तीसरी अवस्था में वह उनको ऐसा आवरण भी देने लगी जिससे उनकी रक्षा हो सके।

चौथी अवस्था में वह अपने अण्डे बच्चों के साथ रहने लगी और उनकी रक्षा स्वयं करने लगी।

पाँचवीं अवस्था में वह उनके लिए निवास स्थान बनाने लगी और उसमें उनका भोजन पहले से ही एकत्र रखने लगी।

छठी अवस्था में वह उनके पास ही रहने लगी और उनके योग्य भोजन बनाकर उन्हें खिलाने लगी।

इसके पश्चात् सातवीं अवस्था आती है जिसमें अकेली माँ ही अपनी सन्तति की रक्षा और पालन-पोषण नहीं करती अपितु सन्तति भी अपने से छोटे बच्चों की रक्षा और पालन-पोषण में अपनी माँ की सहायता करती है।

इस प्रकार माता-पिता और सन्तान साथ-साथ रहने लगे और उनका एक अपना परिवार या समाज बन गया। स्थूल रूप से सामाजिक जीवों का यही इतिहास है।

अब हमें सामाजिक जीव-जन्तुओं की अनेक मनोरञ्जक समस्याओं और रहस्यों पर विचार करना है। जिनमें सबसे पहले हम भिरड को लेंगे उसके पश्चात् चींटे जिनके विषय में सम्भवतः अब तक सब से अधिक जानकारी प्राप्त हो चुकी है। उसके पश्चात् दीमक पर विचार करेंगे।

सोम

श्री भगवद्दत्त वेदालंकार

सोम रस चन्द्रमा से इस पृथिवी पर आता है और सब प्राणियों पर इसकी वर्षा होती है। यह सोम जल का आश्रय लेता है इस लिये जल वा रस रूप में इसको माना गया है। ओषधियां व वनस्पतियां आदि इस सोम को प्रायः कर जल द्वारा ग्रहण करती हैं, और इस से अनुप्राणित होती हैं, इस लिये सोम को इनका अधिपति माना गया है। वृक्षों व वनस्पतियों आदि पर जितने फूल हैं ये सब सोम के भरे कलश हैं (सोमः पुनातः कलशेषु सीदति)। ये ओषधियां आदि एक समान रूप से इस सोम को नहीं ले पातीं। कोई सोमरस अधिक लेती है तो कोई कम। अधिक से अधिक सोम रस हिमालय पर होने वाली सोमलता में होता है। जिसको प्राचीन समय में ब्राह्मण व ऋषि-महर्षि लोग जानते थे। उस सोमलता में सोमरस ही भरा होता था। इस लिये कालान्तर से सोम का एक मात्र निवासस्थान उस हिमालय पर होने वाली लता में ही मान लिया गया। परन्तु सोमरस सभी ओषधियों व वनस्पतियों में कम अधिक मात्रा में होता ही है (पुष्पानि चौषधिः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः)। जिस प्रकार चन्द्रमा से आते हुए सोम रस को ये ओषधियां व वनस्पतियां आदि सीधा ग्रहण करती हैं उसी प्रकार मनुष्य भी सीधा ग्रहण कर सकता है। मन्त्रों में भी इस बात का अनेकों स्थलों पर संकेत मिलता है। उदाहरणार्थ निम्न मन्त्र देखा जा सकता है। 'सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः' अर्थात् ब्रह्मवेत्ता लोग जिस सोम को जानते व प्राप्त करते हैं, उसको पार्थिव पदार्थों में रमने वाला व्यक्ति नहीं भस्म कर सकता।

इस से यह पता चलता कि इस सारे मण्डल में सर्वत्र फैले हुए सोमरस को मनुष्य सीधा भी ग्रहण कर सकता है। सोमरस को सीधा ग्रहण करने के लिये आध्यात्मिक तरीका है, जिसकी हम सब को अन्वेषण करनी चाहिये। परन्तु पार्थिव सोम को प्रत्येक मनुष्य इन ओषधियों व वनस्पतियों द्वारा ग्रहण करता ही है। अन्न व फलादि भक्षण द्वारा वह सोम हमारे अन्दर जाकर हमारी नस-नाड़ियों को जिनको वैदिक भाषा में ओषधी व वनस्पति कहा गया है—हरा भरा रखता है। यह सोमरस जो हम भोजन द्वारा अपने अन्दर लेते हैं, आवश्यक नहीं कि पवित्र हो। अन्न का रस बनता है तब वह पवित्र होने के लिये हृदय में जाता है। हृदय भी इन्द्र का निवासस्थान है। यहां रहता हुआ वह सोम का दान करता है। परन्तु यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि अधिक से अधिक सोमरस परिपूर्ण पदार्थों को हम अपने भोजन का अङ्ग बनावें। मस्तिष्क में विद्यमान सोमरस को इन्द्र पीता है। मानव शरीर में असली सोम का स्थान यह मस्तिष्क ही है। अन्न द्वारा भी सोमरस मस्तिष्क में पहुँचता है। परन्तु यह द्युलोक से आते हुए सोमरस को सीधा भी ग्रहण कर सकता है। यदि अन्न श्रेष्ठ हो तो मनुष्य की शक्तियां भी श्रेष्ठ हो सकती हैं। दिव्य वनस्पति है। इस सोम को पवित्र करने के लिये कई साधन हैं। एक साधन प्राणायाम भी है। क्योंकि प्राणायाम से शरीर व इन्द्रियों के मल भस्म हो जाते हैं। प्रकाश पर पड़ा आवरण क्षीण हो जाता है। इस से वह सोमरस निर्मल पवित्र व दिव्य बनता है। इसी प्रकार इस सोम को पवित्र करने व छानने के लिये कई छलनियां हैं। हमारे शरीर की नस-नाड़ियां, ओषधी, वनस्पतियां हैं। और जितने भी हमारे शरीर में धातु हैं वे सब लता-द्रव्य कहे गये हैं। इन सब में सोमरस भरा हुआ है।

शेष पृष्ठ १५ पर

वह विष जिसे लोग प्रतिदिन पीते हैं

राजर विलियम्स रीस

मनुष्य की आदत के इतिहास में जितने भी परिवर्तन हुए हैं उनमें से शायद ही कोई इतना विशाल हो जितना सिगरेट पीने का अभ्यास। एक ही पीढ़ी के अन्दर सिगरेट पीने की आदत ने सारी मानवता को ग्रसित कर लिया है। यह आदत कितनी शीघ्रता से बढ़ी है, हम इसका अनुमान नहीं कर सकते और इसका असर मनुष्य के स्वास्थ्य और उसकी आयु पर किस भयंकरता से पड़ रहा है, इसे कोई समझ ही नहीं सकता। पिछले वर्ष ६ करोड़ अमेरिकनों ने ४० अरब सिगरेट पिये। गणना से यह भी पता चलता है कि अमेरिका में हर साल सिगरेट पीने वालों के दल में कोई आठ लाख नये लोग शामिल होते जा रहे हैं।

हर तीन मर्दों में से दो सिगरेट के गुलाम है, हर पांच औरतों में से तीन सिगरेट पीती हैं और १४ वर्ष के हर सात लड़कों में से एक सिगरेट का प्रेमी है। हर पीने वाले के पीछे रोज औसतन १६ सिगरेट का खर्च है। अमरीकी जनता तम्बाकू पर हर साल ४० अरब डालर खर्च करती है, जिसके मानी हुए कि अमेरिका में स्कूलों पर जितना खर्च होता है उससे दूना खर्च तम्बाकू पर है। सिगरेट पीने की आदत का पारा ऊंचा जा रहा है और उसमें किसी भी साल समता नहीं रहती। हम अमरीकी लोग सिगरेट के धुए के बादलों के नीचे चल रहे हैं।

सिगरेट में कौन सा तत्व है जिसे हम खींच खींच कर अपने भीतर ले जाते हैं? डाक्टरी बतलाती है कि सिगरेट के भीतर किस्म-किस्म के ज़हर हैं, यद्यपि उनमें से सब के सब सिद्ध नहीं किये जा सके हैं। मगर, दो ज़हर तो स्पष्ट हो चुके हैं। वह हैं बेंजोपाय-रीन जो श्वासयंत्र को दूषित करता है और दूसरा है निकोटिन जो हमारी आयु को क्षीण करता है।

निकोटिन तम्बाकू का सत है और वही उसे दूसरी घासों से अलग करती है। जब हम सिगरेट पीते हैं, तब बहुत सी निकोटिन तो हवा में उड़ जाती है। उसकी एक तिहाई ही मुंह में जाती और उसमें से भी पांचवां हिस्सा फेफड़े में पहुँचता है। पांच सिगरेटों से जो नुकसान होता है उतना एक सिगार से होता है। और पाइप के जरिये सिगार से भी कुछ ज्यादा ही निकोटिन भीतर जाता है।

सिगरेट का जलने वाला छोर जितना ही महकता रहता है, उतना ही अधिक निकोटिन आदमी के फेफड़े में जाता है। इसी प्रकार, जो जितनी ही तेज़ी से सिगरेट पीता है वह उतनी ही तेजी से निकोटिन को भी जज्ब करता है। और जो सिगरेट को अधिक से अधिक छोटा करके फेंकता है वह भी अधिक से अधिक निकोटिन को जज्ब करता है।

पृष्ठ १४ का शेष—

परन्तु हमारे सिर रूपी हिमालय में तो सोम ही सोम है। इस सोम को आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में मस्तिष्क द्रव (Cerebro-spinal fluid) कहा जाता है। परन्तु हमें यह कहना चाहिये कि मस्तिष्क द्रव सोम नहीं है अपितु मस्तिष्क द्रव में वह सोम रहता है। क्योंकि सोम द्रव का आश्रय करके रहता है। इस लिये यही व्यवहार में आता है कि सोमरस द्रव है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी नस-नाड़ियों तथा रीढ़ व मस्तिष्क में होने वाले सोम को निचोड़ा कैसे जाये?

अपने शुद्ध रूप में निकोटिन भयंकर विष है। किसी खरगोश के बदन पर अगर एक बूंद निकोटिन गिरा दिया जाय तो वह फौरन बेहोश हो जाता है। दो सिगरेटों में जितना निकोटिन होता है वह अगर सूई के ज़रिये पीने वाले के लहू में पहुँचा दिया जाय तो उसकी तत्क्षण मृत्यु हो जा सकती है। आप एक दिन में जितने सिगरेट पी जाते हैं, उन सब का ज़हर अगर आपके बदन में सूई के ज़रिये डाल दिया जाय तो आप उसी तरह उलट जायंगे जैसे गोली लगने पर।

सिगरेटों की किस्मों में अब परिवर्तन होने लगे हैं। अधिक कारखानों में सिगरेट में फिल्टर लगाये जाते हैं, जिससे निकोटिन छन कर निकले और उसका कुछ अंश मुंह में न पहुँच सके। मगर, फिर भी अधिक से अधिक सफल फिल्टरों से भी सिर्फ ७० प्रतिशत निकोटिन बचाया जा सकता है। ३० प्रतिशत को तो आपको श्वास से खींचना ही पड़ता है।

प्रश्न होता है कि जब निकोटिन इतना भयंकर विष है तब फिर हम मर क्यों नहीं जाते? इसका एक ही जवाब है कि आदमी का शरीर धीरे-धीरे ज़हर पचाने का भी अभ्यासी हो जाता है और धूएं के ज़रिये हम काफी ज़हर अपने भीतर जमा नहीं कर पाते हैं।

सिगरेट पीने से कंठ में दाह या खसखसाहट होती है और श्वास-प्रक्रिया में गड़बड़ी पैदा हो जाती है। अगर आप एक पैकेट सिगरेट रोज पीते हैं तो यह समझिये कि एक साल में आप २७ औंस ज़हर अपने भीतर ले जाते हैं। जहां तक पीले धब्बे का सवाल है, वे निकोटिन के धब्बे नहीं होते। निकोटिन में कोई रंग नहीं होता। धब्बे तो बेंजोपेरीन के ही होते हैं जो श्वास यन्त्रों के लिए बहुत ही घातक है।

एक डाक्टर ने १०० ऐसे धूम्रपायियों की जांच की जो २८ सिगरेट रोज पीते थे। उन में से ७३ के कंठ सूजे हुए थे, ६६ को खांसी थी और सात की जीभ खराब थी। एक दूसरे डाक्टर के अध्ययन का यह परिणाम हुआ कि सौ में से तीस आदमी मुंह की बीमारी से परेशान थे और तीस को कफ की बीमारी थी। निकोटिन से श्लेष्मा की झिल्ली में प्रदाह उत्पन्न होता है और तम्बाकू के दाह से वह झिल्ली एकदम बर्बाद हो जाती है।

सिगरेट आप कैसे पीते हैं, यह भी ध्यान देने की बात है। यानी आप पूरा सिगरेट पी जाते हैं या नहीं, जोर से पीते हैं या धीरे-धीरे। सिगरेट को अधिक देर तक दबाये रखते हैं या नहीं तथा कितने धुएं को आप घोंट जाते हैं, ये बातें ऐसी हैं जिन पर सिगरेट से होने वाली हानि की मात्रा निर्भर करती है। कहने को तो बहुत से लोगों का यह भी कहना है कि सिगरेट से श्वास क्रिया पर जोर नहीं पड़ता और न खांसी ही उत्पन्न होती है। किन्तु, हर पुराना धूम्रपायी इस बात को जानता है कि सिगरेट पीने से फेफड़े पर बुरा असर पड़ता है और उस से खांसी भी पैदा होती है।

एक प्रश्न यह भी है कि सिगरेट पीने से भूख मरती है या नहीं। हर सिगरेट पीने वाला जानता है कि अधिक भूख लग जाने पर सिगरेट पीने से भूख की बेचैनी मन्द हो जाती है क्योंकि भूख लगने का कारण पेट की दीवारों का सिकुड़ना है और सिगरेट के धूएं से यह सिकुड़न कम हो जाती है।

इसी प्रक्रिया के कारण सिगरेट पाचन शक्ति को भी हानि पहुँचाता है। हमारे बहुत से मित्र ऐसे हैं जिन्होंने सिगरेट पीना छोड़ कर अपना वजन बढ़ा लिया है और पहले की अपेक्षा ताजे दीखने

लगे हैं। जो आदमी अधिक सिगरेट पीता है, वह खाना कम खायेगा, इसे नियम समझना चाहिये।

ज्यादा धूम्रपान करने से गेस्ट्राइटिस भी पैदा होती है और क्षरण के जमा होने से कलेजों में दाह भी मालूम होने लगती है। ऐसी बीमारियां होने पर सिगरेट अवश्य छोड़ देना चाहिये। अंतड़ी में होने वाले घाव का भी धूम्रपान से सीधा सम्बन्ध है। देखा गया है कि इलाज के समय उन्हें तो बीमारी का दौरा नहीं हुआ जो सिगरेट नहीं पीते थे, मगर पीने वालों का इलाज कठिनाई से किया जा सका। न्यू ओर्लियेंस में जो अचसर क्लीनिक है उस में इलाज के लिये ऐसे रोगी लिये ही नहीं जाते जो सिगरेट पीते हैं अथवा जो सिगरेट छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

तम्बाकू के विरोधी डाक्टरों का कहना है कि गर्भिणी स्त्रियों को तो तम्बाकू पीना ही नहीं चाहिए। तम्बाकू से गर्भिणी स्त्रियों को उतनी ही हानि होती है जितनी और लोगों को।

जो लोग व्यायाम करते हैं या खेलकूद की प्रतियोगिता में भाग लेते हैं उन्हें सिगरेट कदापि नहीं पीना चाहिये। सिगरेट पीने से पुंसत्व और स्तंभन में भी कमी आती है, ऐसा डाक्टरों का विचार है।

सिगरेट पीने से रक्त की शिराएं भी दूषित होती हैं और हमारी धमनियों में एक प्रकार का प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। अधिक सिगरेट पीने से नाड़ी की गति में २८ धड़कनों की वृद्धि होते देखी गयी है। सिगरेट पीने से हृदय की धड़कन अनियमित हो जाती है और वह कभी-कभी कूदने भी लगता है। जिन्हें सिगरेट पीने की आदत है उन्हें छाती धड़कने की बीमारी भी हो सकती है। इसके सिवाय पीने वालों का रक्तचाप भी बढ़ सकता है। ऐसा भी देखा गया है कि सिगरेट पीना छोड़ देने पर रक्त का दबाव आप से आप घट जाता है।

डाक्टर मेनार्ड का कहना है कि सिगरेट पीने से किसी-किसी को हृदय धड़कने की बीमारी हो जाती है। किन्तु यह बताना कठिन है कि यह बीमारी किसको और कब पकड़ेगी। जब स्थिति ऐसी सन्देहजनक है तब हम सिगरेट को विदाई ही क्यों नहीं दे देते।
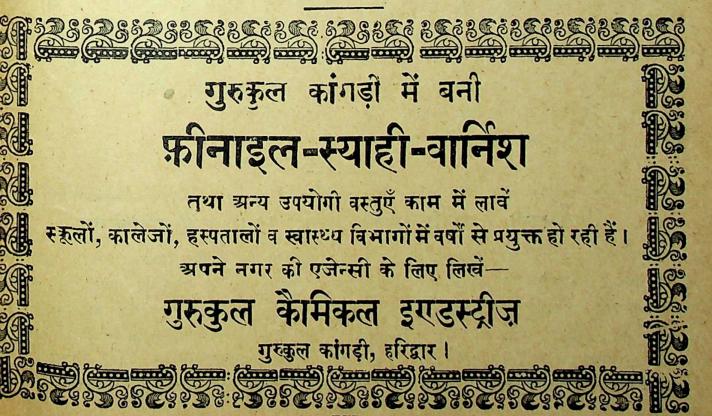
शिक्षा का मुख्य अङ्ग-चरित्र निर्माण

श्री स्वामी शिवानन्द

शिक्षा का उद्देश्य आन्तरिक ज्ञान, जो सब के अन्दर विद्यमान है उसे प्राप्त और प्रकट करने का ध्येय होना चाहिए। इसको नियन्त्रण की आग में शुद्ध करना चाहिए। शिक्षा की प्राप्ति द्वारा हमारी वे न्यूनतायें दूर होती हैं जो कि हमारी आत्म उन्नति में बाधक हैं। इस लिए शिक्षा हमें उन नियन्त्रणों का अनुकरण करवाती है जिस से कि हम विनम्र बनते हैं बाहरी चीज़ें तो केवल एक बेलचे का काम करती है जिस के द्वारा हम सद्गुणों को प्रकट कर सकते हैं। ये चीज़ें विद्वान् गुरु द्वारा ही हमें उपलब्ध हो सकती हैं। गुरुकुलीय शिक्षा का मुख्य अंग चरित्र निर्माण और नियन्त्रण है, यह आज कल की तरह जीवन रहित शिक्षा नहीं बल्कि गुरुकुल की सच्ची शिक्षा है। यह बड़ी भारी भूल है कि आज कल के लड़के और लड़कियाँ शिक्षा को नौकरी, रोटी तथा आराम के लिए ग्रहण करते हैं और सच्ची शिक्षा की परवाह नहीं करते। आज कल सब स्कूल और कालिजों को चाहिए कि वे यदि मनुष्य मात्र का भला चाहते हैं तो धार्मिक शिक्षा और उस का महत्व विद्यार्थी को अवश्य बतलावें जिस से सत्य, प्रेम, शुद्धता, विश्वबन्धुता तथा न्याय आदि वस्तुएं, जो कि धर्म के अंग माने गए हैं, उस में व्याप्त हो जांय। आजकल शिक्षा में चरित्र निर्माण पर ध्यान नहीं दिया जाता। यदि हम धर्म की अवहेलना करते रहें तो सिवाय मांस और हड्डियों के ढेर के अतिरिक्त हमारे अन्दर कुछ नहीं रह जाता। आज कल के विद्यार्थियों में विलास प्रियता, घमण्ड, आज्ञा-भङ्ग करने के साथ बहुत से अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं। वे नास्तिक बन जाते हैं और उन्हें ब्रह्मचर्य और नियन्त्रण का ज्ञान भी नहीं रहता। अपवित्र खाना, भांति २ के वस्त्र पहनना, बुरी संगत तथा सिनेमा आदि में जाने के कारण विलास-प्रिय हो जाते हैं, शिक्षा का अर्थ पुस्तकों को घोटना नहीं है बल्कि हमें अपने आप को ज्ञानवान् बनाना है।

मैं यह जान कर बड़ा प्रसन्न हूँ कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, अपने विद्यार्थियों में चरित्र निर्माण, सद्व्यवहार, सद्विचारों को भरता है और उन्हें भीतरी और बाह्य जानकारी से परिचित कराता है। भगवान् करे कि गुरुकुल उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो और गुरुकुल जैसी संस्थाएं भारत में अनेक आरम्भ की जाँय।

प्रार्थनावली— प्रवासी (अजमेर, फरवरी १९५०) की समालोचना

पुस्तक के आरम्भ में कुछ वेद मन्त्र और उन के सरल अर्थ दिए गए हैं और प्रार्थना सम्बन्धी कुछ गीतों का संग्रह है। महाकवि मैथिली शरण गुप्त, प्रोफेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० रामनरेश त्रिपाठी, पं० चमूपति, पं० वागिश्वर विद्यालङ्कार आदि काव्य कलाकारों की कृतियों से इस प्रार्थनावली की महत्ता बहुत बढ़ गई है। इसके पाठ से मानवी हृदय प्रभु भक्ति में ओतप्रोत हुए बिना नहीं रह सकता। प्रार्थना प्रेमियों के लिए यह छोटी सी पुस्तक बड़े काम की वस्तु है। मूल्य ।) प्राप्तिस्थान-प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

दाँतों की सुध

वैद्य ठाकुरदत्त शर्मा

बालकों को दातुन करने की शिक्षा देने के साथ ही इनको यह भी सिखलाना चाहिये कि जब कोई वस्तु खावें तो उसके पश्चात् कुरला कर लिया करें। प्रातःकाल और रात्रि को सोते समय तो विशेष ध्यान रखना चाहिये। जब हम कोई भी वस्तु सेवन करें तो उसके कुछ अंश दांतों में अवश्य लगे रहेंगे। वे गलते हैं। उन में दुर्गन्ध उत्पन्न होती है दुर्गन्ध के साथ कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं जो आंत अथवा मसूढ़ों को भी खाने लग जाते हैं। जो लोग मीठा बहुत खाते हैं उनके दांतों में मिष्टान्न लगे रहने से मीठे में से सड़ान्ध उत्पन्न होकर अम्लत्व अर्थात् तेज़ाब बन कर भी मसूढ़ों को खाता है। मसूढ़े दांतों से पृथक् हो जाते हैं तब दांतों और मसूढ़ों में भी अधिक खाद्य पदार्थ एकत्र होने आरम्भ हो जाते हैं जिन से दांतों की जड़ें हिल जाती हैं अथवा इन में शोथ हो जाता है, पीप पड़ जाती है। दांतों में कृमि दन्तक हो जाता है दांत के अन्दर के ज्ञान-तन्तु नग्न हो जावें तो पीड़ा सताती है। ठंडे अथवा गर्म खान-पान से भी कष्ट होता है। दांत हिलने लगते हैं।

दांतों में ऐसे कष्ट होने से भोजन भली प्रकार चबा कर नहीं खाया जाता है। इस से अपचन होता है, अपचन के कारण विकृत वायु तथा डकार आते हैं जो दांतों को और भी हानि पहुँचाते हैं इस प्रकार दांतों की खराबी उदर में और उदर की दांतों में पहुँच कर दोनों विकारी होते जाते हैं। पाचन क्रिया ठीक न होने से आम उत्पन्न होता है जो आम वात (गठिया) आदि रोगों का कारण होता है और सारा शरीर ही अस्वस्थ हो जाता है। इतने से आप समझ सकते हैं कि यदि आरम्भ से ही दांतों को स्वच्छ रखने का अभ्यास बालकों को करा दिया जावे तो उनकी आयु कितनी सुख से व्यतीत हो सकती है। जीवन में छोटी २ बातों का ध्यान रखने से बड़े २ परिणाम निकलते हैं, अच्छी बात के अच्छे परिणाम और बुरी बात के बुरे परिणाम।

आयुर्वेद शास्त्र में दांतों को चार बार दातुन, मंजन आदि से शुद्ध करने का आदेश है। प्रातः-सायं और दोनों समय भोजन के पश्चात्। परन्तु नवीन सभ्यता ने हम को बुरी तरह ग्रसा हुआ है, किसी के सामने कुरला करना भी फैशन के विरुद्ध है। नवीन सभ्यता के अनुसार जो भोजन अथवा टी पार्टियां होती हैं इन में न तो हाथ धोकर कुरला करके बैठते हैं न समाप्त करने के पश्चात् उठ कर दांत या हाथ साफ करते हैं। भोजन के पश्चात् प्लेटों में पानी डालकर सामने रख देते हैं जिस से हाथों के अग्र भाग को गीला कर लिया जाता है। इन सभ्य कहे जाने वालों में भोजन अथवा टी पार्टियों में मांस अधिक सेवन किया जाता है और मांस के अंश दांतों के मध्य भाग में लगे रह जाते हैं यह और भी अधिक दांतों का सत्यानाश करने वाले होते हैं।

सभ्यता के इस नियम को बुद्धिमानों को ढीला कर देना चाहिये। एक ओर पानी का प्रबन्ध रखना चाहिये और सब को हाथ, दांत साफ करने चाहियें। जो बहुत फैशनेबल हैं वे न भी ऐसा करें तो हमारे लेख के पढ़ने वाले तो अपनी स्वास्थ्य रक्षा के लाभार्थ ऐसा कर लिया करें।

हम पहले लिख चुके हैं कि दूध के दांत यदि स्वच्छ सुदृढ़ न रक्खे जावें तो इनके स्थान पर उगने वाले स्थिर दांत भी अच्छे नहीं होते अतः जब बालक बहुत छोटा हो तो माता-पिता का कर्तव्य

[शेष पृष्ठ २० पर]

अध्यात्मवाद के मधुर घूँट

श्री स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

आधी रात का समय था। मैं अपने तख्त पर से प्यास लगने के कारण उठ कर बैठ गया। आज-कल मई के महीने में मैं अपने सत्यज्ञान निकेतन ज्वालापुर की गुफा की नई छत पर सोता हूं। मच्छरों के कारण मसहरी लगा कर रक्खी है। मैंने अपने मन से कहा—'चल उठ तुझे पानी पिलाऊँ'। पानी पीकर मैं छत पर टहलने लगा और अपनी आदत के अनुसार लगा व्याख्यान देने। चारों ओर निस्तब्धता छाई हुई थी। आकाश में विचरने वाले रमतेराम मेरे प्रेमी श्रोता आकर जमा होने लगे। वे तो मानो इसी प्रतीक्षा में ही थे। जब सब संगत जम गई तो मैंने कहना प्रारम्भ किया—

साधो, आप लोगों ने पिछली बार यह प्रश्न किया था कि कामदेव का इतना प्रबल सर्व-व्यापक प्रभाव क्यों है, जो बड़े २ पण्डित और अभ्यासी इसकी चपेट में आ जाते हैं? आज इसी की मीमांसा करने का हमारा संकल्प है। सुनिये, लाखों योनियों में से गुजरते हुए मनुष्य ने सब से अधिक अभ्यास उसी इन्द्रिय का किया है, जो जीवन को आगे बढ़ाती है, कीट-पतङ्ग, पशु-पक्षी आदि सभी प्राणी अपना वंश चलाने के लिये विषय सुख लेते हैं और इस से उनकी सन्तान वृद्धि होती है, जिस से यह सृष्टि उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है। लाखों वर्षों के इन्द्रिय सुख के अभ्यास ने प्राणी का सब से अधिक परिचय उपस्थेन्द्रिय से ही कराया है और वह उस के मजे को अमृत की तरह मानने लगा है। मनुष्य देह के अतिरिक्त अन्य योनियों में तो उपस्थेन्द्रिय की यह क्रिया वंश बढ़ाने तक ही सीमित रहती है, किन्तु जिस समय इस प्राणी को मानव शरीर मिलता है तो इस में बुद्धि-वैचित्र्य का उदय होता है। इस नई शक्ति के पा जाने से उपस्थेन्द्रिय का सुख कामदेव का रूप धारण कर महा शक्तिशाली हो जाता है। क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार ये चार अन्य मनोविकार हैं तो सही, किन्तु हैं इसी कामदेव के बच्चे-कच्चे और साथी-सङ्गी। अपने लाखों वर्षों के अनुभव के शास्त्रों को सम्भाल कर यह कामदेव मानव मस्तिष्क में

[१९ पृष्ठ का शेष]

होना चाहिये कि वे बालक के मुख तथा दांतों को अवश्य स्वच्छ रखा करें। बालकों को मुख में उंगली डालने की रुचि होती है। जब दांत निकलने आरंभ हों तो इस ऐब को हटा देना चाहिये। कई बालक बड़े ज़ोर से उंगली चूसते हैं और दांतों के साथ ठस कर उंगली बाहर खींचते हैं इसका परिणाम यह होता है कि दांत बाहर को निकल आते हैं और फिर उनके स्थान में जो नए दांत उत्पन्न होते हैं वे भी बाहर निकले होते हैं।

इसे रोग न भी कहें विकृति अवश्य है और सौंदर्य का भी नाश है, दैवयोग से ऐसा हो तो निकले दांतों को पीछे दबाते रहने से सीधे भी हो सकते हैं अथवा दन्त वैद्य से तार के द्वारा पीछे की ओर कस कर बंधवा देना चाहिये तब दस बारह वर्ष की आयु तक भी सीधे किए जा सकते हैं।

निष्कंटक राज्य करना चाहता है और थोड़ा सा प्रलोभन पाकर बवण्डर खड़ा कर देता है। स्त्री-पुरुषों के कानों में जब यह मायावी अपनी दानवी लीला के तराने सुना कर उनके पिछले विषय सुख की अनुभूति को सजग कर देता है, तो वे अभागे सहज में ही इसके जाल में फँस जाते हैं। तो फिर इस दुष्ट के प्रपञ्चों से कैसे छूटा जाये?

'सब ऋषि-मुनि, सन्त-महात्मा और विद्वान् काम के संयम का उपदेश देते हैं और यह समझाते हैं कि जो व्यक्ति इसका संयम कर लेता है, उसे सब प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि, सब प्रकार के वरदान प्राप्त होते हैं और वह तपस्वी अपने सब पापों को जला देता है। ऐसा क्यों कहा गया? वह इस लिये कि जो जीवन-धारा अनवरत रूप से बही चली आती है, उसका ये उपस्थेन्द्रिय मुख्य अंग है। लाखों योनियों में तो पशु और कीट-पतङ्ग प्रकृति के नियमानुसार उस धारा को मुख्य अङ्ग से बहाते चले आ रहे हैं, क्योंकि उन्होंने केवल शरीर को ही जीवन समझा है, परन्तु मानव देह पाकर मनुष्य के लिये दो रास्ते हो जाते हैं। यदि यह अपने आपको शरीर समझ कर इसका उपभोग करेगा तो अपने बुद्धि-वैचित्र्य के कारण जीवन धारा के किनारों को तोड़ कर विनाश के मार्ग में अग्रसर होगा और यदि उसे यह पता लग जायेगा कि वह आत्मा है और शरीर का स्वामी है तो वह अपने आपको जीवन-स्रोत का अङ्ग मान कर अध्यात्मवाद के पथ का अनुसरण करेगा। कामदेव का संयम करने से उसका सारा शरीर आलोकित हो उठेगा और उसके रोम-रोम से जीवन धाराएं प्रस्फुटित होकर स्वर्ग की रचना करेंगी। वीर्य ही शरीर का राजा है, जो मानव को सब प्रकार के अलौकिक गुण प्रदान करता है। सब तेज, ओज और प्रतिभा इसी के संग्रह से उत्पन्न होते हैं और जो इसे खर्च कर देते हैं, वे निचुड़े हुए नीम्बू की तरह भोंडा रूप धारण कर दुनिया को नरक बनाते हैं। मानव के इसी विवेक पर अध्यात्मवाद की नींव खड़ी की जाती है। मानव देह को पाकर यदि हम अपने आपको शरीर समझते रहेंगे तो हमारा विकास सर्वथा अविरुद्ध हो जाएगा और हमारे जीवन की पूर्णता (Fullness of life) हमें प्राप्त नहीं होगी। मानव योनि में आकर हमारा रास्ता बिल्कुल बदल जाता है और हम शरीर के स्वामी बन कर प्रकृति को जीतने का उपक्रम करते हैं, पिछली योनियों के संस्कारों को जला देते हैं और शरीर को संयम से चला कर उसकी बहिर्मुखी वृत्ति को हटा लेते हैं। तब हमारा प्रवेश एक बिल्कुल नये जगत् में होता है और यही आध्यात्मिक जगत् है, जिसके नागरिक बनने के लिये हमें मानव-देह मिलता है।

परन्तु यह मनुष्य बड़ा मूर्ख है। कामदेव की थोड़ी भी प्रलोभना, उसकी मीठी-मीठी बातें, उसकी रंग-बिरंगी फिल्म इसे पथ-भ्रष्ट कर देते हैं और यह लौट २ कर पशु संस्कारों के कीचड़ में फंस जाता है। आज लाखों स्त्री-पुरुष इस मायावी कामदेव के हाथ की कठपुतली बन कर कैसे-कैसे बीभत्स काम करते हैं। जिसने काम को जीत लिया है, वही सब से बड़ा विजेता है। काम के साथ कभी खिलवाड़ मत कीजिये और कभी भूल कर भी इसकी शक्ति का उपहास मत करिए। यदि जीवन की पूर्णता पाने की अभिलाषा है तो वीर्यवान बनिए। वीर्यवती जातियां ही संसार संग्राम से ऊपर उठती हैं।'

इतना कह कर मैं चुप हो गया और कुछ समय के लिये ध्यानावस्थित रहा। इसके बाद मैंने फिर कहना शुरू किया —

'आप मेरे प्रेमी इस बात को जानने के बड़े उत्सुक होंगे कि ऐसे प्रबल शत्रु मायावी कामदेव को पछाड़ने का अमली तौर पर कौन सा दोटूक तरीका है, जिसे साधक को काम में लाना चाहिये? हमने

आपको समझाया है कि आप आज से यह सूत्र रट लें—'मैं शरीर नहीं हूँ, बल्कि शरीर का स्वामी आत्मा हूँ; मैं शरीर के पीछे नहीं चलूंगा, बल्कि शरीर को अपने पीछे चलाऊँगा। दोटूक में आप इन्द्रियों का कहा मानना छोड़ दीजिये और उनके विरुद्ध जाने का अभ्यास कीजिये। महर्षि पतञ्जली ने इसी साधना का नाम प्रत्याहार रखा है जो अभ्यासी है। उन्हें यह स्मरण रखना चाहिये कि मानव देह पाकर उन्हें नई सृष्टि की रचना करनी है—प्रकृति के संस्कारों का अन्त कर हमें आध्यात्मिक जगत् के पट खोलने हैं और यह तभी हो सकेगा जब हमें आत्मा का स्वतन्त्र व्यक्तित्व साफ तौर से भान होने लगेगा। इसलिये आज से अपने आपको आत्मा समझने की आदत डालिये और शरीर की आवश्यकताओं को बिल्कुल कम करने का अभ्यास कीजिये। शरीर नीरोग हो और उसमें वीर्य का आलोक हो। स्मरण रखिये कि बीमार आदमी कभी अध्यात्म-वादी नहीं बन सकता। जब आत्मा शरीर का स्वामी बन जाता है तो वह शरीर में दैवी प्रकाश भर देता है।'

इतना कहने के बाद मैंने जान लिया कि श्रोताओं को काफी सामग्री मिल गई है। सब भगवान् विहारी अपने अपने स्थान पर चले गये, मैंने खूब व्यायाम किया, कुदकियां लगाईं और तब सुराही से ठंडा पानी पीकर अपने तख्त पर जा बैठा। मेरे मन ने कहा—'जीवन के इकहत्तर वर्ष बीत गये; जो कुछ करना है उसे जल्दी कर ले; मित्रवर धनीराम भल्ला भी चले गये और प्यारे स्वामी भवानी दयाल ने भी परलोक की राह ली। जब प्रभु का वारंट आता है तो फिर कुछ करते-धरते नहीं बनता। उसके सिपाही बल-पूर्वक ले जाते हैं और बतलाते भी नहीं कि कहां ले जा रहे हैं और क्यों ले जा रहे हैं। इस लिये तैयार हो जावो।'

तब मैंने मस्ती से गाना शुरू किया—

'प्रभु के बुलाने पर मैं खुशी खुशी जाऊँगा !'

सन् १६३० के कुल-भूमि के संस्मरण

श्री वीरेन्द्र विद्यावाचस्पति, एम. ए.

शस्यश्यामला मातृभूमि के नील गगन और नील सागर पर उन्मुक्त पवन में लहराती हुई राष्ट्र-पताका किस भारतीय के हृदय को आनन्दोल्लास से परिल्पावित नहीं कर देती। २६ जनवरी १६५० का सुवर्ण विधान भी स्मरणीय है जब जनगण की जय हो, जन गण की जय हो, के तुमलनाद के साथ और जन मन गण आदि नामक जय हो, भारत भाग्य विधाता के वाद्य-घोष के साथ भारतीय गण तन्त्र की स्थापना हुई और भारतीय स्वाधीनता का सुख स्वप्न सहज वन्दे मातरम् की अनुभूतिमय संगीतधारा में आनन्द क्रीड़ा करने लगा। इस स्वाभाविक हर्षातिरेक में विभोर होकर आत्मविस्मृत सा मैं बहुत दूर वि..त इतिहास के पन्नों में बह चला हूँ। १५ अगस्त १६४७, स्वतंत्रता की प्राप्ति और आनन्द समारोह, सर्वत्र धूमधाम, पर हल्की सी देश विभाजन की विषाद छाया और पांच वर्ष पूर्व सन् १६४२ का अगस्त का महीना, सारे देश में अपूर्व क्रान्ति और अंग्रेजों के लिये भारत छोड़ो का नारा, दमन अत्याचार, गोलीकान्ड, अग्निकाण्ड और रुद्र ताण्डव नर्तन। और १२ वर्ष पूर्व सन् १६३०, महात्मा गांधी की दन्डी यात्रा ही नमक सत्याग्रह। मैं विद्या-वाचस्पति के पाठ्य-क्रम में व्यस्त सहसा व्याकुल हो उठता हूँ और अपनी मातृभूमि और उससे भी बढ़ कर कुलमाता की पुकार से आन्दोलित हो उठता हूँ। अपने साथियों के साथ झंडा लेकर गांवों से निकल पड़ता हूँ। उन दिनों के दृश्य मेरी आंखों के सामने चित्रपट की तरह एक-एक करके गुज़र रहे हैं। क्यों न थोड़ी देर रुक कर उन की रूपरेखा के चित्रण का प्रयत्न करूं और अपनी कुलमाता की निगूढ़ भावना को अनुप्राणित करूं।

हिमालय के आंचल में गंगा के उस पार नील सघन बनों की छाया में अभी हमारा गुरुकुल बाढ़ के प्रहार से क्षत विक्षत होकर भी अपना कार्य कर रहा था। कालिज की पक्की इमारत ही ध्वंसावशेष होने से बच गई थी और वही सब गतिविधियों का केन्द्र थी। उसी के एक भाग में छात्रावास और दूसरे भाग में महाविद्यालय की पढ़ाई चलती थी। ५, ६ जनवरी होगी। लाहौर में पं० जवाहरलाल नेहरू के राष्ट्रपतित्व में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका था और उस की प्रतिध्वनि की गूंज देश के कोने-कोने से आने लगी थी। समाचार-पत्रों में लाहौर के दृश्य अभी चित्रित हो रहे थे। प्रातःकाल ही शामपुर (कांगड़ी गांव के पास) थाने के थानेदार कुछ सहमे और सकपकाये से आकर कालिज के प्रवेश द्वार में खड़े हो गये और बड़े ध्यान से लगे इधर-उधर देखने। कभी वे नीचे के छोटे से फर्श को देखते और कभी अपनी उंगली ओठ पर रख चारों ओर की दीवार और छत पर निगाह फैंकते। हम चार पांच विद्यार्थी जो आंगन में खड़े थे इस विशाल काय पर हतप्रतिभ थानेदार की विचित्र भाव भंगी देख कर अपने को रोक न सके और उसके पास जा ही पहुँचे। हम लोगों के पास पहुँचते ही थानेदार साहिब कुछ अन्तःकरण से बोल उठे, क्यों जी आप लोग हमारी रोजी लेकर ही छोड़ेंगे। कोई बात हुआ करे तो जरा खबर दे दिया करें। हम में से एक ने बढ़ कर कहा, कहिये श्रीमन् क्या हुआ? आप लोग तो यह जानते हैं कि हमारे यहां बैंगन की तरकारी बनी या आलूमटर की। तो

फिर है क्या माजरा जो आप खबर देने की कह रहे हैं। हुआ क्या। सरकार ने मुझ से तलब किया है कि 'गुरुकुल कांगड़ी में ३१ दिसम्बर की रात १२ बजे एक बड़ा जलसा हुआ है। कम से कम पांच सात सौ आदमी होंगे। बैंड बाजे के साथ आज़ादी का झंडा उड़ाया गया था। मुकम्मल आज़ादी का रेज़ोलेशन पास हुआ। हिन्दुस्तान भर में यह कार्यवाही खाली दो ही जगह हुई एक लाहौर में और दूसरी गुरुकुल कांगड़ी में। जरूर दोनों जगहों में कोई खास सम्बन्ध है। तुम इतने बेखबर हो कि तुम्हें इस खबर तक का पता नहीं। पूरी तहकीकात करके जल्दी पूरी खबर भेजो और मालूम करो कि गुरुकुल कांगड़ी और लाहौर को एक मिलाने वाला कौन है।' अब आप ही लोग कुछ बताइये। मैं तो कांगड़ी गांव पूछ आया। वहां से तो कोई आया नहीं और न वे लोग कुछ जानते ही हैं। फिर ये पांच सात सौ आये कहां से और कौन उन का नेता है? हम लोगों से हँसी न रुकी और एक ठट्टा सा मार कर बोला, जनाब रात ही रात वायरलेस आया। हवाई जहाज से लाहौर से एक आदमी आया। हरिद्वार की जनता टूट पड़ी और बड़े धूमधाम से सब काम इस ड्योढ़ी में (प्रवेश द्वार) में हुआ। थानेदार साहिब लगे मिन्नत करने, आप लोग मजाक न कीजिये। मैं भी गौर से देख रहा था कि ड्योढ़ी में कैसे पांच सौ आदमी समा सकते हैं। मुश्किल से तीस-चालीस आदमी इस में सटकर आ सकते हैं। आते हुये रास्ते में एक लड़के ने बताया था कि कुछ ड्योढ़ी में हुआ था। मैं समझ नहीं पा रहा कि यह सब है क्या? कुछ तो आप लोग बताइये। हम और आप लोग तो बराबर मिलकर रहते आये हैं। जरा मेहरबानी कीजिये।

बात और बढ़ाना अच्छा न समझा हम ने उन को टका सा जवाब दिया, जाइये आप पता लगाते रहिये कि यह सब कैसे हुआ। हम लोग भी ज्यादा नहीं जानते। थानेदार साहिब अपना सा मुंह लिये विदा हो गये।

बात सचमुच सही थी कि रात को १२ बजे झण्डा लहराया गया था। बैंड बाजे के साथ ड्योढ़ी में २०, २५ विद्यार्थियों के बीच यह कार्य किया था। आचार्य अभयदेव जी (श्री देवशर्मा) ने यह समाचार इधर-उधर भेजा। समाचारपत्रों में भी प्रकाशित हुआ। हिन्दुस्तान टाइम्स ने इसको महत्व दिया और बात का बतंगड़ सरकार की सी. आई. डी. ने बनाया। कालिज में कुल थे ही ५०, ६० विद्यार्थी विद्यालय के विद्यार्थी मायापुर बाटिका में निवास करते थे, ऊंची कक्षा के विद्यार्थी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में। न कोई लाहौर गया न वहां से कोई सन्देश आया। पर यह घटना दो ही जगह क्यों हुई और वह सम्बन्ध कौन सा है यह प्रश्न बना ही रह जाता है। इसका उत्तर है गुरुकुल की सजगता, चेतनाशील और कल्पना प्रवीणता में। चेतना शरीर के सजगतन्तु की तरह, विद्युत् धारा को प्रवाहित करने वाले सम्पन्नशील तार की तरह गुरुकुल देश के सूक्ष्म से सूक्ष्म कम्पन को शीघ्र ग्रहण करने में समर्थ रहा है। हम विद्यार्थी इस बात को गौरव समझा करते थे कि कांग्रेस के अधिवेशन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन की बैठक और व्यवस्थापक सभा की विशेष समितियों से पूर्व ही अपनी कांग्रेस, सम्मेलन और व्यवस्थापिका सभा में देश की परिस्थिति के अनुसार विचार विमर्श कर प्रस्ताव इत्यादि स्वीकृत करें और उन की तुलना पीछे होने वाले निश्चयों से करें। यह देखें कि हमने भी ठीक उसी तरह सोचा था। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन के साथ भी वही बात हुई। कल्पनाशील विद्यार्थियों ने रात को वही किया जो लाहौर में झण्डे के चारों ओर पं० जवाहरलाल और अन्य नेताओं ने किया और आचार्य जी अनुरोध

करके उत्सव सम्पन्न कराया। यह था सूत्र पात आगे आने वाली गतिविधि का। उन कल्पनाशील विद्यार्थियों में कुलमन्त्री सर्वमित्र का नाम मुझे अभी नहीं भूला है जिस ने बड़ा आग्रह करके विनोदात्मक प्रस्ताव को पूर्ण गम्भीर रूप दे दिया और सचमुच उस समय रात १२ बजे हम स्वतन्त्र भारत के सपूत होने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

नमक कानून को तोड़ने के लिए जगह-जगह सत्याग्रहियों की टोलियां नोनिया मिट्टी और छोटी सी कड़ाही लेकर प्रस्थान कर रही थीं और पानी को उड़ा कुछ पुड़िया नमक निकाल खासा प्रदर्शन कर रही थीं। उन पुड़ियों के फेन्सी प्राइस से कुछ काम चलाऊं पैसा भी बटोर लेती थी। प्रारम्भ में जनता ने भी इसे खेल समझा और सरकार ने भी एक विनोद। पर देखते देखते वह आग चारों ओर फैलने लगी। तब सरकार ने अनुभव किया कि वह ज्वालामुखी पहाड़ पर बैठी है और न जाने कब विद्रोह की ज्वाला प्रचन्ड रूप धर ले। गिरफ्तारियों, पाबन्दियों और १४४ का बोल बाला हो गया। जनता में भी इस की प्रतिक्रिया हुई और गुरुकुल कांगड़ी कब इस से अछूता रहता।

आचार्य रामदेव जी ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण से निकाल कर यह दिखलाया कि स्वामी दयानन्द ने सर्वप्रथम नमक और जंगल के कानून के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। गंगा पार गुरुकुल रहने से विद्यार्थी राजनीति के क्रियात्मक अंग से कुछ दूर रह जाते थे। पर अब तो गंगा के इस पार पञ्च-पुरी के क्षेत्र में आ जाने से उस से वे कैसे अछूते रह सकते थे। आचार्य अभयदेव, पं० भीमसेन विद्या-लंकार और पं० दीनदयालु सिद्धान्तालंकार ने सहारन-पुर ज़िले में इस सत्याग्रह में प्रमुख भाग लेना शुरु किया। इन लोगों को गुरुकुल के विद्यार्थियों ने बड़े समारोह से विदा किया। हरिद्वार की हर की पौड़ी पर नमक कानून तोड़ने के लिए भीड़ जुड़ी और स्नातक बन्धुओं ने उस का प्रदर्शन किया। पञ्चपुरी में धूम मच गई, सभाएं और जलूस रोज मर्रा की चीज़ हो गई। गुरुकुल के विद्यार्थी बेधड़क इन सब में आने जाने लगे और देशभक्ति का ज्वार पूरी तेजी में उमड़ने लगा। उपर्युक्त स्नातक बन्धुओं की गिरफ्तारियों ने इस ज्वार की वेला के उल्लंघन के लिए मजबूर कर दिया। अपनी आंखों के सामने पुलिस की लारी में उन्हें खुशी से जाते देख और उन के गुरुकुल के सत्याग्रह में भाग लेने के सन्देश को सुन भला नवयुवक विद्यार्थियों का जोश कैसे रुकता। अगले ही दिन एक बड़ी सभा बुलाई गई। आचार्य रामदेव जी ने लाख कोशिश की कि विद्यार्थी आन्दोलन में न पड़ें पर वहां उस सलाह को सुनने वाला कौन था। आचार्य रामदेव जी के लैक्चर का हवाला देकर लगे लड़के कहने कि स्वामी दयानन्द जी का कथन अक्षरशः पालें कि आचार्य जी का? आचार्य का तो अनवद्य कर्म ही सेवन करना चाहिए। ये बूढ़े लोग कुछ डरते हैं, आओ हम नवयुवक आगे बढ़ें। कुलमन्त्री सर्वमित्र ने घोषणा कर दी कि पढ़ाई लिखाई बन्द और विद्यार्थी सत्याग्रह में भाग लेने निकल पड़ें, कुछ देर बाद ही आचार्य रामदेव जी की लिखित सूचना आई कि ३ महीने के लिए कालिज सत्रान्तावकाश के रूप में बन्द। विद्यार्थियों को और क्या चाहिए था। कहां अगस्त के महीने में कालिज बन्द होता और कहां मई में ही बन्द हो गया। जो विद्यार्थी सत्याग्रह में हिचक रहे थे और पढ़ने की सोचते थे वे भी खाली हो गए और सत्या-ग्रहियों के व्यंग के पात्र बन गए। अब लगी सत्या-ग्रहियों की टोलियां तैयार होने, श्री चन्द्रकान्त और श्री केशवदेव वाचस्पति की तैयारी में संलग्न थे। हम स्नातक भी हो चुके थे और अभी विद्यार्थी भी थे। न विद्यार्थियों का साथ छोड़ते बनता था और

न आचार्य रामदेव जी की हिदायत तोड़ते बनता था। परन्तु सर्वमित्र ने आकर कह ही तो दिया कि आप लोगों का लिस्ट में नाम लिख लिया और आप ही लोग न भाग लेंगे तो और विद्यार्थी कैसे मानेंगे। आन्तरिक इच्छा तो थी ही, अब कोई चारा भी न रहा। इस समय श्री रामेश्वर जी सिद्धान्तालङ्कार, पूर्णचन्द्र जी विद्यालङ्कार और श्री जयदेव जी विद्यालङ्कार ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश किया। श्री रामेश्वर नायक बने और बड़े स्वागत समारोह से हम २५,३० सत्याग्रहियों की टोली रुड़की के लिए विदा हुई।

रुड़की तहसील को पूरे तौर से जागरुक कर देने के लिए काम मुस्तैदी से होने लगा मंगलौर को थोड़ी देर के लिए केन्द्र बनाया गया और ५ दल भिन्न-भिन्न दिशाओं में सब परगनों में गांव गांव में महात्मा गान्धी का सन्देश देने के लिए चल पड़े। एक दल का प्रमुख होने का मुझे भी सौभाग्य मिला था। मेरे साथी सभी बड़ी लगन वाले और जी जान से भिड़ जाने वाले थे। सर्वमित्र, रणजित् आयुर्वेदालङ्कार और प्रफुल्लचन्द्र के नाम मुझे नहीं भूले हैं। सफेद कमीज़, काले रङ्ग की निक्कर, एक झोला गले में यही हमारी वेश भूषा थी। तिरङ्गा झण्डा और बिगुल हमारे साथ थे। गांव में घूमने से पहले ही जोर से बिगुल बजता और गांव के लड़के बच्चे हम लोगों के साथ हो लेते। तिरंगे झण्डे और हमारी वेश भूषा को देख कर गांव वाले स्वाभाविक रूप में कुछ आकृष्ट होते हुए कुछ सरकार के आतंक से दूर भागते और कुछ नई बातों को सुनने के लिए उत्सुक होते। हम लोग सीधा गांव के मुखिया के यहां नहीं तो गांव की चौपाल में जा डटते और हर तरह गांव की जानकारी पाने की कोशिश करते। सहारनपुर के गांवों में भी आर्यसमाज का कुछ नाम था और खास कर गुरुकुल कांगड़ी के प्रति आदर था इस लिए तो कई जगह ठहरने, खाने पीने आदि का आराम मिलता पर सरकार के विरुद्ध बात सुनने को मुखिया, लम्बरदार आदि तैयार न होते। किसी गांव में तो कोई पूछने वाला तक न मिलता खास कर उन गांवों में जो अमन सभा के कभी केन्द्र रहे थे और जहां वे बूढ़े अभी जीवित थे जिन्होंने सन् ५७ के गदर में अपनी आंखों के सामने अंग्रेजों के नंगे अत्याचार को देखा था। वे बूढ़े दिखाते कि देखो उस समय यहां हमारे पिता को या चाचा को नङ्गा टिकटकी पर बांध कर पीटा गया था और फांसी दी गई थी, यहां हमारे घर जमींदोज़ कर दिए गए थे, यहां आग लगाई थी, यहां औरतें कुएं में कूद पड़ी थीं। तुम लड़के भला ब्रिटिश सल्तनत को बात बनाकर और नमक का खेल करके उड़ा दोगे। उन लोगों को भी समझाने की कोशिश की जाती। मज़दूरों और किसानों के लिए तो यह नई सी बला थी। किसी किसी मुसलमानों के गांव में तो हम पिटते बचते और ज़रा भी अपने धैर्य को और साहस को खो देते तो हमारी दुर्गति हो जाती। सूर्य की चिलचिलाती धूप में ही हम लोग मार्च कर देते और एक गांव से दूसरे गांव में पहुँच जाते। सभा के संगठन का भार सर्वमित्र और प्रफुल्ल पर रहता। मोटे बंगाली प्रफुल्ल को देख कर ही कौतुक के साथ कुछ गांव वाले साथ हो जाते। छोटी मंटी सभा जुटती। देश प्रेम के गीतों का गाने का रणजित का काम था। नमक कानून और तरह तरह के सरकारी अत्याचारों के भंडा फोड का काम भाषण में करना मेरा और सर्वमित्र का था। डायरी में सब कुछ नोट होता था। नारसेन कलां हमारा केन्द्र था। वहां के कई अच्छे कार्यकर्ता हमारे साथी रहे। सम्भवतः वहां कोई गुरुकुल भी खुल गया है। इस तरह सारी रुड़की तहसील के गांव २ में हम लोगों ने जागृति

[शेष पृष्ठ सत्ताईस पर]

उन्नति का सर्वोत्कृष्ट साधन आत्म विश्वास है

ठाकुर रामसिंह

जीवन में आशा और निराशा का चक्र चलता ही रहता है। सुख-दुःख उत्थान-पतन, प्रकाश और अन्धकार यह सब हमारे जीवन के मार्ग में आने वाले संस्थान हैं। मनुष्य जब उत्थान के शिखर पर चढ़ता है तब उस के समस्त ओर उत्साह का प्रकाश झलकने लगता है और उसकी आकृति पर एक प्रकार की ओज की चमक आ जाती है। जब वही पतन के गहरे गढ़े में गिर पड़ता है, तब उसकी आंखों के सामने घोर अन्धकार छा जाता है। उसकी आकृति अपवित्रता की कालिमा से स्याह पड़ जाती है। उसके सच्चे मित्र उसे सहायता देना पाप समझने लगते हैं। जब वह अपने उत्थान पतन के दिनों को याद करता है तो वह विह्वल होकर रो पड़ता है। उसे यह प्रतीत होने लगता है कि मैं पतित हूं। पापी हूं। मेरा भविष्य अंधकार में है। अब मेरा उत्थान नहीं हो सकता। उस के हृदय के भीतर एक प्रकार की आग धधकने लग जाती है जिस से वह अहर्निश झुलसने लगता है। उसके जीवन की सारी प्रसन्नता प्रफुल्लता इस से कोसों दूर भागती है। जिस समय प्रकार के निराशित और निराश्रित व्यक्ति के सन्मुख कोई निर्दोष प्रसन्न एवं निर्मल चरित्र व्यक्ति उसके सामने आ निकलता है तो मानों उसके शरीर को सहस्रों वृश्चिक एक साथ अपने डक चुभोने लगते हैं और वह कहने लगता है, काश मैं भी ऐसा ही होता।

इस प्रकार के पतित चरित्र एवं अपने जीवन से सर्वथा निराश महानुभावों के लिये एक ही औषध है। आत्म-विश्वास! एक और भी औषध है जिसके द्वारा निराश व्यक्ति को आश्वासन प्राप्त हो सकता है। वह भगवान् पर विश्वास है। किन्तु आत्म-विश्वास भगवान् पर विश्वास रखने से भी आगे बढ़ी हुई वस्तु है। जो मनुष्य अपने जीवन मार्ग में आगे और आगे ही बढ़ने की इच्छा रखता है उसे सब से प्रथम अपने ऊपर दृढ़ विश्वास रखना पड़ेगा, जब तक उसे अपने आप पर विश्वास नहीं, तब तक यह असम्भव है कि वह अपने स्थान से तिल मात्र भी आगे की ओर चरण निक्षेप कर सके। पतित से पतित भी क्यों न हो, यदि

[पृष्ठ २६ का शेष]

उत्पन्न कर दी। खास खास स्थानों पर कांग्रेस की जाती और उस का दृश्य देख कर सब दङ्ग रह जाते। पांच छः सौ वालंटियर झण्डे लिए चारों ओर से इकट्ठे होते। सब के स्वागत का पूरा सामान रहता, खाने पीने की दिक्कत न होती और बड़े जोश के व्याख्यान होते। सहारनपुर के वकील मेला-राम जी और प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी की स्वर्गीय पत्नी ऊर्मिलादेवी आदि के भाषण होते। सरकार को सब रिपोर्ट मिलती, पर वह चुप रह जाती थी यह सोच कर कि विद्यार्थी तीन महीनों की छुट्टियों में मनोरञ्जन कर रहे हैं फिर वापिस चले जायेंगे और उसे यह भी गम्भीरता से सोचना पड़ता कि एक ऐसी संस्था को छेड़ना जिस के पीछे आर्यसमाज का पूरा हाथ है और पञ्जाब तथा सयुक्तप्रान्त की जनता है उचित होगा या नहीं। रुड़की तहसील में श्री रामेश्वर जी के सब दलों ने तथा अन्य तहसीलों में भी इसी प्रकार श्री पूर्णचन्द्र जी और जयदेव जी आदि ने जन जागरण फैला दिया। अब देर थी सरकार की ओरं सत्याग्रहियों की मुठ-भेड़ की।

उसे अपने आप पर विश्वास है तो यह निश्चय रखिये कि वह अपनी इस अनीप्सित अवस्था से उभर कर रहेगा। भीषण से भीषण दुर्वृत्तों की ओर घसीटने वाले मानसिक शत्रुओं को परास्त करके उन्हें कुचल कर रहेगा और एक न एक दिन उत्थान के भव्य एवं स्वर्गिक शिखर पर समारूढ़ होके रहेगा। इस लिये कोई भी कितना ही पतित क्यों न हो उसे अपने हाथ से इस आत्म-विश्वास को नहीं जाने देना चाहिये।

कट जायेंगी दुःख की घड़ियां, होगा प्रातन रात रहेगी।
क्या रह जायेगा दुनिया में, कहने को बस बात रहेगी॥

मनुष्य को अपने ऊपर विश्वास रखना चाहिये। अपने अन्दर निहित भगवतप्रदत्त दिव्य शक्तियों पर विश्वास रखना चाहिये। भगवान् ने प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर नाना प्रकार की शक्तियां निगूढ़ रूप में स्थापित कर रखी हैं। आज हम संसार के अन्दर नित्य प्रति आविर्भूत होने वाले नूतन और मानवीय चर्म चक्षुओं को चमत्कार करने वाले आविष्कारों को देख रहे हैं। नहीं-नहीं मनुष्यों के स्वप्न लोक को इस मर्त्य भूमि पर अवतीर्ण होता हुआ देख रहे हैं। यह सब उन्हीं दश एकादश अवयक खडों से निर्मित किसी विचित्र धातु का पुतला मानव संसार के अन्दर युगान्तर उपस्थित कर देने वाला कार्य कर सकता है क्या हमारे में वह सामर्थ्य नहीं कि हम भी उसी प्रकार के अलौकिक कार्यों से इस विश्व को चकित कर सके। हैं अवश्य हैं फिर हम उस प्रकार करके नहीं दिखा सकते। इसका कारण क्या है। यही कि हमें अपने सामर्थ्य का ज्ञान नहीं है। हमें इस बात पर विश्वास नहीं कि हमारे अन्दर भी कुछ शक्तियां विराजमान है जिनके उपयोग में लाने तथा प्रदीप्त करने से हम संसार में युगान्तर उपस्थित कर सकते हैं। हैं। अस्तु आज हम जन साधारण के लिये आत्म-विश्वास का पाठ पढ़ाने नहीं बैठे हैं। हमारी आज की पंक्तियां तो केवल उन्हीं तीनों को लक्ष्य करके लिखी जा रही हैं। जो अपने को पतित समझते हैं, पातकी समझते हैं तथा जिन्हें अपने भविष्य की उज्ज्वलता पर रत्ती मात्र भी विश्वास नहीं रह गया है। संसार में नाना प्रकार के व्यक्ति हैं और उनके अपने नाना प्रकार के विश्वास एवं सिद्धान्त बने हुवे हैं हम नहीं कह सकते कि हमारे बन्धुओं का क्या विश्वास होगा किन्तु हमारा तो यह दृढ़ विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति पल प्रतिपल आगे बढ़ता ही जा रहा है। पीछे नहीं हट रहा। मनुष्य जो कुछ कार्य करता है, चाहे वह अच्छे करता है चाहे बुरे, प्रत्येक कार्य उसे उन्नति के मार्ग पर आगे ही बढ़ाये ले जा रहे हैं। मनुष्य आज जो पापकृत्य करता है अगली बार जब वह पाप कृत्य करेगा तो पहले स्थान से कुछ आगे बढ़ कर ही करेगा। वही करेगा। पीछे हट कर नहीं करेगा। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रतिक्षण मनुष्य का जो चरण अपने स्थान से उत्थित होता है वह आगे ही जाकर स्पर्श करता है। यदि कभी भूल कर उसी स्थान पर पड़ भी जाय तो पड़ सकता है। यद्यपि हमें इसमें भी विश्वास नहीं तो भी पीछे कदापि नहीं पड़ेगा। यह खूब ध्यान में रखिये। अतः जो बन्धु अपने को अत्यधिक हीन चरित्र समझते हैं उन्हें इस बात से डरना नहीं चाहिये। कि हम अपूर्ण चरित्र हैं। हमारा भविष्य सर्वथा अन्धकार पूर्ण है और हम कभी इस अवस्था से उद्धृत नहीं हो सकेंगे। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि संसार में सब व्यक्ति पंक्तिबद्ध होकर मोक्ष की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। और क्रम से प्रत्येक मनुष्य को मोक्ष प्राप्ति होती जा रही है। प्रत्येक को मोक्ष प्राप्ति के लिये उतना ही रास्ता तय करना पड़ रहा है जितना अगले व्यक्ति ने मोक्ष प्राप्तयर्थ किया है। हम सब उस पंक्ति के अन्दर विद्यमान हैं कोई हम से आगे है कोई हम से पीछे। जिस मार्ग पर यह प्रकृति

प्रक्रमण कर रही है उस में उतार चढ़ाव बहुत हैं। जब एक व्यक्ति उतार के अन्तिम सिरे पर पहुँच कर अपने अगले और पिछले आदमियों को अपने से बहुत ऊपर देखता है तो वह समझता है कि हाय मैं कितना पतित हूँ और ये लोग मेरे से कितने उन्नत है किन्तु यह सब भ्रांति है। पतित से पतित भी उन्नत है। और उन्नत से उन्नत भी उन्नत है मनुष्य को केवल अपनी पतित अवस्था को देख कर ही यह नहीं कल्पना कर लेनी चाहिए कि मैं पतित हूँ किन्तु उसे अपने आगे और पीछे देख लेना चाहिए कि वस्तुस्थिति क्या हैं ? उसे अनुभव होगा कि सभी भगवान् के अमृत पुत्र हैं।

हे मेरे भूले हुए बन्धुओ ? यदि तुम अपने आप को पातकी समझते हो यदि तुम्हें अपने जीवन से सर्वथा ग्लानि एवं निराशा हो गई हो तो तुम अपने भविष्य को तम पूर्ण समझ कर अपने दोष शून्य आत्मा का हनन मत करो। तुम अपने ऊपर पूर्ण विश्वास रखो कि हम पवित्र हैं हमारा रेणु पवित्र है। इस पाप और पुण्य के ससंहार भूत विश्व में आकर पाप कौन नहीं कमाता। कामा क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि भयंकर प्रवंचनाओं के सन्मुख अनिच्छन्नापि कौन नहीं झुक जाता। यदि तुम भी इसी प्रकार अज्ञानवश या जानबूझ कर इन कुचक्रियों के पाश में आबद्ध हो गये हो तो डरते क्यों हो तुम अपने ऊपर अपनी पवित्रता पर दृढ़ विश्वास रखो। तुम्हारे एक ही झटके से इन प्रवंचको के फन्दे टूक टूक हो जायेंगे तब तुम्हें अनुभव होगा कि हम भी उसी भगवान् के पुत्र हैं। संसार के बड़े बड़े प्रतिभाशाली जिन्हें हम देखते हैं सब आत्म विश्वास के द्वारा ही संसार में अपना नाम अमर कर गये हैं।

गुरुकुल कांगड़ी के आदर्श कुलपिता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने आत्मविश्वास से ही गुरुकुल नाम का छोटा सा पौदा लगाया था उस समय आशाओं की बहुत कम रेखायें चारों ओर देख पड़ रहीं थीं यह उन का अदम्य साहस और उत्कृष्ट उत्साह तथा आत्मविश्वास का एक उदाहरण है कि उन्होंने हमारी शिक्षा को सच्ची राष्ट्रीय और सर्वथा स्वतन्त्र बनाने का विचार ही नहीं किया अपितु इस विचार पर जङ्गल में बैठ कर अपने हाथ बन कटी कर के और जङ्गली जानवरों का सामना कर के इस विश्वविद्यालय की स्थापना की। जिस ने आज विश्व-विद्यालय का रूप धारण कर लिया है आरम्भ में कुछेक ब्रह्मचारियों ने भविष्य के बारे में बड़ी आशंकायें स्वामी जी के सामने रखी। स्वामी जी ने उन की शंकाओं का निवारण बड़े सुन्दर ढंग से किया और अन्त में एक सवैया को सुना कर समझाया कि उस परम पिता परमात्मा पर विश्वास करो। सोच करने से कुछ हाथ नहीं आवेगा। स्वामी जी जिस क्षेत्र में भी उतरे उस में पूर्णतया सफल हुए इस का मुख्य कारण परमात्मा में पूर्ण विश्वास था। दूसरा उदाहरण हमारे सामने महात्मा गान्धी-जी का है जिन्होंने अहिंसा का शस्त्र लेकर भारत को स्वतन्त्रता दिलवाई है क्या हम इन्हें बीसवी सदी का चमत्कार नहीं कह सकते। इन दोनों महात्माओं की भारतवासियों को आत्मविश्वास भी एक अच्छी देन ही है जिस के लिए हम सब सदा इन के ऋणी रहेंगे। उन का नाम सर्वदा हमें ध्रुव उत्तर की तरह पथ प्रदर्शक का कार्य करता रहेगा और वे तरुण भारत के लिए प्रातः स्मरणीय पुरुष बने रहेंगे।

पुस्तक-परिचय

आदर्श ब्रह्मचारी—लेखक श्री स्वामी आत्मानन्द । प्रकाशक वैदिक साहित्य सदन, लाल दरवाजा, सीताराम बाजार, देहली । प्रथम वार, सम्वत् २००७, मूल्य =)॥ । ब्रह्मचर्य की महिमा, पतन से बचने के उपाय और ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने में सहायक बातों को बात-चीत करने के ढंग से समझाया गया है ।

कन्या और ब्रह्मचर्य— लेखक और प्रकाशक वही । प्रथमवार, सम्वत् २००६, मूल्य =)॥ । कन्याओं को ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने के लाभ इस में बताये हैं ।

सुन्दर कहानियां—लेखिका श्री माता जी । प्रकाशक श्री अरविन्दाश्रम, पाण्डिचेरी, पृष्ठ सं० ११० । श्री अरविन्दाश्रम की श्री माता जी अध्यात्म क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त महिला हैं । समय-समय पर धार्मिक तथा आध्यात्मिक लेखों द्वारा वे अपने विचारों का प्रसार करती हैं । प्रस्तुत पुस्तक उनकी मूल फ्रेंच भाषा में लिखी हुई कहानियों का संग्रह है । ये कहानियां बच्चों के लिये लिखी गयी हैं । आत्म संयम, सादा जीवन, धैर्य, सचाई आदि मानव जीवन को उत्कृष्ट बनाने वाले विषयों पर विषय वार छोटी-छोटी अत्यन्त हृदयस्पर्शी तथा ताज़गी से भरपूर कहानियों का यह संग्रह है । प्रत्येक कहानी का अन्त ऐसे मर्मस्पर्शी उपदेशप्रद वाक्यों से होता है कि वह एक बार तो मन पर गहरा प्रभाव कर जाता है । पुस्तक बच्चों के लिए ही नहीं, बड़े बूढ़ों के लिए भी अत्यन्त उपयोगी, मननीय तथा पठनीय है । सभी छोटी कहानियां विषय वार मणि माला में ग्रथित सूक्तियां सी प्रतीत होती हैं ।

अनुवादक का कार्य पर्याप्त कठिन होता है । पुस्तक की भाषा को पर्याप्त सरल बनाने का यत्न किया गया प्रतीत होता है । फिर भी कहीं-कहीं ऐसे वाक्य आ जाते हैं जिन्हें सरलता से समझना कठिन होता है । उदाहरण के लिए (पृष्ठ ८३) सत्यवादी बनने और सत्य में स्थिर रहने का अभ्यास डालने के लिए कोई भी समय अति शीघ्रता का नहीं है ।' वाक्य और अधिक स्पष्ट किया जाता तो उत्तम होता । पृष्ठ ७६ के अलोप शब्द के स्थान पर लोप शब्द होना चाहिए था ।

श्री अरविन्द आश्रम में छपी पुस्तकें अपनी सफाई, स्वच्छता, सुन्दरता तथा शुद्धता के लिए आदर्श होती हैं ।

इन कहानियों में अधिकतर कहानियां विदेशों के महापुरुषों से सम्बन्धित हैं । भारतीय बच्चों को इन नामों तथा उन संस्कृतियों से विशेष परिचय नहीं होता । भारतीय वाङ्मय में इस प्रकार के दृष्टान्तों की कमी नहीं है जो कि सम्भवतः आध्यात्मिक उदाहरणों से विश्व के सभी वांगमयों में समृद्ध माना जाता है । यह कमी पाठकों को बहुत अखरती हैं ।

वैदिक विनय (तीन खण्डों में)—लेखक श्री अभय विद्यालंकार । प्रकाशक-प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार । कुछ समय से इस प्रसिद्ध पुस्तक के तीनों खण्ड एक साथ प्राप्त नहीं थे । स्वाध्यायशील जनों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अब तीनों खण्डों के नये संस्करण छप कर तय्यार हो गये हैं ।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु

आषाढ़ मास समाप्त हो चुका है, मेघराज की कृपा अवतीर्ण हो रही है। तृषित भूमि पानी मिलते ही उल्लसित हो उठी है। खेतों, मैदानों, वनों उपवनों में अपूर्व आनन्द और उल्लास छा गया है। लता, पल्लव, प्रसूनों में नवजीवन का सञ्चार हो गया है। जिधर देखो हरा-हरा दृष्टिगोचर होता है। आजकल वर्षा ऋतु के कारण दिवस बड़े सुहावने हो गए हैं। भास्कर के दर्शन बहुत कम होते हैं। निशाएं सुहावनी और शीतल हो गई हैं। पपीहे और कोयल के मधुर अलापों से कुल कानन गुञ्जायमान हो रहा है, शिवालिक-शिखरों पर मन्द २ गति से इठलाती हुई मेघ मालाएं बहुत भलि और सुन्दर लगती हैं।

आयुर्वेद महाविद्यालय में ब्रह्मचारियों का प्रवेश

जो विद्यार्थी आयुर्वेद महाविद्यालय में प्रविष्ट होना चाहते हैं वे शीघ्र ही अपना प्रार्थना-पत्र आचार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के नाम भेजकर पत्र व्यवहार करें। योग्यता मैट्रिक तथा प्राज्ञ होनी चाहिए। आयुर्वेदिक कालेजों के विद्यार्थी भी जिस क्लास में हों उसी में भर्ती किए जा सकते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी में ग्रीष्मावकाश

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में ग्रीष्मावकाश के कारण महाविद्यालय विभाग दो मास के लिए बन्द हो गया है। ११ सितम्बर से इस में पुनः नियम पूर्वक पाठ्यक्रम आरम्भ होगा।

हाई स्कूल विभाग प्रथम अगस्त से बन्द हो कर १५ सितम्बर को खुलेगा। इन दिनों गुरुकुल के विद्यार्थियों की कुछ टोलियां सरस्वती यात्रा के लिए मैसूर और काश्मीर तथा अन्य पहाड़ों पर जाने के लिए बन गई हैं। मैसूर की पार्टी तो रवाना भी हो चुकी है। शेष टोलियां इस मास के अन्त तक रवाना हो जांयगी।

श्रावण मास में रोगी ब्रह्मचारियों का विवरण

नाम ब्र०	श्रेणी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा
सुखदेव	१३	ज्वर	३ दिन
हरिश्चन्द्र	६	प्रतिश्याय ज्वर	४ ,,
हरिकृष्ण	४	नेत्राभिष्यन्द	३ ,,
सुरेन्द्रपाल	५	,,	७ ,,
राजकुमार	४	,,	५ ,,
सुभाष	३	,,	४ ,,
सोमनाथ	२	,,	४ ,,
हरिश्चन्द्र	२	,,	६ ,,
जगदीश	३	,,	६ ,,
चमनलाल	१	,,	३ ,,
धर्मपाल	२	,,	३ ,,
प्रेमप्रकाश	२	,,	रोगी

इस मास उपरोक्त ब्रह्मचारी रुग्ण हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

T. B. टी॰ बी॰ "तपेदिक" चाहे फेफड़ों का हो या अँतड़ियों का बड़ा भयङ्कर रोग है

(१) पहली स्टेज	(२) दूसरी स्टेज	(३) तीसरी स्टेज	(४) चौथी स्टेज	अन्तिम स्टेज
मामूली ज्वर खांसी	ज्वर खांसी की अधिकता	शरीर सूखना, ज्वर खांसी की भयंकरता	सभी बातों की भयंकरता शरीर पर वर्म, दस्त आदि का शुरू हो जाना	रोगी की मौत और भयंकर वर्मों का इधर उधर फैलना

जबरी——(JABRI)——जबरी——(JABRI)

भारत के पूज्य ऋषियों की अद्भुत खोज (Research) जबरी एक मात्र दवा है।

सज्जनो—"जबरी" के बारे में भारत के कोने कोने से आप पचासों प्रशंसा पत्र प्रति दिन अखबारों में देखते ही होंगे। आज एक ताजा पत्र मिस्त्री मानसिंह बान्सल दलादी गेट शहर नाभा [पू० पंजाब] का भी देखें। श्रीमान् पूज्य पण्डित जी नमस्कार। हमको यह लिखते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि परमात्मा और आपकी कृपा से हमारी लड़की को काफी आराम है। १६ दिन में शरीर का वजन घटने के स्थान पर ४ पौंड बढ़ गया है। बुखार बिलकुल नहीं रहा। स्वास्थ्य पहले से बहुत अच्छा है। अब तो लड़की मील मील भर चल फिर लेती है। श्रीमान् जी आप ब्राह्मण कुल भूषण जगत्-गुरु हैं। फिर भला आप की दवा क्यों न आराम करे? हम काफी समय तक डाक्टरों, हकीमों से इलाज कराकर और लगभग ४ हजार रुपया अंग्रेजी औषधियों आदि पर बरबाद करके ना उमेदी की हालत में आपके चरणों में उपस्थित हुए थे। आपकी अनमोल औषधि और परमात्मा की कृपा से लड़की अब ठीक हो गई है। परमात्मा ने आपको यह दवा नहीं बल्कि एक "जौहर" (अमृत) प्रदान किया है। जितनी भी प्रशंसा की जावे कम है। भगवान् आपके कार्यालय को दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति दे।

T. B. टी॰ बी॰ 'तपेदिक व पुराने ज्वर के हताश रोगियो

अब भी समझो अन्यथा फिर वही कहावत होगी— 'अब पछताये होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत' इसलिए तुरन्त आर्डर देकर रोगी की जान बचावें। सैंकड़ों हकीम, डाक्टर, वैद्य अपने रोगियों पर व्यवहार करके नाम पैदा कर रहे हैं और तार द्वारा आर्डर देते हैं। तार आदि के लिए हमारा पता केवल 'जबरी जगाधरी' (JABRI JAGADHRI) लिख देना ही काफी है। तार से यदि आर्डर दें तो अपना पूरा पता लिखें। मूल्य इस प्रकार है—

'जबरी स्पेशल नं० १ अमीरों के लिए जिसमें साथ साथ ताकत बढ़ाने के लिए सोना, मोती, अभ्रक आदि की मूल्यवान भस्में भी पड़ती हैं। मूल्य पूरा ४० दिन का कोर्स ७५) रु०। नमूना १० दिन के लिये २०) रु०। 'जबरी' नं० २ जिसमें मूल्यवान् जड़ी-बूटियां है, पूरा कोर्स २०) रु०, नमूना १० दिन के लिए ६)रु० महसूल आदि अलग है। आर्डर में पत्र का हवाला तथा नं० १ या २ साफ-साफ लिखें। पार्सल जल्द प्राप्त करने के लिए मूल्य आर्डर के साथ भेजें। यदि Airmail से मंगाना हो तो २) रु० खर्च अधिक भेजें। विदेशों के ग्राहक मूल्य पेशगी भेजें।

पता—रायसाहब के. एल. शर्मा एण्ड सन्स, रईस एण्ड बैंकर्स, (७५) जगाधरी (E. P.)

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

रजिस्टर्ड संख्या ए—८२१

स्वाध्याय के लिए चुनी हुई पुस्तकें

वैदिक साहित्य

- वैदिक ब्रह्मचर्य-गीत — श्री अभय — २)
- वैदिक विनय १, २, ३ भाग — ,, — २।), २।।), २।।)
- ब्राह्मण की गौ — ,, — ।।।)
- वैदिक अध्यात्मविद्या — श्री भगवद्दत्त — १।)
- वैदिक स्वप्न विज्ञान — ,, — २)
- वेदगीताञ्जली [वैदिक गीतियां] श्री वेदव्रत — २)
- वैदिक सूक्तियां — श्री रामनाथ — १।।।)
- वरुण की नौका [दो भाग] श्री प्रियव्रत — ६)
- सोम-सरोवर, सजिल्द, अजिल्द श्री चमूपति — २), १।।)
- अथर्ववेदीय मन्त्र-विद्या — श्री प्रियरत्न — १।।)

धार्मिक साहित्य

- सन्ध्या रहस्य — श्री विश्वनाथ — २)
- धर्मोपदेश १, २, ३ भाग स्वा० श्रद्धानन्द — १।), १), १।।)
- आत्ममीमांसा — श्री नन्दलाल — २)
- प्रार्थनावली — ।)
- आर्यसमाज और विचार संसार श्री चमूपति — ।)
- कविता मंजरी — ।–)
- कविता कुसुमाञ्जली — ।)

स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

- आहार [भोजन की पूर्ण जानकारी के लिए] — ५)
- लहसुन : प्याज — श्री रामेश बेदी — २।।)
- शहद [शहद की पूरी जानकारी के लिए] ,, — ३)
- तुलसी [दूसरा परिवर्धित संस्करण] ,, — २)
- सोंठ [तीसरा परिवर्धित संस्करण] ,, — १।।)
- देहाती इलाज [दूसरा संस्करण] ,, — १)
- मिर्चें [काली, सफेद और लाल] ,, — १)
- स्तूप निर्माणकला, सचित्र, सजिल्द — ३)
- प्रमेह, श्वास, अर्शरोग — १।)
- जल चिकित्सा — श्री देवराज — १।।)

ऐतिहासिक ग्रन्थ

- भारतवर्ष का इतिहास, तीन भाग श्री रामदेव — ७)
- बृहत्तर भारत [सचित्र] सजिल्द, अजिल्द — ७), ६)
- अपने देश की कथा [दू० संस्क०] सत्यकेतु — १।≠)
- योगेश्वर कृष्ण — श्री चमूपति — ४)
- ऋषिदयानन्द का पत्र व्यवहार — ।।।)
- हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के अनुभव — ।।)
- महावीर गेरीबाल्डी — श्री इन्द्र — १।)

संस्कृत साहित्य

- बालनीति कथामाला [तीसरा संस्करण] — १)
- नीतिशतक [सशोधित] — ≠)
- साहित्य-दर्पण [संशोधित] — २)
- संस्कृत प्रवेशिका, प्र० भाग [चौथा संस्क०] — ।।।≠)
- ,, ,, २ भाग [तीसरा संस्करण] — ।।=)
- अष्टाध्यायी, सटीक, पूर्वार्द्ध — श्री गङ्गादत्त — ७)
- रघुवंश संशोधित [तीन सर्ग] — ।)
- साहित्य-सुधासंग्रह १, २, ३ बिन्दु — १।), १।), १।)
- संस्कृत साहित्य पाठावली — =)

शालोपयोगी

- विज्ञान प्रवेशिका २ य भाग — श्री यज्ञदत्त — १।)
- गुणात्मक विश्लेषण [बी. एस. सी. के लिए] — २।।)
- भाषा प्रवेशिका [वर्धा योजनानुसार] — ।।।)
- आर्यभाषा पाठावली [आठवां संस्करण] — १।।)
- ए गाइड टु दी स्टडी ऑफ संस्कृत ट्रांसलेशन एण्ड कम्पोजीशन, दूसरा संस्क०, ३३६ पृष्ठ — १।)

पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

गुरुकुल पत्रिका

आश्विन २००७

वर्ष ३

अङ्क २

विद्ययाऽमृतमश्नुते ।

गुरुकुल विश्वविद्यालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

गुरुकुल पत्रिका

आश्विन २००७ — वर्ष ३ — अङ्क २

विद्ययाऽमृतमश्नुते ।
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

...बताने की आवश्यकता नहीं है कि शिल्प महा-
विद्यालय की आज कितनी आवश्यकता है। स्वामी जी ने इस आवश्यकता को भलिभांति अनुभव कर लिया था। वे दूरदर्शी थे। मृत्यु के समय यह उन की हार्दिक अभिलाषा थी कि गुरुकुल में शिल्प महाविद्यालय की स्थापना की जाय। यदि स्वामी जी एक वर्ष भी और हमारे बीच रहते तो शिल्प महाविद्यालय की स्थापना हो चुकी होती। उन्होंने इच्छा ही की थी कि इस के लिए धन आना आरम्भ हो गया था। लेकिन वह इतना न्यून था कि उस से कोई भी रचनात्मक कार्य न हो सका। गुरुकुल विश्वविद्यालय की अधिक उत्कर्ष और उन्नति के लिए अनेक योजनाएं बनाई गई हैं। इन योजनाओं की पूर्ति के लिए हमारे कुलपति प्रोफेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति ने इस वर्ष इन कार्यों के लिए ३० लाख रुपये की अपील की है। जिस में शिल्प महाविद्यालय, ऐतिहासिक अनुसन्धान और श्रद्धानन्द प्रतिष्ठान योजनाएं मुख्य हैं। क्या ही अच्छा हो कि हम सब भारतवासी मिल कर स्वामी जी की अन्तिम हार्दिक अभिलाषा को पूरा करने में अपना सतत यत्न करके सहायता और सहयोग दें।'

शोक सभा

सम्पूर्ण आर्यजगत् में तथा विशेषतः गुरुकुल प्रेमियों को यह जान कर अत्यधिक दुःख होगा कि स्वामी श्रद्धानन्द जी के भक्त तथा गुरुकुल कांगड़ी के अनन्य प्रेमी लुधियाना निवासी श्रीयुत लाला लब्भूराम जी नैयड़ का तिथि २८. ८. ५० को आकस्मिक देहावसान हो गया। इस समय आप की आयु ८५ वर्ष की थी। आप ने अपनी मित्र मण्डली के सहयोग से धन एकत्र करके प्रति वर्ष गुरुकुल की सेवा में भेंट करने का जो शुभ संकल्प किया था, उसे अन्तिम वर्ष तक निभाते रहे। अब तक आप दो लाख रुपये से भी अधिक की राशी गुरुकुल की सेवा में भेंट कर चुके हैं। रोगशय्या में आप को सदा की भांति प्रतिक्षण गुरुकुल तथा वहां के निवासियों का ध्यान रहा। आपका शान्त, एकरस, कर्त्तव्यनिष्ठ एवं अहंकार शून्य सात्विक जीवन सब के लिए अनुकरणीय था। उनके अभाव से आर्यजगत् एवं गुरुकुल को वस्तुतः अपार क्षति हुई। उनकी मृत्यु समाचार सुनकर श्रद्धानन्द नगरी में सर्वत्र शोक छा गया। उन की स्मृति में शोक सभा हुई और सब विभाग बन्द रहे।

श्रावण मास का स्वास्थ्य समाचार

श्रेणी	नाम ब्रह्म०	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा
१३	सुखदेव	ज्वर	३ दिन
७	गोपाल	,,	४ ,,
८	सुरेन्द्र	,,	४ ,,
५	दीनानाथ	,,	४ ,,
४	रामकुमार	,,	४ ,,
३	त्रीपुरेन्द्र	,,	३ ,,
५	सत्येन्द्र	,,	४ ,,
४	दिनेश	,,	४ ,,
३	कमलनयन	,,	३ ,,
६	रामानन्द	,,	४ ,,
३	शिवकुमार	,,	३ ,,
३	श्यामसुन्दर	,,	५ ,,
३	सुभाष	,,	३ ,,
३	धर्मेन्द्र	,,	३ ,,
२	धर्मपाल	,,	५ ,,
६	हरिश्चन्द्र	प्रतिश्याय ज्वर	३ ,,
४	हरिकृष्ण	,,	३ ,,
५	सुरेन्द्रपाल	नेत्र	६ ,,
५	सुरेन्द्र (रुड़की)	,,	५ ,,
२	प्रेमप्रकाश	व्रण	२० ,,
१	मदन	खुजली	१४ ,,
२	खेमनाथ	नेत्र	५ ,,
२	कौशलकिशोर	अतिसार	५ ,,

उपरोक्त ब्रह्मचारी गतमास रुग्ण हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

ओ३म्

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

हमारे आध्यात्मिक विकास की मर्यादा

श्री अरविन्द

आत्मा, अन्तरात्मा और पुनर्जन्म

विकसनशील अन्तरात्मा (चैत्य पुरुष) और शुद्ध आत्मा का भेद साफ साफ समझ लेना आवश्यक है। शुद्ध आत्मा जन्मात्मा है, जन्म-मरण में से नहीं गुजरती, जन्म वा देह, मन या प्राण या इस व्यक्त विश्वप्रकृति से स्वतन्त्र है। यद्यपि यह इन चीजों को ग्रहण और धारण करती है तथापि यह इन से बद्ध, सीमित और प्रभावित नहीं होती। इस के विपरीत अन्तरात्मा एक ऐसी चीज है जो जन्म के अन्दर उतरती और मृत्यु में से गुजरती है— चाहे यह स्वयं मरती नहीं, क्योंकि यह अमर है— और इस प्रकार यह एक अवस्था से दूसरी में, पृथ्वीलोक से दूसरे लोकों में जाती है और फिर वापिस पृथ्वीजीवन में आती है। इस गति से यह एक प्रकार के क्रमविकास द्वारा एक जीवन से दूसरे जीवन में यात्रा करती रहती है। वह क्रमविकास इसे मानव तक पहुँचाता है और इस सब प्रक्रिया में से इस की एक विशेष सत्ता को विकसित करता है जिसे हम चैत्य पुरुष कहते हैं। यह चैत्य पुरुष विकास को धारण करता तथा अपने जगत्-अनुभवों के आर प्रच्छन्न, अपूर्ण पर वर्द्धमान आत्म-अभिव्यक्ति के करणों के रूप में शारीरिक, प्राणिक, मानसिक मानवीय चेतना विकास करता है। यह सब वह एक पर्दे के पीछे से ही करता है और करणात्मक सत्ता की अपूर्णता इसे जहां तक अनुमति देती है वहां तक ही यह अपने दिव्य स्वरूप के यत्किंचित् अंश को प्रकट करता है। परन्तु एक समय आता है जब कि यह पर्दे के पीछे से बाहर निकल आने की तैयारी करने, नेतृत्व ग्रहण करने और सम्पूर्ण करणात्मक प्रकृति को दिव्य चरितार्थता की ओर फेर देने में समर्थ होता है। यह सच्चे आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ होता है। अन्तरात्मा अब व्यक्त चेतना के उच्चतर विकास के लिए, मनोमय मानवीय चेतना से अधिक ऊंची चेतना के विकास के लिए अपने को तैयार करने में समर्थ होती है— यह मानसिक चेतना से आध्यात्मिक में प्रवेश कर सकती है, और आध्यात्मिक के स्तरों में से अतिमानसिक अवस्था में पहुँच सकती है। तब कोई कारण नहीं कि क्यों यह जन्म लेना बन्द कर दे, वास्तव में यह ऐसा कर ही नहीं सकती। यदि आध्यात्मिक अवस्था में पहुँच कर यह पार्थिव अभिव्यक्ति से बाहर निकल जाना चाहे तो अवश्य ही यह ऐसा कर सकती है— परन्तु एक इससे भी ऊंची अभिव्यक्ति सम्भव है जो अज्ञान में न होकर ज्ञान में हो।

इसलिए तुम्हारा प्रश्न पैदा नहीं होता। शुद्ध नग्न आत्मा नहीं बल्कि चैत्य पुरुष ही चैत्य लोक में विश्राम के लिए आता है और वहां वह तब तक रहता है जब तक उसे दूसरे जीवन के लिए पुनः आह्वान नहीं होता। अतएव ऐसी किसी शक्ति की जरूरत ही नहीं जो इसे नया जन्म ग्रहण करने के लिए बाध्य करे। यह अपने स्वभाव से ही एक ऐसी चीज है जो विकास को धारण करने के लिए भगवान् से प्रकट की गई है और इसे ऐसा तब तक करना ही होगा जब तक इसके विकास में भगवान् का प्रयोजन सिद्ध न हो जाय। कर्म तो मशीनमात्र है, यह पार्थिव जीवन का मूल कारण नहीं— यह हो भी नहीं सकता, क्योंकि अन्तरात्मा जब इस सत्ता में पहले पहल प्रविष्ट हुई तब इसका कोई कर्म था ही नहीं।

और फिर "सर्व-आवरक माया" से या "समस्त चेतना को खो देने" से तुम्हारा क्या आशय है? अन्तरात्मा सम्पूर्ण चेतना को खो नहीं सकती, क्योंकि चेतना तो इसका साक्षात् स्वभाव ही है, पर वह मानसिक प्रकार की चेतना नहीं जिसे हम इस नाम से पुकारते हैं। चेतना जड़ प्रकृति की तथाकथित निश्चेतना से और फिर मन-प्राण-शरीर के अर्ध-चेतन अज्ञान से केवल आच्छादित ही होती है, लुप्त या नष्ट नहीं होती। जैसे-जैसे व्यक्तिगत मन, प्राण और शरीर विकसित होते हैं वैसे-वैसे यह उस चेतना को यावत्सम्भव प्रकट करती है जिसे कि यह बीज-रूप में धारण किए हैं, यह उसे बाह्यकरणात्मक प्रकृति में भी वहां तक तथा उस प्रकार से व्यक्त करती है जहां तक तथा जिस प्रकार से इन करणों द्वारा और बाह्य व्यक्तित्व द्वारा सम्भव है जो व्यक्तित्व इसके लिए तथा इसके द्वारा— क्योंकि ये दोनों ही बातें ठीक हैं— वर्तमान जीवन के लिए तैयार किया गया है।

मुझे इस विषय में कुछ मालूम नहीं कि पुनर्जन्म की प्रक्रिया में आत्मा को किसी प्रकार का दारुण दुःख भोगना पड़ता है; प्रचलित विश्वास एवं धारणाएं, चाहे जब उन का कुछ आधार होता भी है तब भी, कदाचित् ही ज्ञानयुक्त और ठीक होती हैं।

जन्म-जन्मांतर और आध्यात्मिक अनुभव

संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने निजी भाग्य की दिशा का अनुसरण करता है; यह दिशा उसकी अपनी प्रकृति तथा कर्मों से निर्धारित होती है— किसी विशेष जीवन में जो कुछ घटित होता है उसे जब तक अनेक जन्मों के सम्पूर्ण क्रमविकास के प्रकाश में न देखा जाय तब तक उसका आशय और प्रयोजन समझ में नहीं आ सकता। परन्तु जो लोग साधारण मन और भावों से ऊपर उठ कर वस्तुओं को समग्र रूप में देखने में समर्थ होते हैं वे यह जान सकते हैं कि भूल-चूक, दुर्भाग्य और संकट भी यात्रा के सोपान हैं,— अन्तरात्मा जब इनमें से गुजर कर इन्हें पार करती है तो वह अनुभव संग्रह करती जाती है जिससे कि अन्त में वह उस परली अवस्था में पहुँचने के लिए परिपक्व हो जाती है जो इसे इन चीजों से पार कराके उच्चतर चेतना तथा उच्चतर जीवन में ले जायगी। जब मनुष्य इस पार कराने वाली सीमारेखा पर पहुँचता है तो, उसे पुराना मन और भाव-भावनाएं अपने पीछे छोड़ देनी होती हैं। तब वह साधारण जगत् के सुख-दुःख में फंसे हुए लोगों को सहानुभूति की दृष्टि से और यथासम्भव आध्यात्मिक अनुग्रह के भाव से देखता है किन्तु पहले की तरह आसक्तिपूर्वक नहीं। वह जान जाता है कि विश्वशक्ति उन्हें उनके सभी स्खलनों के बीच में भी मार्ग दिखा रही है।

हे अग्निदेव! तुम दूत बनो

श्री भगवद्दत्त वेदालङ्कार

अग्नि या विद्युत् की सहायता से प्रकृति के अन्दर नये २ अन्वेषण किए जाते हैं। परन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश करने वालों को भी पहले अग्नि की ही स्तुति करनी पड़ती है। यह अग्नि आन्तरिक अग्नि है, इस के खूब प्रज्वलित होने से ही आध्यात्मिक क्षेत्र में नये २ अतिथि आते हैं। इसी दृष्टि से ऋग्वेद में मेध्यातिथि या मेधातिथि सूक्तों में सब से प्रथम अग्नि को आह्वान किया गया है।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥
ऋ. १।१२।१

(होतारम्) सब देवों का आह्वान करने वाले (विश्ववेदसम्) विश्व का ज्ञान देने या विश्व को प्राप्त कराने वाले और (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्) इस आध्यात्मिक यज्ञ को उत्तम रूप से करने वाले (अग्निं) अग्नि को हम (दूतं वृणीमहे) दूत रूप में वरते हैं।

अग्नि देवों का दूत है। यह भक्त पुरुष व देवों के मध्य दूत का कार्य करता है। सूक्त में यह संकेत किया गया है कि भक्त मेधातिथि देवों व दिव्यशक्तियों को अपने पास बुलाने के लिए निमन्त्रण भेजना चाहता है। इस कार्य के लिए वह अग्नि को अपना दूत बनाता है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जिस सिद्धि व उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने अन्दर अग्नि को प्रज्वलित करता है, उस अग्नि के सहारे से वह अपने उद्देश्य व साधना में सफल होता है। अग्नि के अन्दर महतीशक्ति है। इस सम्पूर्ण विश्व में कोई भी ऐसा पदार्थ व शक्ति नहीं जो कि अग्नि द्वारा न प्राप्त की जा सके।

इस लिए मन्त्र में कहा है कि हे देवदूत! तुम कहां छिपे हो? उरके किस अन्तस्तल में सो रहे हो, उठो, होओ जागृत, मैं भक्त मेधातिथि अपने अतिथि-यज्ञ को प्रारम्भ करना चाहता हूँ, तुम होता बनो; होता बन कर सब देवों का आह्वान करो!

मैं यह अच्छी प्रकार जानता हुँ कि विश्व में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं और न कोई ऐसा स्थान है जहां तुम न पहुँच सको। इस लिए सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान व उसकी प्राप्ति तुम ही करा सकते हो। (विश्ववेदसम्)। मैंने बहुत खोजा। सर्वत्र दृष्टि डाली! पर तुम्हारे सिवाय कोई ऐसा न दीखा जो मेरे मनोरथों को पूर्ण कर सके। मेरे रचे यज्ञ को भली प्रकार पूरा कर सके।

वरता हूँ दूत अग्नि को मैं
आजा तू ए मेरे प्यारे।
न्यौता देते तुम देवों में
आते जाते सब लोकों में!
'होता' तुम को इन वेदों में
है बखाना सब यागों में!!

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का महत्व

श्री ज्ञानचन्द्र

मातृमान् पितृमान् आचार्यमान् पुरुषो वेद। माताओ! आप का कर्त्तव्य है कि अपनी गोद में खेलने वाले बच्चों को मीठी-मीठी लोरियों में वीर धीर बनाओ जो कि जवान होकर राष्ट्र का भार अपने कन्धों पर उठा सकें। प्रत्येक पिता का कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चों को सन्मार्ग पर डालने का उपाय करे। पाठशाला शिक्षा और चरित्र निर्माण का मुख्य केन्द्र है। इस लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम राष्ट्र निर्माण की जो भी योजना बनाएं उस में सर्वप्रथम स्थान शिक्षा को दें। अन्य देशों के उदाहरण हमारे सामने हैं। हिटलर जब जर्मनी का भाग्य विधाता बना तो उस ने तुरन्त ही अपने देश में प्रचलित शिक्षा के ढांचे को उखाड़ कर फैंक दिया और अपने आदर्श को स्वदेश के बच्चों के हृदयों में अङ्कित करने के लिए उस के अनुकूल शिक्षा का पाठ्यक्रम जारी किया। रूस को देखिए। ज्यों ही साम्यवादियों ने वहां राज्य की बागडोर अपने हाथ में सम्भाली त्यों ही उन्होंने अपने राष्ट्र को सबल बनाने के लिए एक योजना तैयार की जिस में मुख्य स्थान जाति की शिक्षा को दिया गया। इस का फल यह हुआ कि ५ वर्ष के अल्प समय में उन्होंने निरक्षरता को रूस से देश निकाला दे दिया। वैज्ञानिक अन्वेषण के क्षेत्र में भी रूस ने वह उन्नति की है कि जिस ने अमेरिका तथा इङ्गलैंड आदि का माथा ठनका दिया है। अपने बच्चों के हृदयों में साम्यवादी विचारधारा अङ्कित करने के लिए उस के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार किया गया। साम्यवादी दर्शन का मूल विचार प्रतिद्वन्द है। अर्थात् साम्यवादी लोग ऐसा मानते हैं कि मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विरोधी भावनाओं का द्वन्द चल रहा है—मनुष्य समाज में अमीर और गरीब का, शासक और शासित का, पूंजीपति और श्रमी का, इत्यादि। प्रकृति में भी यह द्वन्द चल रहा है अणु, परमाणु इसी द्वन्द में लगे हुए हैं। इस द्वन्द में जो विजयी होता है वह सफल हो कर अपना जीवन चलाता है। अन्य सब नष्ट हो जाते हैं।

हमारे देश में भी राष्ट्रनिर्माण के लिए योजना बनाई जा रही हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि इस में जहां देश की आर्थिक दशा को उन्नत करने के उपाय प्रस्तुत किए जाते हैं। वहां जाति के बच्चों की शिक्षा और चरित्र निर्माण को सर्वप्रथम स्थान दिया जाना चाहिए। इस दिशा में प्रथम पग यह है कि हम निश्चित रूप से घोषणा करें कि हम मनुष्य जीवन का आदर्श क्या मानते हैं। आज हमारे देश में अपनी प्राचीन संस्कृति के पुनर्जीवित करने की बहुत चर्चा है। हमारी सरकार भी इसे अपना ध्येय मानती है। हमारी प्राचीन संस्कृति विश्वतारा है। सारे संसार का कल्याण चाहने वाली है। प्राणी मात्र का हित करने वाली है। "वसुधैव कटुम्बकं"। सारी पृथिवी हमारा ही कटुम्ब है। इस संस्कृति के अनुसार मनुष्य जीवन का आदर्श है "आयुर्वैयज्ञः"। अर्थात मनुष्यों को प्रत्येक के हित का त्याग करके सर्वहित के लिए सुसंगठित होकर दिव्य गुणों का प्राणी मात्र में प्रसार करना मनुष्य जीवन का लक्ष्य होना चाहिये। अपनी प्राचीन संस्कृति के इस महान् उदार लक्ष्य को सामने रख कर ही भारत अपना और संसार का कल्याण कर सकता है। यही उद्देश्य

हमारी जाति के बच्चों की शिक्षा का मूलाधार होना चाहिए। इसी के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाना चाहिए। इसी के अनुसार हमें अपने शिक्षणालयों का सारा वातावरण बनाना चाहिए। प्राचीन शिक्षा पद्धति में जो गुरु और शिष्य का सम्बन्ध होता था उसे जागृत करना चाहिए। जाति के बच्चों की सर्वतोमुखी उन्नति अर्थात् शारीरिक, मानसिक, तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए यत्नशील होना चाहिए। जाति के सब बच्चों को शिक्षा का समान अवसर देना चाहिए। यथासम्भव शिक्षा निःशुल्क होनी चाहिए। वैज्ञानिक अन्वेषण का विस्तार करना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए ब्रह्मचर्य और संयम का जीवन बिताना अनिवार्य होना चाहिए। ये हैं हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति के सर्वसम्मत सिद्धान्त। इन्हीं का समावेश हमारी राष्ट्रीय शिक्षा योजना के अन्दर होना चाहिए। तभी हम मनुष्य जीवन के महान् आदर्श को पूर्ण कर सकेंगे। तभी हम अपने राष्ट्र के निर्माण के लिए चरित्रवान् मनुष्य पैदा कर सकेंगे। तभी हम प्राणी मात्र की हित साधना में सहायक हो सकेंगे। [गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्वर्णजयन्ती पर दिए गए भाषण का अंश।]

भाग्यशाली भविष्य की कामना

ग्योटिन्गन विश्वविद्यालय के रेक्टर और सीनेट को बहुत हर्ष है कि आपका गुरुकुल विश्वविद्यालय अपनी स्वर्णजयन्ती मनाने जा रहा है। यह हमें भली प्रकार ज्ञात है कि आप किस प्रेम और सफलता के साथ प्राचीन विज्ञानों और सम्माननीय परिपाटियों (Traditions) के अध्ययन में व्यस्त हैं और उस के द्वारा अपने देश और वर्तमान काल को उन्नत करना चाहते हैं। हम आप के इन प्रयासों में पूर्ण सफलता की और गुरुकुल के लिए भाग्यशाली भविष्य की कामना करते हैं।

--रेक्टर,
गेओर्ग = आउगुस्ट युनिवर्सिटी,
ग्योटिन्गन, विल्हेल्मप्लात्ज़।

प्राचीन गौरव का पुनरुद्धार

मैं गुरुकुल विश्वविद्यालय के बारे में अपने बाल्यकाल से ही बहुत कुछ सुन रहा था। स्वभावतः इस के देखने की मुझे प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। आज सौभाग्य से मेरी इच्छापूर्ति हो गई। क्या ही अच्छा होता कि मैंने भी इसी संस्था में शिक्षा पाई होती। ऐसी ही संस्थाएं हमारे प्राचीन गौरव का पुनरुद्धार कर सकती हैं। मैं इस संस्था की सफलता के लिए हार्दिक मंगलकामना करता हूँ।

एम. एस. अस्थाना
एसिस्टैंट रजिस्ट्रार, कोआपरेटिव सोसाइटी,
उत्तर प्रदेश।

कथं लोकाः निरामयाः

श्री विद्यानन्द उपाध्याय

पर्वतराज हिमालय की तराई में प्रत्येक वर्ष भारतीय आयुर्वेद मण्डल लोकहित की भावना से अभिभूत होकर संसार के अधिवासियों को आत्म-सन्देश सुनाता है— 'किं करोमि, क गच्छामि, कथं लोकाः निरामयाः' । इस मण्डली में गुफाओं के ऋषि-मुनि, साधु-संन्यासी, पण्डित-ज्ञानी तथा अन्य विद्वान् एकत्रित होते हैं और अपने पवित्र विचारों से लोगों को लाभान्वित करते हैं।

किं करोमि = क्या करूं, क गच्छामि = कहां जाऊं; कथं लोकाः निरामयाः = संसार के इन दुःख-संतप्त, शोकार्त-प्राणियों को हम कैसे सुखी करें । अहा ! इन ऋषि मुनियों के कैसे विचार हैं ।

भारत की धूल-धूल में भारतीयता उपलब्ध है। भारतीय संस्कृति मानवता की संस्कृति है और भारतीय विचार मानवता के विचार हैं। हमारे ऋषि-मुनियों ने जीवन को स्वाभाविक रूप से बहने दिया । इनका वातावरण इतना शान्त था, इतना प्रकाशमय था कि अशान्ति का उद्देश्य इन में आ ही न सका। जो आत्मा की पहचान कर लेता है, उसकी समस्त स्वार्थ भावनाएं दब जाती हैं और वह लोकहित भावना को ही प्रश्रय देता चला जाता है। जब हम किसी व्यक्ति से सत्याचरण का व्यवहार करते हैं तो हमारी हृदय-रूपी कली खिल उठती है और ज्यों ही असत्याचरण का व्यवहार करते हैं तो वही कली कुछ सिकुड़ सी जाती है। आत्मा का पतन ही उस व्यक्ति का पतन है । फलतः वह शनैः शनैः सकुचित विचार का हो जाता है लेकिन जो आत्म-स्वरूप को पहचानता हुआ उसकी स्वभाविक गति पर ध्यान देता है, हमारी दृष्टि में उसका अहर्निश विकास होता जाता है हम ज्यों-ज्यों आत्मा के संनिकट पहुँचते हैं त्यों-त्यों हमारी स्वार्थलिप्सा नष्ट होती जाती है और परमार्थ की लिप्सा बढ़ती जाती है। जब मनुष्य में परमार्थ के विचार आते हैं तो उसे किए बिना वह अपना पतन समझता है। मनुष्य अपने भाग्य का विधाता आप ही है और आत्मस्वरूप को नष्ट कर अपना विघटन करने वाला आप ही है ।

आज संसार में जो स्वार्थ की इतनी लिप्सा बढ़ गई है– यह क्यों ? क्यों हम विद्वान्, धनवान्, बलवान् तथा वैज्ञानिक होकर भी लोगों को कल्याण मार्ग नहीं दिखा पाते ? और स्वयं भी भूल से जाते हैं। कारण स्पष्ट है। हमारी आत्मा का इतना पतन हो गया है कि हम उस वातावरण में रह कर उससे लाभ नहीं उठा सकते और न दूसरों को भी लाभ उठाने का परमर्श दे सकते हैं। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पना चाह रहा है। वह चाहता है, हम अधिक सुखी रहें, हमारा राष्ट्र सुखी सम्पन्न रहे। भले ही इसके लिये अन्य राष्ट्रों की तबाही ही क्यों न हो ! जहां एक ओर हम सुव्यवस्था से राष्ट्र के चन्द नागरिकों को सुखमय बनाते हैं वहां दूसरी ओर बहुसंख्यक प्राणियों का विनाश कर उनका पशुवत् संहार कर सर्वदा के लिये हम उन्हें शत्रु समझ लेते हैं। यह कार्य ऐसा ही है कि इधर पाप किया और उधर पुण्य भी खरीद लिया। पर पुण्य का फल ? पुण्य को प्राप्त कर मनुष्य जिस सुख शान्ति का आश्रय लेता है, वह पूर्ण रूप से उसमें कहां विकसित हो पाया ? यदि हम आत्मा के सच्चे स्वरूप को समझ जाते तो निश्चयेन परसंहार की भावना भी नष्ट हो जाती। हम देखते हैं कि जो राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की दृष्टि में अति सम्मानित था तथा जो व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की दृष्टि में अपने सत्याचरण से उसके हृदय में अपना

निवास बनाये था, किसी दूसरे क्षण जब कि उसका स्वार्थ जाता रहता है तब वह उसका हितैषी नहीं रहता बल्कि उसका प्रबल शत्रु हो जाता है। तब हममें स्थिर बुद्धि से उत्पन्न जो लोकहित साधना थी वह कहां विलुप्त हो गई ? दूसरे के प्रति जो हमारे आदरणीय भाव थे, वे कहां चले गये ? कहना यही होगा। आज की लोकहित भावना का आधार आत्म-प्रशसा, एवं आत्म संगठन है। आत्म-प्रशंसा से तात्पर्य है कि हमारी आत्मा को जो प्रिय लगे। हमारे जो विचार हैं, उनसे वह सहमत हो। वे विचार चाहे कल्याणात्मक हों अथवा अकल्याणात्मक। यदि हम इसी को आत्मा की पुकार, आत्मा की आवाज, आत्म-चिंतन और आत्म-सुख मान लें, तो यह हमारी भूल होगी। और, इसी भूल के कारण ही हम सब कुछ उन्नति करते हुये भी पँगु हैं। साधन हीन हैं। यद्यपि आज का युग बुद्धिवाद का है, वैज्ञानिक प्रगति का है, फिर भी उसमें सच्चे लोकहित साधना की कमी है। इसलिये तो हम अशान्त हैं, हमारा वातावरण अशान्त है और इसी से यह दुनिया भी हमें अशान्त सी दीखती है।

प्रगति का अर्थ यह नहीं कि हम उल्टे सीधे, अन्धाधुन्ध तथा जोश में आकर किसी ओर चल पड़ें। प्रगति तो वह है कि नाना प्रकार की कठिनाइयों में भी अपने उदात्त विचारों को न छोड़ना। हमारे ऋषियों ने जीवन का एक लक्ष्य बनाया। उसे पाने में भले ही उन्हें नाना प्रकार की कठिनाइयां झेलनी पड़ी हों, प्राप्त हुई अमूल्य से अमूल्य सम्पत्ति त्याग देनी पड़ी हो तो उन्होंने सहर्ष त्यागा। क्योंकि उसके सच्चे स्वरूप को जानते ही मनुष्य उसका मूल्यांकन करने लगता है। उदाहरण के लिये सारा भारतीय इतिहास भरा पड़ा है। नचिकेता को ही लीजिये। यमाचार्य ने नचिकेता को कितने प्रलोभन दिये। अपनी इच्छा से मरना, बहुत सी सुन्दर अंगों वाली अप्सराओं के साथ केलि, लाखों गाय बैल, लाखों बीघे जमीन, अगणित नाती पोते तथा संसार के अन्य शारीरिक सुख आदि। लेकिन क्या नचिकेता के हृदय में आत्म-तत्त्व की बात के आजाने के और कोई विचार घर कर गये ? क्या उस प्रलोभन में आकर उसने अपने विचार बेच दिये ? नहीं बेचे क्योंकि वह जानता था। ये सांसारिक विषय-भोग एक दिन तो दुःखदायी होंगे। फिर भी मुझे आवागमन के चक्कर में आना होगा और उस समय ये सारी वस्तुएं व्यर्थ साबित होंगी। सांसारिक सुख क्षणिक हैं लेकिन ब्रह्मानन्द का आनन्द तो सर्वदा के लिये प्रकाशपूर्ण है और है वह स्थाई !

आज हमारे विचार बिके हुये हैं। जिन बातों के कल हम विरोधी थे, आज समर्थक बन बैठे हैं। कल जिसके शत्रु थे, आज अपने स्वार्थ के कारण उसके मित्र बने हैं। जो कल हमारे मित्र थे, आज मुझसे अलग हैं। ऐसी दशा में क्या हम लोकहित साधना कर सकते हैं ?

पर जिनमें सच्ची आत्मा की पुकार है, सच्चे कल्याण की भावना है, वे अपने विचारों से कदापि दूर नहीं हो सकते। क्योंकि उन्होंने सत्य का रूप देख लिया है। आइये, एक उदाहरण से हम इसे अच्छी तरह समझ सकेंगे--

एक साधू था। नदी में नहा रहा था। एक बिच्छू उतराता हुआ उसके पास जा लगा साधू के दिल में दया आ गयी। प्राणीमात्र की सेवा करना उसका परम धर्म है। और वह भी अहिंसापूर्वक। वह बिच्छू को उठा लेता है। कपट स्वभाव के कारण बिच्छू उसे काट खाता है। वह दहलाने लगता है। साधू फिर भी उसे उठा लेता है। बिच्छू फिर भी उसे काटता है। साधू फिर भी उसे उठा लेता है। तट से किसी ने कहा—साधू जी, आपने इस बिच्छू

को क्यों पकड़ रखा है। यह तो तुम्हें काट खाता है। साधू ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया--बिच्छू जब अपने स्वाभाविक गुण को नहीं छोड़ता तो मैं साधू होकर भी अपने स्वाभाविक गुण को क्यों छोड़ूँ। कैसी साधना है! तपश्चर्या के द्वारा उद्भूत कैसी स्थिर प्रज्ञता है और कैसी प्राणी मात्र की सेवा की सच्ची लगन है? यह एक आश्चर्य का ही विषय है। वह साधू अवश्यमेव पूजनीय है, आदरणीय है।

आज की भाषा में हम उस साधू को मूर्ख कह सकते हैं। कह सकते हैं कि वह साधू बेवकूफ था कि जिसने एक बिच्छू के लिये अपने प्राण सकट में डाल दिये। पर साधू के लिये वह एक प्रयोग का अवसर था, उसकी कठिन परीक्षा थी।

महाराज दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा को अपने गुरू वशिष्ठ के यहां रखकर स्वयं सुरभी की पुत्री नन्दिनी की सेवा के लिये बन में जाते हैं। कुम्भोदर नामक सिंह ने गौ पर आक्रमण कर दिया। इधर राजा पर्वतीय प्रदेश की शोभा देखने में मग्न थे। गौ के उत्क्रोश से राजा का ध्यान इधर आ गया। बाण के लिये जो कन्धे पर हाथ डाला वह वहीं पर पड़ा रह गया। अन्त में दिलीप प्रार्थना करते हैं कि हे मित्र कुम्भोदर, तुम इस गाय को छोड़ दो। यह गुरुदेव की है। इसके बदले में तुम मुझे खा लो। कुम्भोदर कहता है--भाई, तुम राजा हो, तुम्हारे पास घड़ों को भर देने वाली असंख्य गायें होंगी। तुम उनसे अपने गुरुदेव को संतुष्ट कर देना। एक गाय के लिये तुम नाहक अपने प्राणों की आहुति क्यों दे रहे हो? यदि तुम जीते रहोगे तो असंख्य गायों की रक्षा कर सकते हो। पर दिलीप जी कहते हैं—"भद्र, क्षत्रियों का धर्म है, असहायों की सहायता करना, रक्षा करना और यह गाय तो स्वयं गुरुदेव की है। अन्त में राजा अपना शरीर सिंह के आगे डाल देता है। अब आप कहिये, आज की भाषा में तो हम उन्हें मूर्ख कह सकते हैं? लेकिन नहीं दिलीप ने साधना की थी क्षात्रधर्म की, उनके बाण दुःखियों की रक्षा में निकलते थे, उनके प्राण प्रजा की सेवा में ही निहित थे और अत्याचारियों के विरुद्ध ही उनकी तलवारें चमचमाती थीं। स्वार्थ के लिये तो दिलीप ने नन्दिनी के आदेश पर भी, पहले दुग्धपान नहीं किया। यज्ञादि अनुष्ठान के बाद जो दुग्धादि शेष रह गया, वही दिलीप ने पान किया। क्योंकि राजा को अब तक भी ख्याल था कि राजा प्रजा की भलाई के लिये प्रजा का छठा हिस्सा लेता है।

सबसे पहले हमें विचारों की स्थिरता प्राप्त करनी होगी। बिना विचार के स्थिर हुये हमारे सारे उद्देश्य अधूरे रह जायेंगे। यह बड़े आश्चर्य का विषय है कि हम सत्य का दर्शन कर भी उसे असत्य मान बैठते हैं। और असत्य को सत्य। चण्डाशोक ने जब प्राणी संहार का भीषण दारुण रूप देखा तब उससे उसका जी हट गया और प्राणी की सेवा में जो लग गया लगा ही रह गया। चिंउटियों के भी अस्पताल बनाये। बाद में उसने अपने सिद्धान्त बदले नहीं यद्यपि धर्म राज्य की उन्नति के साथ ही साथ उसका राजनैतिक साम्राज्य दिन प्रतिदिन ह्रास होता चला जा रहा था। आज वह चण्डाशोक से धर्माशोक था।

ऋषियों ने लोक कल्याण की जो पतित पावनी गङ्गा प्रवाहित की वह आज तक सूख न पाई, उसमें विकार नहीं आये। क्यों? क्योंकि "सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्यंयत्कृत सुदीर्घकालेपि न याति विक्रिया..."!

सन् १९३० के कुल-भूमि के संस्मरण

श्री वीरेन्द्र विद्यावाचस्पति, एम. ए.

[गताङ्क का शेष]

ए. पी. आई. का समाचार भारत के सब समाचार पत्रों में छपा। रुड़की में लाठी चार्ज। कचहरी पर पिकेटिंग करने के सिलसिले में गिरफ्तारियां और सरकार का दमन। यह भारतवर्ष में उस समय पहला लाठी चार्ज था और पहला पिकेटिंग था। अभी कांग्रेस वर्किंग कमेटी कचहरी पर पिकेटिंग का फैसला न कर पाई थी कि हमारे कल्पनाशील विद्यार्थियों ने श्री रामेश्वर जी के नेतृत्व में इस कार्य का फैसला कर ही लिया। सब वकीलों

[श्री रामेश्वर जी सिद्धान्तालङ्कार]

और मुख्तारों को सूचना दे दी गई कि अब कचहरी में कोई न जाय। जनता के आपसी झगड़ों को कांग्रेस के दफ्तर में मिटाया जाय। गंगा की नहर के पुल को पार कर कचहरी जाना पड़ता था। वहां हमारे स्वयं सेवक खड़े हो जाते और वकीलों को जाने से मना करते। वकील लोग उस आग्रह को टाल न पाते या यह सोच कर कि दो एक दिन देखा जाय, वापिस हो जाते। दो एक वकील फिर भ सरकार का बहाना करके न रुके। एक के घर पर तो ऐसा पिकेटिंग हुआ कि अब उसे स्मरण कर लगता है कि आदमी जोश में कहां तक आगे बढ़ जाता है। अगले दिन पुल पर पूरा स्वयसेवकों का जत्था खड़ा हो गया और एक तरह से बिना उस जत्थे को पार किए कोई न जा पाता। नेशनल ऐम्पोरियम सम्भवतः यही नाम था या कुछ और जिस के ऊपर की मञ्जिल में कांग्रेस का दफ्तर था। अपराह्न का १ या १-३० का समय होगा। पुलिस के सर्कल इन्पेक्टर की शरण लेकर बहुत ज़ोर-ज़बर्दस्ती के साथ एक वकील निकल कर चले गए थे। अब क्या था स्वयं श्री रामेश्वर जी हम लोगों को रोकने पर भी बहुत बड़ा जत्था लेकर जा अड़े। मजिस्ट्रेट का हुक्म आया, स्वयंसेवक हट जायें पर वहां कौन हटता है। सर्कल इन्सपेक्टर ने एक बड़ी सशस्त्र पुलिस की गारद ला खड़ी की और २ मिनट में अलग हो जाने को कहा। कुछ देर में सर्कल इन्सपेक्टर ने श्री रामेश्वर जी को गिरफ्तार किया और लाठी चार्ज का हुक्म दिया। बड़ी बेरहमी से लाठियां पड़ने लगीं और स्वयंसेवक मार खाने लगे। मुझे याद है कि श्री केशवदेव ने खूब चोट खाई। यह था सरकार का पशुबल-प्रदर्शन।

कांग्रेस आफिस में गांव वालों के झगड़े भी मिटाए जाते और शराब की दूकानों पर पिकेटिंग भी चलता। मङ्गलोर की शराब की दुकान की तो बिक्री ही खतम हो गई थी। हम लोग आश्चर्य

करते थे कि कुछ ऐसे आदमी जो गुन्डे कहे जाते थे और शराब पीना जिन के लिए मामूली काम था हमारे स्वयंसेवकों में शामिल हो गये और बड़े प्रेम तथा आग्रह से शराब रोकने का काम करते थे।

रुड़की के पास में बहती छोटी सी नदी पर सारा रुड़की टूटा पड़ता था जब हमारे एक साथी को सदा के लिए अन्तिम विदाई देनी थी। साथियों की आखों में आंसू के साथ चिता में आहुति पड़ती थी। सर्वमित्र का पार्थिव शरीर भस्मसात् हो गया। वह सब का मित्र बनने के लिए उतावला था और देह का बन्धन उसे शायद असह्य हो उठा था। दिन रात के परिश्रम से क्लान्त उस का शरीर सांसारिक यातना सहन न कर सका। वह बीमार पड़ा। बड़े बूढ़ों ने प्यार से समझाया तुम लोग गुरुकुल में घी-दूध के खाने के आदि हो। यहां खाली दाल रोटी और तरकारी से कैसे काम चलेगा। बीमार समझ कर ही दही खाओ। सर्वमित्र का उत्तर था मेरे साथी स्वयंसेवक जो सूखा खायेंगे वही मेरा भोजन भी है। मैं उन से अलग कुछ खास भोजन नहीं खा सकता। उस ने जिद सी पकड़ ली और डाक्टरों के सब उपचार के होते भी अपने जीवन को मातृभूमि के लिए उत्सर्ग कर गया। सारा रुड़की शहर शोक-मग्न था और बृहत् जलूस में उस सपूत की अन्तिम यात्रा नदी तक हुई। मुझे याद है उस के पिता जो पुलिस के एक अधिकारी थे, उसे सत्याग्रह से विमुख करने आये पर उन को निराश वापिस जाना पड़ा था। यह थी भावना गुरुकुल के विद्यार्थियों की। कइयों के संरक्षक आये, तार आये और अनशन की धमकी आई पर बेकार गया। स्वयं मेरी माता जी का तार अनशन के बारे में आया और मुझे अपने नायक के आग्रह पर घर आकर उन्हें समझाना पड़ा और उन्हें मेरी उदासी देख कर अपना अनशन भङ्ग कर के फिर वापिस जाने की अनुमति देनी पड़ी। सर्वमित्र की तरह ही और दो विद्यार्थी उस काम को करते अपनी जीवन लीला समाप्त कर गये।

तीन महीने की छुट्टी समाप्त होने पर भी काम पर विद्यार्थियों को डटा देख सरकार ने भी रुख बदला और धड़ाधड़ गिरफ्तारियों और ज़ब्तियों का तांता लगा दिया। बहुत से विद्यार्थी जेल गये। श्री पूर्णचन्द्र, जयदेव, सत्यव्रत आदि स्नातक और श्री देवराज सेठी कारागार में भेज दिये गये। रुड़की का दफ्तर ज़ब्त हुआ। सब खाने पीने की मनो रसद और बर्तन ज़ब्त हुए। १४४ धारा बराबर के लिये लग गई। सरकार के वश में जो सम्भव था सब किया गया पर वह भावना न मर सकी।

गुरुकुल कांगड़ी उन दिनों प्रान्त भर की कांग्रेस के संचालन का केन्द्र था। काशी विद्यापीठ आदि बन्द किये जा चुके थे। प्रायः सब नेता जेल में जा चुके थे। कांग्रेस का प्रकाशन और विज्ञप्ति विभाग का गुप्त केन्द्र गुरुकुल ही था। प्रो० सत्यव्रत जी

[प्रो० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार]

की सहायता के लिए घर से लौटने के बाद मैं गुरुकुल ही चला आया था। श्री चन्द्रावती जी के साथ रुड़की

में कान्फ्रेंस का सफल आयोजन करके मैं गुरुकुल में प्रकाशन और संगठन के कार्य में लग गया। काशी से पत्रनायक आदि मित्र आते रहते और प्रान्त भर का ब्यौरा मिल जाता। कांग्रेस स्वयंसेवकों का वह गुह्य शिविर सा बन गया था। अनधिकृत लीथो पर छपे बुलेटिन निकालते रहते। सरकार इस सब गतिविधि से तंग तो आगई पर गुरुकुल को बन्द कर देना भी आसान नहीं था। गुरुकुल को बिजली का बड़ा सस्ता दर दिया हुआ था।

कलैक्टर ने आचार्य रामदेव जी से कहा कि हम आपकी विद्रोही संस्था को सुविधा प्रदान नहीं कर सकते। आचार्य जी ने कहा जहां हम लाखों दान में मांगते हैं वहां कुछ और हजार बिजली के लिये भी सही।

सन् १९३१ के उत्सव के दो दिन बाद तीन चार लारियों में सशस्त्र पुलिस के साथ एस. पी. और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने आकर गुरुकुल को घेर लिया। देखते ही देखते हमारे सारे छात्रावास के चारों ओर लाल पगड़ियां ही लाल पगड़ियां दिखाई देती थीं। अभी तक लम्बे स्तम्भ पर शान के साथ राष्ट्रीय पताका गुरुकुल के बीच में फहरा रही थी। सरकल इन्सपेक्टर कुछ सिपाहियों के साथ उधर दौड़े। उस समय तो अधिकारी एक हाथ की बात करें तो उन के मातहत सिपाही तीन हाथ की बात अपने आप करने को तैयार हो जाते थे। हर एक कमरे में विद्यार्थी कागज पत्रों को जला कर छोटे से कूड़े के तना के हवाले कर रहे थे। मैं अपने कमरे में बैठा गिरफ्तारी की प्रतीक्षा कर रहा था। एक अलमारी भर के कांग्रेस के रजिस्टर और हिसाब किताब के कागज़ थे। मैं और देवनाथ विद्यालंकार उस की देख रेख करने वाले थे। बचने को कोई तरीका न था। हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब हम लोगों ने देखा कि सब लाल पगड़ियां धीरे से विलीन हो गईं और पुलिस अधिकारी आपस में एक दूसरे को बुरा भला कहते लारियों के पास लौट गये और सारी पुलिस अपना सा मुंह लिये लारियों में जा बैठी। हम लोग बाहर निकले। देखा, खेल के मैदान से हाकी लिये कुछ विद्यार्थी दौड़े आ रहे हैं और सीधे झण्डे की ओर लपक रहे हैं कि देखें किस की मजाल है जो झन्डा उतारे। आचार्य रामदेव जी अपने बंगले से आ पहुँचे थे और आते ही उन्होंने मजिस्ट्रेट से कहा कि अब सारा उत्तरदायित्व आप का है। आपने मुझ से बिना पूछे यहां सब काम क्यों किया ?। झन्डा उतारने वाले सिपाहियों और हाकी लिये विद्यार्थियों में कुछ हो जाए तो आप जाने। कलक्टर ने वास्तव में सिपाहियों को झन्डा उतारने को न कहा था और वह उग्र परिस्थिति को भांप गया। एक डांट पाते ही सब सिपाही ठंडे पड़ गये। कलक्टर को कोई बात न सूझी तो कहा कि मुझे सूचना मिली है कि आप के उत्सव पर बहुत सी ज़ब्त किताबें बिक रही थीं। उन्हें ही देखने हम आए हैं। आचार्य जी हंस पड़े। उत्सव की तारीख तो बड़े-बड़े पोस्टरों में छपी थी। आप दो दिन देर कैसे कर गए ? अब तो पुस्तक विक्रेता चले गए। मजिस्ट्रेट ने कहा आइये, जरा मैं आपके गुरुकुल को और पुस्तकालय को देख लूं। दोनों थोड़ी देर इधर-उधर घूम कर पुस्तकालय गए। दो चार रूस से आनेवाली कम्युनिस्ट पत्रिकाओं को कलक्टर अपने साथ ले चले। आचार्य जी ने हंस कर कहा—कहिए तो और इसी तरह की कुछ पत्रिकायें भेज दिया करूं। ये तो आप के कस्टम से पास होकर आने वाली पत्रिकायें हैं। गुरुकुल को जब्त करने और तलाशी लेने का वारन्ट लेकर आने वाले मजिस्ट्रेट और सुपरिन्टेन्डेन्ट अपने दल बल के साथ वापिस हो गए। सम्भवतः जो वह करना चाहते थे उस का साहस न बटोर सके।

साम

श्री वासुदेव शरण

यो जागार तमयं सोम आह
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।
ऋ० ५. ४४. १४ ॥

जागरूक अर्थात् प्रज्ञावान् पुरुष के साथ ही सोम सख्य या मैत्री की इच्छा करता है। वेदों में सोम शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस शब्द के कितने ही अर्थ ब्राह्मणकारों ने दिए हैं, यथा— रेतोवै सोमः (कौ०, श०, तै०), अन्नं सोमः (श०) सोमो प्रजापतिः, प्राणों वै सोमः (तां०), हविर्वै देवानां सोमः (श०), यशो वै सोमः (श०), क्षत्रं वै सोमः (कौ०, ऐ०) वर्चः सोमः (श०), रसः सोमः (श०), शुक्रः सोमः (तां०), सोमो वै ब्राह्मणः (तां०), ब्राह्मणानां स (सोमः) भक्षः (ऐ०)।

अग्नीषोमाख्य नियम सृष्टि व्यापक विराट् द्वन्द्व है जिससे समस्त जीवन नियन्त्रित होता है। शतपथ में कहा है-यद्वा आर्द्रं यज्ञस्य तत्सोम्यम्, यच्छुष्कं तदाग्नेयम्। अग्नीषोम ही सृष्टि की वैज्ञानिक व्याख्या है, इस सूत्र में सब कुछ अन्तर्निहित है। मनुष्य एक अग्नीषोमीय पशु है। समस्त यज्ञों में संस्कारार्थ इसी की अपेक्षा है। परन्तु यहां आज हम सोम के एक विशेष आध्यात्मिक अर्थ की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं। ऊपर लिखे हुए ब्राह्मण वचन में अत्यन्त स्पष्टता से सोम का अर्थ वीर्य या रेत किया गया है। यज्ञ में हिरण्य देकर सोम लिया जाता है। इसका अर्थ शतपथ (३. ३. ३. ६) में इस प्रकार है— शुक्रं ह्येतच्छुक्रेण क्रीणाति यत्सोमं हिरण्येन (श० ३. ३. ३. ६)। हिरण्य भी रेत का ही संज्ञा है। शुक्र से शुक्र की प्राप्ति होती है। यही यज्ञ के द्वारा यज्ञ करना है— अर्थात्—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥

ब्रह्मचर्य आश्रम में रेत के संचय से ही वीर्य प्रज्ञा तेज आदि की संप्राप्ति होती है। प्राण की आहुति से प्राण पुष्ट होते हैं। शरीरस्थ शुक्र जब शरीर में ही पचाया जाता है तब ही शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक निर्मलता, प्रसन्नता और शान्ति प्राप्त होती है।

मनुष्य शरीर में वीर्य या रेत सब से मूल्यवान् पदार्थ है। यह सोम जिन नस नाड़ियों में व्याप्त रहता है वे ही सोम वल्ली हैं। इन को ही केन्द्रीय

पृष्ठ ११ का शेष—

कुछ समय बाद आचार्य रामदेव जी पञ्जाब प्रान्तीय कांग्रेस के डिक्टेटर होकर लाहौर जेल चले गये और विद्यार्थियों को अपना नेता मान लिया कि मुझे भी इन्होंने उचित स्थान पर पहुँचा दिया। कुलभूमि में राष्ट्रीय पताका बेरोकटोक फहराती रही।

वह सब गुरुकुल की निस्वार्थ सेवा मातृभूमि के लिए थी, कोई राजनीतिक लाभ का ख्याल न था। विद्यार्थी देश की सेवा में अपनी कुलमाता की लज्जा को और स्वर्गीय कुलपिता श्रद्धानन्द की स्मृति को कायम रखने के लिए प्राणपण से लग गए थे। कैसा सुन्दर था वह समय और कैसी सुन्दर है वह स्मृति।

नाड़ी जाल कहते हैं। यह नाड़ी जाल मनोमय वाङ्मय प्राणमय पुरुष की प्रतिष्ठा है। मस्तिष्क इस का ही एक भाग है। मस्तिष्क की संज्ञा ही स्वर्ग है।

अष्टचक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या।
अस्यां हिरण्ययः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥
अथर्व० १०. २. ३१॥

आठ चक्रों और नौ द्वारों से युक्त यह शरीर देवों की नगरी अयोध्या है; इसी में ज्योति से भरा हुआ सोने का कोष है जो स्वर्ग है। सोने का यह पात्र या खजाने से भरा हुआ सन्दूक मस्तिष्क है। यही नीचे मुंह और ऊपर पेंदी वाला करछुल, चम्मू या घट है जिस के किनारों पर सप्त ऋषि सप्त शीर्षण्य प्राण—

चक्षुः, कर्ण, नासा, मुख स्थित हैं—

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः ···।
तदासत ऋषयः सप्तसाकम्॥
(अथर्व० १०. ८. ९॥)

यह शरीर सोम कूटने की ग्रावा है—

बृहन्नद्रिभ्ग्वद्यच्छरीरम्॥
(अथर्व० ९. ४. ५॥)।

कूटने पीसने छानने के बाद सोम से भरा हुआ शीर्ष रूपी कलश इस शरीर में रहता है—

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि॥
(अथर्व० ९. ४. ६॥)।

अनन्त प्रकार से पुष्ट होने वाला जो प्राणतत्त्व है उसे अध्यात्म परिभाषा में ऋषभ कहा गया है। उस प्राणरूपी ऋषभ का रेत ही इस शरीर रूपी यज्ञ में पड़ने वाला घृताज्य है। यही अध्यात्म यज्ञ है—

आज्यं बिभर्ति घृतमस्यरेतः।
साहस्रः पोषस्तमुयज्ञमाहुः॥
(अथर्व० ९. ४. ७॥)।

सोम इस शिर की रक्षा करता है। (अंशुः रक्षते शिरः, ऋ० ९. ६८. ४.॥)। और भी—

सुत इन्द्राय विष्णवे सोमः कलशे
अक्षरत्। चमूषु आ निषीदति॥
(ऋ० ९. ६३. २॥)

मस्तिष्क का प्रतिनिधि ही यज्ञ में द्रोण कलश है जिसमें सोम छान कर भरा जाता है। दधानः कलशे रसं (ऋ० ९. ६३. १३)। उसी में से हम ऐन्द्र-वायव [वाक्+प्राण] मैत्रावरुण [चक्षु+मन] और आश्विन [श्रोत्र+आत्मा], इन इन्द्रिय रूपी पात्रों या ग्रहों में इस सोम को भर कर पी रहे हैं। सोम इन्द्रियों का रस है (आत्सोम इन्द्रियो रसो वज्रः सहस्रासुवत, ऋ० ९. ४७. ३)।

ऐन्द्रवायव, मैत्रावरुण और आश्विन, ये सब प्राण के ही नामान्तर हैं क्योंकि प्राण ही दो देवताओं वाला (द्विदेवत्य) और एक पात्र में भरा हुआ सोम है। अथवा प्राण ही दो पात्रों में भरा हुआ किन्तु एक नाम वाला है (प्राणा वै द्विदेवत्या; एक पात्रा गृह्यन्ते तस्मात्प्राणा एकनामानो द्विपात्रा हूयन्ते तस्मा-त्प्राणाद्वन्द्वं, ऐ० २. २७॥)।

अयं सरांसि धावति ९. ५४. २॥

यह सोम छाना हुआ सरोवरों में भर जाता है। मस्तिष्क में जो तीन प्रधान चमू या वापियां (Ventricles) हैं वे ही यज्ञ के कलश हैं।

इद तदग्र नाक त्रिषु पात्रेषु रक्षति।
ऋ० १०. १०. १७॥

इनको ही आधुनिक शरीर विज्ञान की परिभाषा में cerebral ventricles कहते हैं। इनकी संख्या चार भी मानी जाती है रायः समुद्राश्चतु-रोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः। आ पवस्व सहस्रिणः। ९. ३३. ६॥) पवमान सोम स्वर्ग से और अन्तरिक्ष से पृथिवी के शृंगों (सानुनि) पर आता है (पव-माना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत। पृथिव्या अधिसानवि,

९. ६३. २७ ॥) ऋ० ९. ६४. ६ ॥ में कहा है कि दिव्य पार्थिव और आन्तरिक्ष सोम को पवित्र करो। फिर, सोम द्युलोक का केतु या प्रकाश है। (केतु कुण्वन् दिवस्परि विश्वारूपाभ्यर्षति ऋ० ९. ६४. ८ ॥)।

दिवः पीयूषं सोमं (९. ५१. २ ॥)

दिवः शिशु । ३३. ५ ॥

सोम को उदीची दिशा का स्वामी कहा है। सोम इन्द्रियों का रस है। सोम के त्रिविध स्थानों को यों समझना चाहिए—

नर्वस सिस्टम के तीन भाग हैं (त्रिभिः धामभिः पुनीहि, ९. ६७. २६ ॥)।

द्युलोक = Cerebrum

अन्तरिक्ष = Bulb, medulla oblngata

पृथ्वी = Shinal Region.

सोम को त्रिपृष्ठ कहा जाता है (त्रिपृष्ठो वृषा, ऋ० ९. ७१. ७ ॥)।

ये तीन स्थान ही सोम के तीन पृष्ठ हैं। सुहुताद गौएं अर्थात् इन्द्रियां अपने दुग्ध देने वाले ऊधस् को मूर्धा या मस्तिष्क में मिला कर दूध की वर्षा करती है (ऋ० ९. ७१. ४ ॥)। इन्द्रियों का संयम करने से मस्तिष्क के सोम में इन्द्रियरूपी गौओं का दुग्ध या तेज मिलता रहता है। कहा है—

दिवस्पृष्ठे तव शुक्रास अर्चयः।

(ऋ० ७. ६६. ५ ॥)।

द्युलोक के स्थान में सोम की प्रकाशमान् अर्चियां हैं।

यज्ञ का आत्मा सोम है (ऋ० यज्ञस्य आत्मा) सोम अद्रि या ग्रावाओं से अभिषुत होता है (सुन्वन्ति सोममद्रिभिः ९. ३४. ३ ॥, अद्रिभिः सुष्वाणः ९. ६७. ३ ॥, ग्राव्णा तुन्नः। ९. ६७. २० ॥)। प्राणापान ही ग्रावा या सोम कूटने के सिल लोढ़े हैं। सोम के दश अंशुओं का भी वर्णन है (ऋ० ९. ६७. २८ ॥) दश प्राण ही सोम के दश अंशु हैं।

कहा है कि सप्त सिन्धु सोम के ही अनुशासन को मानते हैं (सप्त सिन्धवः तव प्रशिषं सिस्रते, ९. ६६. ६ ॥)। शरीर में सप्त प्राण सप्तसिन्धु हैं। एक मन्त्र में सोम को पाञ्चजन्य पुरोहित कहा है—

अग्निः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्।

इन्द्रियां ही पञ्च जन हैं।

सोम इस शरीर रूपी रथ या शकट पर लादा जाता है—

ते त्रिपृष्ठे त्रिवन्धुरे रथे युञ्जन्ति यातवे।

ऋषीणांसप्तधीतिभिः ॥ (ऋ० ९. ६२. १७ ॥)

तीन पृष्ठ वाला रथ यह शरीर है। सप्त ऋषियों की धी या स्तुति से यह जुता हुआ है। सोम शरीररूपी ऋतु के सदन में सुत होता है (सुता ऋतस्य सादने ९. १२. १ ॥) तभी ऋतम्भरा प्रज्ञा होती है।

एक स्थान पर सोम के अधिश्रयण या परिपाक का वर्णन है—

सोमो गौरी अधिश्रितः (९. १२. ३ ॥)

कन्या की संज्ञा गौरी है। विवाह से पूर्व कौमार अवस्था में सोम का गौरी कन्या के शरीर में प्रकृति द्वारा अधिश्रयण या पाचन होता है। सोम इस शरीर गुहा में संचित है जहां द्युलोक या मस्तिष्क में ज्ञानी लोग उसे विवेक की आंख से देख पाते हैं—

अध्वर्युभिः गुहाहितं दिवस्पदम्,

सूरः पश्यति चक्षसा।

(ऋ० ९. १०. ९ ॥)

अप्रचेत अज्ञानी उसकी अवहेलना करते हैं; जो ज्ञानी और प्रचेता है वे सोम की उत्पत्ति उसके संचय, उसके परिपाक एवं उसकी अनेक रहस्यमयी शारीरिक और मानसिक प्रक्रियाओं को देखते हैं।

आ यद्योनिं हिरण्ययमाशुर्ऋतस्य सीदति। जहाति अप्रचेतसः ॥

(९. ६४. २० ॥)

ऋत की हिरण्यय योनि मस्तिष्क है। इसे ही अथर्ववेद में हिरण्य का कोष एवं स्वर्ग कहा गया है। यहां सोम जब प्रतिष्ठित होता है, तब अप्रचेत या अज्ञान छूट जाता है।

अभि वेना अनूषत इयक्षन्त,
प्रचेतसः। मज्जन्ति अविचेतसः॥

(ऋ० ९. ६४. २१॥)

जो आत्मदर्शी हैं वे सोम का गान गाते हैं; जो विवेकशील हैं वे सोम यजन करते हैं; जो मूर्ख हैं वे सोम के नाश से डूबते और नीचे गिरते हैं।

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुम-
त्तमः। ऋतस्य योनिमासदम्॥

(९. ६४. २२॥)

मरुत् संज्ञक प्राणों के मध्य में समिद्ध होने वाला जो मुख्य प्राण इन्द्र है, उसके लिये हे मधुमान् सोम तुम अर्पित हो। शरीर का जो मधुभाग है उसको संचित रखने वाले मधुमत्तम रस तुम्हीं हो। ऋत की योनि जो मस्तिष्क है उसमें तुम्हारा स्थान है।

ऋधक् सोम स्वस्तये संजग्मानो,
दिवः कविः। पवस्व सूर्यस्य दृशे॥

(ऋ० ९. ६४. ३०॥)

क्रान्तदर्शी सोम मस्तिष्क या शीर्षरूपी द्युलोक (स्वर्ग) से स्वस्तिभाव के लिये प्रवाहित होता है। सूर्य के समान तेजस्वी सोम का हम दर्शन करें।

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम
सुवीर्यम्। अस्मे श्रवांसि धारय॥

(ऋ० ९. ६३. १॥)

हे सोम! अपरिमित वीर्य और रयि को हमारे शरीरों में पवित्र करो जिससे हम सुयशस्वी बनें। सोम सिन्धु मातृक है (सिन्धु मातरं ९. ६१. ७॥), अर्थात् नदी रूप नाडियों से सोम रस का क्षरण होता है। सोम को प्रत्न पय (दुहानः प्रत्नमित्पयः ९. ४२. ४॥) या सनातन रस कहा गया है। यही शरीररूपी यज्ञ में प्राचीनतम रस है। सोम ही परम अमृत है। सोम ही रेत, प्राण वर्च, भ्राज, हिरण्य; शुक्र और चान्द्रमस पीयूष है। यह सोम दो ग्रावाओं से अभिषुत होकर शिरः कपालों के मध्य में सम्भृत होता है। इसको पान करने वाला इन्द्र प्राणों का भी प्राण आत्मा है। सोम का अभिषव जन्म से ही होने लगता है, परन्तु हर समय का सोम पृथक् पृथक् है। ऊर्ध्वरेता पुरुष का सोम उत्तरायण मार्ग से देव लोक का सिञ्चन करता है। शीर्ष ही वह द्युलोक या देव-लोक स्वर्ग है। शीर्ष में ही मस्तिष्क प्रतिष्ठित है। वैदिक परिभाषा में मस्तिष्क ही राजा सोम है।

सोमो राजा मस्तिष्कः। (अथर्व० ९. ७. २॥)

इसी दृष्टि से सोम ब्राह्मणों का राजा कहा गया है। जो प्रज्ञा के लिये जीवित रहता है, वही ब्राह्मण है।

सफल नेतृत्व

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

शिक्षा, अभ्यास एवं प्रतिभा

सफल नेतृत्व के हेतु उच्चतम शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। राजनैतिक नेताओं के लिए संसार की गतिविधि, नाना राजनैतिक दलों की कार्य प्रणाली, तुलनात्मक विचारधारा का सम्यक् ज्ञान अपेक्षित है। इसी प्रकार धर्म और सामाजिक क्षेत्रों में उक्त विषयों का उत्कृष्ट ज्ञान अपेक्षित है। आप जिस क्षेत्र में नेतृत्व कर रहे हैं, उसका शास्त्रीय अध्ययन कीजिए और अपना ज्ञान संसार की गति एवं विकास के साथ रखिए। जनता अज्ञानान्धकार में लुप्त पड़ी है। सिद्धान्तों तथा साधारण कार्यप्रणालियों तक का उसे ज्ञान चाहिए। वही आपको प्रदान करना है।

अपने ज्ञान के प्रदर्शन तथा जनता में प्रचार के लिए आपको भाषण देने की कला अपेक्षित है। जो व्यक्ति अच्छी वक्तृता दे कर जनता को प्रभावित कर सकता है, वह कुशल नेता बन सकता है। आप में नेतृत्व की जो प्रतिभा है, वह कुंठित पड़ी रहेगी यदि आप सम्यक् रीति से उनके प्रदर्शन का अभ्यास न करेंगे। विचार प्रतिपादन का अभ्यास दीर्घकाल तक होना चाहिए। नेता होने के लिए शिक्षा, अभ्यास और प्रतिभा का बराबर मात्रा में सामञ्जस्य आवश्यक है। दुःख है कि हम शिक्षा का अभाव पाते हैं। यदि उच्च शिक्षा और वकालत करने वाला दिमाग आपके पास है तो प्रतिभा भी अभ्यास से उत्पन्न की जा सकती है।

जनता के मनोविज्ञान से परिचय प्राप्त कीजिए। जनता भावनामय है; शीघ्र ही उत्तेजित हो उठती है। उत्तेजना में कुछ का कुछ कर बैठती है। उत्तेजित होने पर उसमें तर्क और विचार बुद्धि लुप्त हो जाती है। वह वक्ता जो जनता को उत्तेजित कर, भावनाएं बहाकर अपनी बात मनवा लेता है, चतुर है। धर्म, पुरानी संस्कृति, आन, प्रतिष्ठा इत्यादि की भावनाओं पर जनता शीघ्र विश्वास करती है। जो बात जनता के सन्मुख पुनः पुनः आती है, चाहे वह झूठ ही क्यों न हो, लोगों का विश्वास उसी पर दृढ़ हो जाता है। एक बार विचार दृढ़ होने के पश्चात् उसे जनता के मन से निकाला नहीं जा सकता। जनता पर प्रभाव धीरे-धीरे पड़ता है किन्तु एक बार भावना में दृढ़ हो जाने पर उस का उन्मूलन कठिन है। जनता का मन तर्क से नहीं, भावना और दूसरों के अनुकरण से परिचालित होता है।

सहिष्णुता और विरोधी आलोचना से निर्भयता

संसार में एक ही विचार और दृष्टिकोण सब का नहीं होता। जितने मस्तिष्क और बुद्धियां हैं, उतने ही सोचने विचारने के भिन्न स्वरूप हैं। जो आपको अमृततुल्य उपयोगी प्रतीत होता है, वही दूसरे को विष की जड़ मालूम होता है। एक व्यक्ति मीठी जलेबियां खाता है, तो दूसरा ऊँचे दाम देकर कड़वा करेला खरीदता है। प्रत्येक की रुचि भिन्न है। आदर्श, विचारधारा, इष्ट, योजनाएं भिन्न हैं।

नेता के जीवन में भी ऐसे अनेक व्यक्ति आते हैं, जो उसकी विचारधारा से सहमत नहीं होते। कहा विरोध करते हैं। जड़वादिता है, तो कहीं प्राचीन जीर्ण शीर्ण संस्कृति के खण्डहर विरोध में खड़े हैं। यदि नेता पचास वर्ष आगे की बात जनता के समक्ष प्रस्तुत करता है, तो जनता उसे स्वप्नवादी कहती है। धर्म की आड़ लेकर उसका और विरोध होता है; अच्छी बुरी आलोचना उसके विरोध में की

भक्त कौन

श्री विष्णुमित्र

प्रभु भक्त के अन्दर एक विशेष गुण होता है जिस के कारण वह साधारण मनुष्यों से कुछ निराला होता है। वह सब को अपने जैसा देखता है। उसे सभी प्राणी प्रभु के मन्दिर दिखाई देते हैं। ऐसा कौन सा भक्त है जो अपने प्रियतम के किसी भी मन्दिर को देख कर खुश न हो। प्रभु की सारी प्रजा को वह अपनी प्रजा समझता है वह किसी से द्वेष नहीं करता। वह तो दुश्मन को भी देख कर कह उठता है कि—

करूं मैं दुश्मनी किस से—अगर दुश्मन भी हो अपना।
मुहब्बत ने नहीं दिल में जगह छोड़ा अदावत की॥

वह तो भगवान् के किसी मन्दिर को टूटा वा गन्दा देखता है तब वह उसी समय उसके सुधार में लग जाता है। नास्तिकों के लिए भी उसके प्रेम का स्रोत बह निकलता है।

मेरी दृष्टि में वह प्रभु-भक्त नहीं जो दुनियां से दूर भाग कर जंगलों, पर्वतों वा गुफाओं में जा बैठता है। प्रभु-भक्त वह है जो अपनी चिन्ता छोड़ प्रभु मन्दिरों के सुधार की चिन्ता करता है। जिस प्रभु-मन्दिर में ज्ञान का दीपक नहीं वहां पर ज्ञान का दीपक जलाता है। प्रभु भक्त तो अपने तथा दूसरों के मोक्ष के लिए होती है। पर जो सकाम भक्त होते हैं वे तो अपने लिए सुखों की खरीदारी करते हैं। निष्काम भक्त तो अपने लिए न तो दुनियां का राज्य चाहता है और नहीं मोक्ष। वह कहता है कि—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं ना पुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनां दुःख नाशनम्॥

इलाहाबाद में एक वयोवृद्ध महात्मा ने ऋषि दयानन्द से कहा कि महात्मन् यदि आप निवृत्ति मार्ग में बने रहते और परोपकार के बखेड़े में न पड़ते तो निश्चय ही इसी जन्म में मुक्त हो गए होते। ऋषि ने कहा कि मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं। लाखों! करोड़ों मनुष्यों की मुक्ति की चिन्ता

पृष्ठ १६ का शेष —

जाती है। सच्चा नेता इन आलोचनाओं से कभी पस्त नहीं होता वह इनको ग्रहण नहीं करता प्रत्युत अपने हिमालय सदृश आत्मविश्वास की शीतल छाया में निरन्तर अग्रसर होता है।

आलोचना दो प्रकार की होती है (१) विध्वंसात्मक (२) निर्माणकारी। विध्वंसात्मक आलोचना व्यक्तिगत या पार्टी विशेष के प्रचार, पर छिद्रान्वेषण, नुक्ताचीनी और दूसरे को नीचे लाने के लिए होती है। ऐसी आलोचना सर्वथा पक्षपातपूर्ण है, त्याज्य और न ध्यान देने की चीज़ है। इस पर कभी ध्यान न दीजिए। ऐसी आलोचना का गुप्त अभिप्राय यह है कि आप ऊंचे उठ रहे हैं और दूसरों की ईर्ष्या का कारण हैं। दूसरे प्रकार की आलोचना खराबियाँ तो बताती है किन्तु उसका अभिप्राय व्यक्तित्व का निर्माण है। इसमें प्रशंसा और उत्साह-वर्द्धक तत्व मिश्रित रहते हैं। चतुर नेता ऐसी आलोचना से लाभ उठा कर अग्रसर होते हैं।

जनता को विश्वासपात्र बनाना इस कला की आत्मा है। उत्तम चरित्र, सेवामय भावना, उत्कृष्ट शिक्षा, प्रतिभा, दूरदर्शिता और जनता के मनोविज्ञान से परिचय प्राप्त कर हम सब सफल नेतृत्व कर सकते हैं।

मेरे चित्त को व्याकुल कर रही है। भले ही मुझे कई जन्म क्यों न धारण करने पड़ें दुःखों के त्रास से दीन दशा से परम पिता के पुत्रों को मुक्ति दिला कर मैं स्वयं मुक्त हो जाऊंगा। इस प्रकार सच्चा भक्त दिन रात दूसरों के उपकार में लगा रहता है। किसी ने क्या ही अच्छा कहा है कि—

अपनी फिक्र न कुछ करें प्रभु प्रेम के दास।
सूई नङ्गी खुद रहे और सबका सिये लिवास॥

एक बार ऋषि ने लक्ष्मण शास्त्री से शास्त्रार्थ करते हुए कहा शास्त्री जी? वेद के प्रमाण से मूर्ति-पूजा साबित करें। उसने कहा कि महाराज वेद का प्रमाण कहां से दूं उन्हें तो शंखासुर राक्षस ले गया। ऋषि ने कहा भोले शास्त्री उस प्रमाद रूपी शंखासुर को मार कर वेद लाया हूँ, ले। इस में से प्रमाण दो। शास्त्री चुप हो गया। भारत की यह दशा देख आह भर कर ऋषि ने कहा कि हा भारत तू क्या से क्या हो गया। कभी ज्ञान के पिपासु अन्य देशों से आकर अपनी ज्ञान-पिपासा मिटा अपने देश को लौट कर वहां के लोगों की ज्ञान पिपासा मिटाया करते थे। और भारत की प्रशंसा किया करते थे। उन्होंने कहा कि कुछ दिन हुए प्राचीन ग्रीक लोगों द्वारा लिखा गया भारत का इतिहास सुनने को मिला। ग्रीक लोग ईसा मसीह से चार सौ वर्ष पहिले भारत में आए। भारत को देख कर उन्होंने लिखा कि भारतवर्ष के लोगों का जीवन आदर्श जीवन है। कोई भारतवासी झूठ नहीं बोलता। स्त्रियां मनुष्यों के साथ बिना पर्दा किए मिलती जुलती हैं। सारे देश में अद्भुत विश्वविद्यालय हैं। दर्शन शास्त्रों के बड़े बड़े विद्वान् हैं। स्त्रियें सभी पढ़ी लिखी हैं। वेदों के अद्भुत मन्त्र स्त्रियों के पवित्र हृदयों से निकलते हुए सुनकर हमने समझा कि सचाई पहिले स्त्रियों के अन्दर आती है। ग्रीक लोगों के इतिहास का कुछ नमूना दिखा कर ऋषि ने कहा शास्त्री जी कुछ सोचो और समझो आप दुनियां को किस ओर ले जा रहे हैं। कुमार्ग पर जाने वाले की अपेक्षा कुमार्ग का रास्ता बताने वाला विशेष दोषी है। मैंने इस लेख में एक सच्चे प्रभु भक्त का जीवन आपके सामने रखा है। क्या ऐसे प्रभु भक्तों का पहिचानना कुछ कठिन है। वे तो सम्पत्ति में ही नहीं विपत्ति में भी परखने पर खरे ही उतरते हैं। क्यों कि—

सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतां एक रूपता।

वैदिक अध्यात्म विद्या (वलासुर वध) लेखक— श्री भगवद्दत्त वेदालंकार। प्रकाशक—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, जिला सहारनपुर, उत्तरप्रदेश। मूल्य १) इस पुस्तक में श्री पं० भगवद्दत्त वेदालङ्कार ने जो, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में अनुसंधान विद्वान् हैं मुख्यतया ऋग्वेद दशम मण्डल के ६७, ६८ सूक्त के मन्त्रों के आधार पर वेदों में वर्णित अध्यात्म विद्या का वर्णन किया है। यह प्रकरण वलासुर वध का है जिस का वर्णन वेदों के अतिरिक्त ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मणों में भी आया है। सुयोग्य लेखक ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि वलासुर का तात्पर्य दुर्वासनाओं से है, उन पर कैसे विजय प्राप्त की जा सकती है, इस का वेदों के आधार पर प्रतिपादन किया गया है और ब्राह्मण ग्रन्थों के कुछ वचन भी इस की पुष्टि में दिये गये हैं।

हिन्दी के राष्ट्रीय काव्य का भविष्य

श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री

भारतेन्दु काल और उसके बाद के साहित्य को मुख्यतः काव्य साहित्य को हम दो स्पष्ट वर्गों में बांट सकते हैं- समष्टिपरक अर्थात् जिसकी रचना राष्ट्र अथवा एक विशिष्ट समाज की उन्नति का लक्ष्य मान कर की गई और व्यक्ति परक अर्थात् जिसकी रचना व्यक्तिगत सुख-दुःखों से प्रेरित हो कर की गई। निश्चय ही भारतेन्दु-काल अपेक्षाकृत शान्ति का था। नवाबों, सामन्तों और लुटेरों, ठगों की विभीषिका से अंगरेजों ने जन साधारण को मुक्त किया था। नये नये आविष्कारों का प्रयोग भी उन्होंने इस देश में प्रारम्भ किया। शासन के व्यवस्थित हो जाने से जनता ने एक बार सुख की सांस अवश्य ली थी। पर फिर भी गरीबी, अशिक्षा और पारस्परिक विरोध ये सब बातें समझदार वर्ग को पीड़ित करती थीं। भारतेन्दु के काव्य में इन सब बातों का स्पष्ट वर्णन मिलता है। अंग्रेजों के प्रति विशेषतः महारानी विक्टोरिया के प्रति सम्मान और आदर इस समय के कवियों ने प्रकट किया है। कभी-कभी अंग्रेजों द्वारा किसी देशी राज्य में दखल देने का विरोध यद्यपि जब तब किया गया पर साधारणतया अंग्रेजी राज्य के विरोध में कुछ नहीं कहा गया। यदि कुछ कहा भी गया तो प्रशंसात्मक उद्‌गारों के रूप में। भारतेन्दु की दृष्टि अपेक्षाकृत पैनी थी। अंग्रेजी राज्य की अच्छाइयां देखते हुये भी वे यह कहना न भूले कि इस राज्य की एक बड़ी बुराई यह है कि देश का धन चुपके चुपके विदेशों को चला जा रहा है। इस बात को पचास-साठ वर्ष बाद तक और कोई कवि इतने तीव्र स्वर से न कह सका। शेष समष्टिपरक काव्य जो लिखा गया उसमें हिन्दू समाज में फैली कुरीतियों का ही चित्रण होता था। हिन्दू समाज को राष्ट्र मान लेने की यह प्रवृत्ति वर्षों तक चलती रही और हमारे अच्छे अच्छे राष्ट्रीय कवि भी इस धारणा से मुक्त नहीं हो पाये।

भारतेन्दु युग का प्रारम्भ ही उत्तर रीति-कालीन, स्थूल शृङ्गार काव्य परम्परा के विरोध में हुआ था। इसलिये इस युग में शृङ्गार की अभिव्यंजना प्रकृति वर्णन के ही रूप में अधिकतर मिल सकती है, प्रणय-निवेदन के रूप में नहीं। केवल भारतेन्दु इसके अपवाद हैं। वास्तव में भारतेन्दु साहित्यक्षेत्र में क्रान्तिकारी न होकर सुधारक थे। उन्होंने पुरानी बोतल में नई हाला भरने का काम किया। उनके नाटकों में भी यह बात स्पष्ट है। काव्य में उन्होंने भाषा और रस तो परम्परागत ही ग्रहण किये, आलम्बन और उद्दीपन बदल डाले। राधा कृष्ण का प्रणयवर्णन, और भक्त के रूप में आत्मनिवेदन उनके काव्य का मुख्य विषय रहा। आगे जैसे-जैसे समय बीतता गया काव्य का यह पक्ष दुर्बलतर होता गया, यहां तक कि पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी तक आकर हिन्दी काव्य से सूक्ष्म मार्मिक आत्माभिव्यञ्जना का अभाव सा हो गया। कवियों का लक्ष्य समाज बन गया। इस युग में एक बात और देखी जा सकती है और वह यह कि प्रकृति वर्णन इस युग में पर्याप्त लिखा गया यद्यपि उसमें कवि प्रायः तटस्थ द्रष्टा ही रहा। प्राकृतिक सौन्दर्य की मार्मिक अनुभूति बहुत कम देखने में आई। प्रकृति के साथ तादात्म्य तो शताब्दियों पूर्व ही लुप्त हो चुका था। यद्यपि इस ढग पर भी कुछ अच्छी चीजें लिखी गयीं पर उनकी संख्या अत्यन्त सीमित है।

द्वितीय काल तक आते आते ऐसा लगने लगता है जैसे काव्य प्लेटफार्म के भाषण का छन्दोयुक्त अनुवाद हो। काव्य की यह रसविरहित स्थिति अधिक समय तक टिक नहीं सकती थी। दूसरे भारतेन्दु युग के लेखकों की मौलिकता और जिन्दादिली भी इस युग के लेखकों में न रह गई थी। राजनीतिक दृष्टि से इस युग के लेखकों को काफी आगे बढ़ जाना चाहिए था पर वैसा न हो सका। इसका एक कारण यह भी है कि इस समय के प्रमुख लेखकों में पं० पदमसिंह शर्मा को छोड़ कर शेष प्रायः सभी किसी न किसी रूप में सरकारी दफ्तरों से सम्बन्ध रख चुके थे। उनमें भारतेन्दु, प्रेमघन और प्रताप नारायण मिश्र के समान दोटूक बात कहने की क्षमता नहीं थी। और शर्मा जी आर्यसमाजी होते हुए भी दरबारी ढंग के विद्वान् थे। इस लिए राजनीतिक दृष्टि से जितने पैने ढंग से अपनी बात श्री बालमुकुन्द गुप्ता अपनी 'शिवशम्भू के चिट्ठे' में कह गए थे वैसे अनेक वर्षों तक अन्य कोई कवि न कह सका। साफ गोई के ख्याल से आज भी हम किस लेखक को गुप्ता जी के मुकाबिले रखें?

इतना होते हुए भी आचार्य द्विवेदी की दृष्टि पूर्णराष्ट्रीय थी। हो सकता है राजनीतिक दृष्टि से वे १९०६ और पास पड़ोस के समय लिखे गए साहित्य के आगे बढ़ कर कोई परम्परा कायम न कर सके हों पर राष्ट्रोत्थान का अनुवाद और ब्रिटिश शासन के सम्पूर्ण विरोध से भिन्न बातों से जहां तक सम्बन्ध है द्विवेदी जी के दृष्टि से एक क्षण भी ओझल न रहा और वे समय-समय पर सरकार की भूलों की कटु से कटु आलोचना करने से नहीं चूके।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय काव्य का श्री गणेश श्री बाबू मैथिली शरण जी गुप्त की भारत भारती से माना जाता है। इसके बाद भी उन्होंने अनेक सामयिक राष्ट्रीय काव्य लिखे पर भारत भारती के समान किसी का प्रचार न हो सका। इस युग के अन्य राष्ट्रीय कवियों में श्री पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन और श्री पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इनमें श्री नवीन जी की कविता, भाषा, भाव सभी दृष्टि से प्राणवान् है। श्री चतुर्वेदी जी के काव्य में बलिदान और समर्पण की भावना प्रधान है। राष्ट्र के लिये मर मिटने की अधिक साध है। यौवन है, स्फूर्ति है और है अदम्य उत्साह। गुप्त जी विशुद्ध राष्ट्रीयता की दृष्टि से भारत भारती के बाद सामने नहीं आये। 'अनघ' को छोड़ कर शेष सभी काव्यों में वे हिन्दूगृहस्थ परिवार के श्रेष्ठ आदर्शवादी चित्रकार के रूप में ही प्रकट हुये हैं। यद्यपि उनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार रहा। चतुर्वेदी की ही परम्परा में, किन्तु अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति वाले कवियों में श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, दिनकर और सोहनलाल द्विवेदी आए। इनमें प्रथम दो वस्तुतः श्रेष्ठ शिल्पी हैं। द्विवेदी जी नारों के आधार पर चले। भगवतीचरण वर्मा का उल्लेख भी उनकी कुछ कविताओं के कारण राष्ट्रीय कवियों में कर दिया जाता है। उनकी कुछ कविताएं तीव्र अनुभूति लिए हुए भी हैं, पर वे वस्तुतः इस धारा के कवि नहीं हैं।

इधर प्रगतिशीलता के नाम पर जो कविताएं लिखी गई हैं वे शायद अपने नाम के साथ राष्ट्रीय विशेषण पसन्द न करें। राजनीतिक क्षेत्र के समान साहित्य में भी उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय विशेषण अधिक पसन्द है। इस काव्य में तात्कालीन आर्थिक, और राजनीतिक समस्याओं के विश्लेषण पर अधिक और इस सृष्टि पर ध्यान कम रहा है, यद्यपि बीच बीच में नवीन युवक कवियों द्वारा बहुत सुन्दर एवं स्थायी साहित्य की चीजों का भी निर्माण हुआ है।

इधर स्वराज्य प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय कहलाने वाले कवियों के सामने एक प्रश्न चिन्ह लग गया

है कि वे क्या लिखें। स्वतन्त्रता मिलने के बाद जो स्थिति काँग्रेस की हो गई है वही इन कवियों की है जिन्हें अपनी रचनाओं के लिए काँग्रेस के नेतृत्व आन्दोलनों से स्फूर्ति मिलती थी। और चूँकि अधिकांश राष्ट्रीय कवि अपने काव्य के लिए उसी ओर ताकते थे, उनकी लेखनी कुँठित-सी हो गई। दूसरी ओर प्रगतिशील कवि तीखी चीजें लिखते जा रहे हैं। उनकी कल्पना का समाज बनने में अभी देर है पर वे घोर आशावादी हैं। उनका वास्तविक संघर्ष तो अब प्रारम्भ हुआ है। इस लिए उनके काव्य में तीखापन स्वाभाविक है।

राष्ट्रीय कवियों में कुछ कवियों का स्वर समाजवाद से बहुत मिलता है। इनमें एकाध को छोड़ कर शेष वाद के लिये अधिक जागरूक नहीं हैं; काव्य के प्रति ईमानदार अधिक हैं। ऐसे कवि आज भी सफलता के साथ लिखते जा रहे हैं। पं० माखनलाल चतुर्वेदी, मिलिन्द, दिनकर इनमें हैं।

राष्ट्रीय कविता को ही नहीं, कुल मिला कर देखें तो भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद काव्य गति बड़ी मन्द पड़ गई है। किसी नवीन प्रतिभा के दर्शन इधर नहीं हो रहे हैं।

राष्ट्रीय काव्य की क्षीणता का कारण क्या है? कुछ बातें तो स्पष्ट हैं। नारों का, उत्तेजना का, प्रलय और ज्वाला का युग तो बीत गया। अब निर्माण काल आया है। और निर्माण के लिये भावना की अपेक्षा विवेक की आवश्यकता अधिक होती है। काव्य भावना प्रधान होता है इसलिये वह आज की राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का सामयिक माध्यम नहीं बन सकता। कोई बलिष्ट चिन्तक ही, जो भावनाओं और विवेक का रसमय समन्वय कर सके आज श्रेष्ठ काव्य की रचना कर सकता है। दूसरे हमने प्रारम्भ से ही राष्ट्रीयता का नारा बड़ा संकुचित कर रखा है, हम राजनीतिक आर्थिक समस्याओं का स्पर्श करने वाले काव्य को ही राष्ट्रीय कहने के अभ्यस्त हो गये हैं। इसलिये ऐसी अनेक कवितायें जो अन्य और किसी देश में राष्ट्रीय कही जातीं, हमारे यहां बहिष्कृत कर दी गई हैं। राष्ट्र को आगे बढ़ाने वाली सारी रचनाएं चाहे वे किसानों और मजदूरों पर न भी लिखी गई हों राष्ट्रीय कहलाने की अधिकारिणी हैं। सच तो यह है कि राष्ट्रीय, अराष्ट्रीय ये भेद कर हमने राजनीति की संकुचित सांप्रदायिकता को साहित्य में भी ठूंसने का प्रयत्न किया है। वास्तव में जीवन का स्वस्थ्य विकास करने वाले साहित्य को अधिकाधिक प्रोत्साहन करने की आवश्यकता है। सस्ते नारों के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन कर हम अपनी संस्कृति को नीचे गिराते हैं।

इस दृष्टि से एक कवि ने बड़ी दूरदर्शिता का परिचय दिया और वह है सुमित्रानन्दनपन्त। साहित्य में अपने पाँव जमाने के लिए प्रगतिशील कवियों ने (और प्रगतिवाद कम्यूनिज्म का साहित्यिकरूप है) पहले उन्हें प्रगतिशील कहा है। अब वे ही उन्हें प्रतिक्रियावादी कहने लगे। किन्तु पन्त जहां तब थे वहीं अब हैं। गांधीवाद के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक रूप और साम्यवाद की आर्थिक व्यवस्था के वे समर्थक रहे। भाव को वस्तु का रूप देने की बात उन्होंने पहले पहल कहा। उन्होंने राष्ट्रीयता के अमूर्त रूप को भी मूर्तत्व प्रदान किया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के काफी पहले पन्त ने समझा कि बलिदान और उत्सर्ग का लक्ष्य राष्ट्र का अभ्युत्थान हो सकता है किन्तु अभ्युत्थान की कल्पना व्यक्ति भेद के अनुसार भिन्न हो सकती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवकसंघ, कम्युनिस्ट पार्टी, समाजवादी, कांग्रेस सभी पार्टियां अभ्युत्थान की बात कहती हैं। इस लिए हमें राष्ट्रीयता का रूप स्पष्ट करना चाहिए। राष्ट्रीय काव्य से सब से पहले पन्त ने इस कुहासे को दूर किया और कहा —

पत्थरों में परिणत पौधे

डाक्टर लोकेशचन्द्र एम्. ए. डी., लिट्०

पुरा-औद्भिदी (paleobotany) में लाखों और करोड़ों वर्ष पुराने पौधों के विभिन्न वर्गों, प्रजातियों; जातिओं आदि के पत्थर के रूप में पाए जाने वाले निखातकों (Fossils) का अध्ययन किया जाता है। ये निखातक पौधों के प्राचीनतम इतिहास के शिलालेख कहे जा सकते हैं। आज से ५० करोड़ वर्ष पहिले के अर्थात् अनुप्रवालादियुग (Ordovician) के पौधों के विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो चुका है। अवसादमय (Sedimentary) पत्थरो में पाए जाने वाले और उनके उत्तरवर्ती निखातकों से प्रत्येक जाति, प्रजाति आदि के उद्विकास (evolution) में तीन अवस्थाएं दिखाई देती हैं-(१) आविर्भाव और विकास, (२) अधिकतम प्रचार और (३) अन्त। जितने नवीन भौमिकीय स्तरों में हम आयेंगे उतने ही आज के समान पौधे प्राप्त होंगे। जहां पर कि उद्विकास बहुत ही वेग से हुआ है वहां पर ही कुछ आज के सदृश कुछ पौधे अनुप्रवालादि युग में अर्थात् आज से ५० करोड़ वर्ष पूर्व भी पाए जाते हैं। आज कल प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने वाले सपुष्पोद्भिद् (angiosperms) भौमिकीय काल में देर से दिखाई देने लगते हैं। सामान्य रूप से पौधे की रचना सरलता उसके प्राचीनता का मान है। जितना सरल पौधा होगा उतने ही प्राचीन काल तक वह पाया जायगा। इससे यह सिद्ध होता है कि आज के जटिल पौधे सरल पौधे से विकसित हुए हैं। यद्यपि मुदर-हरिताएं (Lycopods), कंगुताल (cycads) व्यञ्जनपर्ण (Gingkoales) आदि सरल पौधे आज कल उपलब्ध हैं, तथापि संभावना इसकी ही है कि दूरतम भविष्य के अन्वेषकों को ये प्राप्त न होंगे। आज भी वनस्पति-जगत् पहिले की भांति विकसित हो रहा है, और उतनी ही गति से जितना कि आज से लाखो शताब्दियां पूर्व। यहां पर गति से भौमिकीय गति अभिप्रेत है, जिसका प्रमाण जनसाधारण की बुद्धि से परे लाखों और करोड़ों वर्ष है।

प्रवालादि-युग (Silurian) के अन्त में और मत्स्य-युग (Devonian) के प्रारम्भ में पहिली बार भूमि पर उगने वाले पौधो का आविर्भाव

[पृष्ठ २१ का शेष।]

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता,

निश्चय हमको गांधीवाद।

सामूहिक जीवन— विकास की,

साम्य योजना है अविवाद ॥

और एक स्थान पर तो रूप के अन्धानुयायियों को स्पष्ट फटकारते हुये उन्होंने कहा था—

'मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम संवार कर चाम ?'

आज हिन्दी काव्य धारा किसी नये मोड़ की प्रतीक्षा में है। राष्ट्रीय काव्य धारा तो निश्चय ही समाजवाद के आदर्शों के साथ आ रही है। यद्यपि वह बाद में संबद्ध नहीं है और यह उसकी स्वस्थता एवं प्राणवता का लक्षण है। दूसरी धारा जो रहस्यवाद की प्रतिक्रिया के रूप में आ रही है कहीं अध्यात्म पर अविश्वास होने पर स्थूल शृङ्गार का रूप न ले ले, इस ओर से जागरूक रहने की आवश्यकता है। यह भी हो सकता है कि राष्ट्र के उपेक्षित अंग, जन साधारण के जीवन की ओर वह मुड़ जाय।

जो हो, काव्य का यह संक्रमण काल है। परिवर्तन के इन क्षणों में हमें भावना और विवेक में सन्तुलन बनाये रखने की बड़ी आवश्यकता है।

होता है। इससे पूर्वतन युगों में पाये जाने वाले सभी शैवक (Alage) हैं। आपक पानी में ही पाए जाते हैं जिस कारण इनको यह नाम दिया जाता है। (आप् "पानी")। ये आंख से न दिखाई देने वाली एक कोशा (cell) से लेकर ६०० फुट तक महान् आकार के होते हैं। इनमें पत्तों और तने के सदृश अंग होते हैं, परन्तु सच्चे पत्तों और तनों का अभाव है। वैज्ञानिकों का विचार है कि भूमि के पौधे समुद्र-घास (Seaweed) के पूर्वज से विकसित हुए हैं। ये समुद्र-घास के पूर्ववर्ती पौधे भूमि पर शनैः शनैः आ गए और इनमें पर्यावरण के अनुकूल परिवर्तन हुए। इस विचार की पुष्टि निखातकों के अध्ययन से भी होती है। उपर-मत्स्ययुग में ऐसे भूमि-पादप विद्यमान थे जिनकी रचना आज के पौधों से जटिलता में विशेष कम न थी। विशाल ऊंचे-ऊंचे वृक्षों के जंगल थे। उस समय भी पर्वतों और जंगलों से ढकी हुई पृथिवी आज से अधिक भिन्न न थी। निखातक पौधों से ही तत्कालीन ऋतु-परिवर्तन तथा जल और स्थल के अनुपात का ज्ञान मिलता है। आश्चर्यजनक बात है कि शीत कटिबंध के देशों के चट्टानों में अत्यधिक पौधे पाए जाते हैं। सम्भव है कि ये आज के उष्ण कटिबंधीय वनस्पति जगत् की ही भांति रहे हों। स्पिट्सबर्गन (Spitsbergen) में मत्स्य-युग, अंगार-युग, और तृतीयक-युग के पत्थरों में कोयला प्रचुर मात्रा में पाए जाने के कारण यह स्पष्ट है कि इस देश में बहुत ही हर्यावल रही होगी। परन्तु आज यहां पर बहुत ही अधिक उर्वरा घाटियों में ही कहीं-कहीं छोटी मोटी झाड़ियां दृष्टिगोचर होती हैं।

निखातक पौधे दो रूपों में पाए जाते हैं—पर्पटाच्छादित (incrustation) और अश्मित (petrifaction)। पर्पटाच्छादित ही सामान्य रूप से मिलते हैं। पौधे के भागविशेष के किसी तालाब या नदी की मिट्टी अथवा साद (Silt) में दब जाने से इनका निर्माण हुआ है। जैसे जैसे अवसाद (Sediment) शिलिका (Shale) या बालूकाश्म (Sandstone) में परिवर्तन होता गया वैसे ही ऊपरी अवसाद के भार से पौधे दबते गए। आज वे पत्थर तोड़ने पर काले कोयले सदृश पतले से स्तर के रूप में पाए जाते हैं जिनमें हमें पौधे का छाया-चित्र (Silhouette) सा उपलब्ध होता है। बहुत से निखातकों में यह कोयले सदृश पदार्थ रसायनिक निबंध (Composition) में कोयले के समान होता है और कुछ ना कुछ सीमा तक पौधे की रूपआकृति रहती है। इस प्रकार का निखातक पत्थर से अलग किया जा सकता है। पारभासी (tronslucent) होने के कारण इसकी आंतरिक संरचना का कुछ न कुछ ज्ञान हो सकता है। कभी-कभी पर्पटाच्छादित में पौधे का उत्स्तर (cuticle) अथवा बीजाणु (spore) बचे रहते हैं जो कि रसायनिक रीति से अलग किये जा सकते हैं। परन्तु अश्मित (petrifaction ही अनुसंधान के लिए विशेष महत्व के होते हैं, क्योंकि इनसे आंतरिक संरचना का अध्ययन किया जा सकता है। दुर्भाग्यवश ये दुर्लभ हैं। अश्मितों में पौधे का समस्त भाग ठोस पत्थर बन जाता है। बालु अथवा मिट्टी का दबाव पड़ने के पहिले ही इनमें खनिज-पदार्थ पानी का स्थान लेने लगते हैं। जिस अवसाद में पौधा दबा रहता है उसके पानी से खनिज-पदार्थ पौधे में पहुँच जाते हैं। सैकजा (silica) में अश्मिभूत पौधे सब से अधिक सुरक्षित रहते हैं। मध्ययुग से प्राप्त सैकजायित पौधों की प्रत्येक कोशा भित्ति (cell-wall) इतनी स्पष्ट है कि उसकी आंतरिक रचना पूर्णतया ज्ञात है। फ्रांस से प्राप्त गिरि-युग (Permian) के सैकजा की तहों से कई बहुत ही सुरक्षित पौधे मिले हैं। सैकजायिय

लकड़ी कई भौमिकीय युगों में मिलती है और मध्य-कल्प (Mesozoic) के सैकजायित पौधों की संख्या पर्याप्त है। (Lancashire) लंकाशायर और योर्कशायर (Yorkshire) के कुछ कोयलों के स्तरों में अंगार-पिण्ड (coal-ball, bullion) इतनी मात्रा में पाए जाते हैं कि कभी २ उन स्थानों से कोयला भी निकालना लाभकारी प्रतीत नहीं होता। इन अंगार पिण्डों में पौधों के भाग सुरक्षित होते हैं। ये वे पौधे हैं जो कि स्तर के संपीड़ित (compresed) होने के पहिले ही पत्थर बन गए। इन अंगार-पिण्डों में पाए गए निखातकों के अध्ययन द्वारा बिने (Binney) और स्काट (Scott) ने अंगार-युग के निखातक पौधों की रचना पर प्रकाश डाला है। इन अंगार-पिण्डों को सूक्ष्म खंडों में काटकर इतना घिसते हैं कि वे सूक्ष्मतर होकर पराभासी translucent) हो जांय और पिण्ड में विद्यमान पौधे की कोशाओं (cells) की रचना पारेषित प्रकाश (transmitted light) से दिखाई देने लग जाए।

इनके वर्गीकरण की एक विशेषता का यहां उल्लेख करना आवश्यक ही है। ऐसे निखातक पौधे जिनके विभिन्न भागों का परस्पर संबन्ध सर्वथा स्पष्ट हो, बहुत दुर्लभ है। इसके बहुत कुछ मिलते-जुलते पौधों के अंगों की आकार प्रजातियां (Form-genera) बना ली जाती है उदाहरण के लिए तनुवृक्ष-प्रजाति (Lepidodendron) के स्कन्धों (तनों) को तनुवृक्ष-प्रजाति में रखते हैं, पत्तों (पर्ण) को तनुपर्ण-प्रजापति में शंकुओं (cones) को तनुशंकुप्रजाति में।

वरटों के उपनिवेश और उनके अभ्यागत

श्री सुषेण डी. लिट्.

वरट को कहीं भिरड़, कहीं बर्र, कहीं बरइया, कहीं भूंड, कहीं ततैया, और कहीं डेमू कहते हैं। इनके मुख्य दो प्रकार हैं पीला और लाल। लाल को कहीं लाल ततैया और कहीं हड्डु कहते हैं। आरम्भ में वरट भी अकेला ही रहता था और शनैः-शनैः सामाजिक अवस्था तक पहुँचा है। इनमें और चीटों में एक सबसे बड़ी समानता यह है कि दोनों में ही वयस्क और जातक परस्पर अपने भोजन का विनिमय करते हैं। यह बात अन्य सामाजिक जीव-जन्तुओं की अपेक्षा पालतू भिरड़ों में बड़ी सरलता से देखी जा सकती है। छोटे छोटे कीड़ों के टुकड़े मुंह में चबा कर अपने जातकों को देने के पश्चात् श्रमिक भिरड़ जातकों के मुख से गिरी हुई एक प्रकार की तरल शर्करी (सैकरिन) की बूंदे बड़े चाव से चूसती हैं। कभी कभी जब जातकों को भोजन नहीं भी खिलाया जाता तब भी श्रमिक भिरड़ उनसे उदासर्ग की मांग करती हैं और यदि जातक उनकी मांग पूरी नहीं करते तो श्रमिक भिरड़ जातकों के सिर धीरे से काट लेती है और लाल द्रव निकालने के लिए बाध्य कर देती हैं। नर भिरड़ और रानी भिरड़ दोनों को ही यह उदासर्ग अति प्रिय है। वास्तव में जातकों को जितना भोजन दिया जाता है उससे कहीं अधिक उनसे इस पोषक द्रव का विदोहन (एक्सप्लायटेशन) कर लिया जाता है। यही कारण है कि उनमें श्रमिक भिरड़ों की संख्या अधिक होती है। क्योंकि पोषक द्रव की कमी के कारण जिन जातकों का अच्छी तरह पोषण नहीं हो पाता वे ही श्रमिक भिरड़ बनते हैं।

भिरड़ें अनेक प्रकार के कीट-पतङ्गों को खा जाती हैं किन्तु उन्हें मिठाई, फूलों से संचित अमृत और मधु भी बहुत प्रिय हैं। कसाइयों की दूकानों में थोड़ा बहुत मांस भी यह खा लेती हैं। किन्तु कसाइयों के लिए बड़ी हितकारी भी हैं। ये वहां की नील कूपी मक्खियों के लिए काल हैं। उनका सिर और पङ्ख काट कर ये रुण्ड को अपने छत्तों में जातकों के के लिए ले जाती हैं।

इनकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी होती है। ये अपने भोजन और खुरची हुई लकड़ी की परतों के लिए अपने छत्तों से बहुत दूर तक उड़ जाती हैं और फिर अपने छत्तों को लौट आती हैं। लकड़ी के खम्भों, वृक्षों और मकानों में लगे लकड़ी के किवाड़ और चौखटों पर खुरच-खुरच कर बहुत सी लकड़ी ले आती हैं और उसी से अपने छत्ते का निर्माण करती हैं। इस खुरची हुई लकड़ी की लुगदी से ही वह कागज़ भिरड़ें तैयार करती हैं जिनसे इनके छत्ते बने होते हैं। लाल ततैय्या अपना छत्ता मिट्टी से बनाता है।

एक वैज्ञानिक ने एक भिरड़ पर बहुत दिन तक दृष्टि रख उसका अध्ययन किया था। वह भिरड़ उस वैज्ञानिक के पटल पर चीटों के लिए रखे मधु पर १० दिन तक निरन्तर आती रही। वैज्ञानिक अपने अध्ययन कक्ष में बैठा पटल पर कुछ लिख रहा था। उसने उस भिरड़ को मधु मात्र पर आकर चक्कर लगाते और उतरते देखा। पात्र की तली में बहुत थोड़ा मधु शेष था। आरम्भ में कुछ समय तक वह भिरड़ डरती रही और स्वल्प छाया अथवा पटल के थोड़ा हिलने से ही उड़ जाती थी। किन्तु फिर इतनी परच गई कि बार बार हटाने पर भी मधु पर से नहीं भागती थी। २२ अगस्त से ६ सितम्बर तक वह निरन्तर आती रही, ६ सितम्बर

के पश्चात् फिर दिखाई नहीं दी। उस कमरे की खिड़की ठीक साढ़े सात बजे खुलती थी और वह भिरड़ खिड़की के बाहर उसके खुलने की प्रतीक्षा में बैठी मिलती थी। सायं काल ७-३६ पर खिड़की बन्द होने के पहले ही वह उड़ जाती थी। दिन भर में वह ३३-३४ चक्कर लगाती थी। मधु लेकर वह अनेक ऊंचे वृक्षों, उद्यानों, अट्टालिकाओं और सड़कों को लांघती हुई कहीं दूर चली जाती थी। उसके आने जाने में लगभग ७ मिनट लगते थे। वह जाते समय खिड़की से सीधी बाहर निकल जाती थी। किन्तु आते समय बड़ी भिन-भिनाती हुई आती और कुछ देर मधु पात्र पर चक्कर काटने के पश्चात् उसमें उतरती थी। कई बार भयङ्कर वर्षा में भी वह फेरे लगाती रही। इस अवलोकन से इस छोटे से वीर प्राणी की कर्मठता, धैर्य और बुद्धिमानी का पता चलता है।

प्रमुख सामाजिक बरटों के प्रत्येक छत्ते का आरम्भ एक स्वैरा भिरड़ करती है, जो अपनी सर्दियां शीत स्वाप में बिताती है। वसन्त ऋतु में यह अपना छत्ता बनाना आरम्भ करती है और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, लकड़ी खुरच-खुरच कर वह एक पतला कागज़ सा बनाती है जिसे वह अपने छत्ते के छोटे छोटे कोष्ठ बनाने के काम में लाती है। इन्हीं कोष्ठों में अण्डे देती है। ये छत्ते पृथ्वी के अन्दर, वृक्ष की खोखल में अथवा शाखाओं पर लटकते हुए बनाए जाते हैं। जब कोष्ठों से श्रमिक भिरड़ें निकल आती हैं तो वे उस छत्ते को बढ़ाने में सहयता करती हैं और सन्तति के पालन-पोषण में हाथ बटाती हैं। ग्रीष्म ऋतु के कुछ दिन बीतने पर नर भिरड़ और रानी भिरड़ काम करना छोड़ देती हैं। उनका पालन-पोषण अन्य श्रमिक भिरड़ें करती हैं और जब मार्गशीर्ष के आसपास उनका संवेशन (मेटिंग) हो चुकता है तो अन्य सब भिरड़ें नष्ट हो जाती हैं; केवल उपजाऊ भिरड़ें ही बचती हैं और वे शीत ऋतु भर के लिए शीत-स्वाप (हिबरनेशन) में सो जाती हैं।

भोजन की खोज में इधर-उधर घूमते समय भिरड़ें अनेक प्रकार के जीवों और स्थानों के सम्पर्क में आती हैं। किन्तु उनके अपने छत्ते में भी अनेक अभ्यागत आते रहते हैं, ये जीव छत्तों को खोजते हुए वहां पहुँच जाते हैं और वहां के निवासियों के मेहतर, सहभोजी या परजीवी के रूप में उनके साथ रहने लगते हैं। सामाजिक भिरड़ों में दो परजीवी जातियां हैं। उनका श्रमिक वर्ग नष्ट हो चुका है और उनके नर और उपजाऊ स्त्री भिरड़ें ऐसी भिरड़ों के छत्तों में जा रहती हैं जिनका अपना श्रमिक वर्ग होता है। ये उनका और उनकी सन्तान का पालन-पोषण करती हैं और उनकी सन्तान के साथ अपनी सन्तान के समान ही व्यवहार करती हैं।

छोटे छोटे कुछ गुबरैले (बीटल) जो भिरड़ों के छत्ते में रहते और कोष्ठों की भित्तियों के कागज़ और कूड़े करकट पर अपना निर्वाह करते हैं, एक विशेष प्रकार के छत्तों में रखे जाते हैं। इसी लिए भूमि के अन्दर के छत्तों में एक प्रकार की जाति पाई जाती है और पेड़ों पर बने हुए छत्तों में दूसरी।

एक बृहदाकार धाब्रीभृंग (बड़ा गुबरैला, रोव बीटल) हड्डे (हार्नेट) के छत्तों में रहता है। वहीं वह अण्डे देता है और वहीं उसके डिम्भ का पोषण होता है। हड्डों को इस से कोई हानि नहीं पहुँचती। क्योंकि इसका डिम्भ परित्यक्त वस्तुओं, हड्डे के मरे हुए जातकों और छत्ते के दूसरे कूड़े करकट पर अपना निर्वाह करता है। यह रात्रीचारी है और रात्री के समय छिद्रों के द्वारा हड्डे के छत्तों में प्रवेश करता हुआ देखा गया है। चमकीले धात्वीय नील वर्ण

की उष्ण देशीय एक जाति का गुबरैला छोटी मधु-मक्खियों के छत्तों में इसी प्रकार अपना जीवन व्यतीत करता है।

एक परजीवी कीट भिरड़ के जातक के भीतर अपने अण्डे देता है और उसका डिम्भ जातक के शरीर में ही अण्डे से निकलता है और जब तक जातक कोशित (प्यूपा) का रूप धारण नहीं कर लेता तब तक वह उसे नष्ट नहीं करता। इसके पश्चात् वह कोशित के शरीर का पिछला भाग खा जाता है और उसके स्थान पर उसी कोष्ट की तली में जिसमें भिरड़ का एक जातक था एक कृमिकोष अथवा कोआ (कोकून) बना लेता है।

कई मक्खियों के डिम्भ शल्यों (स्पाइन्स) से घिरे रहते हैं। उनके शरीर पर चारों ओर अनेक शल्य होते हैं। ये भिरड़ों के छत्तों में सफाई का काम करते हैं। इस जाति की बड़ी मक्खी, जो लगभग मधुमक्खी के समान होती है, इन छत्तों में निर्भय होकर घुस जाती है और अपने अण्डे दे आती है। इसके डिम्भ छत्ते की तली में एकत्र कूड़े करकट पर अपना निर्वाह करता है।

परन्तु हम भिरड़ों के छत्तों में पलने वाले एक गुबरैले की चर्चा करना चाहते हैं जिसके जीवन का वृत्तान्त बड़ा मनोरञ्जक है। इस गुबरैले की मां पतझड़ के समय वृक्ष की छाल की दरारों में और सड़ी गली लकड़ी के छेदों में ऐसे स्थान पर अपने अण्डे देती है जहां लकड़ी खुरचने के लिए भिरड़ के आने की सम्भावना होती है। अभी तक इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं लगा कि इन अण्डों से डिम्भ पतझड़ में ही निकलते हैं और किसी गुप्त स्थान में शीत-स्वाप लेते हैं। अथवा इन डिम्भों का शीतकाल अण्डों के भीतर ही कटता है और बसन्त में ये अंडों के बाहर आते हैं। एक बार एक गुबरैले को पकड़ कर रखा गया था, जहां उसने अंडे भी दिये थे, किन्तु उनका अंडाजन [हैचिंग] कभी नहीं हुआ अर्थात् उन अंडों से डिम्भ कभी नहीं निकले। डिम्भ छोटे पन में जब पहले पहल अंडे से बाहर आते हैं तो छोटे छोटे चंचल, काले, छः टांगों वाले वरूथि [माइट] होते हैं। जब कोई भिरड़ अपने छत्ते के लिये लकड़ी खुरचने उस स्थान पर आती हैं जहां गुबरैले के ये छोटे-छोटे वरूथि छिपे रहते हैं तो उनमें से कोई न कोई उस भिरड़ के पैरों में लिपट जाता है और इस प्रकार बिना जाने ही भिरड़ उसे अपने छत्ते में ले जाती है। अनेक बार जब कोई भी भिरड़ उस स्थान पर नहीं पहुँचती जहां ये वरूथि छिपे रहते हैं, तो ये वहीं नष्ट हो जाते हैं। किन्तु इस गुबरैले की मां, तैल-भृङ्ग के समान, इतने अधिक अंडे देती है कि इस नाश का प्रति-तोलन (काउन्टर बैलेन्स) हो जाता है। एक प्रकार के दूसरे गुबरैले का डिम्भ फूलों की पङ्खड़ियों पर किसी मधुमक्खी के आने की प्रतीक्षा किया करता है।

भिरड़ों के छत्तों में पहुँचते ही यह छोटा सा डिम्भ छेद करके तुरन्त भिरड़ के जातक के शरीर में घुस जाता है और उसकी देह के द्रवों में डूबा पड़ा रहता है। जब यह डिम्भ उसके भीतर प्रवेश करता है तब भिरड़ का जातक प्रायः आधा ही बढ़ा होता है। वरूथि के इस डिम्भ को यदि देखना हो तो जातक के उदर में अर्थात् उसके पिछले भाग के तीसरे या चौथे टुकड़े के आसपास भीतर की ओर देखना चाहिए। इसका रंग काला होने के कारण यह जातक की पारदर्शी खाल में से स्पष्ट दिखाई दे जाता है। जातक के शरीर में यह तब तक रहता है जब तक वह अपने कोष्ठ का मुंह बन्द नहीं कर लेता। इसके पश्चात् यह जातक के शरीर को छेद कर बाहर निकल आता है और छेद में से निकलते समय अपनी पुरानी खाल उतार देता है जो उस

दो सिर वाले सांप

श्री रामेश बेदी

पूंछ की ओर सिर नहीं

द्विशीर्ष सांपों के एक ही सिरे पर दो सिर होते हैं। पूंछ की ओर दूसरा सिर होने का मिथ्याभिमान तो सांप क्या कोई भी रीढ़दार प्राणी नहीं कर सकता। ये सांप साधारण रूप से नहीं पाये जाते। इन्हें हम अपवाद कह सकते हैं। ऐसे जीव जन्म के बाद बहुत देर तक जिन्दा नहीं रहते। वैज्ञानिक परिभाषा में इन्हें सेफलो-डाइकोटोमस ओफ़ीडिअन्स (cephalo-dichotomous ophidians) कहते हैं।

राक्षसी भूलें

दो सिर वाले सांपों ने बहुत अचम्भा पैदा किया है। वास्तव में ये प्रकृति की प्रयोगशाला में राक्षसी भूलें हैं। ये विकृतियां या विषमताएं ठीक वैसी ही हैं जैसे मनुष्य के पैर या हाथ में कभी-कभी अतिरिक्त अंगुलियां होती हैं। किसी-किसी पक्षी के अतिरिक्त टांग होती है। ड्यूक (Duke) विश्वविद्यालय संयुक्तराज्य अमेरिका के प्रोफेसर बर्ट कनिंघम (Bert Cunningham) ने इस प्रकार के असाधारण सांपों की रिपोर्टों का विशेष अध्ययन किया है। उन्होंने ऐसे साठ से अधिक सांपों का वर्णन किया है जिन में सिरों का दो में विभाग कम या अधिक स्पष्ट कहा जा सकता है।

तीन प्रकार

दो सिर वाले सांपों को तीन निम्नलिखित प्रकारों में रक्खा जा सकता है—

१. केवल सिर या सिर के साथ का निचला शरीर भी कुछ दूरी तक द्विधा विभक्त हो।

२. सिर और सिर के नीचे का भाग तो एक है परन्तु केवल पूंछ या उस से ऊपर कुछ दूरी तक शरीर दो भागों में विभक्त हो। भिन्नताका यह प्रकार (Posterior dichotomy) अत्यन्त दुर्लभ है।

३. दोनों सिरे पृथक्-पृथक् हों और मध्य शरीर कुछ दूरी तक एक हों। इन्हें सर्प-संसार के स्यामी-युगल कहा जता है। इस प्रकार के केवल चार उदाहरण रिकौर्ड में हैं।

अधिक से अधिक कितने सिर ?

कुछ पाठकों को यहां स्वाभाविक जिज्ञासा हो सकती है कि एक साँप के अधिक से अधिक कितने

[पृष्ठ २७ का शेष]

छेद में फंसी रह जाती है और उसे बन्द कर देती है। इस समय यह कीड़े के आकार का बिना पैर का मांसल डिम्भ होता है और भिरड़ के जातक की ग्रीवा के चारों ओर लिपटा पड़ा रहता है। कुछ समय तक तो यह उस जातक का रस ही चूसता है किन्तु शीघ्र ही उसे पूर्ण रूप से खा जाता है और उस अभागे जातक के कोष्ठ में स्वयं कोशित के रूप में परिवर्तित हो जाता है। सृष्टि का विचित्र नियम देखिए। यह कोष्ठ बनाया किसके लिए गया था और अब उसमें पल कौन रहा है।

जब उस कोष्ट की झिल्लीदार टोपी हटाई जाती है तो गुबरैला प्रायः बाहर निकलने के लिए उद्यत मिलता है। कई बार अनेक गुबरैले पास पास के कोष्ठों में ही रहते हुए पाए गए हैं। कोष्ठ से बाहर निकलते ही गुबरैला तुरन्त छत्ता छोड़ देता है और सम्भवतः पिता और माता का काम पूरा कर तुरन्त ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि छत्ते के बाहर यह बहुत ही कम मिलता है। इसका मुख भी अल्पविकसित होता है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि यह अधिक खाता पीता नहीं। गुबरैलों की एक बहुत बड़ी जाति रानी भिरड़ के डिम्भ पर ही अपना निर्वाह करती है। किन्तु अधिकतर गुबरैले श्रमिक भिरड़ों के डिम्भों पर ही रहते हैं।

सिर हो सकते हैं ? पाठकों को ज्ञात होगा कि ग्रीक वीर हरकुलिस ने जो जल-सर्प (Hydra) मारा था उसके नौ सिर थे और भारतीय आख्यायिकाओं के शेषनाग के हज़ार सिर कहे जाते हैं।

राक्षसी भूलें
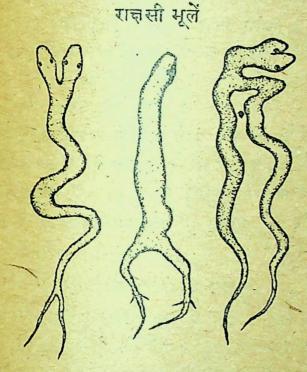
जैसे मनुष्यों में या गाय-बकरियों में कभी-कभी दो सिर के बच्चे हो जाते हैं उसी प्रकार सांपों में भी दो सिर, दो पूँछ या दो शरीर के सांप हो जाते हैं।

तीन सिर वाले भी

प्रकृति का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक को इन विश्वासों के लिए कोई युक्ति-युक्त आधार नहीं मिल सका है। आधुनिक प्राणि-शास्त्र निश्चित रूप से जानता है कि दो से अधिक सिर वाले कोई सर्पदेव नहीं होते। तीन सिर वाले सांपों के कुछ पुरातन रिकौर्ड उपलब्ध होते हैं। क्यूबे (Cube, १५३६) ने अपनी हौर्टस सैनिटैटिस (Hortus Sanitatis) में ऐसे एक उदाहरण को चित्रित किया है और शेन्किअस (१६६०) ने पाइरिनीज़ पर्वतों (Pyrenees Mountains) पर से एक उदाहरण का वृत्तान्त दिया है। साँपों में त्रित्व के अस्तित्व की सम्भावना अस्वीकार नहीं की जा सकती। यदि इसकी वास्तविकता को मान भी लिया जाय तो इसके बहुत ही कम उदाहरण मिल सकते हैं।

दो आत्माएं तो नहीं ?

दो सिर वाले साँपों में दोनों सिर अपनी इच्छा से कार्य करते हैं। प्रत्येक सिर में एक मस्तिष्क होता है और प्रत्येक मस्तिष्क, यद्यपि एक ही सुषुम्ना नाड़ी से संयुक्त हो सकता है, इस तरह कार्य करता है जैसे कि उसका किसी पृथक् शरीर से सम्बन्ध हो। एक दिशा में जाने के लिए दोनों सिर एक दूसरे से पूर्णतया सहमत नहीं हो सकते और दोनों में रस्साकशी हो सकती है जिसका परिणाम एक सिरका दूसरे सिर पर प्रभुत्व होता है।

आपस में लड़ाई

श्रीयुत इ० सी० फ़िशर (१८९६) के पास दो सिर वाला एक स्प्रैडिंग ऐडर (Spreading adder) था जिसकी लम्बाई प्रायः एक फुट थी और उसकी आयु चार मास से अधिक थी। १८९७ में मद्रास टाइम्स ने उस पर एक टिप्पणी दी थी—

'साँप शीशे के बौक्स में रहता है और दूध, कच्चा मांस तथा रक्त दोनों सिरों से एक ही समय में खाता है। श्रीयुत फ़िशर दोनों सिरों को एक ही साथ खिलाना अच्छा समझते हैं क्योंकि वे दोनों एक दूसरे के प्रति ईर्ष्यालु प्रतीत होते हैं और कभी-कभी तो वे आपस में खेला करते हैं। साँप प्रतीत होता है कि फ़िशर महोदय को पहचानता है क्योंकि उनके आने पर वह बौक्स के पार्श्व में आ जाता है और प्रसन्नता में अपनी जीभें निकाल कर उनका स्वागत करता है।'

एक सिर दूसरे सिर को निगल गया

पोर्ट एलिजाबेथ की सर्पशाला (Snake-park) में एक साँप प्रदर्शित किया गया था। इसकी दोनों गरदनें तीन इञ्च लम्बी थीं इसलिये दोनों सिर पर्याप्त स्वतंत्रता से गति कर सकते थे। एक दिन एक

मेंढक को पिंजरे में खाने के लिए छोड़ दिया गया। अगले दिन सुबह साँप के मालिक ने आश्चर्य से देखा कि एक सिर दूसरे को वहां तक निगल गया है जहां से शरीर द्विधा विभक्त होता था। जल्दी से
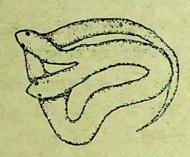
इस सांप के दोनों सिर गरदन तक कोई तीन इञ्च तक अलग-अलग हैं, उसके बाद एक ही शरीर है।

निगले हुए सिर को बाहर निकाला गया। यह अब तक मरा न था। कोमल मर्दन से गरदन का वल सीधा किया गया। इसके बाद दोनों सिर आपस में इतना मैत्री से नहीं रहते थे जितना पहले। जो मस्तिष्क कुछ समय के लिए एक बार भोजन बन चुका था, प्रतीत होता था, वह दूसरे को उसकी करतूत के लिए कभी क्षमा करने को तैयार नहीं था। एक दिन उसका उद्बुद्ध क्रोध चरम सीमा तक पहुँच गया और उसका परिणाम दोनों की मृत्यु हुई। वास्तव में तात्कालिक उत्तेजक कारण क्या था यह नहीं कहा जा सकता परन्तु यह स्पष्ट है कि एक सिर ने दूसरे को मारने के पूरे इरादे से आक्रमण किया था क्योंकि दोनों सिर और शरीर शीत तथा मृत पाये गये थे।

दोनों ने घातक हमले किये थे

यह सांप उस समूह (Opisthoglypha) का था जिसमें विषदन्त मुख के पिछले सिरे पर (back-fanged) होते हैं। शाप्स्टेकर गण=Schaapsteker Genus (सेमोफिस=Psammophis) का था। क्रुद्ध सिर ने दूसरे को बारबार काटा था और उसका अंत करने के लिए काफी विष सूचिविद्ध किया था। दूसरे ने भी उसका उत्तर देने में अपने विषैले दांतों का पूरा उपयोग किया था। यह बात मरे हुए शरीर की परीक्षा (postmortem) से पता लगी था।

अलग अलग समय में मृत्यु

द्विशीर्ष साँप में दो व्यक्तित्वों की स्वतन्त्र सत्ता बहुत स्पष्ट कही जा सकती है। एक ही शरीर में रहते हुए दो सिर अपने साझे लाभ का कभी-कभी स्वप्न तक नहीं देखते और जीवनसंग्राम के लिए एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध करते हैं और यह भी देखा गया है कि वे एक दूसरे से पृथक् अपना अन्त होने तक श्वास लेते रहते हैं। रेडी (१६४८) ने एक उदाहरण दिया है जिसमें दांया सिर सुबह प्रायः तीन बजे मर गया था, और बांया सिर सात घंटे पीछे मरा था।

प्रमाण पत्रों का शुल्क

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रस्तोता सूचित करते हैं कि गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक तथा पुराने विद्यार्थी समय समय पर प्रमाण पत्र मंगवाते हैं। प्रमाण पत्रों के लिए निम्नलिखित शुल्क नियत है। जो महानुभाव प्रमाण पत्र मंगवाएं वे पहिले यह शुल्क भेज दें तभी प्रमाण पत्र भेजे जा सकेंगे—

१. संस्कृत का स्नातक परीक्षा का प्रमाणपत्र २)
२. अधिकारी हिन्दी का प्रमाणपत्र १)
३. „ अंग्रेज़ी „ १)
४. माइग्रेशन सर्टिफिकेट ॥)
५. अंग्रेज़ी का स्नातक परीक्षा का सार्टिफिकेट ॥)
६. आयुर्वेद का विस्तृत प्रमाणपत्र अंग्रेज़ी १)
७. „ „ „ हिन्दी १)

पुस्तक-परिचय

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आनी आवश्यक हैं। एक प्रति आने पर प्राप्ति-स्वीकार ही देना सम्भव होगा। —सम्पादक।

आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञान— लेखक श्री रणजित राय आयुर्वेदालंकार। प्रकाशक वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, कलकत्ता। सजिल्द, मूल्य ५) आयुर्वेद के यशस्वी लेखक के रूप में वैद्य रणजित राय ने बहुत उपयोगी कार्य किया है। उनकी अन्य पुस्तकों की तरह यह भी अपने विषय का विस्तृत ज्ञान देती है। दस अध्यायों में लेखक ने आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान की विशेषता, तीन गुणों की विस्तृत व्याख्या, सांख्यमत से सृष्टि की उत्पत्ति, पञ्च महाभूत, आयुर्वेद सम्मत पुरुष तथा आत्मा का परिचय, कर्मपुरुष के गुण, मन और इन्द्रिय आदि विषयों की विवेचना की है। आयुर्वेद को ठीक-ठीक समझने के लिए आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। आधुनिक पदार्थ विज्ञान में तो केवल जड़ सृष्टि का विवरण किया जाता है परन्तु आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान में जड़ और चेतन दोनों का ही विचार किया जाता है।

मानस रोग विज्ञान (प्रथम खण्ड)—लेखक डाक्टर बालकृष्ण अमर पाठक। प्रकाशक वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, कलकत्ता। मूल्य ४॥)। आयुर्वेदीय मतानुसार मन के स्वरूप, एवं मानसिक क्रियाओं व प्रक्रियाओं का अधिकारपूर्ण विवेचन, तथा आधुनिक मनोविज्ञान (साइकौलोजी) के साथ तुलनात्मक शास्त्रीय मन्तव्य को दिखाने वाली यह पुस्तक है। चिकित्सक को जिस तरह शारीरिक रोगों को ठीक करने के लिए शरीर रचना और क्रियाशास्त्र का ज्ञान आवश्यक होता है, इसी तरह मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिए उसे मन का स्वरूप और कार्य समझना आवश्यक है। दोनों पुस्तकें चिकित्सकों और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हैं।

प्रारम्भिक आंग्ल भारतीय वैज्ञानिक शब्द-कोष—ले० डाक्टर रघुवीर। २ यसंस्करण, मूल्य ४॥), प्रकाशक सरस्वती विहार, नागपुर। यह पुस्तक इस वैज्ञानिक शब्द कोष का २ य संस्करण है। हमें प्रसन्नता है कि विद्वान् लेखक की इस उपादेय कृति का २ य संस्करण इतने अल्प काल में प्रकाशित हो रहा है। इसमें किसी को सन्देह नहीं कि भारतीय विद्यार्थी को विदेशी भाषा के अपरिचित वैज्ञानिक शब्दों को रटने तथा स्मरण करने में बहुत श्रम करना पड़ता है। उसका बहुत सा समय इसी अस्वाभाविक कष में ही नष्ट हो जाता है। यदि अपनी भाषा के परिचित शब्दों में यह ज्ञान उस विद्यार्थी तक पहुँच पाए तो इस में अत्यन्त सरलता होना स्वाभाविक है। उसके भाव के हृदय ग्राही होने तथा मूल अर्थ को ग्रहण करने की योग्यता भी विद्यार्थी में होनी सहज है। जब तक मातृभाषा द्वारा विज्ञान की शिक्षा नहीं होती तब तक विज्ञान की वास्तविक समझ तथा उसके मूल में पहुँचने की प्रवृत्ति देशवासियों में हो सकना असम्भव है। डाक्टर रघुवीर कृत यह छोटा कोष प्रारम्भिक श्रेणियों के लिए पर्याप्त सामग्री उपस्थित कर रहा है। यदि इसी आधार पर उच्च कोटि के कोष निर्माण हों और देश में इस वैज्ञानिक नामावली का प्रचार हो तो देश में वैज्ञानिक जागृति हो सकती है। हम आशा करते हैं कि देश का यह वर्ग जिसकी दृष्टि विदेशी भाषा की आधीनता से सर्वथा लुप्त नहीं हो गई इस श्रम की कदर करेगा और भावी सन्तान के लिए सुगम मार्ग को प्रशस्त करेगा।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु

वर्षा समाप्त हो गई है। सर्वत्र शान्ति, शोभा और शीतलता छाई हुई है। मौसम अतिशय सुहावना और सुखद बना हुआ है। प्रातः काल तो कुछ शीत का भी आभास होने लगा है। कुल भूमि में चारों ओर हरी भरी खेतियाँ लहरा रही हैं। अभी तक मच्छरों का उपद्रव आरम्भ नहीं हुआ है।

स्वाधीनता का पुण्य पर्व

भारत का तृतीय स्वाधीनता दिवस गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में समारोह पूर्वक मनाया गया। १५ अगस्त को प्रातः काल ठीक ८ बजे आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ने राष्ट्रीय ध्वजा का आरोहण किया। तत्पश्चात् महाविद्यालय भवन में आचार्य जी के सभापतित्व में एक विराट् सभा बुलाई गई। जिस में सब कुलवासियों ने भाग लिया। इस सभा में विभिन्न वक्ताओं ने स्वाधीनता के तीन वर्षों की सफलताओं और कमियों का सिंहावलोकन कराया। तथा नवीन आशाओं आकाङ्क्षाओं के लिए उद्बोधन प्राप्त किया। अन्त में सभापति महोदय ने एक छोटा सा शिक्षाप्रद एवं मनोरञ्जक भाषण दिया, जिस में उन्हों ने स्वाधीनता प्राप्ति से लेकर भारत वर्ष की स्थिति का भलिभांति दिग्दर्शन कराया और ब्रह्मचारियों को स्वतन्त्र भारत के सच्चे नागरिक वनने की शिक्षा दी। अपरान्ह को विद्यार्थियों के आपस में मैच हुए और रात्रि को प्रीति भोजन के उपरान्त साहित्य गोष्ठी का मनोरञ्जक कार्यक्रम मनाया गया।

श्रावणी पर्व

गुरुकुल कांगड़ी में श्रावणी पर्व बड़े समारोह के साथ मनाया गया। प्रातः काल ५ बजे से वर्षा आरम्भ हो गई थी इस हेतु श्रावणी की कार्यवाही ७ बजे से प्रारम्भ हुई, जिस में सब कुलवासी विद्यालय के प्रार्थना भवन में सम्मिलित हुए। स्वस्ति वाचन एवं श्रावणी पर्व के मन्त्रों के साथ बृहद् यज्ञ सम्पन्न हुआ, तत्पश्चात् श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने अपने शिक्षाप्रद प्रवचन में श्रावणी पर्व की महत्वपूर्ण व्याख्या करते हुए यह बताया कि इस पर्व का वास्तविक नाम उपाकर्म पर्व है। इस दिन से सब गुरु और शिष्य वेद का विशेष अध्ययन कार्य प्रारम्भ किया करते थे। यह दिन श्रावण की पूर्णमासी होने से संक्षिप्त पर्व "श्रावणी" नाम से प्रसिद्ध है। इस पर्व के साथ रक्षाबन्धन की भी महत्वपूर्ण व्याख्या की, जिस में उन्होंने इतिहास का उदाहरण देते हुए बताया कि चित्तौड़ की महारानी ने हुमायुं के पास राखी भेज कर किस प्रकार भाई बहिन का नाता जोड़ा और अपने देश को अततायियों के आक्रमण से रक्षा की। शान्ति पाठ के साथ कार्यवाही समाप्त हुई।

आयुर्वेद व्याख्यान माला

गुरुकुल आयुर्वेद परिषद् की ओर से एक पाक्षिक व्याख्यनमाला का आयोजन किया गया है। इस में अधिकारी विद्वानों द्वारा शल्य क्रिया, आरोग्य विज्ञान, जीवन विज्ञान, आयुर्वेद आदि विषयों पर उपयोगी और खोजपूर्ण व्याख्यान होंगे। व्याख्यानों की साइक्लोस्टाइल में मुद्रित प्रतियां मन्त्री, आयुर्वेद परिषद्, गुरुकुल कांगड़ी से पत्र व्यवहार करने पर प्राप्त हो सकेंगी।

स्वामी जी की अन्तिम अभिलाषा

गुरुकुल स्वर्ण जयन्ती के मन्त्री ने निम्न लिखित अपील देशवासियों के नाम निकाली है—

'गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के साथ और श्री स्वामी जी का गुरुकुल के साथ सदा अटूट सम्बन्ध बना रहेगा। स्वामी जी ने अपने जीवन का सारगर्भित भाग गुरुकुल के निर्माण में ही व्यय किया था। रात दिन गुरुकुल की ही चिन्ता बनी रहती थी। गुरुकुल स्वामी जी का चिरस्थाई स्मारक है। यह

वर्ष ३ । अङ्क २ । आश्विन २००७

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी ।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार ।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

महाकाव्य और हमारा युग — श्री प्रभुदयाल अग्निहोत्री
गौ का दूध — डाक्टर रामस्वरूप
बालकों के प्रति हमारा कर्त्तव्य — श्री रामसिंह ठाकुर

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं ।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की
विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निर्बलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३॥।) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।~) छटांक, १=) पाव।

वसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निर्बलता को हटाकर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निर्बलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, २।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

गुरुकुल पत्रिका

कार्तिक २००७

वर्ष ३ अङ्क ३

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ३ । अङ्क ३ । कार्तिक २००७

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी ।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार ।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

मृत्यु विजय	श्री रामनाथ वेदालङ्कार
व्यक्तित्व के दोष और उनसे छुटकारा	प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.
गीता का स्वाध्याय	डाक्टर सुन्दरलाल
राष्ट्रभाषा का स्वरूप	श्री महेन्द्र रायजादा
प्रतीक्षा	श्री विष्णुमित्र

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं ।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक
एक प्रति छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

मृत्यु के प्रति हमारा क्या भाव होना चाहिए ?

श्री अरविन्द

तुम्हारी पत्नी की दुःखद मृत्यु से तुम्हें जो आघात पहुंचा है उसका मैं अनुभव कर सकता हूं। परन्तु तुम अब सत्य के अन्वेषक और साधक हो और तुम्हें मनुष्य की साधारण प्रतिक्रियाओं से ऊपर उठकर वस्तुओं को अधिक व्यापक एवं अधिक महान् ज्योति में देखने का यत्न करना होगा। यों समझो कि तुम्हारी वियुक्त पत्नी एक आत्मा थी जो अज्ञानगत जीवन के उतार-चढ़ावों के द्वारा विकसित हो रही थी—जैसे कि यहां और सब भी विकसित हो रहे हैं, उस विकास में ऐसी घटनाएं भी घटित होती हैं जो मानव मन को दुर्भाग्यपूर्ण प्रतीत होती हैं और एकाएकी आकस्मिक या अस्वाभाविक मृत्यु, जो पार्थिव जीवन के इस सदा अचिर इन्द्रजाल को—हमारे तथोक्त जीवन को—अकाल में ही समाप्त कर देती है, इसे विशेषकर दुःखदायी एवं दुर्भाग्य पूर्ण मालूम होती है। परन्तु जो मनुष्य बाह्य दृश्यप्रपंच के मूल में प्रवेश करता है उसे यह पता लग जाता है कि आत्मा की प्रगति में जो कुछ भी घटित होता है उस सबका हमारे अनुभवों की शृंखला में अपना आशय, अपनी आवश्यकता और अपना स्थान होता है। वे अनुभव उसे एक ऐसे संधिस्थल की ओर ले चल रहे हैं जहां वह अज्ञान को पारकर प्रकाश में पदार्पण कर सकता है। वह जानना है कि ईश्वरीय विधान में जो कुछ भी घटित होता है वह भले के लिये ही होता है, चाहे वह मन को इससे उलटा ही क्यों न मालूम हो। तुम अपनी पत्नी को एक ऐसी आत्मा समझो जो जीवन को दो अवस्थाओं के बीच की बाधा को पार कर गई है। उसकी अपने विश्राम लोक की ओर यात्रा में उसे सहायता पहुंचाओ—शांत भाव से मनन करो और भागवत सहायता का आवाहन करो कि वह इस यात्रा में उसे सहारा दे। यदि लगातार बहुत समय तक शोक किया जाय तो वह दिवंगत आत्मा की यात्रा में सहायता करने के बजाय उसमें विघ्न ही डालता है। अपनी क्षति की चिंता मत करो, बल्कि केवल उसके आध्यात्मिक कल्याण की बात सोचो।

जो कुछ हो चुका है उसे अब शांत भाव से विधि के विधान के रूप में माथे चढ़ाना चाहिए और इसे एक जीवन से दूसरे जीवन में उसकी आत्मा के विकास के लिये सर्वोत्तम समझना चाहिये, भले ही यह मानवी दृष्टि से सर्वोत्तम न भी हो; क्योंकि वह दृष्टि केवल

महाकाव्य और हमारा युग

श्री प्रभुदयालु अग्निहोत्री

सृष्टि के उषःकाल में जब मानव ने पहली बार नेत्रोन्मीलन किया तो उसके हृदय का अनेक अपरिचित रूप व्यापारों की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। अपरिचय ने जहां आकर्षण में तीव्रता उत्पन्न की, वहां कौतूहल और आश्चर्य को भी जन्म दिया। इन तीनों ने मिलकर संभवतः उसके नैसर्गिक 'अहं' की अतिरिक्त अनुभूति को प्रकाश में आने से रोक दिया, उसे अव्यक्त ही रहने दिया। फिर भी परिचय के साथ मानव की सामाजिक भावना का उदय हुआ। इस परिचय की सीमा जब तक लघु थी तब तक नदी, सर, तृण, बीरुध, वृक्ष, चांद, तारे सभी उसके परिवार के अंग रहे और फिर जैसे-जैसे सीमा बिस्तार हुआ पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े उसके परिवार में आ शामिल हुये। कालान्तर में पुराने साथियों के साथ विरक्ति और नवीनों के प्रति अधिकाधिक अनुरक्ति बढ़ती गई। परिणामस्वरूप मानव के बीच ही देश, जाति, धर्म और वर्ग आदि की अनेक सीमारेखायें खिंचने लगीं। सभ्यतावादी सम्भवतः मानव के उस प्रथम रूप में शैशव या अल्हड़पन देखें और अन्तिम रूप में शक्ति-सम्पन्न उद्दाम यौवन, एक को मनोरञ्जन की वस्तु कह दे और द्वितीय को मैत्री की, किन्तु दृष्टि यदि वर्तमान से इधर उधर डुलने की क्षमता रखती तो देखती कि शक्त और अशक्त में कौन भव्य है और कौन अभव्य; कौन अंधकार का आह्वान करता है और कौन-ज्योतिष्पुञ्ज छिटकाता चलता है।

अहम् की अनुभूति

तो उस आदि-मानव के अहं की शुद्ध अहं के रूप में अनुभूति बहुत कुछ अव्यक्त ही रही। नवीन के आकर्षण ने बहुत समय तक उसे अपनी ओर झांकने का अवकाश ही नहीं दिया। ऋग्वेद की आदि ऋचाओं में उसका चिन्तन बहुत कुछ 'बहिर्गत' के विषय में मिलता है। भले ही 'बहिर्गत' उसके सम्मुख बहुत कुछ उपभोग्य के रूप में प्रगट हुआ हो, शुद्ध स्वतन्त्र सुन्दर के रूप में नहीं। फिर भी 'अहं' का स्थान प्रायः 'वयं' ने लिया है। कभी-कभी दृष्टि 'आवाम्' और 'नौ' तक अवश्य ही सीमित हुई, किन्तु उनके भीतर ही 'वयं' छिपकर ही बैठा रहा। 'पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं' 'समानी व आकूतिः, समाना हृदयानिवः, शन्नोदेवीरभिष्टये' 'सहना ववतु सहनौ भुनक्तु' आदि ऋचायें इसकी साक्षिणी हैं। वाल्मीकीय रामायण तक यह 'स्व' से उपरति-स्वयंसिद्धि उपरति उपदेशक के रूप में बाहर से ठूसी हुई उपरति नहीं-स्थिर रही। आगे चलकर महाभारत-युग में उसी ग्रन्थ में देखते हैं, विषण्ण अवसान।

[पृष्ठ १ का शेष]

वर्त्तमान को तथा बाह्य रूप को ही देखती है। आत्म-जिज्ञासु के लिये मृत्यु जीवन के एक रूप से दूसरे में प्रवेशमात्र है, और वास्तव में कोई भी मरता नहीं बल्कि केवल प्रस्थान करता है। इसे इस रूप में देखो और क्योंकि प्राणिक शोक उसे, उसकी यात्रा में सहायक नहीं हो सकता, अतः इसकी सब प्रतिक्रियाएं अपने से परे फेंककर, दृढ़ता से भगवान् के पथ का अनुसरण करो।

रक्तपात उभयत्र है, पर प्रथम की परिणत हुई शान्ति में और द्वितीय की ग्लानि में। दोनों काव्यों की कला पर भी मानव के इस चिन्तन विपर्यास का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

महाभारत के बाद भी मानव इस 'स्वोपासना' से पराङ्मुख न हो सका, उदासीन तक न हो पाया। यद्यपि उसका दम्भ उसने अनेक बार किया है। परिणाम इस काल्पनिक विरक्ति का अनुरक्ति से भी बुरा हुआ। यों स्वानुरक्ति स्वतः बुरी नहीं। कलाकार के लिये तो वह एक सीमा तक उपास्य है, किन्तु उसका साध्य बन जाना अनेक अनर्थों की सृष्टि करता है। दुखद यह है कि जिसे आज हम सभ्यता कहते हैं वह इस स्वस्ति के चारों ओर चक्कर लगाने के लिये तो प्रेरणा देती है (स्वस्ति का प्रयोग मैं यहां फ्रायड के वैज्ञानिक अर्थ में नहीं लगा रहा हूं।) किन्तु कोई केन्द्र बिन्दु नहीं निर्धारित करती, जहां क्षण भर विश्राम लिया जा सके। संतोष किया जा सके।

आधुनिक कलाकार

आज सभ्यता पूर्ण यौवन पर है, पर मानवता रुग्ण है। इसीलिये कलाकारों के साधना प्रवाह के ऊपर भी उसका 'अहं' इतने स्थूल रूप में तैरने लगा है कि उसे किसी भी कोण से स्पष्ट देखा जा सकता है। आज के स्वपरक मुक्तकगीत इस बात के निदर्शन हैं कि कलाकार अहं के प्रकाशन के लिये अत्यन्त व्याकुल है। अन्तर को बहिर्गत करने की जितनी उसमें व्याकुलता है उतनी बहिर्गत को अन्तरस्थ करने की नहीं। यह है हमारे काव्य में प्रबन्ध काव्यों के अभाव का एक कारण। जो कवि किसी प्रकार इस धारा को सूखने से बचाने का प्रयत्न कर रहे हैं, उसमें भी पुरातन से निकलकर नवीन को आत्मसात् करने की क्षमता और आगे बढ़ कर नवीन के निर्माण की क्षमता कब है। फिर कथा काव्य जिस धैर्य की मांग करता है उसे देने की शक्ति इस प्रकाशनाकुल युग में सरलता से कैसे मिल सकती है?

प्रबन्धकाव्य की एक और मजबूरी है। वह स्वयं कुछ नहीं कह सकता। निर्माता होने पर भी उसे अपने काव्य में बैठने का बहुत कम अवकाश मिल पाता है। उसका हृदय कभी-कभी ही किसी पात्र की वाणी में झांक पाता है; सो भी न झांके तो अच्छा हो। अन्यथा पात्र कोरे मृत्पिण्ड बन कर रह जाते हैं, प्राण उनमें नहीं प्रतिष्ठित हो पाता। गीतिकार को आत्माभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। दूसरी ओर प्रबन्ध काव्य की पंक्ति-पंक्ति में रस और रसाभास का लेखा जोखा नहीं रखना होता। कुछ पंक्तियों की सरसता सम्पूर्ण सन्दर्भ को सरस बना देती है।

हिन्दी के प्रबन्ध काव्य

हिन्दी के प्रबन्ध काव्य कथावस्तु की दृष्टि से अभी भी वहीं हैं, जहां वे ईसा की तेहरवीं शती में थे। सच कहा जाय तो उन प्राचीन आख्यानक काव्यों के पात्र अधिक सजीव, अधिक प्राणवान हैं। नाटक और उपन्यास के समान हमारे प्रबन्धकाव्य आज तक 'उत्पाद्य' कथावस्तु को नहीं अपना पाये हैं, यद्यपि नाटकीयत्व को अब वे आवश्यक मानने लगे हैं। कल्पित कथावस्तु संभव है, प्रारम्भ में पाठक को अजनबी जान पड़े फिर भी अन्य क्षेत्रों के समान इधर भी प्रयोग की आवश्यकता है।

हिन्दी में कवियों का ध्यान प्रबन्ध काव्य की ओर से जिस तरह हट गया है, उसे देखते हुये यह प्रतीत होता है कि प्रबन्ध काव्य शीघ्र

बालकों के प्रति हमारा कर्त्तव्य

श्री रामसिंह एम. ठाकुर

भाग्य का चक्र बड़ा विचित्र है। आज कल जहां हम जीवन के हर एक क्षेत्र में विशेषज्ञों की मांग करते हैं, चाहे वह मशीन से सम्बन्ध रखती हो, चाहे पशुओं और पौधों से, चाहे फलों और फूलों से, लेकिन जहां बालक का पालन पोषण और शिक्षा के सम्बन्ध का प्रश्न उठता है वहां पर अनपढ़ों को तो जाने दीजिये. पढ़े लिखे सम्पन्न माता पिता भी पालन पोषण की कला को सीखने की आवश्यकता नहीं समझते। उनका यह भ्रम है कि वे बच्चे का पालन पोषण भलि भांति जानते हैं। प्रायः उन्हें उदासीन ही पाया जाता है। इसी अभागी वृत्ति के कारण पशुओं, फल फूलों और पक्षियों के पालन पोषण की अपेक्षा भी बालक अत्यन्त उपेक्षित रह गया है और यही कारण है कि मनुष्य जाति दुःख के सागर में पड़ गई है। मानव समाज का इतिहास पालन पोषण की कठोर टीका टिप्पणी का इतिहास है यह युद्धों और व्यक्तियों के पारस्परिक वैमनस्य का इतिहास है। यदि मानव समाज ने इसकी ओर ध्यान न दिया तो मनुष्य जाति पूर्णतया नष्ट ही हो जायेगी। मनुष्य जाति का कलंकित इतिहास और बालकों के असमान्य व्यवहार की महामारी को देख कर यह सिद्धान्त निर्विवाद रूप से स्थिर होता है कि बाल पालन के लिये शिक्षा और शिक्षण विज्ञान की परमावश्यकता है। और सभ्य समाज का यह कर्त्तव्य है कि वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को माता पिता होने का अधिकार न दे जिसने बाल पालन पोषण की शिक्षा प्राप्त न की हो। समाज और साधारण माता पिता में इस विषय के प्रति केवल जागृति का अभाव ही नहीं, विरोध भी है। बाल पालन पोषण के लिये बालक के मनोविज्ञान और उसके विकास की विधियों के ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है। माता पिता का निश्चिन्त होने का सर्वोत्तम उपाय तो यह है कि वे अपने ऊपर अधिक से अधिक ५ वर्ष तक का ही देख रेख का भार लें। इसके पश्चात् वे अपने बच्चों को अच्छे स्कूलों और गुरुकुलों में प्रविष्ट करायें जहां बच्चों की २४ घण्टे की देख रेख शिक्षा विशेषज्ञों

[पृष्ठ ३ का शेष]

ही किसी नवीन दिशा की ओर मुड़ेगा। प्रसाद जी नाटकों, उपन्यासों और कहानियों के समान काव्य क्षेत्र में भी अपनी परम्परा नहीं बना पाये। लोगों ने उन्हें आश्चर्य के साथ देखा, सराहा पर साथ न चले। इसलिये हम निकट भविष्य में 'कामायनी' की किसी अनुजाता की आशा नहीं कर सकते। हाँ, एकाङ्की नाटकों और लघु कथाओं के समान एक-सर्गीय खण्ड काव्यों की कल्पना कर सकते हैं। लेखनियां इस ओर उठी भी हैं और ऐसा लगता है कि प्रबन्ध-काव्य का यह लघु रूप हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में शीघ्र ही पूरे वेग से अवतरित होने वाला है। फिर भी जिस प्रकार कहानी, उपन्यास की स्थानापन्न नहीं हो सकती, एकाङ्की नाटक, नाटकों का स्थान नहीं ग्रहण कर सकते, उसी प्रकार लघु खण्ड काव्यों का प्रचलन होने पर भी महाकाव्यों और बहुसर्गी खण्ड काव्यों की महत्ता अक्षुण्ण बनी रहेगी।

के द्वारा होती हो, गुरुकुल हमारे बालकों के लिये अधिक लाभदायक सिद्ध होंगे क्योंकि यहां पर हमारे देश की पुरानी शिक्षा प्रणाली को ही काम में लाया जाता है। मेरे लगभग ३० वर्ष के अध्यापन कार्य ने मुझे इस निष्कर्ष पर पहुंचाया है कि बच्चों की शिक्षा दीक्षा का ढंग हमारा प्राचीन होना चाहिये जिसमें आधुनिक नवीनता का सामंजस्य हो।

सर्व प्रथम हमें बच्चों को व्यवहार कुशल बनाना चाहिये, प्रत्येक अध्यापक जानता है कि बालकों की बुद्धि में विभेद पाया जाता है। कुछ बालक तेज होते हैं कुछ सुस्त, कुछ जल्दी से और आसानी से अपने आप को नई स्थिति के अनुकूल बना लेते हैं कुछ के लिये ऐसा करना कठिन होता है। कुछ एक ही बार बता देने से सीख जाते हैं। कुछ लोग चिपट कर मेहनत करने से भी नहीं सीख पाते। कुछ जल्दी और आसानी से सवाल निकाल लेते हैं, कुछ देर तक सिर खपाने पर भी हल नहीं कर पाते। अध्यापक जानते हैं कि सब की एक ही जैसी बुद्धि नहीं है यद्यपि वे सब का अध्यापन एक ही रीति से कराते हैं उन्हें भलि भांति विदित है कि सब बालक उससे बराबर लाभ नहीं उठा पाते। यही कारण है कि इनमें कुछ बालक बुद्धिमान और चतुर होते हैं और कुछेक पीछे के बेंच पर बैठने वाले रह जाते हैं। यदि हम महापुरुषों के जीवनों पर विचार करें तो हमें मालूम होगा कि उनके व्यवहार में कुछ गुण और लक्षण विशेष रूप से पाये जाते हैं। और इन्हीं गुणों के कारण वे बड़ी आसानी, तेजी और सफलता से बदलती हुई परिस्थिति को अपने अनुकूल बना लेते हैं वह सावधान और सजग हैं। उनकी कल्पना शक्ति उत्पादक और रचनात्मक है उनके विचार स्पष्ट और संयत हैं। उनकी रुचि चौमुखी और तीव्र है। उनमें आत्म विश्वास है और वह अपने जीवन और उसकी सफलता पर निष्पक्ष और निर्लेप भाव से विचार कर सकते हैं वह अपने दोषों और कमियों को जानते हैं और उनसे ऊपर उठ सकते हैं। उनका हृदय कोमल और मस्तिष्क ग्रहणशील होता है वे ऊँची नीची बातों को भाप जाते हैं। कठिनाईयों पर विजय पाते और नई दिशाओं में सोचने और काम करने से उन्हें आनन्द आता है। ऐसे ही मनुष्यों की बदौलत मानव जीवन और इतिहास का क्रम बदलता है और विज्ञान, कला, दर्शन, संस्कृति और व्यापार में हमें चमत्कार प्राप्त हुई है। जब से मानव की शिक्षा आरम्भ हुई है तभी से बुद्धि की कमी बेशी मानी गई है। हरेक अध्यापक अपनी कक्षा के विद्यार्थियों की योग्यता क्रमानुसार निर्धारित करता है। और यह क्रम उनके निरीक्षण पर निर्भर रहता है लेकिन सच तो यह है कि यह निश्चय बिल्कुल सच्चा नहीं हो सकता है क्योंकि एक तो अध्यापक का निरीक्षण बहुत होने पर भी इतना विविध और विस्तृत नहीं हो सकता। वह तो केवल अध्यापक उनके कपड़ों की सफाई उनके रङ्ग ढङ्ग, रहन सहन, बातचीत वगैरह से जैसा प्रभावित होता है उसी के आधार पर अपना निर्णय निश्चित करता है। बुद्धि नापने का पहला प्रयत्न इसी शताब्दी के आरम्भ में एक फ्रांसिसी मनोवैज्ञानिक एल्फ्रेड बेनेट द्वारा हुआ। उसे पेरिस स्कूलों की प्रबन्ध कमेटी से आदेश मिला कि वह तेज और हीन बुद्धि बालकों का भेद जानने और उन्हें अलग करने का उपाय ढूंढ निकाले। बेनेट के सामने यह समस्या थी उसने देखा कि तेज और हीन बुद्धि नापने का कोई साधन निकालना होगा। उसने साइमन नाम के एक मनोवैज्ञानिक की सहायता से कई परीक्षायें

तैयार कीं जो अवस्थानुसार कठिन होती गई और एक प्रश्नावली बनाई गई। दूसरे देशों में भी बेनेट के सराहनीय काम का अनुसरण हुआ। उसके बनाये हुये प्रश्न और परीक्षा प्रणाली का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ इंगलैन्ड में डाक्टर बार्ट ने इनका प्रयोग किया और इन्हें आवश्यकतानुसार सुधारा। अमरीका में गार्डर्ड और टरमैन द्वारा संशोधन हुआ सब से अच्छा संशोधन टरमैन का माना जाता है। लेकिन हमारे देश के बालकों के लिये यह प्रश्नावली अधिक लाभदायक सिद्ध नहीं हुई। क्योंकि इस में आयु का प्रश्न अधिक अड़चनें पैदा करता रहा है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में बालकों के मन के माप का अच्छा साधन निकाला है जो कि उनके व्रताभ्यास से कराया जाता है। बालक का २४ घण्टे अध्यापकों की देख रेख में रहने से बालक के व्यक्तित्व की परीक्षा आसानी से हो जाती है क्योंकि भौतिक शास्त्रों की देखा देखी अध्यापक मन की हर एक क्रिया को ठीक २ नापने तोलने का काम करते हैं, उन से बातचीत द्वारा उनकी रुचि, स्वभाव, दृष्टिकोण, भावनाओं का परिचय करते हैं। इससे उनके गुणों और लक्षणों का विश्लेशण कर लिया जाता है क्योंकि यह बातें साधारण स्कूलों में इसलिये नहीं हो सकतीं कि बालक अध्यापक के संपर्क में पूरी तरह नहीं आते।

सच्चे शिक्षकों की आवश्यकता

यदि वास्तव में विद्यार्थियों की कमियों की जांच की जाये तो मालूम होगा कि इनका सूत्रपात माता पिता से ही नहीं बल्कि शिक्षक के व्यक्तित्व से भी आरम्भ हुआ है। सत्य तो यह है कि जीवन संग्राम के कई संघर्षों में उन्हें इतना समय ही नहीं मिलता कि वह अपने आप को सच्चा शिक्षक बना सकें। उनकी आखें घड़ी की सूइयों पर अथवा महीनों की तिथि पर जमी रहती हैं। यदि भारत सरकार कभी इस बात की जांच करने पर कमर कसे तो उसे ज्ञात होगा कि दो तिहाई अध्यापकों को विवश होकर यह धन्धा लेना पड़ा है।

यदि सरकार और समाज देश की उन्नति चाहते हैं तो उनका यह कर्त्तव्य है कि वे योग्य शिक्षक रखें जो कि विद्यार्थियों के सामने एक अच्छा आदर्श रख सकें। इन सब कमियों को दूर करने का एक मात्र उपाय गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ही है जिसमें बालक के मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक विकास का पूरा ध्यान देकर सच्चा नागरिक बनाया जाता है।

मंगोलिया में हमारी धर्म-विजय

डॉ०: लोकेशचन्द्र, डी. लिट्.

कभी एशिया भारत को स्वर्ग-भूमि के रूप में देखता था। भारतभूमि की दर्शन लालसा, एशिया के सुदूरवासी श्रद्धा परिपूर्ण हृदयों को, हमारी मातृभूमि की ओर आने के लिये प्रेरित करती थी। वे बड़ी उत्सुकता से मरुस्थल तथा दुर्गम पर्वतों के कष्टों को झेल कर अस्थि-प्रवेशी शीत और असह्य आतपोष्णता की अवहेलना करके धीरे धीरे पग बढ़ाते हुये "स्वर्ग भूमि की" ओर अग्रसर होते और यहां के आचार्यों के चरण-कमलों के समीप बैठकर विद्यामृत पान करते थे। परन्तु यह स्थिति दसवीं शताब्दी के अनन्तर परिवर्तित हो गई। चीन के चिरकालिक यातायात को मध्य एशिया के शासकों ने रोक दिया एवं अन्य देशीय भक्तों की तीर्थ-यात्रा में बाधा डाली। भारतवर्ष के बौद्धों को भी धार्मिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। अतः कुछ बौद्ध आचार्यों ने नेपाल; तिब्बत आदि में शरण ली और भगवान तथागत की "मध्यमा-प्रतिपत्" का उन देशों में प्रचार किया। इसी युग में बख्त्यार खिलजी ने भारत के विख्यात शिक्षा केन्द्रों का नाश आरम्भ किया। तब विक्रमशील विश्वविद्यालय के अध्यक्ष, काश्मीर निवासी पण्डित शाक्यश्री इस बबरता के नृत्य से विषण्णहृदय हो नैपाल होते हुये तिब्बत को चले गये। वहां उन्होंने संसार के उच्चतम गौरीशंकर पर्वत से पचास मील की दूरी पर विद्यमान सास्क्या बिहार में निवास किया। उस विहार के महन्त ने उनके भारत के आचार्य तथा प्रकाण्ड विद्वान होने के कारण उनका शिष्यत्व स्वीकार करके अपने जन्म का कृत-कृत्य माना। अपने पूज्य गुरु शाक्यश्री के उपदेशों से उत्साहित होकर सास्क्या विहाराधीश ने मंगोलिया में धर्म विजय के लिये प्रस्थान किया। वहां पर उन्हें असीम सफलता प्राप्त हुई। एक और देश भारतभूमि को अपनी स्वर्गभूमि मानने लगा। उस देश के लोगों ने भगवान बुद्ध को अपना श्रद्धादेव स्वीकार किया। बौद्ध-धर्म सामान्य लोगों तक ही सीमित न रह कर राजधर्म बना। चंगेजखां का पुत्र आगोताई के सास्क्या विहाराधीश का शिष्य बना। तदनन्तर आगोताई के भाई सम्राट् मनाङ्कुर्वान ने एक विराट् धर्म सभा बुलाई जिसमें यशस्वी सास्क्या विहाराधीश के शिष्य फग्स्पाने अन्य धर्मों पर महान विजय प्राप्त की। और राजकुल को बौद्धधर्म की दीक्षा दी। यह है मंगोलिया में बौद्धधर्म की स्थापना की कथा।

इसके पश्चात् सास्क्या विहार के किसी अधीश ने भारतीय अक्षरों के आधार पर एक लिपि बनाई। मंगोलिपि के नये नये प्रारम्भ किये हुये साहित्य को लिखने के लिये इस चीनी भाषा के समान ऊपर से नीचे लिखी जाने वाली लिपि का आविष्कार हुआ। इस लिपि का प्रयोग सम्राट् चंगेजखां तथा कुबलईखांन के उत्तराधिकारियों की स्वर्णमुद्राओं पर मिलता है। आदि में लिपी गोलाकार थी। परन्तु कुछ समय के उपरान्त चौकोर हो गई। इसके अक्षर भारत की तत्कालवर्तिनी तथा तिब्बती लिपी से बहुत मिलते हैं। और आधुनिक देवनागरी से भी कई अक्षर बहुत दूर नहीं हैं।

मंगोलसम्राट् बौद्धधर्म के दृढ़ अनुयायी थे और उनकी अगाध श्रद्धा का प्रमाण इस बात से मिलता है कि सम्राट् कुबलईखां ने सास्क्या विहाराधीश को पश्चिमी योटदेश (तिब्बत) का साम्राज्य अर्पण कर दिया। तदनन्तर सास्क्या विहार के अधीशों का समस्त तिब्बत पर राजनैतिक-धार्मिक प्रभाव बहुत बढ़ा रहा। विक्रम संवत् की सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में सम्राट्-अलतान खां ने तिब्बत के दलाईलामा को जो कि उन दिनों मंगोलिया के राजनैतिक प्रभाव में बंधे थे, धर्म सेवा के निमित्त वज्रधर की उपाधि दी।

मंगोलिया में बौद्धधर्म के जाने से पहिले कोई साहित्य न था। भगवान बुद्ध की शरण लेने के उपरान्त मंगोल निवासियों ने संस्कृत से "भोट-भाषा" में अनूदित "कंजूर" नामक ११०० ग्रन्थों से अधिक संपूर्ण समूह का अनुवाद किया। यह बृहत्काय ग्रन्थ समूह आज भी संसार में विद्यमान है। परन्तु क्या भारत भी कभी इस अपने महान् गौरव चिन्ह को रखने तथा अध्ययन करने की इच्छा करेगा ?

भारतीय शब्द भी मंगोल देश की भाषा में प्रचुर-मात्रा में मिलते हैं। सूर्य की किरणों को वहां के सामान्य व्यक्ति को "रश्मि" कहते हुये सुनकर किस भारतीय का हृदय उल्लसित न होगा। महाराज शब्द का आज भी प्रयोग होता है। परस्पर सखासम्बन्ध को अद्यापि मंगोल संस्कृत--मैत्री (मंगोल भाषा में ह्रस्व ही लिखा जाता है) शब्द से द्योतित करता है। भारतीय के आश्चर्य की सीमा नहीं रहती जब वह "खत-मल सुनता है। यह खतमल मानवनिद्रा-भंगकारी रक्तपिपासु "खटमल" (संस्कृत "खट्वामल" खाटकामल) है। पूजास्थानों तथा विहारों पर लहराती हुई ध्वजा का नाम अब भी 'ध्वजा' ही है। विद्या का आज कल वहां पर अभियस (अभ्यास का विकृत रूप) ही होता है। कई भारतीय सम्भव है इस शब्द को न समझें, परन्तु उस देश के वासियों के लिये यह सामान्य शब्द है। 'लोकेश्वर,' 'मंजूश्री,' 'शाक्यमुनि' आदि धार्मिक शब्दों से उनकी शब्दावली पूर्ण है। उस दूर देश में दैनिक उपासना संस्कृत में ही श्रद्धा से की जाती है। अंत में यह जानकर प्रत्येक भारतीय का मन प्रफुल्लित होगा कि बोखारा शब्द संस्कृत विहार का विकृत मंगोल-रूप है। मध्य-एशिया स्थित बोखारा नगर विहार शब्द का ही अपभ्रंश है। किसी काल में यह नगर बौद्ध विहारों से सुशोभित था पर आज............।

रूस देश भी मंगोल निवासियों की बौद्ध-धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा को दूर नहीं कर सका। जब बुरियतों का नया गणराज्य स्थापित हुआ, तब साम्यवादियों ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ किया। और उन्होंने दर्शाया कि आधुनिक विज्ञान का अधिभौतिक दृष्टिकोण है। गणराज्य के महायान बौद्ध भिक्षुओं ने उसका निराकरण किया और प्रमाणित कर दिया कि बौद्धों के लिये आधिभौतिक दृष्टिकोण कोई नई बात नहीं तथा विज्ञान के आधारभूत सिद्धांत उनके दर्शन शास्त्र में पूर्व से ही विद्यमान हैं। इस प्रकार साम्यवादियों के मंगोल निवासियों को बौद्ध धर्म से विमुख करने के प्रयत्न विफल हुये। क्या भारतीय इससे शिक्षा ग्रहण न करेंगे ? क्या वे अपने आंगल् तथा अन्य विदेशी प्रभावों के मोह को छोड़कर अपनी सनातन-संस्कृति को न अपनायेंगे ?

काली मिर्च का रोचक इतिहास

[चौथी शती ईस्वी पूर्व से वर्तमान समय तक]

श्री रामेश वेदी

काली मिर्च, सोंठ और पिप्पली ये तीन चरपरी चीजें त्रिकटु के नाम से भारतीय चिकित्सा में बहुत व्यापक रूप से उपयोग में आती हैं। काली मिर्च और पिप्पली के रंग और गुणों में बहुत समानता है। ये दोनों चीजें मसालों में एक दूसरे के स्थान पर भारत में तथा भारत के बाहर भी प्रयुक्त होती रही हैं। वनस्पति शास्त्र की दृष्टि से भी ये दोनों एक ही गण की दो जातियों के पौदे हैं। ये दोनों द्रव्य जब पहले पहल विदेशियों की मण्डियों में बिकने गये तो लोगों ने समझा कि ये दोनों द्रव्य मिर्च के दो भेद हैं जिनमें से एक गोल है और दूसरा लम्बा। लाल मिर्च का ज्ञान उस समय तक संसार को नहीं हुआ था। काली मिर्च केवल भारत में ही पैदा होती थी। यहां से पिप्पली और काली मिर्च जिस-जिस देश को गई वहां के निवासियों ने संस्कृत के पिप्पली शब्द के आधार पर ही काली मिर्च का नाम रख दिया।

अरबी नाम का स्रोत—संस्कृत

अरबी में इसे फिल्-फिल् कहते हैं। पुरानी अरबी में क्योंकि प होता ही नहीं था इस लिये इस भाषा में पिप्पली का विकृत रूप फिल-फिल् बन गया। मलाबार के प्रदेश में काली मिर्च बहुत पैदा की जाती थी इस लिये काली मिर्च के नाम पर ही इस प्रदेश को ईरानी और अरब के लोग 'बलाद-ए-फिल्-फिल्' कहने लगे थे।

यूरोपियन नामों का स्रोत–संस्कृत

फ्लुकिजर और हेन्बरी के अनुसार इसका आधुनिक अंग्रेजी नाम पेपर और इससे मिलते-जुलते दूसरी यूरोपियन भाषाओं के नाम संस्कृत पिप्पली शब्द से निकले हैं। पिप्पली के लकार में परिवर्तन पर्शियन लोगों ने किया होगा; जिनकी पुरानी भाषा में ल था ही नहीं। लैस्सन (१. २७८) ने प्रतिपादित किया था कि ग्रीक नाम पेपरी और लैटिन पाइपर सीधे भारतीय शब्द पिप्पली से ही बना लिये गये थे। लैटिन में काली मिर्च को पाइपर नाइग्रम (नाइग्रम = काली) और पिप्पली को पाइपर लौंगम (लौंगम = लम्बी) कहते हैं। समस्त संसार के वैज्ञानिकों में अब ये दोनों नाम अपना लिये गये हैं।

द्रविड़ भाषा के नाम भी संस्कृत से

मलयालम में काली मिर्च को आजकल नल्लमुळ्कु (नल्ल=शुद्ध, मुळ्कु=मिर्च) कोटि मुळ्कु (कोटि=लता) और कुरु मुळ्कु (कुरु=बीज) कहते हैं। सफ़ेद मिर्च को किळि मुळ्कु (किळि=पक्षी, पक्षियों द्वारा खाई जाने वाली मिर्च) और वेल्लमुळ्कु (वेल्ल=श्वेत) कहते हैं। तामिल में काली मिर्च के लिए मिळ्कु और लाल मिर्च के लिए मिळ्काय् (काय्=फली, फली वाली मिर्च) शब्द हैं। काली मिर्च का आदि घर मलाबार माना जाता है। यहां की मलयालम, तामिल आदि द्रवीड़ियन भाषाओं में मिर्च के मुळ्कु या मिळ्कु का संस्कृत के

ब्द से कुछ भी साम्य
यन नाम प्राचीन है तो
े समस्त संसार में फैलते
के नामों को अपने नामों
हीं किया, यह विचारणीय
ा मलाबारी भाषाओं में
ा यह भी सम्भव है कि
ा च क में तथा र ळ में
हो और द्रवीड़ियन शब्द
।

का मुख्य पदार्थ

को जिन मसालों का सबसे
उनमें कालीमिर्च भी एक है।
व्यापार की प्राचीनता का
विस्तार से दिखाया गया है
और सम्यक् रूप से कालीमिर्च
ाया। आजकल खाण्ड, कॉफ़ी
ना में यह कम महत्व का द्रव्य
रन्तु बहुत सदियों तक यूरोप
ीच में यह व्यापार का मुख्य

शती ईस्वी पूर्व में

वी पूर्व में थिओफ्रेस्टस इसे
ानता था। उसने दो प्रकार की
किया था। सम्भवतः उसकी
मान समय की गोल मिर्च
र लम्बी मिर्च (पिप्पली)

रुपये में मरिच विहार

ठ गामणी नामक बौद्ध राजा
पूर्व) 'संघ के लिये बिना
हीं खाया करते थे। एक बार
के भोजन में भूल से इस

नियम का पालन किये बिना मिर्च खा ली।[1] इसके प्रायश्चित्त स्वरूप राजा ने भिक्षुओं के लिये एक बड़ा विहार बनवाया जिसका नाम मरिच-वट्टी विहार पड़ा। यह तीन साल में पूरा हुआ था। इसके उद्घाटन समारोह में एक लाख भिक्षु और नव्वे हज़ार भिक्षुणियों के सामने राजा ने कहा था, 'संघ को न देकर भूल से मैंने एक मिर्च खा ली थी। अपने दोष के लिए दण्ड स्वरूप यह सुन्दर विहार और चैत्य बनवाया है। संघ इसे स्वीकार करे।'[2] मरिचवट्टी विहार पर राजा ने उन्नीस करोड़ रुपया खर्च किया था।[3]

महावग्ग (पहली शती ईस्वी पूर्व) में इसे त्रिकटु के रूप में ज्वर और अजीर्ण में प्रयोग किया गया है। (६. १६. १)।

चरक, सुश्रुत और कश्यप आदि ने तो इस को चिकित्सा में बहुत विस्तृत रूप से प्रयोग किया है।

बाइबिल में नहीं

हिब्रू की पुस्तकों में यह अज्ञात है। न ही गौस्पेल्स (सुसमाचार) के 'पुदीना, सौंफ़ और सोये' में इसको कोई स्थान प्राप्त है। हेरोडोटस ने इसके साथ किसी प्रकार की लोक-गाथा का सम्बन्ध नहीं दिखाया।

व्यापारियों से बड़ा कर

मिश्र के स्मारकों पर खुदी हुई चीजों में कालीमिर्च है कि नहीं यह निश्चित नहीं कहा जा सकता। किन्तु टालमी युग (तीसरी शती से पहली शती ईस्वी पूर्व तक) में मिश्र सम्भव

१. महावंश, परिच्छेद २५, ११२–११५।
२. महावंश, परिच्छेद २६, १६–१८।
३. महावंश, परिच्छेद २६, २३–२५।

उसे समुद्रीय व्यापार द्वारा प्राप्त करने लगा था। माध्यकाल में जब काली मिर्च का मूल्य बहुत चढ़ गया था तब यह मिश्र हो कर जाती थी और मिश्र के शासक उन लोगों से कर में बड़ी राशि वसूल किया करते थे जो काली मिर्च या दूसरे मसालों का व्यापार करते थे।

प्लीनी का रोचक वर्णन

प्लीनी (लगभग ७० ईस्वी पश्चात्) की सूचनाएं रोचक हैं। वह बताता है कि मञ्जरी एक खोल में पड़ी रहती है। यदि इसे स्वय पककर फटने से पहले ही वृक्ष पर से तोड़ लिया जाय तो यह वह मसाला बनता है जिसे लम्बी मिर्च (पिप्पली) कहते हैं। परन्तु यदि ये पक जांय तो खोल फट जाता है, धीरे-धीरे दाने सफ़ेद होने लगते हैं। बाद में इन्हें धूप में सुखा देते हैं। इनका रंग बदल कर काला हो जाता है।...

अलेक्ज़ेण्ड्रिया के सरसों के दानों की लम्बी मिच (पिप्पली) में शीघ्र ही मिलावट कर दी जाती है, इसके एक पौण्ड का दाम १५ रोमन दिनार होता है। सफ़ेद सात दिनार की एक पौण्ड और काली चार दिनार की एक पौण्ड बिकती है। एक दिनार (डिनारियस) साढ़े सात आने के बराबर होता था। उसने आश्चर्य प्रकट किया था कि 'मानव जाति काली मिर्च को पता नहीं क्यों इतना बढ़िया द्रव्य समझती है जिसमें न तो मधुर स्वाद है और न ही वह देखने में अच्छी लगती है, चरपराहट के अतिरिक्त उसमें कोई अच्छा गुण भी तो नहीं!'

विनिमय में सोना

प्लीनी भारत में काली मिर्च की खेती, उसकी किस्में, संग्रह और उसमें लगने वाले एक रोग का (जिसमें दाने खोखले हो जाते हैं) वर्णन करता है। उस समय भी भारतीय इसकी कृषि में दक्ष थे। उन दिनों सोंठ, काली मिर्च और पिप्पली भारत से बाहर जाती थीं और बहुत अधिक दामों पर बिकती थीं। यह निर्यात व्यापार प्लीनी के समय इतना अधिक बढ़ गया था कि उसने इन मंहगे मसालों को खरीदने में रोमन सोने के भारत में भारी निर्यात की शिकायत की थी। वह लिखता है कि 'दोनों किस्म की मिर्चों और सोंठ के बदले में हमें यहां सोना और चांदी देकर ये पदार्थ खरीदने पड़ते हैं।'

मंगलौर और कालीकट से निर्यात

लगभग चौंसठ ईस्वी पश्चात् में लिखे गये, 'पेरिप्लस ऑफ़ दी एरिथ्रिलन सी' में बताया गया है कि काला मिर्च बकरे (Bacare) से निर्यात होती है। मुज़रिस और नेलकिंडा से यह जहाजों पर लादी जाती है। केवल इसी प्रदेश में यह बड़े पैमाने पर उगाई जाती है। पता लगाया गया है कि ये स्थान मलाबार तट पर मंगलौर और कालीकट के बीच में थे।

फलियों की तरह काली मिर्च के फल

डिओस्कोराइडिस (लगभग १०० ईस्वी पश्चात्) ने लिखा है कि इसके फल शुरू में फलियों की तरह लम्बे होते हैं और इस लम्बी मिर्च में ज्वार की तरह छोटे-छोटे दाने होते हैं। जो बाद में पूरी काली मिच बन जाती हैं। ऋतु आने पर यह फट जाती है और इसमें से एक गुच्छा निकलता है जिस पर छोटे-छोटे फल लगे रहते हैं। इनमें से जो कच्चे अंगूरों की तरह दाने रह जाते हैं उनकी सफ़ेद मिर्च बन जाती है। आंख के रोगों के लिए और जन्तुओं का विष नष्ट करने के लिए यह अत्युत्तम द्रव्य है।

जहाजों में तीन–चौथाई कालीमिर्च

रोम में मिर्च पर कर बहुत बढ़ गया था। विन्सेण्ट (कॉमर्स एण्ड नेवीगेशन आफ़ दी एन्शिएण्टस, जिल्द २, पृष्ठ ४५८, १८०७) ने दिखाया है कि काली मिर्च और पिप्पली उन भारतीय मसालों में थे जिन पर १७६ ईस्वी पश्चात् के लगभग एलेग्ज़ेण्ड्रिया में रोमन चुंगी दी जाती थी। भारत और रोम के बीच यह व्यापार का मुख्य पदार्थ था। पश्चिम की ओर जाने वाले औसत लद्दू जहाज़ में शायद तीन चौथाई काली मिर्च भरी होती थी। रोमन रसोई की अत्यधिक मंहगी चीज़ों में यह एक थी।

उपहार में

सेन्ट सिल्वेस्टर के अधीन गिरजे को सम्राट कौन्स्टेन्टाइन (चौथी ईस्वी पश्चात्) द्वारा दिये गये उपहारों में मंहगे बरतन सुगन्धित गोंदें; मसाले, लोबान, नड़ (nard), गूगल, बोल, दालचीनी, कपूर और मिरच थी।

संस्कृत काव्यों में

संस्कृत के कवियों में कालीदास (पांचवीं शती ईस्वी पश्चात्) ने कालीमिर्च के उत्पत्ति स्थान का वर्णन ठीक किया है। वे लिखते हैं कि 'दिग्विजय करते हुए मलयाचल की घाटी में रघु की सेनाओं ने जब पड़ाव डाला तो आस पास के मरिचवनों में हारीत पक्षी घूम रहे थे।[1]'

कैलाश में चकोरों का मिर्च चुगना

बाण (७ वीं शती) ने भी अपने नायक चन्द्रापीड़ की दिग्विजय यात्रा के प्रसंग में कैलाश और विन्ध्याटवी में कालीमिर्च का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि 'कैलाश के पूर्वोत्तर दिशा में एक छोटे वन के मध्यभाग में अच्छोद नाम के तालाब के दक्षिण से आते हुए संगीत को सुनकर वह घोड़े पर से उतरा। उस वन में चन्द्रापीड़ ने चकोरों को निर्भयता से मरिच के अकुरों को खाते देखा।'[1]

कुररों का भोजन—मिर्च के पत्ते

इसी तरह उसने विन्ध्याटवी में मद से मस्त कुरर पक्षियों के झुण्डों को मिरच के पत्तों को कुतरते हुए देखा था।[2]

इन प्रदेशों में मिर्च की उत्पत्ति स्वीकार करने में वनस्पति शास्त्र के विद्यार्थी को कोई आधार नहीं मिलता।

प्रियों के साथ मिर्च और मधु

राजशेखर (८८०–९२० ईस्वी पश्चात्) ने मिर्च की जन्म भूमि दक्षिण भारत लिखी है।[3] वहां नगरों में द्रविड़ स्त्रियों का ताम्बूल खाने के बाद मिर्च चबाते हुये अपने प्रियों के साथ शहद की शराब पीना सामान्य बात रही होगी।[4]

---

१. मारीचोद्भ्रान्त हारीता मलयाद्रे रुपत्यकाः ॥
—रघुवंश, सर्ग ४, श्लोक ४६।

---

१. अचकितचकोरचुम्बितमरिचांकुरैः...पादपैः परिवृतं... शूलपाणेः शून्यं सिद्धायतनमपश्यत्।
—कादम्बरी, पूर्वभाग, शिव सिद्धायतनम्।

२. मदकलकुररकुलदश्यमानमरिचपल्लवाः।
—का०, पूर्वभाग, विन्ध्याटवीवर्णनम्।

३. आ मूलयष्टेः फणिवेष्टितानां
सचन्दनानां जननन्दनानाम्।
कक्कोलकैलामरिचैर्युतानां
जातीतरूणां च स जन्मभूमिः ॥
—काव्य मीमांसा, अध्याय १७।

४. पिबन्त्यास्वाद्यमरिचं ताम्बूलविशदैर्मुखैः।
प्रियाधरावदंशानि मधूनि द्रविड़ाङ्गनाः ॥
—का. मी, अ. ८।

असन्तुष्ट मिट्टी

श्री विराज

मिट्टी भूमि पर पड़ी रहती थी; सब उसे पांवों से कुचलते हुए जाते थे। वह पानी में घुली हुई बहती थी; कोई उसे छूना भी न चाहता था। वह आकाश में उड़ती थी, सब कोई दुःखी होते थे और उससे बचना चाहते थे।

'क्या यही मेरा प्राप्य है ?' क्षुब्ध मृत्तिका ने सोचा, 'लोग मुझे पांवों से रौंदें, घृणा करें और शाप दें ? मुझे, जो कि मैं समस्त संसार का आधार हूं, जीवन हूं ? यह नहीं होगा। मैं यह नहीं रहूंगी।'

उसने रूप बदला।

× × ×

उसकी सुगन्ध से दिग्दिगन्त सुवासित हो उठे। मलय पवन उसे झूला झुलाने लगा। रवि की किरणें आ कर उसका मुख चूमने लगीं।

यह एक छोटा सा अचेतन पुष्प था, जिसे देख कर आंखें तृप्त होती थीं, जिसे छूकर अंगुलियां कृतार्थ होती थीं। भ्रमर उस पर मुग्ध थे, कोयल उसके गीत गाती थी।

परन्तु वह एक अचेतन मूल्यहीन पुष्प था, जिसे किसी की भी छोटी से छोटी इच्छा पर बलि किया जा सकता था। देवता अपनी पूजा के लिये उसे ले सकते थे, नारी अपने शृङ्गार के लिये और वैद्य अपने औषध निर्माण के लिये उसे तोड़ सकता था, शिशु अपनी उत्सुकता मिटाने के लिये उसे नोंच सकता था, वन-हरिण पत्तों के साथ उसे भी चबा सकते थे।

उसमें और मिट्टी में केवल एक पग की दूरी थी।

'नहीं, मैं यह भी नहीं रहूंगी।'

उसने और रूप बदला।

चेतना की चंचलता जैसे उसमें समाती नहीं थी। पग चंचल थे, नेत्र चंचल थे, मन चंचल था, उसका रोम रोम चंचल था। वेग में हार मान कर वायु ने उसे अपना वाहन बना लिया था।

घने हरे वन में अपने सुकुमार शिशुओं के साथ उसकी क्रीड़ाएं देख कर वन देवियों को भी ईर्ष्या होती थीं।

हरी घास उसकी सहचरी थी। वही भोजन थी, वही शय्या थी, वही क्रीड़ा का साधन थी। उस वन की मृगी की संध्याएं और उषाएं पृथ्वी की गोद में बीत जाती थीं। उसे देख कर उसे छूने और पकड़ने का मन होता था, परन्तु भय के मारे वह किसी को पास न आने देती थी। उसकी काली आंखों के भाव को देख कर मन न जाने कैसा हो उठता था।

वह निरीह पशु थी।

'नहीं, मैं यह भी न रहूंगी।'

उसने फिर रूप बदला।

× × ×

उसे देख कर देवताओं का मन होता था कि हम भी यही बन जांय। उसकी एक एक क्रिया में, उसकी एक एक मुद्रा में, उसकी एक एक चितवन में हजार हजार भाव झलकते थे।

वाणी थी, किन्तु हँसने और रोने के अतिरिक्त वह और कुछ व्यक्त नहीं कर सकती थी। जो देखता था, वही गोद में उठाता था और चूमता था।

उसके छोटे छोटे सुकुमार अंग शरीर पर छूकर मानों अमृत का लेप करते थे। सुनील

आकाश की ओर ताकती हुई, पूर्णिमा के चन्द्रमा को ओर देखती हुई, फूलों और तितलियों का अनुसरण करती हुई उसकी आंखों की दृष्टि को देख कर जान पड़ता था कि यह भी उन्हीं में का प्राणी है। राह भूल कर कहीं और आ पहुंचा है।

अपनी छोटी छोटी अंगुलियों से बाल पकड़ लेने पर या मुख छू देने पर ऐसा प्रतीत होता था जैसे स्वर्ग का जीते जी शरीर से स्पर्श हो गया हो।

उसकी किलकारियां मन को पुलकित करती थीं, उसका चीत्कार रोम रोम को सजग कर देता था। उसके हास पर देवत्व निछावर था, उसका भोलापन पशु को मनुष्य बना सकता था। वह अबोध शिशु था।

'नहीं, मैं यह भी न रहूंगी।'

उसने फिर रूप बदला।

× × ×

रूप की जैसे कोई सीमा ही नहीं; यौवन जैसे अंगों में समाता नहीं। सुन्दर और सुकुमार उस नवयौवना को देख कर ऋषियों, मुनियों और योगियों तक का मन चंचल होता था।

सजल श्यामल मेघों के समान उसके केश थे और चन्द्रमा के समान उसका मुख। उसकी दृष्टि से कभी चांदनी बरसती थी, कभी धूप झलकती थी, और कभी बिजली सी कौंधती थी। उसके अरुण कपोल बरसाती संध्याओं और उषाओं के समान मनोहर थे।

उसके वस्त्रों में और देह पर वसन्त का वास था और मन में काम देव का।

वह जिसे देख लेती थी, वह जड़ हो जाता था और जो उसे देख लेता था, वह पत्थर।

उसकी भौंहों का संकेत टाल सके ऐसा पुरुष कोई न था।

वह अबला थी। परन्तु उसकी मीन सदृश आंखों से जब आंसू की दो बूंदे भी बह कर कपोलतल पर आ जाती थीं, तब बड़े-बड़े बलियों का बल स्वयं परास्त हो जाता था।

उसके हृदय में ईर्ष्या की प्रचण्ड आग धधकती रहती थी। दया न थी, क्षमा न थी, विश्वास परायणता न थी, वह मानों स्वार्थ की साकार प्रतिमा थी।

दूसरों के दुःख से वह सुखी होती थी, इससे दूसरों को दुःखी देखना चाहती थी। जो कुछ चमकीला होता, वह उसे भा जाता, और जो कुछ उसे भा जाता; उसे वह छीन झपट कर आत्मसात् कर लेना चाहती।

फूलों को उसने नोंच डाला, लताओं को बन्दी बना लिया, और संसार की सब चमकीली चीजें समेटनी प्रारम्भ कर दीं।

पुरुष उस पर रीझता था, उसके गुण गाता था, और उसकी एक एक आज्ञा पालने को उद्यत रहता था। पर उससे डरता न था।

'हां, मैं ऐसा जीवन चाहती हूं। पर यह पर्याप्त नहीं है। मैं यह भी नहीं रहूँगी'।

और उसने फिर रूप बदला।

× × ×

वह सूर्योदय से सूर्यास्त तक परिश्रम करता था, जिससे उसका शरीर दृढ़ और सुगठित हो गया था। बलवान् विशाल बाहु थे, चौड़ा वक्षस्थल था, और निरभ्र नील आकाश के समान उज्वल नेत्र-युगल थे।

इन नेत्रों में से उसकी मानवता अपना रूप दिखाती थी। शोक में वे सजल हो उठते थे

और हर्ष में उज्वल। कभी पत्नी और पुत्र को, अपने पालतू पशुओं को देख कर उनमें प्यार छलकता था, तो कभी आततायियों को देख कर उनमें क्रोध का लपटें चमकती थीं। उत्साह और भय उन्हीं की राह से अपना रूप झलका जाते थे।

क्रोध में भर कर वह आक्रमण करता था पर विनत पर दया भी करता था। बच्चों को वह पीटता था, पर बाद में पश्चाताप और प्यार भी करता था। पशुओं से वह काम लेता था, पर उन्हें भोजन देता था और उनकी सब सुविधा का ध्यान रखता था। मां समझ कर वह गौ से दूध लेता था और मां की तरह उसकी सेवा भी करता था।

वह अपने परिश्रम के फल पर जीवित रहता था। उसके पास नाम मात्र को मामूली सम्पत्ति थी। भूखा वह कभी नहीं सोता था।

बड़े बड़े सम्पत्तिशालियों के वैभव को देखकर उसे भी लोभ होता था, पर भाग्य का आदेश समझ कर वह मन मार कर रह जाता था। कभी कभी वह चोरी भी करता था, पर डाका डालने का साहस उसकी छाती में न था।

उसके जीवन में सुख अधिक नहीं था, और न दुःख कम। उससे अधिक सशक्त लोग बलपूर्वक उसका परिश्रम द्वारा उपार्जित धन छीन ले जाते थे। चोर उस पर भी दया न करते थे। कई बार विवशता में उसे ऐसे काम करने पड़ते थे, जिनके अपमान की वेदना से उसका अन्तस्थल खदकने सा लगता था।

उसे अपने वैभवहीन जीवन में मृत्यु निरन्तर अपनी ओर बढ़ती दीख पड़ती थी और अपने आधारशून्य परिवार की कल्पना करके उसकी छाती कांप उठती थी। पर उपाय कोई न था।

वह परिश्रमजीवी मानव था।

'यह भी कोई जीवन है। मैं यह नहीं रह सकती।'

और उसने अपना रूप फिर बदला।

× × ×

माया ममता नहीं, प्रेम और मोह नहीं, लज्जा और भय नहीं, बाप को मार कर उसने राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। कई भाई थे, कुछ भाग निकले, जो भाग न सके, वे बाप के साथ कर दिये गये।

सब ओर आतंक छा गया।

उसके सिर के ऊपर राजछत्र था, सिर पर राजमुकुट, हाथ में राजदण्ड, और राजसिंहासन पर बैठा हुआ वह प्रलयाग्नि के समान तेजस्वी दीख पड़ता था। उसकी ओर मुख उठाते आंखें चौंधियाती थीं।

उसके पराक्रम की गाथा घर घर में, देश विदेश में सब जगह गूंज रही थी, क्योंकि प्रत्येक घर में से कोई न कोई या तो उसके पक्ष में या उसके विरोध में लड़ते हुये मारा गया था।

उसकी मुद्रा चीते के समान चपल थी और स्वर सिंह गर्जन के समान गंभीर। और उसका हृदय? हृदय उसके शरीर में था ही नहीं, उसकी जगह एक छोटा सा भेड़िया गुर्राता हुआ बैठा था।

उसे लहू की प्यास थी और जीवित मांस की भूख। पुरुषों का वह खून चाहता था और स्त्रियों का मांस। जो पुरुष उसकी आंख में खटका, वह दुनियां से बाहर कर दिया गया

और जिस युवती पर उसकी आंख अटकी, वह राजमहल के अन्दर कर ली गई।

संसार त्रस्त होकर हाहाकार कर उठा।

तब उसकी बर्बरता जैसे चलना सीखने लगी। उसकी इच्छाएं नित्य नये रोंगटे खड़े कर देने वाले रूप धारण करने लगीं।

एक दिन उसकी इच्छा होती कि सारे शहर को आग लगा कर देखा जाय कि तब वह कैसा दीख पड़ता है। अगले दिन इच्छा होती कि देखा जाय कि भूखा शेर जीवित मनुष्य को कैसे फाड़ता है। किसी दिन वह चाहता कि गर्भिणी स्त्री का जीते जी पेट चीर कर गर्भस्थ शिशु की गतिविधि का निरीक्षण किया जाय। और जो दृश्य उसे रुच जाता, वह तो फिर बार बार देखने की चीज़ बन जाता।

बड़े बड़े वीर उसके सेनापति थे, कई पराक्रमी सामन्त थे, प्रकाण्ड विद्वान् उसके सभासद् थे। कुशल चित्रकारों ने अनेक मुद्राओं में उसके चित्र बनाये, जिनमें वह देवताओं से भी उत्कृष्ट चित्रित किया गया था। एक प्रतिभाशाली कवि ने उसकी कुलकारिका लिखी। मूर्तिकारों ने उसकी प्रतिमाएं बनाईं।

धर्म के पुजारियों ने उसे 'धर्म-रक्षक' की उपाधि दी।

उसने बड़े बड़े दुर्ग बनवाये, सुन्दर समाधियां बनवाईं, शिलालेख लिखवाये और स्तूप खड़े करवाये, जिससे उसकी कीर्ति अक्षय रहे।

उसने मित्रों से विश्वासघात किया, सेवकों को मृत्युदण्ड दिया, विरोधियों से संधियां कीं और तोड़ीं, निरपराधों के सिर पर अनन्त यातनाओं का बोझ लाद दिया, खेतियां उजाड़ दीं, नगर वीरान कर दिये, प्राचीन साहित्य और कला वस्तुएं नष्ट कर दीं।

हिंसा से उसके नेत्र देदीप्यमान थे और हाथ खून से सने हुए थे।

उसकी छोटी से छोटी इच्छा के लिये संसार की कोई भी चीज़ बलि की जा सकती थी।

वह प्रबल पराक्रमी अतिमानव राजराजेश्वर था।

'यह मैं क्या बन गई?' मृत्तिका ने कहा पर मनुष्य आज मुझे पूजता है, मुझे सिर झुकाता है, और मुझसे थर थर कांपता है।

'शायद वह यही भाषा समझता है! पर क्या उसे एक यही भाषा समझनी चाहिये? नहीं, मैं उससे इस भाषा में बात नहीं करूंगी, मैं, जो कि सबका आधार हूं, जीवन हूं।

'मैं यह नहीं रहूंगी।'

और प्रबल पराक्रमी अतिमानव राजराजेश्वर का मुकुट भूमि पर गिर पड़ा, राजदण्ड हाथ से छूट गया, और वह प्रलयाग्नि के समान तेजस्वी मिट्टी मिट्टी में मिल गई।

परन्तु मृत्तिका को सन्तोष नहीं है। वह बार बार रूप बदलती है और फिर असन्तुष्ट होकर अपने पहले रूप में आ जाती है।

हे चिर असन्तुष्ट मृत्तिके, हे जगज्जीवन की धात्री, तुमको शत शत प्रणाम!

●

विनाशकारी काम रिपु

प्रो० रामचरण महेन्द्र एम. ए.

काम क्रोध मद लोभ की
जब तक मन में खान।
तब तक पंडित मूरखो
तुलसी एक समान॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

अर्थात्—काम क्रोध और लोभ तीनों आत्मा के नाशक और नरक के द्वार हैं। इसलिए उन्हें त्यागना चाहिये।

अर्जुन श्री कृष्ण भगवान से प्रश्न करते हैं कि योगेश्वर पाप करने में बड़े बड़े घोर दुःख हैं। फिर भी जानते बूझते मनुष्य किस प्रेरणा से पाप कर्म में प्रवृत्त होता है। योगेश्वर श्री कृष्ण उत्तर देते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥
॥ गीता ॥

अर्थात्—हे अर्जुन! कामक्रोध जो कि रजोगुण से उत्पन्न हुए हैं यही भय देने वाले हैं। इन्हीं से प्रत्येक पाप में प्रवृत्ति होती है। ये ही बड़े शत्रु हैं। जहां तक हो सके इनके विनाश का उपाय करो।

"धूमेना व्रियते वह्निर्यथाऽदर्शो मलेन च।
यथोल्बना वृत्तोगर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥"
॥ गीता ॥

हे अर्जुन! जिस प्रकार अग्नि धुएं से दर्पण मल से और बच्चा गर्भ से ढका हुआ होता है, इसीं प्रकार काम और क्रोध से यथार्थ ज्ञान ढका हुआ होता है।

काम वासना हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है। कामुकता के विचार एक प्रकार के अदृश्य मैथुन की तरह हैं। इन गन्दे विचारों में हम जितना ही तल्लीन रहते हैं, उतना ही वीर्य का क्षय करते हैं।

पुनः पुनः वीर्य वाहिनी नलिकाओं को उत्तेजना सम्हालनी पड़ती है, इससे उनकी शक्ति धीरे धीरे क्षीण हो जाती है। और मनुष्य नंपुसक बन जाता है, अनेक मूत्र रोगों का शिकार हो मनुष्य अकाल ही मर जाता है।

काम का कौन-कौन इन्द्रियों से सम्बन्ध है?

काम को मनसिज कहा गया है। अर्थात् यह मन में उत्पन्न होने वाला एक विकार है। मन में विचार लाने वाली हमारी इन्द्रियां हैं। ये भांति भांति के विचार लाती हैं जिनके संयुक्त रूप के कारण कामुकता का विचार एक प्रकार के अदृश्य मैथुन द्वारा भड़क उठता है।

रति का आरंभ नेत्रों से होता है। नेत्रों से हम दूसरे के अंग प्रत्यंगों पर, स्वभाव इत्यादि पर आसक्त हो उठते हैं। नेत्रों द्वारा काम वासना का प्रकाश देखा जाता है। इसके पश्चात् रचना तृप्ति स्वादिष्ट भोजन, कामोत्तेजक पदार्थ जैसे मांस, मदिरा, तम्बाखु, पान, मिठाई, राजसी पदार्थों का सम्बन्ध है। इसीलिए योगी, सन्यासी और ब्रह्मचारी स्वादिष्ट भोजन से दूर रहते हैं। स्पर्श सुख भी इसी से सन्नद्ध है। गरम गुदगुदे गद्दे, तकिये, नरम रेशम के बिस्तर, आराम तलब आलसी जीवन, शरीर का बनाव श्रृङ्गार सफाई साबुन, पाउडर, क्रीम, स्नो, सेंट प्रदर्शन की इच्छा कामोत्तेजक हैं।

कामोत्तेजक दृश्यों, विचारों और परिस्थितियों को आंखों से देख कर या सोच कर

काम का प्रादुर्भाव हो जाता है। यह विकार इतना शक्तिशाली है कि साधारण से लेकर बड़े बड़े व्यक्ति इसके पंजे में आ जाते हैं। व्यास और विश्वामित्र भी इसकी मार से न बच सके। हमारे यहां आचार्यों और कवियों ने काम की अनेक रूपों में प्रशस्ति की है। इसे मनुष्य की मूल प्रेरक शक्तियों में माना है।

काम विकार का महत्व

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ हैं। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति में कम से कम एक का होना आवश्यक बताया गया है। काम भी एक प्रकार का पुरुषाथ माना गया है। धर्म, अर्थ और काम के सांमजस्य से मानव जीवन की पूर्णता मानी गई है। कृष्ण भगवान् ने अपने आपको धर्म विरुद्ध काम कहा है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ

पाश्चात्य मनोविज्ञान के आचार्य सिगमेड-फ्रायड ने काम विकार को प्रधानता दी है और बड़ी व्यापक व्याख्या की है। अपने व्यापक अर्थों में इसका सम्बन्ध सब विषयों से हो जाता है। काम सूत्र में जो व्याख्या इस मनोविकार की दी गई है, उसमें इसका सम्बन्ध नेत्र, जिह्वा, त्वचा और नासिका से किया गया है। यथा—

"श्रोत्रत्वक चक्षु जिह्वा घ्राणानाम् आत्म संयुक्ते तेन मनसा अधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेषु अनुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः।

अर्थात्—आंख, जीभ, नासिका इत्यादि अपने विषयों में मन के साथ संयुक्त हो कर काम की उत्पत्ति में सहायक होते हैं सब इन्द्रियां ज्ञान मन में ले जाती हैं। फिर उस ज्ञान के अनुसार मन में विकारों की उत्पत्ति होती है।

हमारे पुराने ऋषि मुनि यौवनावस्था में ही काम की शक्ति का स्वीकार करते हैं। आजकल के कुछ मनोवैज्ञानिकों, विशेषतः फ्रायड साहब का विचार है कि शैशवावस्था से ही काम का प्रादुर्भाव हो जाता है। आधुनिक रहस्यवादी कवि श्री जयशंकर प्रसाद' ने अपने महाकाव्य 'कामायनी" की निम्न पंक्तियों में काम विकार को और भी व्यापक रूप दिया है—

"वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई
अपने आलस का त्याग किये।
परिमाणु बलि सब दौड़ पड़े
जिसका सुन्दर अनुराग लिये॥'
—कामायनी।

अर्थात्—सृष्टि में परिमाणुओं का भी मिलन इसी सर्व व्यापक महान् शक्तिशाली विकार काम के द्वारा होता है।

काम-विकार से मुक्ति के उपाय

काम विकार से बचने के लिए निरन्तर शुभ मनन पवित्र चिन्तन और पाठन, उद्योग करना चाहिए। यदि हम गंदगी से बचें, कामोत्तेजक स्थानों में न जांय, कामोत्तेजक दृश्यों, वस्तुओं, उपन्यासों, फिल्मों, कहानियों, नग्न चित्रों, गुप्ताङ्गों का न देखें तो बहुत कुछ इस विकार से बच सकते हैं।

भातृहरी ने लिखा है—

"अदर्शाणे दर्शनयत्रि कामः
दृष्ट गतु तो स परिष्यङ्ग लोलः॥
आलिङ्ग तो यां पुन रामनोज्ञा
माशास्मेह विग्रह्योरभदेय।
—भातृहरी।

अर्थात्—जब तक मनुष्य स्त्री को देखता नहीं, उसे केवल दर्शन की ही अभिलाषा रहती है और यदि देख ले तो यह इच्छा होती है कि

यह कमलनयनी हमारे वश में आ जाय। और जब यह भी हो जाता है तो यह लालसा रहती है कि इसके साथ हमारा कभी भी वियोग न हो। बस, ऐसा कभी नहीं हो सकता। इसलिए काम-शत्रु लागों को बेमौत मारता है और वे प्रतिदिन विपत्ति शय्या पर पड़े पड़े काल की घड़ियां गिनते हैं।

मनु जी ने तो यहां तक निर्देश किया है कि किसी भी युवक पुरुष को एकान्त में अपनी सगी बहिन तक के पास नहीं बैठना चाहिए और न किसी स्त्री से आंखें मिलाकर बातें ही करनी चाहिए। काम-विकार अत्यन्त चंचल है। अतः अपने आप को वृथा प्रलोभन में डाल कर यह न समझो कि तुम सरलता से उस पर विजय प्राप्त कर सकोगे।

निम्न बातों को सर्वथा त्याग दीजिए क्योंकि इनसे काम-विकार उद्दीप्त होता है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रमानिष्पत्ति रेवच।
एतन्मैथुनमष्टाङ्ग प्रवदन्ति मनीषिणः।
सर्वांगेभ्यो विनिर्मुक्तो यदि भवित नेतरः॥

अर्थात्—किसी भी स्त्री के विषय में (काम में प्रवृत्त होकर) उसका ध्यान करना, बात करना लुक छिप कर देखना, उसके साथ खेलना; गुप्त बातें करना, ऐसी कुत्सित अभिलाषा करना और आचरण में लाना—ये आठ प्रकार के कार्य मैथुन हैं। अतः इन्हें तुरन्त त्याग देना चाहिए। कभी भी अपने आप को ऐसी परिस्थिति में न रखिये कि ये आपके ऊपर छिप कर प्रहार कर सकें। इनमें से प्रत्येक कार्य काम विकार को प्रदीप्त कर सर्वनाश करने में पूर्ण समर्थ है। कुत्सित काम विचार को उदीप्त करने वाले हल्के प्रेम से सम्बन्धित उपन्यास, कहानियों या शृङ्गार रस की कविताएं न पढ़ें, चित्र न देखें, वैसी वार्ताएं न सुनें, उस प्रकार के व्यक्तियों की सगति में निवास न करें। स्वयं स्त्री प्रसंग से इतनी हानि नहीं जितनी शृङ्गार रस की भावनाओं, विचारों और कुकल्पनाओं में डूबे रहना है। इससे गुप्त इन्द्रियों में निरन्तर एक प्रकार का तनाव रहता है और कालान्तर में अनेक गुप्त मूत्र रोगों के साथ नंपुसकता उत्पन्न होती है। अतः बड़े सावधान रहें।

●

५००) रुपये का पुरस्कार

ठाकुरदत्त शर्मा धर्मार्थ ट्रस्ट ने गतवर्ष घोषणा की थी कि वैदिक धर्म सम्बन्धी वर्ष के भीतर छपी हुई पुस्तकों पर सर्वोत्कृष्ट पुस्तक के लेखक को ५००) रु० पुरस्कार के निमित्त भेंट किया जावेगा। जो पुस्तकें आईं उन के निर्णय के वास्ते निम्नलिखित सज्जनों की उप समिति बनाई गई। (१) श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति। (२) श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति। (३) श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार। (४) श्री विश्वनाथ वेद्यमार्तण्ड। (५) श्री बृहस्पति एम. ए.। बहु सम्मति से निश्चय हुआ कि श्री गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय मंत्री, सार्वदेशिक सभा को पुस्तक "वैदिक-संस्कृति" जो अंग्रेजी में छपी और हिंदी अनुवाद इसका हो चुका है वह सबसे उत्तम है। ट्रस्ट ने निश्चय किया है कि ५००) रु० का पुरस्कार श्री उपाध्याय जी को आगामी गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर भेंट किया जावेगा।

गो पालन

डॉक्टर रामस्वरूप

गौ दूध की महिमा से वेद स्मृति, पुराण आदि तो भरे ही हैं, अमेरीका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि के पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी अपनी प्रयोग शालाओं में इसके परिणाम निकाल कर सिद्ध कर दिया है कि गौ दूध न केवल शरीर को पुष्ट करने वाला अथवा जीवन शक्ति बढ़ाने वाला द्रव्य है अपितु उत्साह और साहस बढ़ाने में भी सर्वोत्तम है। अज्ञानी जन ही ऐसा समझते हैं कि नशीले पदार्थ शराब आदि मन को बल देते हैं, नहीं तो थोड़ा काल हुआ फ्रांस के प्रसिद्ध श्री पाश्चर महोदय ने अपनी कैमिकल लैबोरैटरी में एक सौ पच्चीस कुत्तों पर इनके बहुत से प्रयोग किये हैं और उनके महत्वपूर्ण परिणाम निकाले हैं। वहां उन्होंने कई डाक्टरों की देख रेख में कुत्तों की अलग-अलग टोलियां बनाकर गौ दूध, मांस, रोटी, सब्जी, शराब, कोकीन, केफीन आदि खिलाकर देखा है। एक एक टोली को पहिले गौ दूध, फिर रोटी, मांस, शराब आदि दे कर देखा है और पता लगाया है कि गौ दूध उपर्युक्त सभी खाद्य पदार्थों में अधिक उपयोगी, स्फूर्ति देने वाला, जीवन शक्ति बढ़ाने वाला और शरीर को पुष्ट करने वाला है। साथ ही यह परिणाम भी निकाला कि गौ दूध को उपयोग में लाने वाले प्राणियों में थकावट नाम को भी नहीं रहती। काम करने का उत्साह बढ़ जाता है। निराशा दूर रहती है और मुखमण्डल की आभा चिरायु तक नहीं बिगड़ती, युवावस्था देर तक स्थिर रहती है। एक महत्वपूर्ण परिणाम और निकाला है कि इस प्रकार दूध के उपयोग से काम की मात्रा भी तिगनी हो जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं, इन परिणामों की घोषणा होते ही फ्रांस, ब्रिटेन आदि के सैनिक अधिकारियों पर भी इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने सेनाओं में दूध के पक्ष में और शराब के विपक्ष में विज्ञापन बांटे। फ्रांस सरकार ने अपनी राजधानी के शराबघरों और कहवे-घरों के संचालकों को आज्ञा दी कि वे इन मादक वस्तुओं का प्रचार कम करदें। अपने ग्राहकों को गौ दूध का परामर्श करें (मैरीलैण्ड, डाक्टर एल. के. हर्राबर्ग)। यही नहीं गत १९१४ के महायुद्ध में एक व्याख्याता पत्रकार (हावर्ड डेरी मैन) के कथनानुसार अमेरिका, ब्रिटेन आदि की विजय में गौ दूध का बड़ा हाथ रहा है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि 'सहयोगी राष्ट्रदल' अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि के यहां सैनिकों को रणभूमि में जाने से पूर्व गौ दूध ही दिया जाता था। अतः जब कि दूध की उपयोगिता सर्वत्र सिद्ध है तो मैं यह कहना चाहता हूं कि भारत सरकार को भी इधर ध्यान देना चाहिए।

अब तो अमेरिका में सत्रह लाख पचहत्तर हजार मन दूध नित्य प्रति उपजाया जाता है। परन्तु घी दूध के देश भारत में दूध का अभाव ही रहा है। गोचर भूमियों को दूसरे कामों में लाया जा रहा है। जङ्गलात के महकमे की कठोरता से वह धीरे-धीरे नष्ट हो रही है।

हँसना सीखो

श्री वनपुत्र

अट्ठारवीं शताब्दी के एक फ्रेंच लेखक चैफार्ट ने कहा है "वह दिन जीवन का बिल्कुल व्यर्थ जाता है जिस दिन हम हंसते नहीं"। हँसना एक कला है। मनुष्य इस कला का बचपन से ही विशेषज्ञ होता है नहीं तो बच्चे जन्म से ही कैसे हंसना प्रारम्भ कर देते? हम बचपन में हंसते अधिक हैं और यही कारण है कि बचपन के इतने झगड़े, मारपीट, आंसू तथा खून हम भूल जाते हैं परन्तु प्रौढ़ावस्था का कहीं जरा सा अपमान भी नहीं भूल पाते। हो सकता है तुम्हारी हँसी किसी संकट अथवा छोटी-छोटी उलझनों के कारण कुछ दब गई हो। परन्तु अगर उसे दबाए रखने में तुम सहयोग देते हो तो यह तो तुम्हारा अपना ही दोष हुआ।

पिछले कुछ वर्षों में हमें हँसने सम्बन्धी कई शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक लाभों का भी पता लगा है, मस्तिष्क पर तो इसका अच्छा असर होता ही है परन्तु साथ ही हमारी अंतड़ियों को शक्ति पहुंचती है, रक्त के दबाव में भी लाभकारक है तथा पाचन शक्ति भी ठीक करता है, हँसते समय रक्त के अन्दर स्वास्थकर तबदीली भी होती है।

हँसी हमारे बोझ को हल्का करती है। हमारे उत्साह तथा आशा को बढ़ावा देती है। हमें दिलचस्प बनाती है तथा हमें संसार को एक नये दृष्टिकोण से देखने का साधन देती है। अगर मनुष्य अपनी हँसी बन्द कर दें तो संभव है वह पागल हो जाए।

मानसिक रोगियों के इलाजों में रोगी को हँसाने का भी इलाज बर्ता जाता है। मानसिक रोगी का हँसना आरम्भ कर देना अच्छे स्वास्थ्य की ओर अग्रसर होने का चिन्ह माना जाता है।

हाल में ही मानसिक रोगों के एक विशेषज्ञ ने हँसने का इलाज आरम्भ कर दिया है। उसने एक कमरे में दस बारह आराम कुर्सियां डाल दी हैं। इस पर मानसिक-रोगी बैठ जाते हैं और एक हँसाने वाला सामने बैठ कर उनसे बातें करता तथा उनको हँसाता है। कभी-कभी हँसाने वाले ग्रामोफोन रिकार्ड लगाए जाते हैं। वह स्वयं भी उन सब के साथ बैठता है और स्वयं हँस कर दूसरों को हँसाने की चेष्टा करता है। यहां तक कि वह कमरा एक डेढ़ घण्टा प्रतिदिन हँसी से गूंजता रहता है, और इस सब का असर है। जीवन के बोझ से दबे, थके, पुरुष और स्त्रियां उसके पास जाते हैं और हँसते खिलखिलाते निकलते हैं।

इंश्योरेंस के एजेंट हमेशा चुटकुलों का भंडार क्यां रखते हैं? इस लिए कि एक गंभीर व्यक्ति के साथ कोई मनुष्य मित्र की भांति बा[त] नहीं करता। किसी रेल के डिब्बे में अगर सात व्यक्ति गंभीर प्रकृति के हैं तो चाहे यात्रा दस मिनट की हो अथवा दस दिन की, कोई अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु जहां एकाध भी हँसमुख हुआ तो सारी राह पूरे कमरे को गुंजाता रहेगा।

एक सभा का सभापति अपने हास्य को गंभीर से गंभीर स्थिति को भी अपने हाथ में कर लेता है और प्रायः अच्छे वक्ता अपने भाषणों में हास्य की पुट देकर ही भावपूर्ण वक्ताओं की श्रेणी में गिने जाते हैं। लायड जार्ज भी ऐसे वक्ताओं में एक थे। एक सभा में उन पर किसी विपक्षी ने शलजम फेंकी। लायड जार्ज

ने वह शलजम उठाई, घुमाया, फिराया और बोले "मेरे किसी विपक्षी मित्र का शायद सिर अपने स्थान पर नहीं रहा"।

अपने पास सदैव कुछ चुटकुलों का, हँसाने वाली घटनाओं का भण्डार रखो, जहां यह तुम्हें अपने सुनने वालों के दुःख भगाने में सहायता करेगा वहां यह तुम्हें लोक प्रिय बनाने में भी सहायता देगा।

एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ने कहा है "हम हँसते हैं ताकि हम रोएं नहीं" हँसी हमारे हाथों में एक ऐसा शस्त्र है जिससे हम छोटे मोटे झगड़ों, धन्धों तथा दुःखों से छुटकारा पा सकें।

स्वयं पर हँसना सीखो। अपनी त्रुटियों पर हँसना सीखो। अपनी त्रुटियों पर स्वयं हँस कर ही तुम उन त्रुटियों से आगे बढ़ने के लिए उत्साह तथा ज्ञान पाओगे। हँसो, हँसो, जब रोने को तुम्हारा दिल करता हो। आरम्भ में कुछ दिक्कत अवश्य होगी परन्तु पीछे यही आदत तुम्हें हार पर भी जीत का अनुभव देगी।

हँसो, किसी पर नहीं, सब के साथ हँसो।

असमानता

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः
संमातरा चिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि
ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः॥

(ऋ० १०. ११७. ९)

(हस्तौ समौ चित्) दोनों हाथ एक से होते हुये भी (समं न विविष्टः) समान क्रिया-शक्ति वाले नहीं होते।

(सं मातरा चित्) समान माता से जन्मने-वाली दो गौयें भी (न समं दुहाते) समान दूध नहीं देतीं।

(यमयोः चित्) दो जुड़वां सहोदर भाइयों के भी (न समा वीर्याणि) समान बलपराक्रम नहीं होते।

(ज्ञाती सन्तौ चित्) समान वंश के होते हुये भी दो व्यक्ति (न समं पृणीतः) समान दान नहीं करते।

कठोर-दण्ड

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत
स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु
मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम्॥

(ऋ० ७. १०४. २४ ॥)

(इन्द्र) राजन्! राष्ट्रपते! (यातुधानं पुमांसं) अत्याचारी पुरुष को (उत) तथा (मायया शाशदानां स्त्रियं) माया से मारनेवाली स्त्री को (जहि) बध कर। (मूर-देवाः) मारण-क्रीड़ी, विषयमूढ़, राक्षस, लम्पट (विग्रीवासः) ग्रीवारहित, गर्दनविहीन, होकर (ऋदन्तु) नष्ट हो जायें, (ते) वे (उत्-चरन्तं) उदय होते हुये (सूर्यं) सूर्य को (मा दृशन्) न देखें [वे उभरने न पायें]।

विश्वविद्यालयों को गुरुकुल बनाओ

श्री धर्मदत्त

भारत के सरकारी विश्वविद्यालयों की इस विषय में जितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी है कि उन्होंने देश की बड़ी जनता को उच्च शिक्षा प्रदान की है तथा बहुत बड़ी संख्या में लोगों को साक्षर बनाया है। तो भी दुःख के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि शिक्षा के साथ साथ शिक्षित जनता का चरित्र जितना ऊंचा हो जाना चाहिये था उतना ऊंचा नहीं हुआ। प्रत्युत उसका चरित्र कुछ अंशों में तो अशिक्षित जनता के चरित्र से भी गिर गया है। उदाहरणतया भारत की अशिक्षित जनता को देखा जाय तो वह सरलचित्त, सादगी पसन्द धर्म परायण, भेदभाव से शून्य और आस्तिक होती है। इस के विपरीत शिक्षित व्यक्तियों के एक बड़े भाग की जांच की जाय तो वह सरलता से हीन, आडम्बरप्रिय, स्वार्थ-परायण, भेदभावों से युक्त और नास्तिक पाया जायगा। इस प्रकार के शिक्षित जनों की वृद्धि से भारत की उन्नति नहीं हो सकती। भारत को उन्नत तभी कहा जा सकता है जब भारतीयों का जीवन उन्नत हो। जब भारत उन्नति के शिखर पर था तब उसके विषय में कहा जाता था कि एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः। (मनु)। अर्थात् समस्त पृथिवी के मनुष्य भारतीय शिक्षित जनों के पास आकर अपना चरित्र निर्माण करते हैं। उस समय हमारे देशवासियों का चरित्र इतना उन्नत था कि हमारे देश का एक राजा अश्वपति बड़े अभिमान के साथ कह सकता था कि मेरे देश में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो चोर हो, या मद्यपी हो या अनपढ़ हो या दुराचारी हो। सत्य तो यही है, कि अन्न, धन, सांसारिक सामग्री और शस्त्रास्त्र की अधिकता के कारण ही कोई देश उन्नत और समृद्ध नहीं कहा जा सकता जब कि उस देश के मनुष्य आचार की दृष्टि से उन्नत न हों।

भारतीय इतिहास के वैदिक तथा बौद्ध काल में विद्यमान विद्यालयों का जो विवरण प्राप्त होता है उस से पता चलता है कि उनमें विद्यार्थियों को विद्वान् बनाने के साथ साथ चरित्रवान् बनाने पर विशेष बल दिया जाता था। उस समय एक विद्या-संस्था को गुरुकुल या आचार्य कुल कहते थे। गुरु शब्द का अर्थ गृणातिधर्ममिति अर्थात् जो शिष्य को धर्म प्रदान करे। आचार्य शब्द का अर्थ है 'आचारं ग्राहयतीति' अर्थात् जो शिष्य को सदाचार का उपदेश दे। स्पष्ट है उस समय शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को मनुष्य बनाना समझा जाता था।

वर्तमान युग में जब कि यह शिक्षा प्रणाली सर्वथा नष्ट हो चुकी थी पहले पहल स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसका पुनरुद्धार किया और शिक्षा के उन्हीं प्राचीन आदर्शों को सन्मुख रखते हुए हिमालय की उपत्यका में, गङ्गा के तट पर, हरिद्वार के समीप कांगड़ी ग्राम में एक नवीन गुरुकुल की स्थापना की। यह गुरुकुल प्राचीन काल के भारद्वाज आदि ऋषियों के आश्रमों के समान ही उस महात्मा का आश्रम था जिसमें उस के सदृश अन्य त्यागी, सदाचारी, विद्वान्

भी थे। महात्मा गान्धी जी ने इस गुरुकुल का नाम तो सुना ही था। वे अफ्रीका से लौटते ही इसे देखने आये और इसे देख कर मुग्ध हो गये। इसी के अनुकरण में उन्होंने अपना पुनीत आश्रम अहमदाबाद में साबरमती के तट पर स्थापित किया। गुरुकुल के आदर्शों से प्रेरित हो कर ही स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बोलपुर के शान्त प्रदेश में शान्ति निकेतन नामक आश्रम प्रतिष्ठापित किया। इन आश्रमों को स्थापित करने का इन तीनों महात्माओं का उद्देश्य प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करना था। हिन्दू विश्वविद्यालय को स्थापित करते समय महामना मालवीय जी का उद्देश्य भी सरकार से नियन्त्रित एक विशालकाय गुरुकुल के निर्माण करने का था। परन्तु बाह्य कारणों से प्रेरित होकर वह संस्था प्राचीन आदर्शों की ओर जाने के स्थान पर पाश्चात्य विश्वविद्यालयों के आदर्शों पर चली गई।

गुरुकुल प्रणाली से संचालित विद्या संस्था में गुरु उसकी आत्मा के सदृश होता है तथा शिष्य उसके शरीर रूप होते हैं। यदि गुरुकुल में गुरु न हों तो वह गुरुकुल न रह कर एक निर्जीव सा साधारण विद्यालय रह जाता है। उत्तम गुरु के बिना एक विद्यालय मूर्ति विहीन विद्या-मन्दिर हो जाता है। गुरु का लक्षण शास्त्र में इस प्रकार किया है 'शान्तोदान्तः कुलीनश्च, विनीतः, शुद्धवेशवान्। शुद्धाचारः, सुप्रतिष्ठः, शुचिर्दक्षः, सुबुद्धिमान्। अध्यात्मध्यान निष्ठश्च, मंत्र तन्त्र विशारदः। निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते' अर्थात् जो व्यक्ति शान्त हो, अपनी इन्द्रियों को दमन किये हुए हो, नम्र हो, अपने वेश को स्वच्छ रखता हो, सदाचारी हो, लोगों में प्रतिष्ठित हो, स्वच्छता रखता हो, कार्य करने में दक्ष हो, बुद्धिमान् हो, अध्यात्म ज्ञानी हो, ध्यानी हो, वेदज्ञ हो, शास्त्रज्ञ हो, विद्यार्थियों में नियन्त्रण रखने में समर्थ हो तथा विद्यार्थियों में से जो क्षमा के योग्य हों उन्हें क्षमादान भी दे सकता हो उसे गुरु कहते हैं।

गुरुकुल कांगड़ी में प्राचीन शिक्षा प्रणाली के इन उच्च आदर्शों को अभी तक कायम रखा हुआ है। गुरुकुल कांगड़ी जब से बना है तब से इसमें शिक्षकों की नियुक्ति करते समय उन की उपाधियों को देखा ही जाता है, परन्तु वे सदाचारी और सच्चरित्र भी हों इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। इतना ही नहीं प्रत्युत गुरुकुल कांगड़ी में विशेष उपाधीधारी साधारण संसारीजन की अपेक्षा साधारण उपाधिधारी असाधारण सदाचारी पुरुष को अधिक पसन्द किया जाता है। गुरुकुल में आचार्य की नियुक्ति उसके उच्च आचार विचारों का होने के कारण की जाती है न कि उसके उपाधिधारी होने के कारण। शास्त्र में कहा है 'मात्रवान् पित्रवान् आचार्यवान् पुरुषोवेद' अर्थात् जिसे अच्छा गुरु मिल जाय वह मनुष्य मनुष्य बन जाता है। गुरुकुल का यह कार्य है कि वह बालकों को उनके अपने माता पिता से लेकर ऐसे उच्चात्मा गुरुओं के चरणों में बैठा दे कि जो उन्हें विद्वान् सत्पुरुष बना दें।

इस समय जब कि भारत को राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त हो चुकी है हमारा उद्देश्य उसे उन्नति के शिखर की ओर ले जाने का होना चाहिए। शिक्षितजनों के चरित्र के ऊंचा होने से भारत ऊंचा होगा। भारत का कायाकल्प करने के लिये विश्वविद्यालयों के संचालकों पर एक भारी उत्तरदायित्व आ पड़ता है। उ- को चाहिये कि वे विश्वविद्यालयों से सम्ब-

सार्व विद्या मन्दिरों में सद्गुरुओं का प्रतिष्ठान करें। छात्रालयों में एक दो उच्चात्मा अध्यापक ऐसे अवश्य रखने चाहियें जो सत्यमूर्त्ति, मन वचन और कर्म से अहिंसा व्रतधारी, खादी तथा स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करने वाले देश भक्त, निःस्वार्थी, सुशील, सदाचारी, सेवा-व्रतधारी, विद्वान् हों और जिन का ध्येय न केवल वचन से पर अपने चरित्र से विद्यार्थियों का चरित्र बनाना हो। विश्वविद्यालयों के उच्च पदों या अध्यक्षपद के लिये महात्मा मुन्शीराम और महामना मालवीय जैसे महापुरुष सदा नहीं मिल सकते तो भी क्योंकि उच्चात्मा महान् व्यक्तियों का अभाव कभी नहीं होता जो भी उच्चात्मा सदाचारी सत्पुरुष मिल सकें उन्हें इन पदों पर नियुक्त करना चाहिये। अभिप्राय यह है कि विद्या मन्दिरों में जहां विद्यार्थी विद्या की पूजा के लिये आते हैं ऐसे सद्गुरुओं का प्रतिष्ठान होना चाहिये जो विद्यार्थियों को विद्वान् बनाने के साथ चरित्रवान् भी बना सकें। यदि भारतीय विश्वविद्यालयों के संचालक चाहते हैं कि हमारी शिक्षित जनता का चरित्र ऊंचा हो जिससे भारत संसार के देशों के बीच प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त करें तो उन्हें चाहिये कि वे गुरुकुल कांगड़ी से पाठ सीखें और अपने विश्वविद्यालयों का गुरुकुल बना दें।

●

क्या आप महान् हैं ?

श्रीमती शकुन्तला देवी गुलेरी

महान् व्यक्ति क्या उचित है, यह जानता है; क्षुद्र किससे लाभ होगा इसका ज्ञाता होता है।

महत्ता में आत्मा से प्रेम होता है; क्षुद्रता में सम्पत्ति से प्रेम होता है।

महान् व्यक्ति किन भूलों से क्या नुकसान हुआ, यह स्मरण रखता है; क्षुद्र यह याद रखता है कि किस अनैतिकता से क्या फायदा उठाया।

महान् व्यक्तित्व में दूसरों के मत के प्रति उदारता व सहिष्णुता होती है पर मतैक्य नहीं होता। क्षुद्र व्यक्ति दूसरों की हां में हां तो मिला देता है और पूर्णतः सहमत भी प्रतीत होता है, पर उदारता व सहिष्णुता का उसमें नाम भी नहीं होता।

महान् व्यक्ति दृढ़ होता है पर झगड़ालू नहीं, वह मिलनसार होता है पर औरों के साथ गुटबन्दी नहीं करता; क्षुद्र व्यक्ति झगड़ालू होता है पर दृढ़ नहीं।

महान् व्यक्ति की सेवा आसान है, पर उसे प्रसन्न करना कठिन है-क्योंकि वह उचित कार्य से ही खुश हो सकता है; क्षुद्र व्यक्ति की सेवा कठिन है, पर उसे प्रसन्न करना आसान है-वह औचित्य-अनौचित्य को भुलाकर, उसकी दुर्बलताओं को प्रोत्साहन देकर, आसानी से प्रसन्न किया जा सकता है।

महान् व्यक्ति व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार ही हर एक से काम लेता है; क्षुद्र व्यक्ति मनुष्यों से, जिनका धर्म ही भूल करना है, काम लेते समय यह चाहता है कि वे कोई भी भूल न न करें।

तो क्या आप महान् हैं ?

●

स्वास्थ्य रक्षा

वैद्य ठाकुरदत्त शर्मा

मनुष्य का शरीर प्रभु की बनाई हुई एक सुन्दर, अद्भुत, चित्ताकर्षक और सुव्यवस्थित मशीन है। इसके प्रत्येक अवयव (पुरज़े) का ठीक ठीक चलना और अपना अपना काम करते रहना ही स्वास्थ्य है। इसके विपरीत जो हो वह रोग है। अर्थात् जिस समय कोई पुरज़ा अपना कार्य्य यथार्थ रूप से न करते हुए इस मशीन वा इसके किसी यंत्रांग के चलने में बाधक हो और विकार एवं प्रकृति में युद्ध होकर पीड़ा, बेचैनी, गर्मी, सर्दी आदि पैदा हो जाँय। इस मशीन के ठीक ठीक चलने के लिए चार अति-आवश्यक नियम हैं जो कि नीचे लिखे जाते हैं।

(१) ब्रह्मचर्य्य-स्वास्थ्य रक्षा के लिए इस शरीर रूपी घर की सब से आवश्यक नींव है। इसका तात्पर्य है शरीर के बल वीर्य्य की रक्षा करना। छोटी उम्र में ही बलदायक भोजन करना और उसे व्यायाम द्वारा पचाना। १६ से २४ वर्ष तक की आयु में उत्तम भोजन और अधिक व्यायाम करके अपने शरीर के अंग प्रत्यंग को पुष्ट करना। उच्च विचार, शिक्षादायक और सद्ग्रन्थों के पाठ तथा पवित्र कथा और सदुपदेश सुनने से मन को पवित्र रखना। गन्दे साहित्य, कुसंगति, अश्लील सिनेमा-चित्र, थियेटर, नाच रंग और तमाशों से दूर रहना।

(२) व्यायाम सदा करना, जिससे कि शरीर स्वस्थ और बलवान और होता है। यह दूसरा अतिआवश्यक नियम है।

(३) भोजन सादा, चबा चबा कर और थोड़ी सी भूख शेष रख कर प्रसन्न चित्त से करना। यह स्वास्थ्य का तीसरा अति आवश्यक नियम है। बड़ी आयु पाने वाले सब लोग सादा भोजन करते रहे हैं।

(४) मानसिक शक्ति चौथा आवश्यक नियम है। मन देह का राजा है। इसके गिरने से सारा शरीर गिर जाता है। मनुष्य, रोग की धारणा से रोगी और स्वास्थ्य की धारणा से स्वस्थ हो जाता है। जो कुछ तुम सोचते और कल्पना करते रहते हो, वैसे ही बन जाओगे। मन पीड़ा को उभार सकता है और इसे उखाड़ भी सकता है, रोग को उत्पन्न करता और उसको नष्ट भी करता है। हृदय की दुर्बलता से रक्त के श्वेत कण क्षीण होकर बाहर के कीटाणुओं का सामना नहीं कर सकते और हर रोग के आक्रमण का भय रहता है। इस लिए हृदय सदैव आह्लादित रक्खो। हँसो और खूब हँसो और "जब लगि रहै साँसा, तब लगि राखो आसा"। क्रोध न करने वाला, दया करने वाला, सच बोलने वाला, धोखा न देने वाला मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है। चिन्ताओं से आयु घटती है। व्यायाम करते, वायु सेवन करते, भोजन करते, और पानी पीते समय इच्छा शक्ति के लाभ उठाओ (ख) अरुणोदय के समय सूर्य के सामने खड़े हो जाओ, छाती खोल दो और और अनुभव करो कि सूर्य्य की प्राण-एवं-जीवन दायिनी किरणें आपके शरीर के भीतर प्रविष्ट होकर आपको स्वास्थ्य और आयु प्रदान कर रही हैं, आपके सब अङ्ग पुष्ट कर रही हैं, देह के दोषों को जला रही हैं और रक्त-कणों को शुद्ध और बलवान बना रही हैं। भूल जाओ कि तुम कितने बड़े हो। तुम तो सदैव युवा हो। प्रकृति प्रतिक्षण शरीर को नया करती रहती है, तुम कभी भी पुराने नहीं। (ग) बाईं हथेली पर पानी रख कर दाहिने हाथ की अंगुली से इस जल को स्पर्श करके अपने माथे, शिर, आंखें, नाक, कान, होंठ, कंठ, हृदय, नाभि, मस्तिष्क और भुजाओं पर

लगाओ और साथ ही ईश्वर से इनका स्वास्थ्य मांगो—

"हे प्रभु, मेरा शिर दृढ़ और स्वस्थ्य रहे, केश काले और कोमल रहें, मन में नेकी (सदाशयता) आवे। मेरे नाक, कान आँख जिह्वा और दाँत, कंठ, हृदय और आमाशय, यकृत, प्लीह और अंतड़ियाँ—सब की सब बलयुक्त हों, शुद्ध और निर्मल हों। मेरी भुजाओं में अजेय पराक्रम भरे, मैं एक सौ वर्ष तक युवा रहूं, किसी के आश्रित न रहूं।"

सदा स्वास्थ्य का ही मनन करो। ऐसा विचार मन में न लाओ कि अमुक रोग दूर होवें। क्योंकि रोग का नाम लेने से हृदय में रोग होने का विचार आजाएगा। शरीर के अंग प्रत्यंग की स्वस्थ-दशा का चिन्तन करो। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु से स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता खींचो। उद्यान की हरियाली तुम्हें हरा भरा रक्खे, पर्वतों की ऊँचाई तुम्हें ऊँचा करे और मैदानों की विशालता तुम्हें विशाल बनावे।

ऊपर के चार नियम ऐसे हैं कि जिन पर प्रत्येक व्यक्ति चल सकता है और इनका यथावत् पालन हो जाय तो फिर सब कुछ है। नीचे इनके सहायक कुछ नियम नियम और लिखे जाते हैं।

(क) सोना भी मनुष्य के लिए आवश्यक है। बालकों को ८ घंटे और बड़ों को ६ घंटे सोना चाहिए। सोना ऐसे समय चाहिए कि प्रातःकाल सूर्य्योदय से पहले उठ बैठें। सोते समय शरीर को ढीला छोड़ दो और मन से चिन्ताओं को निकाल दो। दक्षिण दिशा की ओर पैर करके न सोओ और हृदय पर हाथ रख कर भी नहीं सोना चाहिए। हवादार स्थान में सोओ, और सोते समय मुँह न ढाँको। भरे पेट न सोओ। हमेशा खुली हवा में सोओ। इससे नींद गाढ़ी आती है और मनुष्य सदा प्रसन्न और प्रफुल्ल उठता है। जहाँ तक बन पड़े खुली हवा में तो दिन रात रहना चाहिए।

(ख) शरीर को सीधा रखना और रीढ़ (मेरुदंड) के भीतर प्राण की धारा भरते रहने से आयु की वृद्धि होती है और पेट के अंगों का स्वास्थ्य बराबर बना रहता है। इस कारण चलते फिरते और सीढ़ी पर चढ़ते, काम काज करते, लिखते पढ़ते, भोजन करते अथवा वैसे ही बैठे हुए शरीर को सीधा रखने का अभ्यास डालो।

(ग) सफ़ाई का पूरा ध्यान रखो। शरीर पर मैल न रहे। स्नान नित्य करो और शरीर के अंगों को साफ़ अगोछे से भलि प्रकार रगड़ कर पोंछ डालो। वस्त्र भी मैले न हों और घर भी साफ़ सुथरा रखा जाय। दाँत सदैव उत्तम मञ्जन और ताजी दाँतुन से साफ़ रखे जाँय। भोजन से पहले और बाद में अच्छी तरह कुल्ली की जाय। नेत्रों को कभी कभी साफ स्वच्छ जल में खोल कर और सुर्मा (अञ्जन) लगा कर साफ़ रखो। मल मूत्र के वेग को रोक कर अन्तरंग को भी मैला न करो।

(घ) वस्त्र तंग नहीं पहिनने चाहिएं। तंग पेटियां, ऊँचे कालर, तंग और ऊँची एड़ी के जूते हानिकारक होते हैं। अन्दर के कपड़े शीघ्र बदल डालो। कभी-कभी शरीर को नंगा करके धूप सेंको। सूर्य-स्नान बल और स्वास्थ्य देने वाला है। कभी कभी नंगे पैर घास पर चला करो। साधारणतया शिर को ठंडा और पैरों को गरम रखना चाहिए। जूते और कपड़े दूसरों के बर्ते हुए नहीं पहिनने चाहिएं। वस्त्रों में नमूने की अपेक्षा आराम का अधिक ध्यान रक्खो।

(ङ) मुटापा आयु को क्षीण करता है।

पुस्तक-परिचय

वेदवाणी—सामवेद पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध। मूल्य ४)। अनुवादक-आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री। प्रकाशक—वेदवाणी कार्यालय, जङ्गमबाड़ी, बनारस।

वेदवाणी के संचालकों का हम अभिनन्दन करते हैं कि उन्होंने सामवेद सपूर्ण का सरल हिन्दी भाष्य जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है। जन साधारण इस भाष्य को पढ़कर ईश्वरीय ज्ञानवेद के तत्त्व को समझने तथा उसके अमृत रूपी उपदेशों को पान करके प्रसन्नता लाभ कर सकते हैं।

आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री महोदय ने यह सराहनीय परिश्रम करके वेद के प्रेमी तथा श्रद्धालुओं को अनुग्रहीत किया है। हर आर्य परिवार में नित्य स्वाध्याय के लिये यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

हिन्दी समाचार पत्र सूची (भाग १)—सम्पादक श्री बंकटलाल ओझा। प्रकाशक हिन्दी समाचार पत्र संग्रहालय, कसारट्टा मार्ग, हैदराबाद दक्षिण। आकार २०×३०=१६, पृष्ठ संख्या ८०, प्रथम संस्करण, मार्च १९५०। मूल्य १)। १८२६ से १९२५ तक भारत में या विदेशों में जितनी भी पत्र-पत्रिकाएं हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं उनकी अकारादि क्रम से यह सूची है। ओझा जी ने हिन्दी समाचार पत्रों के संग्रह का कार्य अपने संग्रहालय में आरम्भ किया है। वे सब पत्रों की पूरी फ़ाइल रखने का प्रयत्न भी कर रहे हैं। अन्वेषकों और ऐतिहासिकों के लिये यह कार्य बहुत महत्व का है।

गुरुकुल के स्नातक—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से सन् १९५० तक निकलने वाले स्नातकों का परिचय देने वाला यह ग्रन्थ है। अनेकों चित्र और आकर्षक टाइटल है। मूल्य ३)। मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

[पृष्ठ २७ का शेष]

शरीर को सदा अपने वश में रखने की चेष्टा करो। सब से आवश्यक यह है कि कम खाया जाय और अधिक गरिष्ठ भोजन न किया जाय। अल्पाहार से आयु बढ़ती है, नींद कम आती है, काम अधिक हो जाता है और शरीर में दूषित पदार्थ नहीं जाते। एक दिन का अधिक आहार भी कई दिन के उपवास से बुरा है दीर्घायु पाने वाले सब लोग सादा भोजन करने वाले मिताहारी नियमित जीवन व्यतीत करने वाले हुए हैं। मांस मनुष्य का आहार नहीं है। पीने के वास्ते साफ़ सादा जल ही श्रेष्ठ है। चाय, कहवा, सोडा लैमनेड का अभ्यास ठीक नहीं होता। भांग, ताड़ी, बियर और शराब आदि तो अत्यन्त हानिकारक नशे हैं। नशे के लिए कोई कोई मूर्ख हुक्का, सिगरेट, सिगार, अफीम और चरस भी लेने लगते हैं। ये सब स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक हैं।

गुरुकुल-समाचार

कुलपति जी का प्रवचन

इस सप्ताह में नवीन सत्र के प्रारम्भ होने पर प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति एम. पी. कुलपति ने प्रार्थनोपरान्त महाविद्यालय के छात्रों का भाषण दिया जिसमें उन्होंने सर्व प्रथम इस विषय पर प्रकाश डाला कि प्राचीन काल में जब कभी नूतन सत्र प्रारम्भ हुआ करते थे तब आचार्य गुरु शिष्य आदि समस्त कुलवासी एकत्र होकर विश्व कल्याण के लिये यज्ञ होम किया करते थे। उस दिन आचार्य या कुलपति छात्रों को नये सिरे से शिक्षा का लक्ष्य बताते थे। चरित्र निर्माण, आचार, व्यवहार, नैतिक दृढ़ता आदि विषयों का विशद व्याख्यान करते थे और छात्रों में विश्वजनीनता, राष्ट्रीयता आदि पुण्य भावों को जागृत करते थे। आज कल यह पुरातन परिपाटी प्रत्यक्षतः लुप्त होती जा रही है। यज्ञादि होना तो दूर रहा। आधुनिक यूनिवर्सिटियों में आचार्य या कुलपति के नवीन सत्र शुरू होने के उपलक्ष्य में भाषण तक नहीं होते. जिससे छात्र आचार चरित्र, नैतिकता, आदि भावनाओं की प्रेरणा प्राप्त करें।

इसी पुरातन परिपाटी को ध्यान दिलाते हुए उन्होंने आगे कहा कि आज हमारा राष्ट्र स्वतंत्र है। इसके अधिकांश नायकों में अवसरवादिता. काला बाजारी आदि अनैतिक व्यवहारों का बोलबाला है जिसके कारण हमारे राष्ट्र की सर्वाङ्गीण व्यवस्था का ह्रास होता जा रहा है। उसकी रक्षा के लिये तुम छात्रों ने भावी नायक बनना है और राष्ट्र की समुचित व्यवस्था करने के लिये तुम्हारे हाथो में आचार चरित्र की शुद्धता, नैतिक दृढ़ता, सत्यसाधना, तपस्याबल का सबल होना आवश्यक है। आज गुरुकुल तुम्हें इसी तपोबल की साधना करा रहा है इसी आचार चरित्र की शुद्धता का पाठ पढ़ा रहा है। नैतिक, दृढ़ता सत्यसाधना के जीवन में से गुजर कर तुम्हें दृढ़ बना रहा है। इसके लिये तुम्हें सदा सतर्क रहना चाहिये।

उक्त नैतिक साधना की प्राप्ति के लिये महाभारत, रामायण आदि भारतीय धर्मशास्त्रों का गंभीर अध्ययन होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य, इतिहास आदि अन्य विषयों का भी गहन अध्ययन करने को प्रेरित किया। छात्र जीवन गहन अध्ययन व परिश्रम का जीवन है।

गुरुकुल की आज की शिक्षा पद्धति पर स्थूलतः प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि गुरुकुल की स्थापना आधुनिक पाश्चात्य विद्या प्राचीन आध्यात्मिक, वैदिक विद्या के साथ समन्वय करते हुए तप साधना आदि पुरातन पद्धति के द्वारा शिक्षा का वाहन चलाने के लिये हुआ है क्योंकि आज कल के महामनीषी एक स्वर से आधुनिक शिक्षा पद्धति की कुत्सा कर रहे हैं। आधुनिक शिक्षा पद्धति से मनुष्य का मनोबल, बुद्धिबल, शारीरिक बल आदि का सर्वतोमुखी ह्रास हो रहा है। आज कल की यूनिवर्सिटियां अंग्रेजी शासन को चलाने के लिये दुबले पतले क्लर्क उत्पन्न करने वाले कारखाने मात्र हैं।

कुलपति द्वारा वर्तमान स्थिति का सिंहावलोकन

महाविद्यालय की वाग्वर्धिनी सभा के अधिवेशन में कुलपति प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति जी का मनोरञ्जक भाषण हुआ। इसमें गुरुकुल के छात्र तथा कर्मचारियों की बड़ी उपस्थिति थी।

भाषण का विषय था—'कांग्रेस अध्यक्ष, चुनाव की सरगर्मी व तद्विषयक नेहरू जी की नीति तथा संसद का वर्षाकालीन अधिवेशन'। सर्व प्रथम उन्होंने संसद् के वर्षाकालीन अधिवेशन का जिक्र किया जिस में उन्होंने राष्ट्रपति के भाषण की चर्चा की। फिर उसके बाद कोरिया का प्रश्न, बङ्गाल का प्रश्न तथा बिहार के दुर्भिक्ष आदि के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव की सरगर्मी के सम्बन्ध में कहते हुए उन्होंने कहा कि राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन को इस कारण अधिक मत मिले क्योंकि टंडन जी सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने वाले कांग्रेस पार्टी की अनैतिकता का अनुशासन करने वाले कठोर व्यक्ति हैं।

उत्कल यूनिवर्सिटी के वाइसचांसलर का आगमन

उत्कल विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर श्रीयुत चिन्तामणि जी आचार्य दो दिन तक गुरुकुल के मान्य अतिथि रहे।

इस अवधि में उन्होंने समस्त गुरुकुल का पर्यटन किया तथा सब विभागों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण किया। यहां के पुरातत्व संग्रहालय का अवलोकन करते हुए जब बङ्गाल, बिहार में होने वाले ताड़-खजूर पत्र के उद्योग धन्धों के नमूने देखे तब उन्होंने कहा कि हमारे प्रान्त की भी कौटेज इन्डस्ट्रीज़ इस वस्तु का अच्छा काम करती है। वहां से आप के संग्रहालय के लिये कुछ सुन्दर कलापूर्ण वस्तुएं भेज देने का वचन दिया।

उस के बाद जब उन्होंने प्राचीन उड़िया लिपी का कुछ संग्रह देखा तब उन्होंने गुरुकुल के संग्रहालय के लिये अन्य प्राचीन उड़िया साहित्य की पुस्तकों को प्रदान करने का वचन दिया। इस अवधि में उनके यूनिवर्सिटी लैक्चर का भी मध्यान्ह समय वेद भवन में आयोजन किया गया था। जिसमें गुरुकुल के समस्त उपाध्याय, अध्यापक, छात्र तथा अन्य कर्मचारी अच्छी संख्या में उपस्थित थे।

भाषण प्रारम्भ करने से पूर्व उन्होंने अपने हिन्दी में व्याख्यान देने की असमर्थता पर दुःख प्रकट किया। अपने एक घण्टे के भाषण में उन्होंने सर्व प्रथम गुरुकुल में आने का स्वर्ण अवसर प्राप्त करने पर हर्ष प्रकट किया तथा गुरुकुल ने जो उनका लघु आतिथ्य अभिनन्दन किया था उस के प्रति आभार प्रदर्शन किया। इसके अतिरिक्त गुरुकुल पद्धति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। इसके आगे उन्होंने उत्कल प्रान्त के प्राचीन इति वृत्त पर सुरुचि पूर्ण प्रकाश डाला। उन्होंने उत्कल शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये कहा कि उत्कल "उत्कला" का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है जहां की कला कुशलता सर्वोत्कृष्ट है। इसका उदाहरण भुवनेश्वर का सर्व प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर है। इसके अतिरिक्त कोणार्क नामक मन्दिर भी आजकल प्राचीन कला कुशलता के लिये सार्वभौमिक रूप ग्रहण कर रहा है। सरस्वती यात्रार्थ विद्वन्मण्डलियां यहां पर नवम्बर से अप्रेल के बीच में भ्रमण करने आती हैं। इसी रूप में एक बार प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल जी भी पधारे थे। तदनन्तर अशोक के कलिङ्ग विजय व जगन्नाथ धाम की ऐतिहासिक विवेचनता पर प्रकाश डाला तथा उड़िसा की रीतिरिवाज़ व प्रथा परम्पराओं का जिक्र किया और यह भी बताया कि उड़ीसा उड्र का अपभ्रंश है।

अन्त में उन्होंने विश्वविद्यालयों में संस्कृत की अनिवार्यता तथा हिन्दी माध्यम होने की

विवेचना की। संस्कृत की अनिवार्यता पर विवेचना करते हुए यह भी कहा कि हम संस्कृत के प्रचार के कारण ही आन्तरिक प्रान्तीय सगठन को मजबूत बना सकते हैं तथा उसकी समस्याओं को सुलझा सकते हैं।

आयुर्वेद परिषद् में व्याख्यान

आयुर्वेद परिषद् की तरफ से देहरादून निवासी श्री डा० मदनमोहन एम० बी० बी० एस० नेत्र विशेषज्ञ ने आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों के मध्य सारगर्भित भाषण दिया। जिसका विषय था—भारतवर्ष में अन्धता का प्रसार तथा उसका निवारण। यह भाषण विश्वविद्यालय के वेद मंदिर में रात्रि को हुआ था जिस में रोगों के चित्र दिखाने के लिये प्रोजेक्टर का समुचित प्रबन्ध था। इस में गुरुकुल के अन्य प्रोफेसर तथा ज्ञान पिपासु कर्मचारी भी उपस्थित थे। भाषण मनोरंजक था। रतौंधी आदि सम्पूर्ण नेत्र रोगों के कारण तथा उनके निवारण के उपायों पर संपूर्णतः प्रकाश डाला गया था।

गांधी जयन्ती उत्सव

सोमवार २ अक्टूबर को गुरुकुल में गांधी जयन्ती उत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया। प्रातःकाल ठीक ८ बजे राष्ट्रीय गीत के पश्चात् राष्ट्रीय ध्वजारोहण श्री आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति जी ने किया। उन्होंने एक छोटा तथा शिक्षाप्रद वक्तव्य दिया जिसमें कहा कि यह ध्वजा महात्मा गांधी जी के उच्च आदर्श सत्य और अहिंसा का प्रतीक है। हमें इस ध्वजा की अपने तन मन से रक्षा करनी चाहिये। इस के पश्चात् विद्यालय भवन में आचार्य जी के सभापतित्व में एक विराट सभा का आयोजन किया गया जिस में उपाध्याय, अध्यापक छात्र तथा अन्य कर्मचारी अच्छी संख्या में उपस्थित थे। उपाध्यायों और ब्रह्मचारियों ने गांधी जी के जीवन पर व्याख्यान दिये। प्रो० लालचन्द जी ने बताया कि फ्रांस के सब से बड़े दर्शन शास्त्र के ज्ञाता श्रीयुत डा० रोमनरोलैन्ड ने गांधी जी को संसार में सर्वोत्कृष्ट मनुष्य बतलाया है। अन्त में सभापति महोदय जी का भाषण हुआ जो कि बहुत मनोरंजक था। जिस में उन्होंने कहा कि गांधी जी ने जिस रामराज्य के लिये स्वतन्त्रता प्राप्त की थी वह आज कहां ? गांधी जी का जीवन तप और त्याग तथा अपरिग्रह का था। लेकिन हम आज यह अपने नेताओं में नहीं पाते। यदि हमें रामराज्य स्थापित करना है तो हमें अपरिग्रह नियम की पालना करनी पड़ेगी जिस का बापू जी ने हमको पाठ पढ़ाया था। आज हम लोग भौतिकवाद की ओर दौड़े जा रहे हैं। लेकिन इस मार्ग से हम रामराज्य स्थापित नहीं कर सकते। अपरिग्रह को हम अपनायें तो ही हम बापू जी के कथनानुसार देश को समृद्ध एवं शक्तिशाली बना सकते हैं।

जन्माष्टमी पर्व

श्रीकृष्ण जी का जन्मोत्सव श्रीयुत आचार्य प्रियव्रत जी के सभापतित्व में बड़े समारोह के साथ मनाया गया जिस में कुलवासी सम्मिलित थे। इसमें अध्यापकों तथा उपाध्यापकों के सुन्दर एवं शिक्षाप्रद व्याख्यान हुवे। श्री सभापति महोदय ने एक सारगर्भित प्रवचन दिया जिस में उन्होंने यह बताया कि हम लोगों का कर्तव्य है कि इस पर्व को अन्य पर्वों की भांति सर्वदा मनाते रहें, क्योंकि महापुरुषों का जीवन ही हमारा एक सच्चा पथ प्रदर्शक हो सकता है। इन्हीं के द्वारा ही हम अपने जीवन को भी उन्नत कर सकते हैं। हम योगी राज कृष्ण जी की बनाई हुई गीता की

सरल भाषामयी तथा भाव गम्भीर शिक्षा से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को आध्यात्मय बना सकते हैं। जब हम योगीराज कृष्ण जी का अवतार मान लेते हैं तब वे जन साधारण की पहुंच से बाहर हो जाते हैं। सत्य तो यह है कि श्री कृष्ण जी का जीवन मानव समाज के लिये एक महान् देन है।

कंचन जंघा पर अभियान

गुरुकुल विश्वविद्यालय के तीन युवक स्नातक कञ्चन जङ्घा पर चढ़ाई करने गये हैं। इन अभियान कर्त्ताओं के नाम ये हैं—श्री मनोहर विद्यालङ्कार (देहली), श्री क्षितीश विद्यालङ्कार, तथा श्री विद्यारत्न आयुर्वेदालङ्कार। इस दल में एक अन्य सदस्य भी है। दल के नायक श्री मनोहर विद्यालङ्कार साहसी पर्यटक हैं और इन्हें पर्वत यात्रा का अच्छा अनुभव प्राप्त है। सन् १९३७ में कैलाश मानसरोवर की यात्रा करने के बाद से ही उनकी निरन्तर यह अभिलाषा बनी रही थी कि हजारों मील की दूरी से आने वाले विदेशी अभियानकर्त्ताओं की तरह वे भी हिमालय की ऊंची दुर्गम्य चोटियों पर सफलता से चढ़कर भारतमाता का नाम उज्वल करें। जहां तक हमारा ज्ञान है श्री मनोहर विद्यालङ्कार और उनके दल के सदस्य प्रथम भारतीय हैं जो हिमालय पर इतना ऊंचा चढ़ने का साहस कर रहे हैं। कुलवासियों, समस्त गुरुकुल प्रेमियों तथा सब देश वासियों को इससे सचमुच गौरव प्राप्त होगा। और इससे भविष्य में ऐसे साहसिक कार्यों को करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी। भारतीय अभियान कर्त्ताओं के इतिहास में पहला अध्याय लिखने वाले श्री मनोहर विद्यालङ्कार और उनके दल की हम सफलता चाहते हैं।

कार्तिक मास में रोगी ब्रह्मचारियों का विवरण

नाम ब्र०	श्रेणी	नाम रोग	कितने दिन रोगी रहा
विपिनचन्द्र	१४	एडिनौयड्स ऑपरेशन	६
जीवनप्रकाश	१३	चोट	३
नरेशचन्द्र	१३	चोट	२
जयदेव	१३	उदरशूल	२
नरेन्द्र	११	व्रण	३
श्री कान्त	१२	चोट	७
सुखदेव	६	ज्वरकास	३
रघुवीर	८	ज्वर	३
धर्मवीर	८	”	८
विश्वामित्र	७	ज्वरकास	४
श्री कृष्ण	६	ज्वर	२
कर्मपाल	६	नेत्राभिष्यन्द	३
रामपाल	६	चोट	६
रामशंकर	६	ज्वर	२
धर्मव्रत	६	खुजली	६
रणधीर	५	ज्वर कास	३
ओम्प्रकाश	५	कर्ण शूल	३
वीरेन्द्र (चूड़पुर)	५	वात शूल	४
हरिनन्दन	५	ज्वर	
त्रिपुरेन्द्र	४	ज्वर कास	४
राजकुमार	४	”	३
वेदप्रकाश	४	”	३
सत्येन्द्रपाल	३	”	४
अश्विनीकुमार	४	”	३
सुभाष	२	”	३
क्षितेन्द्र	२	”	३

इस मास उपरोक्त ब्रह्मचारी रुग्ण हुये थे। अब सब स्वस्थ हैं।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की
विशेष गुणदायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निबलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३॥।) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।=) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निबलता को हटाकर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निबलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, २।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका
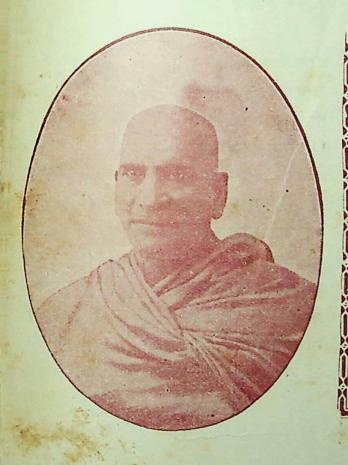
श्रद्धानन्द जी का नाम याद करके बहादुरी, हिम्मत और त्याग की तसवीर सामने आ जाती है और इस तसवीर को देख कर कुछ अपनी भी हिम्मत बढ़ जाती है ।

—जवाहरलाल नेहरु ।

❀

स्वामी श्रद्धानन्द जी की याद आते ही १९१९ का दृश्य मेरी आंखों के सामने खड़ा हो जाता है । सरकारी सिपाही फायर करने की तैयारी में है । स्वामी जी छाती खोल कर सामने जाते हैं और कहते हैं—लो, चलाओ गोलियां । उन की उस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं हो जाता ! मैं चाहता हूँ कि उस वीर सन्यासी का स्मरण हमारे अन्दर सदैव वीरता और बलिदान के भावों को भरता रहे । - वल्लभभाई पटेल।

पौष २००७

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

वर्ष ३ अङ्क ५

गुरुकुल-पत्रिका

पौष २००७

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

हमारे पथप्रदर्शक

डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद

स्वामी श्रद्धानन्द जी से प्रथम परिचय का सौभाग्य मुझे भागलपुर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समय प्राप्त हुआ। उस समय तक स्वामी जी ने संन्यास नहीं लिया था और महात्मा मुन्शीराम के नाम से ही प्रसिद्ध थे। गुरुकुल की स्थापना करके राष्ट्रीय पद्धति से शिक्षा देना उन्होंने बहुत पहले ही आरम्भ कर दिया था। और गुरुकुल का काम शान से चल रहा था। आपके हिन्दी प्रेम और हिंदी-सेवा को देखकर ही सम्मेलन ने सभापति के पद पर आपका निर्वाचन किया था। सम्मेलन का काम जिस खूबी के साथ आपने निबाहा, वह मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। पर स्वामी जी के और गुणों को भारतवर्ष १६१६ और उसके बाद ही पूरी तरह जान सका। स्पष्ट-वादिता और निर्भीकता के आप मूर्तिमान स्वरूप थे। वह निर्भीकता जिस प्रखर ज्योति के साथ अङ्गरेजी सरकार के सामने चमकती थी, उसी ज्योति के साथ औरों के मुकाबले में भी अपनी छटा दिखलाती थी। जो लोग काले कानून के विरोधी-आन्दोलन के समय दिल्ली के चांदनी चौक में मौजूद न भी थे, उनके हृदय-पट पर भी स्वामी जी की वह मूर्ति अमिट रूप से चित्रित है जो सीने को अङ्गरेज़ी गोलियों और संगीनों के सामने खोलकर हृदय की शुद्धता और निर्भीकता दिखलाती है। उसी शुद्धता ने जामा-मस्जिद के मञ्च पर से उपदेश करवाया और हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य का मनोरम दृश्य दिखलाया और उसी दृढ़ता, सत्यनिष्ठा, स्पष्टवादिता और निर्भीकता ने आततायी के हाथों शरीरपात भी कराया। भारत के आधुनिक इतिहास में स्वामी जी का स्थान पथप्रदर्शक का है, और जिनको उनके साक्षात् का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, उनके लिये स्वामी जी का जीवन वृत्तान्त पढ़ना ही मनुष्य को उन्नति मार्ग पर अग्रसर करने वाला है। स्वामी जी ने गुरुकुल की स्थापना करके कुछ ब्रह्मचारियों के शिक्षण का ही प्रबन्ध नहीं किया उनका सारा जीवन देश के लिये एक महान् गुरुकुल का काम कर रहा है, और करता रहेगा।

●

श्रद्धाञ्जलियां

आत्म नियन्त्रण का अभ्यास

'जिस अभिलाषा से प्रेरित होकर स्वामी जी ने गुरुकुल की नींव डाली थी उसे वे सदा हृदय में रखते हुये और अपने प्रतिदिन के जीवन में आत्मनियन्त्रण का अभ्यास कर अपने को इतना शक्तिमान् बनायें कि वे देश के भविष्य निर्माण में ऊँचा भाग ले सकें।' —राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन।

❀

गुरुकुल अधिकाधिक उन्नत हो

'मेरा यह संक्षिप्त संदेश स्वामी जी के प्रति सम्मान और सदिच्छाओं के लिये समर्पित है। आशा है गुरुकुल कांगड़ी निरन्तर विशाल होता चला जायगा, और अपने अमर संस्थापक की आकांक्षाओं को पूर्ण करेगा; जिस की पुण्य-स्मृति आप २३ दिसम्बर को मनाने जा रहे हैं।' —राजगोपालाचार्य।

❀

साहसी श्रद्धानन्द

'मैं अपने को इस बात से गौरवान्वित समझता हूँ कि स्वामी जी की पुण्य स्मृति में मुझे भी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का अवसर दिया गया है। मुझे तो स्वामी जी के अनेक गुणों में उनका असीम साहस सब से अधिक आकर्षक प्रतीत होता है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक साहस के साथ वे जन्म से मृत्यु तक कार्य करते रहे। उनका सात्विक हठ बहुत ही प्रिय था। उनका सारा जीवन वीरोचित था और अन्त में भी उन्हें वीर गति ही मिली। ऐसे ही महापुरुष हमारे देश का सिर इस गिरी अवस्था में भी उन्नत किये हुये हैं।

यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छत्वं, मम तेजोंशसंभवम्॥'

—श्री प्रकाश।

❀

भारत की सर्वश्रेष्ठ विभूति

'श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस २३ दिसम्बर को गुरुकुल में मनाया जायगा, यह जानकर खुशी हुई। स्वामी जी की पुण्य स्मृति को निरन्तर देश और समाज के सामने जीवित और जागृत रखना उपयोगी और आवश्यक है। स्वामी जी का स्थान हमारे देश की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों में है और सदैव रहेगा। उनका देश प्रेम, भारतीय-संस्कृति और सभ्यता के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास, अदम्य साहस और वीरता असाधारण त्याग, निर्बल और दलितों के प्रति आन्तरिक प्रेम और सहानुभूति और पुनीत सदाचार भारतीय पुरुष रत्नों के इतिहास में सदैव अंकित रहेंगे।

मैं आशा करता हूँ कि गुरुकुल उनके जीवन से शिक्षा-ग्रहण करता रहेगा और उनके सिद्धान्त और आदर्शों के आधार पर इस संस्था की बराबर उन्नति होती रहेगी।'

—गोविन्दवल्लभ पन्त।

❀

सेवा और त्याग की मूर्ति

'स्वामी श्रद्धानन्द इस देश के सर्वमान्य नेता थे। उनकी स्मृतियों को हम कभी भूल नहीं सकते। उनकी सेवा, उनका त्याग, उनकी कार्य क्षमता हमारे लिये आदर्शस्वरूप हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष उनका गुणगान करें और अपने को इस योग्य बनायें कि उनका महान कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न करें।' — अमरनाथ झा।

❀

राष्ट्रीय शिक्षणालय के प्रथम पुरोहित

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने राष्ट्रीय सेवा के अनेक क्षेत्रों में अग्रदूत का कार्य किया है। राष्ट्रीय शिक्षा रूपी यज्ञ के तो वे प्रथम पुरोहित कहे जा सकते हैं। उनका बलिदान हम सबके जीवन को अनुप्राणित करे।

—आनन्द कौसल्यायन।

❀

वे सच्चे सेवक थे

'अमर हुतात्मा प्रातः स्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान-दिवस मनाना आपके लिये उपयुक्त ही है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली-जिसका केन्द्र गुरुकुल कांगड़ी है-के पुनरुद्धारक वे ही थे। वह उनके जीवन का एक प्रधान कार्य है। यों तो उनका प्रायः सम्पूर्ण जीवन आर्य समाज के लिये ही बीता था। रात दिन उसी चिन्ता में मग्न रहा करते थे। और अपने साथ समाज सेवकों के जवान इकट्ठे करके सदा उसी कार्य में लगे रहते थे। उनके लिये अक्षरशः यह कहा जा सकता है कि आर्यसमाज के लिये वे जिये और उसी के लिये मरे। उनके जीवन और मृत्यु से आर्यसमाज बहुत ऊँचा उठा।

मुझे सन्देह नहीं कि उनकी स्मृति हमें कर्त्तव्य पथ की ओर ले जाने में सहायक होगी। और गुरुकुल के ब्रह्मचारी अपना जीवन उस आदर्श पर ढालने का यत्न करेंगे।'

—घनश्यामसिंह गुप्त।

❀

धर्म तथा राष्ट्र के निःस्वार्थ सेवक

'धर्म और राष्ट्र की निःस्वार्थ तथा निरन्तर सेवा का व्रत लेकर ही हम कुलपति अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के ऋण से मुक्त हो सकते हैं। इस अवसर पर मेरा यही सन्देश है कि ईश्वर हमें बल दें कि हम उनके पद चिन्हों पर चल सकें।'

--देशबन्धु गुप्त।

❀

अपूर्व-सेवावृत्ती

'गुरुकुल के छात्र स्वामी जी के जीवन से एक पवित्र पाठ सीख सकते हैं और वह यह कि स्वामी जी सेवा के लिये जिन्दा रहे और सेवा के ही लिये मरे। संक्षेप में यही मेरा सन्देश है।'

--घनश्यामदास बिड़ला।

❀

वे समस्त संसार को आर्य देखना चाहते थे

'श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का शुद्धि सन्देश अर्थात् 'कृण्वन्तो-विश्वमार्यम्' के आदर्श का भारत तथा यूरोप, अमेरिका आदि अन्य देशों के लोगों में जो आर्यवंश के (रक्त के) होते हुये भी आर्य-धर्मी नहीं हैं उनमें आर्य-धर्म का प्रचार करना गुरुकुल के प्रत्येक स्नातक का विशेष ध्येय होना चाहिये।'

--जुगलकिशोर बिड़ला।

❀

निर्भय योद्धा

'स्वामी श्रद्धानन्द एक ऐसे पुरुष थे, जिन्हें 'यथावादी तथाकारी' कहा जा सकता है। अपनी मातृभूमि से सब तरह की बुराइयों का नाश करने में वह एक निर्भय योद्धा थे। वास्तव में उन्होंने अपना सभी कुछ होम कर अन्त में मातृभूमि की सेवा के लिये अपना जीवन भी समर्पित कर दिया। अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिये उन्होंने अपने जीवन का भी मोह नहीं किया।'

—विधुशेखर भट्टाचार्य।

❀

जनता का निर्भीक सेवक

'स्वामी श्रद्धानन्द जी एक महापुरुष थे। उन्होंने अपना सारा समय हिन्दु जाति के उपकार और संगठन में लगा दिया और अन्त में इसी कारण उन्होंने अपने प्राण न्योछावर कर दिये। उनकी वर्षी मनाते समय उनके अनुयायियों के लिये मेरा यही सन्देश है कि सब निर्भीक जनता के सेवक बनने का यत्न करें।'

—बी. जी खेर।

❀

श्रद्धा का आनन्द

श्री आचार्य अभयदेव

मुन्शीराम से श्रद्धानन्द होने वाले हमारे कुलपिता ने सन्यासी बनते समय जिस महान् आनन्द की उपलब्ध की वह श्रद्धा का आनन्द था। उन्होंने संन्यासी होने पर लाहौर समाज के उत्सव पर जो 'श्रद्धा' पर व्याख्यान दिया था वह आज भी हमें ऊँचे उठने को ललकार रहा है; आज भी ज्योतिस्तम्भ का काम कर रहा है। वह व्याख्यान वस्तुतः फिर फिर पढ़ने योग्य है, आज भी ताजा है। उन्होंने उसके बाद जो साप्ताहिक पत्रिका गुरुकुल से निकाली उसका नाम 'श्रद्धा' रखा था। 'अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति' यह गीता का श्लोक वे अक्सर बोला करते थे। ज्ञानयुक्त श्रद्धा रखने के कारण वे कभी भी संशयात्मा, किंकर्त्तव्य-विमूढ़ या ढुलमिल मति एक क्षण भर के लिये भी नहीं होते थे। अन्दर से हमारा नाश कर देने वाला संशय राक्षस उनके सामने फटक नहीं सकता था। वे सदा श्रद्धापूर्ण थे, अतएव अजेय थे। वे वीर थे। वे बीहड़ जंगलों को चीर कर अपना नया सीधा रास्ता बनाने वाले शेर थे, दुनियां के अश्रद्धालुओं की बनाई हुई लम्बी चौड़ी चक्करदार पगडंडिओं में घूमते हुये सड़ना उन्हें सह्य न था। दुनियापन उन्हें फुसला नहीं सकता था, उनके सत्य के मार्ग पर कोई रुकावट नहीं खड़ी कर सकता था। जो सत्य होता था, कर्त्तव्य था उसे वे करते ही थे। अतः वे जिनके साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता उन अङ्गरेजों की संगीनों के सामने छाती तान कर खड़े हो सकते थे। मार्शल-ला के दिनों में जब पञ्जाब के आसमान में उड़ने वाले पक्षियों के भी पर जलते थे, तब वे पञ्जाब में घूम घूमकर पञ्जाब को होश में लाकर वहां राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन सफलतापूर्वक करा सकते थे, और अन्त में अम्लान चित्त से बल्कि उसकी हित-कामना करते हुये अब्दुल रशीद की गोली भी खा सकते थे। सच तो यह है कि उनके लिये कुछ भी 'असम्भव' कहलाने वाला असम्भव नहीं था। यह सब इसी लिये था क्योंकि वे श्रद्धा के आनन्द में चूर थे, उन्होंने यह सोम रस अघा कर पी रखा था। तो उनके सामने दुनियां की कौन सी बाधा ठहर सकती थी।

व्यास जी ने योग भाष्य में श्रद्धा के विषय में क्या सुन्दर कहा है 'कल्याणी व जननी योगिनं पति'। श्रद्धा कल्याणी माता की तरह योगी की रक्षा करती है। अध्यात्म मार्ग पर चलने वाले योगी को तो न केवल इस स्थूल जगत् के, किन्तु अन्य जगत् के बड़े भारी २ शक्तिशाली असुरों से मुकाबिले में आना पड़ता है वहां श्रद्धा शक्ति ही माता की तरह उनकी निरन्तर रक्षा करती है। हमारे इस जगत् में भी उन विकट घड़ियों में जब कि निराशा की घनघोर घटा छा जाती है और कुछ भी नजर नहीं आता, जब कि लगातार आपत्तियों से घबराकर मनुष्य का धैर्य समाप्त हो जाता है जबकि असुरों के सामने बेबस और परास्त होकर हम अपने दिव्य हथियार छोड़ने को तैयार हो जाते हैं उन विकट घड़ियों में भी वे ही लोग अडिग अटल और अजेय रहते हैं जो श्रद्धामय दिव्य कवच से परिवेष्टित होते हैं, केवल उन्हीं की शान्ति अक्षुण्ण बनी रहती है जो कि श्रद्धामाता की गोद में शरण पा चुके होते हैं। अतः धन्य हैं वे लोग जिन्हें श्रद्धा प्राप्त हुई है और जिन्हें श्रद्धा का आनन्द प्राप्त हुआ है।

ऐसे ही धन्य हमारे श्रद्धानन्द जी महाराज थे। ईश्वर करे कि वे श्रद्धा के जिस दिव्य आनन्द को अ[illegible] जीवन द्वारा वर्षा कर गये हैं उसके कुछ छींटे पा[illegible] हम भी कुछ अंश में श्रद्धामय और दिव्यसैनिक [illegible] सकें और अपने जीवन को इस आनन्द द्वारा [illegible] कृत्य कर सकें।

जातिगुरु श्रद्धानन्द

काका कालेलकर

स्वामी श्रद्धानन्द जी में आर्य-जाति का मानोन्नत स्वभाव पूर्णतया प्रतिबिंबित था। वे अपने जमाने के सर्वाङ्गीण प्रतिनिधि थे। सामान्य परिस्थिति में रहते हुए भी आर्य पुरुष अपने पुरुषार्थ से कैसी उच्च और असामान्य कोटि तक पहुँच सकता है, इसका उदाहरण स्वामी जी के सफल जीवन में हम पाते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो चैतन्य देश में प्रगट किया उसका ग्रहण अधिक से अधिक किसी ने किया था तो वे स्वामी श्रद्धानन्द ही थे। धर्मप्रचार, शिक्षा-प्रचार और लोकसेवा तीनों बातों में अपना जीवन व्यतीत कर के उन्होंने बलिदान के जल में जीवन यज्ञ का अवभृत स्नान किया। गुरु और शिष्य दोनों पुरुष सिंहों ने अपने निर्भय जीवन से मृत्यु को परास्त किया।

अनार्य हत्यारे का बदला न लेकर उनके असंख्य अनुयायियों ने अपना आर्यत्व ही सिद्ध किया है। निर्भय पुरुष का रक्त संस्कृति क्षेत्र का उत्तम खाद है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जीवन भर अपने पसीने से सेवा की और अन्त में अपने खून से। इसीलिये वे अमरपद प्राप्त कर सके।

संस्था खोलना और चलाना आजकल सामान्य सी चीज़ हो गई है। क्योंकि अब जनता देख चुकी है कि लोक-जीवन में सुव्यवस्थित संस्थाओं का महत्व कितना है। लेकिन जब ऋषि दयानन्द सरस्वती ने आर्य-संस्कृति के आत्मा को जागृत करने के लिये सत्यार्थ-प्रकाश में नयी शिक्षा-प्रणाली का आदर्श पेश किया तब भारत-वर्ष में स्वदेशी संस्थाएँ बहुत कम थीं। ऐसे समय पर सर्वस्व को छोड़कर अपने पुत्रों को साथ लेकर गंगा के तट पर जंगल में जाकर बसना केवल श्रद्धाधन पुरुष का ही काम था मानो वह एक किस्म का विश्वजित् यज्ञ ही था। मुन्शीराम जी चाहते तो वे किसी भी क्षेत्र में अपनी कार्यशक्ति का परिचय दे सकते। फौज में दाखिल होते तो नामांकित सेनानी हो जाते। किसी रियासत की सेवा में प्रवेश करते तो प्रजाहितैषी प्रधान बन जाते। राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करते तो महासभा की धुरा का वहन करते। केवल धर्मोपदेशक बन बैठते तो हजारों सभाजय हासिल करते। साहित्य-सेवा का पेशा पसन्द करते तो साहित्य-सम्राटों से कर भार वसूल करने की योग्यता प्राप्त करते। परन्तु उन्होंने सब छोड़ कर शिक्षा का ही कार्य अपना जीवन कार्य बनाया। इसी लिये मेरा सिर उनके सामने झुकता है। शिक्षा का क्षेत्र जगत् में अभी उतना प्रतिष्ठित नहीं है कि जितना उसका अधिकार है। तो भी मनुष्य-जाति की उत्तम सेवा शिक्षा द्वारा ही होने को है।

शारीरिक शक्ति द्रव्यशक्ति, राजशक्ति, संघशक्ति इत्यादि सब शक्तियां शिक्षाशक्ति के मुकाबले में गौण हैं। धार्मिकता, सेवा, ज्ञानोपासना और बलिदान यही जीवन का सर्वस्व है। और इन जीवन तत्वों का पोषण केवल शिक्षा-प्रसार से ही हो सकता है। दीर्घदर्शी समाज-पुरुष ही इस बात को समझ कर शिक्षा के क्षेत्र में अपना जीवन प्रदान कर सकता है। वे सच्चे ब्राह्मण थे। और ब्राह्मण होने के कारण ही वे हरिजन सेवा की विशेष जुम्मेवारी अपने सिर पर है, ऐसा समझते थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी को इसी लिये मैं जातिगुरु कहता हूँ।

कल्याण मार्ग के पथिक स्वामी श्रद्धानन्द जी की सेवा अनेक दृष्टि से अपूर्व है। राष्ट्रीय-शिक्षण, धर्म, जागृति, समाजसेवा आदि अनेक क्षेत्रों में उन्होंने भारतवर्ष को एक नया ही रास्ता दिखाया है। श्रद्धा के बल से ही वे यह सब कर सके। जिस दिन उन्होंने अपने प्रिय पुत्रों को लेकर गुरुकुल की स्थापना के संकल्प

[शेष पृष्ठ सात पर]

संयम-सीमा

श्री सत्यभूषण 'योगी' वेदालंकार

संयम की सीमा टूट गई, सीमा का संयम टूट गया !

[१]

वह निकला ले कर में झोली
क्या करते हो ? दुनिया बोली

वह ममता डोरी तोड़ चला
अपनेपन को झकझोर चला

करता निज सर्वस की होली
जग विस्मित था किस ओर चला !

वह बोला—गङ्गा को देखो, हिमगिरी का आंचल छूट गया !
संयम की सीमा टूट गई, सीमा का संयम टूट गया !!

[२]

आंखों में राजस आग लिए
अन्तर में दीपक—राग लिए

अभिमान लिए उत्थान लिए
अधरों में स्मिति की शान लिए

मस्तक पर ज्योति विहाग लिए
निज सत्ता में वरदान लिए

यह दुनिया उसको लूट गई या वह दुनिया को लूट गया !
संयम की सीमा टूट गई, सीमा का संयम टूट गया !!

[३]

जामा मस्जिद के आंगन में
जग न्हाया उस रस वर्षण में

वक्षस् पर फैलीं संगीनें
उस कठिन-शैल के संगी ने

छः

चिर यौवन के ऊर्मिल क्षण में

लेकर सपने झीने झीने

क्या कोई उस से रूठेगा जो निजपन से ही रूठ गया !

संयम की सीमा टूट गई सीमा का संयम टूट गया !!

[४]

वह यौवन के मादक क्षण में

ले ज्वाला भड़का वन-वन में

अब आई उस पर क्षार जरा

उसका वह भोला भक्त डरा

बुझ जाय नहीं वह इस पन ने

ले आया साधन अग्नि भरा !

वह भी अपने उस प्रेमी को दो पिला अमृत के घूंट गया !

संयम की सीमा टूट गई, सीमा का संयम टूट गया !!

जातिगुरु श्रद्धानन्द

● पृ० ५ का शेष

से गंगा के तट पर निवास किया वह दिन भारतवर्ष के वर्तमान इतिहास में महत्व का था। उस दिन उन्होंने हिन्दू जाति के उद्धार की नींव डाली, ऐसा कहा जा सकता है। जिस दिन उन्होंने अन्त्यज बालकों को अपनाया उसी दिन हिन्दू जाति को उन्होंने सगठित किया। और जिस समय उन्होंने पत्थर, गोली और खञ्जर की तरफ तुच्छता की नजर से देखा उसी दिन भारतवर्ष को उन्होंने निर्भय किया। अपनी अतुल श्रद्धा से उन्होंने अपना दीक्षा नाम कृतार्थ किया। सचमुच श्रद्धानन्द राष्ट्रमूर्ति थे। ऐसा समय जरूर आयेगा कि जब उनके द्वेषी और विरोधी भी स्वीकार करेंगे कि यह भारतवर्ष का आधुनिक संन्यासी मित्र की नजर से ही सभों की तरफ देखता था। कायरों के जमाने में इस पुरुषसिंह की निर्भयता बहुत लोग न समझे होंगे और संशय की नजर से उनकी तरफ देखा होगा तो वह स्वामी जी का दोष नहीं था। वैदिक आर्यों का स्वभाव हम श्रद्धानन्द जी में देख पाते हैं।

कर्मयोगी श्रद्धानन्द

श्री अमृत वेदालङ्कार

"सत्य के प्रतिनिष्ठा का आदर्श श्रद्धानन्द इस दुर्बल देश को दे गये हैं। सत्य के प्रति श्रद्धा के उस श्रद्धानन्द को उनके चरित्र के मध्य हम समर्थक आकार में देख सकते हैं।"

ये शब्द विश्वकवि रवीद्रनाथ ठाकुर ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के अमर बलिदान पर कहे थे। वास्तव में यही उनकी महानता और जीवन का सार है। 'श्रद्धा' का वेद-सम्मत अर्थ सत्य को धारण करने की भावना है। इसी भावना ने सम्वत् १९१३ की फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी (१८५६ ई०) को जालन्धर जिले के तलवन ग्राम में जन्मे बालक मुन्शीराम के बाल्यकाल में कुसंगति से पतनोन्मुख जीवन की कायापलट कर दी। उन्होंने स्वयं लिखा है कि सन् १८७९ में बरेली में महर्षि दयानन्द के क्षणिक सहवास ने मुझे अत्यन्त गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन लाभ करने के योग्य बनाया।'

आचरण गीता के अनुगामी

ऐसे प्रसंग सब के जीवनों में आते हैं किन्तु दुर्बल भोगवादी हृदय दुर्योधन की तरह 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः' कह कर अधर्म मार्ग की ओर ही प्रवृत्त होते हैं। इसके विपरीत महान् आत्माएं कण्टकाकीर्ण बलिदान पथ पर बढ़ चलती हैं। नवयुवक मुन्शीराम ने भी दूसरा मार्ग चुना और जीवन में बुराई के साथ कभी समझौता नहीं किया। कठिनाइयों और विरोध में उनका उत्साह दुगुना हो जाता था। सिद्धान्त के प्रश्न पर बड़े से बड़े का और निकटतम सम्बन्धी का उन्होंने कभी लिहाज़ नहीं किया। मांस भक्षण और पाश्चात्य शिक्षा के विरोध में १८९३ में आर्यसमाज के दो दल हुए। उसके बाद से आपने महात्मा दल का नेतृत्व किया और अन्त तक आर्यों में जीवन का संचार करते रहे। आप 'आर्य' उसी को मानते थे जिसका आचरण श्रेष्ठ हो।

सच्ची राष्ट्रीय संस्था-गुरुकुल

प्राचीन भारतीय शिक्षा-प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिए आपने जो महान् प्रयत्न किया उसे हम गुरुकुल के रूप में पहचानते हैं। यह भी महर्षि के आदर्श पर आचरण का ही मुंह बोलता प्रकाशन था। किसी प्रतिक्रिया के बजाय चरित्र-बल और साधना के आधार पर सन् १९०२ में हरिद्वार से ५ मील दूर गंगा पार जंगल में स्थापित यह क्षुद्र संस्था सब आघात प्रतिघातों को सह कर आज भी फल फूल रही है।

गुरुकुल को किन प्रलोभनों से बचा कर स्वामी जी ने बढ़ाया यह उन्हीं के शब्दों में सुनिये—

'गुरुकुल अपने जन्म दिन से अब तक नौकरशाही के जाल से बचा हुआ, अपना काम करता आया है। इसके संचालकों को क्या-क्या प्रलोभन नहीं दिये गये। जिन सुनहरी जंजीरों को जातीयता का अभिमान करने वाले अन्य शिक्षणालयों ने बड़ी खुशी से पहन लिया, मन लुभानेवाली वे जंजीरें न जाने कितनी बार उनके सामने पेश की गईं। परमेश्वर ने उनको ऐसी दासता से बचने की बुद्धि दी।'

हिन्दी के प्रथम प्रयोक्ता

राष्ट्रभाषा हिन्दी द्वारा गुरुकुल में विज्ञान के विषयों की उच्च शिक्षा देकर आपने हिन्दी की राष्ट्र भाषा होने की योग्यता को आज से आधी सदी पहले प्रमाणित कर दिया था।

भागलपुर में हुए ४र्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति (तब श्री मुन्शीराम) बना कर स्वामी जी की हिन्दी के प्रति सेवाओं के लिए कृतज्ञता प्रकट की थी। स्वामी जी की कथनी और करनी में शायद ही कभी अन्तर रहा हो। यही कारण था कि उनका पग जो एक बार प्रगतिपथ पर बढ़ा तो फिर मुड़ा नहीं। यही बात उर्दू को छोड़ कर हिन्दी अपनाने के

में भी हुई । हिन्दू-संस्कृति से प्रेम हो और हिन्दी छोड़ कर उर्दू का प्रयोग चलता रहे, यह असंगति उनकी जीवनधारा की गति के बिलकुल प्रतिकूल थी। इसी लिए उन्होंने अपना उर्दू पत्र 'सद्धर्म प्रचारक' सम्वत् १९६६ में एक रात में ही उर्दू से हिन्दी में कर दिया, जो आधुनिक युग में हिन्दी-प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण था। पञ्जाब में आर्यसमाज द्वारा हिन्दी का प्रारम्भिक दिनों में जो प्रचार हुआ था, उस का सब श्रेय आपको ही है।

गान्धी जी को हिन्दी की दीक्षा

दक्षिण अफ्रीका सत्याग्रह में सहायतार्थ जो १५००) का स्वल्प धन गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने अपना घी-दूध छोड़ कर पत्थर ढोने की मजदूरी करके भेजा था, उसे स्व० गोखले ने १५००० रुपये से भी कीमती बताया था। उसके बाद गान्धी जी ने स्वामी जी (तब महात्मा मुन्शीराम) को पहला पत्र अंग्रेज़ी में लिखा जिसका उत्तर हिन्दी में देते हुए आपने लिखा—'जो व्यक्ति हिन्दी को देश की भाषा बनाना चाहता है, उसको कोई अधिकार नहीं कि वह दूसरी भाषा में पत्र व्यवहार करे।'

इसके बाद से गान्धी जी आपको हिन्दी में पत्र लिखने लग गये।

'जब बने देश के सन्यासी'

स्वामी जी देश-धर्म के उत्थान के लिए सन्यासी बने थे। उन्होंने लिखा है—

'मैंने सन्यास का अर्थ कर्म का न्यास नहीं समझा, प्रत्युत गुरुवर आचार्य दयानन्द के चरण चिह्नों पर चलने का यत्न करते हुए कर्म फल में अनासक्ति को ही सन्यास समझा है। इसलिये मैं उनके साथ सहमत नहीं जो कहते हैं कि 'सर्व कर्म-नासी' सन्यासी होता है।'

जलियांवाला बाग की पीड़ा से विह्वल हृदय 'गुरू का बाग़' में होने वाले अत्याचार से कैसे आंखे मूंद सकता था? सत्य के लिये कष्ट सहने को सदा तैयार सन्यासी १० दिसम्बर सन् १९२२ को सवेरे अमृतसर पहुँचा। दिल्ली की शाही जामा मस्जिद की शोभा बढ़ाने वाले आर्य सन्यासी ने अमृतसर के अकालबख्श की भी शोभा बढ़ाई। उनके उस भाषण में सरकार को उग्र राजद्रोह की गन्ध आई और ६७ वर्ष के उनके बूढ़े शरीर को बन्द कर दिया। किन्तु आप अवधि पूरी होने से पहले ही छोड़ दिए गये।

पहली आवश्यकता—चरित्र

जेल से आने के बाद अपने राजनीतिक जीवन के अनुभव के सार रूप में स्वामी जी ने कहा था—"मुझे निश्चय हुआ कि अभी चरित्र गठन में बड़ी कमी है। कम से कम मैं ऐसे सांचे में ढला हूँ कि कई अन्शों में स्वयं सदाचार की कमी अपने अन्दर अनुभव करते हुए भी चरित्रहीन पुरुषों के साथ काम नहीं कर सकता। मेरी सम्मति में भारतीय राष्ट्र की पहली आवश्यकता यह है कि जनता को ब्रह्मचारी बना कर और उसमें सहनशक्ति फूंक कर एक आत्मोन्नत स्वराज्य सेना खड़ी की जाय, तब वैयक्तिक गुलामी की जञ्जीरे काट कर अत्याचार से युद्ध हो सकेगा।"

कांग्रेस से त्यागपत्र

फिर १९२३ में आपने कांग्रेस के प्रधान मन्त्री को लिखा कि—"मैंने अमृतसर और मियांवाली जेलों में यह अनुभव किया है कि चरित्रगठन और अस्पृश्यतानिवारण द्वारा स्थापित हुए राष्ट्रीय ऐक्य के बिना कांग्रेस या उस सरीखी राजनीतिक संस्थाएँ कुछ भी नहीं कर सकेंगी। मैं अब अपना सब समय इस कार्य में लगाना चाहता हूं अतः मेरा त्यागपत्र स्वीकार करें।'

दलितोद्धार, शुद्धि और हिन्दू संगठन

नई पीढ़ी के चरित्र निर्माण में संलग्न भी आप देश की सामान्य गति से कभी अछूते नहीं रहे। गढ़वाल का अकाल, मोपला कांड, कोहाट, जलियांवाला बाग जहां भी आवश्यकता हुई स्वामी जी अग्र-पंक्ति में दिखाई देते थे। सात करोड़ दलितों (अछूत या हरिजन शब्द उन्हें कभी सम्मत नहीं हुआ) के प्रश्न को आप हिंदू जाति की एकता और स्वराज्य की दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण समझते थे कि मुख्यतः इसी कारण आप कांग्रेस से पृथक् हुए।

'जिन्हें अछूत बतला बतला कर जाति का चौथाई अङ्ग काट दिया गया है उन्हें भारतमाता के शत्रु बनाने का जो यत्न इङ्गलैंड और अमरीका की ओर से शुरू हो गया है उसका मुकाबला करके दिखला दिया जाय कि साठ करोड़ से एक भी कम भुजा भारत जननी की नहीं है', इन शब्दों से प्रकट है कि इस प्रश्न की उपेक्षा वे नहीं सहन कर सकते थे। कांग्रेस ने अछूतों की समस्या को अपने प्रोग्राम में नाम के लिए ही रखा और मौ० मुहम्मद अली जैसे मुस्लिम कांग्रेसी नेता उन्हें लावारिस माल की तरह आधा-आधा बांट लेना चाहते हैं, यह देख वह कब कांग्रेस में टिक सकते थे? म० गान्धी ने सांप्रदायिक निर्णय के बाद दलितों की समस्या पर जितना ध्यान दिया उतना स्वामी जी १९२२ में चाहते थे। वह न हुआ तो उन्होंने हिन्दू-महासभा का दरवाजा खटखटाया। वहां से निराश हुए तो स्वतन्त्र रूप में इस कार्य को किया। अन्तिम वर्षों में हिन्दुओं का संगठन ही उनका एक मात्र लक्ष्य हो गया था। शुद्धि या भ्रातृमिलाप और दलितोद्धार इसी के भाग थे। वे जानते थे कि मुसलमान संगठित हैं और जब तक असंघटित हिन्दुओं को उनसे मिलाने का प्रयत्न किया जायगा वह हिन्दू जाति के लिए घातक होगा।' उनके अनुभवों का निचोड़ इन शब्दों में दिया जा सकता है।

"वह दिन दूर नहीं है जब आर्य हिंदू समाज रथ से सुसज्जित होकर व्यक्ति और समष्टि दोनों को बलवान् बना कर सारे संसार के अन्य समाजों की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ायेगा।"

आपने एक बार फिर आर्यसमाज की शक्ति को संगठित कर इस महत्वकार्य में लगाना चाहा।

बलिदान के लिये सदासिद्ध

हिन्दू संगठन और शुद्धि के कारण कट्टर मुस्लिम ने उन्हें इस्लाम का दुश्मन बना कर मिथ्या प्रचार शुरू किया। इन्हीं षड्यन्त्रों का परिणाम था अब्दुल रशीद का उस ७२ वर्ष के वृद्ध अनवरत परिश्रम से जर्जर, रोगी शरीर पर २३ दिसम्बर १९२६ को कुटिल प्रहार। स्वामी जी ने वस्तुतः उस दिन अमरता प्राप्त की और वे इसके लिए सदा तैयार थे।

श्रद्धाञ्जलियां

सामाजिक और धार्मिक सुधारक

'श्रद्धानन्द जी का स्थान सामाजिक और धार्मिक सुधारकों में बहुत ऊँचा है। उन्होंने वैदिक संस्कृति का पुनरुत्थान करने का स्तुत्य प्रयत्न किया। उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिये जो कुछ किया है वह हम भूल नहीं सकते। इस महान् आत्मा को मैं इस संदेश से श्रद्धाञ्जलि दे रहा हूं।'

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी।

❀

वे उज्ज्वल तारे थे

'आज उनकी स्मृति हमारे दिलों में ताजी है। निस्सन्देह वे भारतीय गगन के उज्वल तारे थे। श्रद्धानन्द बलिदान-दिवस आयोजन की सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभ कामना स्वीकार कीजये।'

—मैथिली शरण गुप्त।

❀

पावन स्मृति

'मुझे यह जान कर खुशी हुई कि आप 'श्रद्धानन्द अङ्क' निकाल रहे हैं। उनकी स्मृति कभी भुलाई नहीं जा सकती। स्वामी श्रद्धानन्द जी की पावन स्मृति में मेरी भी श्रद्धाञ्जलि स्वीकार कीजिये।'

—विजय लक्ष्मी पंडित।

❀

उस नर रत्न से भारत धन्य है

'यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप आगामी २३ दिसम्बर को श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस मना रहे हैं। स्वामी जी की सेवायें, उनका साहस और प्रखर-प्रतिभा की बात जब याद आती है तो हृदय कृतज्ञता से भर जाता है। यह इस देश का परम सौभाग्य है कि उस दुःख दुर्दिन की अवस्था में भी उसे स्वामी जी जैसे नर रत्न को अपने बीच पाने का सौभाग्य हुआ था जिन्होंने न केवल अपने जीवन से बल्कि मृत्यु से भी देश को साहस और तपस्या के मार्ग में अग्रसर कर दिया। हम आपके अनुष्ठान की सफलता चाहते हैं।'

—क्षितिमोहन सेन।

❀

दूरदर्शी द्रष्टा

'स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी का सब से बड़ा और महत्वपूर्ण काम था हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाना। लोग हंसते थे पर वे साहसी थे, दूरदर्शी थे और द्रष्टा थे। जो चाहा कर दिखाया। आज जनता और सरकार दोनों उसका अनुकरण कर रहे हैं, धन्य हैं वे लोग जो उनकी चलाई संस्था का सञ्चालन कर रहे हैं।'

—रामनारायण मिश्र।

❀

उनके कार्य को जारी रखें

स्वामी जी की प्रतिभा बहुमुखी थी और देश के लिये उनका कार्य सर्वोत्कृष्ट था। उनके प्रति वास्तविक श्रद्धाञ्जलि वही हो सकती है कि हम उनके कार्य को जारी रखें और उनको सफल बनायें।

—जगजीवनराम।

❀

भारत के गौरव

स्वामी श्रद्धानन्द जी उन अमर आत्माओं में हैं जिन्होंने इस भारतवर्ष को उच्च उद्देश्यों से तथा अपने अनुकरणीय कार्यक्रम से ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया है। इनकी सफल जीवनी हम सबों के लिये आदर्श है। उन्होंने धर्म की मर्यादा तथा भारतवर्ष का गौरव बढ़ाने में किसी कष्ट को कष्ट नहीं समझा, किसी भी बलिदान को ज्यादह नहीं माना। मैं उस अमर हुतात्मा को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए अपने को गौरवान्वित मानता हूं। ईश्वर से सदैव मेरी यही प्रार्थना है कि

उनकी अमर कीर्ति गुरुकुल के रूप में सदा फलती फूलती रहे और आपका गुरुकुल भारतवर्ष की सेवा में तत्पर रहे।

– जगलाल चौधरी, पटना।

❀

आर्य संस्कृति के गौरव

साम्प्रतं भारतवर्षं स्वाधीनतापदमारूढं, परन्तु यां संस्कृतिमाश्रित्य अखण्ड भारतवर्ष संगठन स्वप्नोऽस्माभिर्दृष्टः स तु सिद्धो नाभूदिति सर्वैरेव स्वीकरणीयम्। भारतीय संस्कृत्याजातिगठनं, तत्संस्कृति सिद्धया जातीयतया च भारतवर्षस्याखण्डस्वाधीनता सम्पादनं स्वर्गत भारतवरेण्य स्वामी श्रद्धानन्द महाराजस्य संकल्पितमासीत्। परन्तुतादृक्संकल्प पूरणायैव स महात्मा आत्म दानेन पवित्रभारतभूमिं स्वरुधिररञ्जितां विधाय स्वरारूढ़ः। महात्मनस्तस्यायमितिहासः भारतीयानां चित्तेषु चिराङ्कितः स्थास्यति। भारतगौरव स्वामी श्रद्धानन्द महोदयः पवित्रघृतप्रदीप इव समन्तादहर पवित्रालोकं विकीर्य दिवमारूढ़वान्, तद् विकीर्ण पवित्रालोकोद्भासितहृदयानां सर्वेषांसाम्प्रतमिदमेव विधेयं यद्–ऐक्यमत्य सम्पादनद्वारा भारतीय-सनातनसंस्कृतेः पुनः प्रत्यानयनं, अपिच भगवता श्री कृष्णेन गीताप्रचारद्वारा या तावत् धर्मराज्यप्रतिष्ठा पाञ्चजन्यध्वानेनोद्घोषिता सा तु सुतरामेव कार्यतः सम्पादनीया साम्प्रतमस्माकम्। आर्यगौरव स्वामि श्रद्धानन्द महोदयया तात्त्विक श्रद्धानिवेदनकृते उदीयमानजातेदिव्यजीवनगठनाय सर्वैरेवनितराम् प्रयत्नो विधेयः दिव्य जीवनजातिप्रयायनमृते श्रुति स्मृति न्यायप्रवर्त्तिका विश्वमानवता सम्पादिनी आर्यसंस्कृति रशक्य रक्षैव। एतत् कृते त्यागवैराग्योपबृंहित जयध्वजामुत्तोल्यास्माकमभियानमावश्यकम्।

अयमेव स्वर्गत स्वामिमहाराजाय श्रद्धानिवेदनस्यामोघः पन्थाः। आशास्महे सर्वे नवतान्त्रिका इममेव पन्थानमनुसरिष्यन्तीति।'

—मतिलाल राय।

❀

भारतीय संस्कृति के उद्‌बोधक

श्री पूज्यवर स्वामी श्रद्धानन्द के दर्शन का सौभाग्य केवल एक ही बार मुझे प्राप्त हुआ था। सम्भवतः काशी में। उन से भेंट या बातचीत करने के योग्य मैं नहीं था किन्तु उनकी आत्मकथा (कल्याणमार्ग का पथिक) पढ़कर मैंने बहुत कुछ रत्नकण संचित किये हैं, जो जीवन में अमृत-कण सिद्ध हुए हैं। वे हमारे प्रान्त भागलपुर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सम्भवतः चतुर्थ महाधिवेशन का सभापतित्व करने पधारे थे—महात्मा मुन्शीराम के रूप में। उनकी घननाद-गम्भीर वाणी आज भी कानों में गूञ्[ज] रही है। उनकी पौरुष प्रतीक प्रतिमा आज भी प्राचीन आर्यों की भव्य आकृति का स्मरण कराती है। उनक[ा] 'नैपोलियन बोनापार्ट' ग्रन्थ ओजस्विता का मूर्तरूप है[।] ऋषिवर दयानन्द को वे उसी तरह मिल गये जिस तर[ह] परमहंस रामकृष्ण को स्वामी विवेकानन्द। हिन्दी ज[ो] आज राष्ट्रभाषा हो रही है उसके झंडे को सब से पहि[ले] उन्होंने ही हिमालय पर स्थापित किया था। भारती[य] संस्कृति मुमुर्षु हो रही थी, उसे उन्होंने अमृत के घ[ूंट] पिला दिये। आर्य सभ्यता और आर्य साहित्य के सु[प्त] लुप्तप्राय गौरव को जाग्रत एव उद्‌बुद्ध समृद्ध कर[के] उन्होंने ऋषिवर के मिशन को खूब पूरा किया। राष्ट्री[य] आन्दोलन में उन की वीरता जग जाहिर है। वे यो[द्धा] थे और हिन्दू हित में बहादुरी से जूझ गये। उन्हें श[त] कोटि प्रणाती शिवः।'

- शिवपूजन सहा[य]

❀

जाज्वल्यमान सूर्य

'अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महारा[ज] सर्व प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति की नींव डाली र[ाष्ट्र] भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया। विद्यार्थि[यों में] राष्ट्रीय भावना जागृत की, भारतीय संस्कृति की [...] उनकी श्रद्धा और चेतना का विकास किया। [...]

सद्धर्म प्रचारक को एक सप्ताह में हिन्दी का चोला पहनाया। यद्यपि इसमें उन्हें आर्थिक हानि हुई तथापि वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल और अडिग रहे। अपने पुत्रों को कॉलिज न भेज कर गुरुकुल पढ़ाया और जात-पात तोड़ कर उनके विवाह किये। आज के स्वप्नों को ऋषि श्रद्धानन्द ने लगभग चालीस वर्ष पूर्व सत्य कर दिखलाया। वे त्याग तपस्या की मूर्ति थे। जब त्याग और तपस्या केवल कहने भर की चीज थी तब उन्होंने उनका उच्च आदर्श संसार के सामने रखा, उससे महात्मा गान्धी, कवीन्द्र रवीन्द्र, योगिराज अरविन्द और सारा देश प्रभावित हुआ। हमारे राजर्षि प्रत्येक क्षेत्र में जाज्वल्यमान सूर्य की भान्ति चमके और हिमालय की तरह अटल रहे। आर्य समाज के तो वे प्राण ही थे। उन्हीं के बिना समाज आज निर्जीव सा दिखाई देता है मैं उस। प्रातः स्मरणीय प्रतापी नेता की विमुक्त आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।'

—हरीशंकर शर्मा।

❀

मृत्यु के वश में न हों

'कुल गुरु का समस्त जीवन एक सन्देश था। अपनी दुर्वृत्तियों से कैसे युद्ध करके मन पर विजय प्राप्त की और किस प्रकार शुभ भावनाओं से स्वयं लाभ उठाया तथा दूसरों को कल्याणकर मार्ग पर अग्रसर किया—यह सब उनकी लिखी आत्मकथा में पढ़ते हैं। आधुनिक भारत का कदाचित् ही कोई नेता अपने नाम के प्रति इतना सार्थक होगा जितना श्रद्धानन्द जी थे। अविचल श्रद्धा, झूठे तर्क जाल एवं अज्ञान के अन्धकार से निकाल कर किस प्रकार मानव को ऊँचा उठाती है, किस प्रकार वह कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करती एवं श्रेय की ओर ले जाती है, यह उनके जीवन में व्यक्त है। इस अनात्मवादी युग में, जब कि हमारी संस्कृति पर अविश्वास का घना कुहरा छा गया है और हमारी आस्थायें आन्धी में उड़ी जा रही हैं, श्रद्धानन्द श्रद्धा के प्रतीक से हमें चुनौती देते हैं कि हम धारा में बह न जाँय मानों वेद की वाणी में वे कह रहे हों—

'मा मृत्यो उद्गात वशं'—प्राणी मृत्यु के वश में न हों, ऊपर उठें।'

—रामनाथ सुमन।

धन्य है वह जीवन !

स्वामी श्रद्धानन्द !
वे लक्ष्य पर पहुँचे !

उन्होंने सब कुछ पाया !
वे अपना नाम इतिहास में बहुत गहरा अंकित कर गये !

उन्हें मेरी श्रद्धांजलि !
प्रत्येक जीवन का कोई चिन्ह होता है। उन के जीवन का चिन्ह था 'सेवा'।

उनकी स्मृति नए उत्साह को जगा देवे और राष्ट्र के युवकों में नई रूह फूंक देवे।

गरीबों की इस सेवा के लिये जो धर्म और आज़ादी दोनों का दिल है; हमसे अलग हो कर भी वे मरे नहीं।

वे तो अब भी बोल रहे हैं।

और उन सब को, जिन्हें मैं सुना सकता हूँ, उस शहीद का वह सन्देश सुनाना चाहता हूँ जो इस क्षण मुझे आ रहा है।

यह वह सन्देश है जिस में प्राचीन नवीन का अभिनन्दन करता है—"धन्य है वह जीवन जो 'बलि' में प्रज्ज्वलित हो।"

—टी. एल. वास्वानी।

दिव्य-नर

श्री रामदयालु गुप्त

सौम्य-संस्कृति, विश्व के महनीय तप का दिव्य-दर्शन,
प्राण सा प्रिय, रूप सा माधुर्य, श्रद्धा सा समर्पण,
व्योम सा विभु-ज्ञान, अणु, अवकाश सी प्रज्ञा कहां है ?,
मुनि-कुमारों सा ललित, विश्राम चिर, गुरुकुल जहां है ।

पुण्य-गंगा के पुलिन पर स्निग्ध-संसृति भी बसी है ?
या कि ऋषि ने ज्ञान से उद्दण्ड-मन की गति कसी है ?
या कि कलि-कंकाल में मन्दाकिनी-धारा बही है ?
सुप्त-जर्जर-प्राच्य-संस्कृति या कि फिर जागृत हुई है ?

घोर-तमसावृत-समय, प्रत्यूह सम्मुख व्याल के सम,
थे रचे परतन्त्रता के व्यूह प्रतिपद काल के सम,
धन्य है काली-निशा के बाद स्वर्ण-विहान के सम,
तुम चमक ही गये श्रद्धानन्द ! ज्योतिर्धाम के सम,

आज पुलकित-प्राण, हर्षित-हृदय, झंकृत-तार तन के,—
झुक रहे, यतिवर ! चरण पर भाव परवश आज मन के,
सौम्य-भावों से विचर्चित, कुलपिता ! मम वन्दना लो,
हे अमिय तप के निकेतन ! प्राण सी, लघु अर्चना लो ।

आज जैसे मिल रहा हो शून्य को खोया-किनारा,
या मिला अवकाश को तेरी पताका का सहारा ?
ऐहलौकिक-पुण्य का था या कि यह पहला-प्रदर्शन ?
विश्व के मानस-पटल पर बह रही जो सौम्य धारा ।

प्रतीक्षा

श्री विष्णुमित्र

उत स्वया तन्वा संवदे
तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत
कदा मृडीकं सुमना अभिख्यम् ॥

ऋ० ७. ८६. २ ॥

भक्त कभी अपने इष्ट देव को देखने की इच्छा से तर्क वितर्क करता है। (उत) क्या मैं (स्वया-तन्वा) अपने शरीर के साथ (संवदे संवाद करता हूं। ऐसा तो प्रतीत नहीं होता मैं तो किसी और से कह रहा हूँ। मैं कहता हूँ कि (कदा) कब (वरुणे) इष्ट देव में (अन्तः भुवानि) अन्तर्भूत होऊंगा अर्थात् कब मैं इष्ट देव के ध्यान में निमग्न हो जाऊंगा। यह बार बार विचारता हूं। पर होता नहीं। और भी (किम्) क्या (अहृणानः) क्रोध न कर मेरी प्रार्थना से प्रसन्न हो कर वह देव (मेहव्यम्) मेरी प्रार्थना और आहुति को (जुषेत) ग्रहण करेंगे। (कदा) कब (सुमनाः) निश्चित होकर मैं (मुडीकं) अपने सुखकारी देव को (अभिख्यम्) देखूंगा।

ऐसे अधीर होने वाले भक्तों को चाहिये कि यदि भगवान् के दर्शन में देर हो रही हो तो वे घबरावें नहीं। देखा गया है कि इस मार्ग पर चलने वाले भक्त लोग कुछ देर के बाद ऊब से जाते हैं। और कहना शुरू कर देते हैं कि कुछ पल्ले नहीं पड़ा। अजी पहिले तो यह चंचल मन ही नहीं रुकता था। और नाना प्रकार के नाच नचाता था। जब इसका नाच कुछ कम हुआ तो आगे कुछ दिखाई नहीं देता। मेरे ख्याल में ऐसे समय भक्त को समझ लेना चाहिये कि वह देव उसे अभी इसी अवस्था में रखना चाहता है। इसी अवस्था में कल्याण समझता है। प्रतीक्षा की अवस्था कोई बुरी तो नहीं होती। मिलाप से तो प्रतीक्षा में विशेष आनन्द आया करता है। आप इस दृश्य को जरा सामने लावें। राम पिता की आज्ञा से बन को जाने के लिये तैयार हैं मगर अभी घर पर हैं। अब आप सोचें क्या तब अयोध्यावासी आनन्द में थे। या जब राम अयोध्या से दूर बन में थे और बनवास की घड़िया दिन प्रतिदिन समाप्त होती जा रहीं थीं तब प्रसन्न थे। पहिली अवस्था मिलाप की है परन्तु अयोध्यावासी अधीर थे। दूसरी अवस्था विछोड़े की है परन्तु सब प्रसन्न हो रहे थे। ऐसे ही प्रभु मिलन की प्रतीक्षा के समय को भी आनन्द दायक समझना चाहिये। प्रतीक्षा का यह समय बड़ी उत्सुकता का होता है। भक्त नित्य नये चाव से अपने मन मन्दिर को साफ करता है। और अश्रु धारा बहाकर मन मन्दिर के फर्श को धोता है। उसी अश्रु जल से आने के मार्ग पर छिड़काव भी करता है। श्रद्धा, प्रेम और भक्ति के पुष्पों की माला लिये प्रतीक्षा में खड़ा रहता है। और सोचता है कि अभी आये, अभी आये, अभी द्वार खुला। कितनी बार तो कोई आहट पाकर प्रकाश की ज्योति का कोई चिन्ह पाकर बहुत प्रसन्न हो जाता है। तब कह उठता है वह आये। न आने के संकेत को पाकर फिर प्रतीक्षा में लग जाता है। ऐसे ही नित्य मन्दिर सजाता है और आने की प्रतीक्षा करता है। पर वह घबराता नहीं। वह दृढ़ता से मन मन्दिर में बैठकर कहता है कि—

बैठे हैं तेरे दर पै,
तो कुछ कर के उठेंगे।
या वस्ल ही (मिलाप) मिलेगा,
और या मरके उठेंगे॥

स्यालकोट में एक प्रभु भक्त थे जो मुसलमान थे। जिन्होंने जीवन भर नमाज न पढ़ी थी। यह उस समय का हाल है जब कि वहां चोर और डाकुओं का बड़ा जोर था। इनको पकड़ने और दबाने के लिये सरकार ने वार वटन साहब को भेजा। साहब ने नीच

जातियों की तीन बार हाजरी लेने का हुक्म दिया। ऐसा करने से चोरी कुछ कम हो गई। एक दिन शुक्रवार को मुसलमान नमाज पढ़ने जा रहे थे। लोगों नें इस मस्त शेख से पूछा शेख जी तुम क्यों नहीं जाते। शेख ने कहा इन लोगों ने चोरी की है इसी लिये हाजरी देने जा रहे हैं। मैंने चोरी थोड़े ही की है ! जो मैं जाऊं। कहते हैं कि एक दिन इन्हीं शेख जी ने नमाज पढ़ी मगर एक निश्चय से यह कहकर कि—

सिजदे में सर झुकाऊँ,
तो उठना हराम है।
सिज़दे में गिर पड़ूं तो,
फिर उठना मुहाल है।
सर को उठाऊँ क्यों कर,
हर रग में यार है।

ज्यों ही सिर झुकाया। वह सिर फिर न उठा। बहुधा देखा गया है कि मिलाप हो ही जाता है। आज नहीं तो कल। कल नहीं तो परसों। इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में। बस प्रतीक्षा काल में श्रद्धा क मात्रा को बढ़ाते रहना चाहिये। संशय को निकट नहीं आने देना चाहिये। अधीर वा ऊब जाने से काम नहीं चलता। जब किसान बीज बोता है तो क्या वह उसका फल तत्काल पा लेता है। उसे प्रतीक्षा करनी होती है, आखिर फल पाता है।

इच्छित आयु की प्राप्ति का रहस्य

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

एक प्राचीन ऋषि का कथन है—'मनुष्य मरता नहीं प्रत्युत वह अपने को स्वयं ही मारता है।' यह कथन अनेकों के विषय में सत्य है। अपने मन द्वारा वे ऐसा विकृत काल्पनिक चित्र तैयार करते हैं कि दीर्घायु नहीं हो पाते। मनुष्य अपने ही विचारों से अल्प या दीर्घजीवी बनता है। चाहे गुप्त रूप से मन के किसी आन्तरिक कोने में कोई कल्पना करते रहें, तो भी परमेश्वर उसे देखते हैं और उसका फल देते हैं। मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः' यह अटल सिद्धान्त हैं।

दीर्घ जीवन के अनूठे नियम

दीर्घ जीवन का अटल संकल्प—संकल्प उस ठोस श्रद्धा युक्त विचार प्रणाली का नाम है जिसमें पूर्ण विश्वास ओतप्रोत हो, जिसमें निरन्तर उन्नति करने की निष्ठा हो। संकल्प में श्रद्धा वह महान् तत्व है जो प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाएं, सभी कामनाएं पूर्ण कर सकता है।

'मैं दीर्घजीवी हूं, मुझे एक दीर्घ आयु प्रदान की गई है जिससे मैं स्वयं आनन्द प्राप्त करूं और मानव-समाज की सेवा करूं, मुझे एक बृहत् जीवन, एक दिव्य हेतु से दिया गया है'। ऐसी दृढ़, पुष्ट विचारधारा से आप जीवन प्रारम्भ कीजये।

'मेरे पास दीघ जीवन प्राप्त करने के समस्त साधन प्रस्तुत हैं। मेरे पास किसी पदार्थ की न्यूनता नहीं है। प्रत्येक आवश्यक वस्तु मुझे यथेष्ट मात्रा में प्रदान की गई है। मुझे किसीसे कुछ मांगना नहीं है, न हाथ ही पसारना है। मैं अपने आप में पूर्ण हूँ, निर्विकार हूँ.गुप्त सामर्थ्य से युक्त हूँ।'—यह आपकी शिक्षा की दूसरी सोपान हैं। इन संकेतों को अन्तर्जगत में खूब पुष्ट करना चाहिये। जितना इनमें अधिक विश्वास जमता जायगा, इतनी ही गुप्त शक्ति प्रकट होती जायगी। दीर्घजीवन ही विश्वास, दृढ़ विश्वास में होता है। यों तो प्रत्येक विचार एक जीवित बल है किन्तु श्रद्धापूर्ण संकल्पों की शक्ति अत्यंत प्रचण्ड है।

'हमें सौ वर्ष से भी अधिक जीवित रहना है, हमें सब से अधिक ज्ञान, पवित्रता, सेवा करनी है, खूब आनन्द लूटना है—' ऐसी धारणा बना कर चलने से जीवन तो दीर्घ बनता ही है, समय का भी सदुपयोग होता चलता है।

जीवन की प्रत्येक घड़ी के ऊपर कड़ी नज़र रखिये और देखते चलिये कि हर एक क्षण का सदुपयोग हो रहा है कि नहीं? कार्य सम्पादिका शक्तियां, उत्साह, महत्वाकांक्षाएं उत्तरोत्तर बढ़ रही हैं या नहीं? यदि न हों तो समस्त बुद्धिमत्ता को व्यय करके ऐसी योजना बनाइये कि जिनके द्वारा आपके चिन्तन के क्षणों का सृजनात्मक प्रवृत्तियों में सदुपयोग होता चले।

जो समय व्यतीत हो गया उसके लिये शोक मत कीजिये, जो शेष है वह ही यथेष्ट है और इतना महत्व-पूर्ण है कि सदुपयोग किये जाने पर आपको दीर्घजीवी बना सकता है और ऐसे महत्वपूर्ण परिणाम उपस्थित कर सकता है कि जिन पर गर्व करते हुए अन्य सुख पूर्वक संसार से विदा हो सकें।

दीर्घजीवन तथा अपनी शक्तियों में जितना अधिक आपको विश्वास होगा; जितने धैर्यपूर्वक आप हृदय को मजबूत बनाएंगे; उतनी ही मजबूती से आप अपनी मनोवाञ्छनाओं को पूर्ण करेंगे।

आत्मविश्वास से दीर्घ जीवन की प्राप्ति—तुम्हारा विश्वास, तुम्हारी श्रद्धा, तुम्हारी आस्था ही वह बल है जो निर्भयतापूर्वक निर्देश करता है कि कार्य की ओर पैर उठा दो। दृढ़ता पूर्वक अग्रसर होते रहो। संसार में जो बड़े २ आविष्कार हुए हैं, अद्भुत कार्य

नित्यप्रति हो रहे हैं वे सब कुछ दृढ़ निश्चयी मनोबल वाले विश्वासियों के ही कार्य हैं। आत्मविश्वास में वह शक्ति है जो सौ वर्ष क्या, पांच सौ वर्ष का जीवन प्रदान कर सकता है।

'संशयात्मा विनश्यति' अर्थात् संशयी पुरुष का नाश होता है। अत: निश्चयी भाव से हमारा अवश्य उद्धार होगा किन्तु संशय से हमारा पतन अवश्यम्भावी है। हठ पूर्वक कुबुद्धि को, कुविचारों को, कुकल्पनाओं, अभद्र मंत्रणाओं को त्यागिये और आज से, इसी समय से, दीर्घ जीवन के अटल संकल्प को दृढ़ कीजिए। कहिए—

'क्या कभी दयासागर परमात्मा की यह मर्जी हो सकती है कि मैं केवल पचास-साठ वर्ष की आयु में ही ढलती अवस्था पर पहुँच जाऊँ जबकि मेरे यौवन का आरम्भ तीस वर्ष से प्रारम्भ होता है। मैं देखता हूँ कि किसी जानवर को यौवन प्राप्त करने में जितना समय लगता है, उससे चौगुनी उसकी आयु होती है। वनस्पति का भी यही जीवन-क्रम है। तो मनुष्य के लिये क्या यह असंभव है कि वह चौगुने समय तक जिए? अवश्य ही मैं अपनी शक्ति एव बल को कम से कम सौ वर्ष तक कायम रख सकता हूं।

विचारशक्ति द्वारा दीर्घ जीवन की साधना

जन समुदाय की एक बृहत् संख्या निज कुटिल विचारों द्वारा मृत्यु के मुख में प्रवेश करती है। मृत्यु का कारण अन्धकार, अज्ञान एवं अन्धविश्वास हैं। बुद्धिमान साधक इच्छाशक्ति की साधना द्वारा १०० वर्ष या इससे भी अधिक जीवित रह सकता है। इस सिद्धान्त को हम अच्छी तरह ग्रहण कर लें, आत्मा में बैठा लें, उसी में रमण करें, इसी का प्रचार करें तो हम अपनी तथा दूसरों की आयु वृद्धि कर सकते हैं। विचारों में दीर्घ-जीवन की स्फूर्ति ला कर केवल मनोबल द्वारा हम युवा रह सकते हैं।

जवानी के मधुर विचारों, प्यारी कल्पनाओं से आत्मा को हरा भरा रक्खो, वैसे ही विचार दूसरों को प्रदान करो, उन्हीं का विश्वास जमाए रहो। बस शाश्वत यौवन तत्व पर निर्भर रहने से तुम में यौवन का सौंदर्य निखर आयेगा।

हमारी आत्मा का सत्यस्वरूप, हमारा देवत्व ऐसा अलौकिक है कि वहां मृत्यु की छाया नहीं पड़ सकती, जनता अपना अधिकार नहीं चला सकती। उच्च मानसिक प्रेरणा को कोई नष्ट नहीं कर सकता। सुविचारों का प्रभाव एकदम शरीर के अंग प्रत्यङ्गों से प्रकट हो जाता है और यौवन के मधुर स्वप्नों द्वारा हमारे शरीर पर यौवन के चिह्न प्रकट हो आते हैं।

दीर्घ जीवन के विचार प्रचुर मात्रा में मनःप्रदेशों में आने दीजिए। मन में विचार बल एवं मनोबल से मिश्रित इच्छा उत्तेजित कीजिए। इसकी सरल युक्ति यह है कि जब अवकाश प्राप्त हो तो निज अन्तःकरण में इस तत्व को दृढ़ करो कि तुम चिरकाल तक युवा बने रहोगे और तुम्हारे जीवनतत्व कभी क्षय को प्राप्त नहीं हो सकते। तुम्हारा अस्तित्व, अक्षय, अमर, निर्विकार रहेगा। तुम्हारी आत्मा को अत्यन्त शान्ति मिलेगी। तुम इस अविनाशी परब्रह्म, अमृत, नित्यधर्म और अखण्ड आनन्द के एक तत्व हो। तुम्हारा स्वरूप अव्यय है। तुम्हारा जीवन स्वत: असीम है। वह निरतिशय सुखरूप है। तुम्हारी आत्मा अज, नित्य, शाश्वत है, इन्हीं दिव्य विचारो का मनन-चिन्तन से अमरत्व प्राप्त होगा।

अनन्त जीवन के मानसिक प्रबोध— अनन्त जीवन के लिए आशावादी बने रहो। मृत्यु का अस्तित्व है—इस बात को कभी स्वीकार ही न करो मृत्युके नाम से कदापि भयभीत न हो, न कभी निराश हो। 'मैं अक्षय आत्मा हूँ, अमर जीवन हूँ, अनन्त अविनाशी और आनन्दमय तत्व हूँ, अनन्त शक्तियों का भण्डार हूँ।'' इस को बलपूर्वक ध्यान करो तो मन में विलक्षण प्रेरणा प्रकट होगी। रात्रि में

सोने से पूर्व चिन्ता एवं भय के समस्त दुर्बल विचारों को हटा कर दस पन्द्रह मिनट यही संकल्प उच्चारण कीजिये कि मैं चिन्ता, भय, तथा सब अनिष्ट विचारों से मुक्त हूं, मैं सत् चित् आनन्द अपर अव्यय आत्मा हूँ, मैं अजर अमर पवित्र आत्मा हूं।"

जो व्यक्ति निज कुटिल अकल्याणकारी अनिष्ट वृत्तियों को रोकता है उन्हें दीर्घायु चिन्तन में संचलित करता है वही ज्ञानमय विजयी जीवन प्राप्त करता है। यह सब अन्तःकरण के असीम ज्ञान सामर्थ्य का ही चमत्कार हैं।

तुम वास्तव में अक्षय आत्मा की विभूति हो और सब कुछ करने में समर्थ हो! अपने स्वामित्व का भान करो। तुम अपने जीवन के अधिष्ठाता हो।

प्रेरक सत्ता से दीर्घजीवन याचना—प्रिय पाठक! आज से आप निज-जीवन को एक क्षण भी व्यर्थ न कीजिए। सदैव हितैषी भावनाओं में रमण कीजिये। जहां दुर्बलता, अपूर्णता, कमजोरियां, रोग आदि दृष्टिगोचर होते हैं, वहां बल, पूर्णता, एवं गुण दर्शन की आदत डालिये। विचारों को उच्च बढ़ा कर हम अपनी आन्तरिक दशा को परिवर्तित कर सकते हैं और उत्कृष्ट मन की भूमिका में प्रवेश कर प्रेरक सत्ता के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं।

समस्त व्यवहार एवं क्रिया में मन को अन्तर स्थित प्रेरक सत्ता के साथ संयुक्त कीजिये, जिस से प्रेरक सदा तुम में शक्ति एवं सामर्थ्य का पूर्णतः सञ्चार कर सके। शरीर की बाह्य इन्द्रियों से तथा मन के समस्त व्यापार को थोड़ी देर के लिए शमन करके अन्तर में गहरे उतर जाइये— मैं निर्विकल्प चैतन्य स्वरूप आत्मा हूं। प्रेरक-सत्ता से मुझ में कार्य साधक असीम बल प्राप्त हो रहा है। प्रतिक्षण नव-जीवन व सामर्थ्य मुझ में जाग्रत हो रहा है। मैं ईश्वरीय प्रेरक सत्ता से सम्बन्ध स्थापित कर अनन्त जीवन लाभ कर रहा हूं।

दीर्घ जीवन पर सुश्रुत के विचार

सुश्रुत के शरीर स्थान के ३५ वें अध्याय में इस विषय का विवेचन है जिसमें निर्देश किया गया है—

"मनुष्य का शरीर सप्त धातुओं से विनिर्मित है— रस, रुधिर मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य, इन सप्त धातुओं का बल ४० वर्ष तक विकसित होता है। हमारे शरीर की चार और अवस्थाएँ हैं— प्रथम वृद्धि है जो शरीर को १६ वर्ष से १०५ वर्ष तक पहुँचाती है तथा सप्त धातुओं के बल को बढ़ाती है।

दूसरी अवस्था पचीसवें वर्ष के अन्त में छब्बीसवें वर्ष में प्रारम्भ होती है। तृतीय सम्पूर्ण अवस्था है। यह चालीसवें वर्ष तक शरीर की समस्त धातुओं को पुष्टि करती है। अन्तिम अवस्था किंचित् परिहारिणी है। यह अवस्था शरीर की सब धातुओं को पूर्णता पर पहुँचाती है। इसके अनन्तर शरीर में जो धातु बढ़ती है वह शरीर में नहीं रहती। वे स्वप्नावस्था में वीर्यपात द्वारा निकल जाती हैं। अतएव चालीस वर्ष की पकी हुई आयु ही विवाह के योग्य आयु है। ४८ वें वर्ष में विवाह करना सर्वोत्तम है।"

ऊपर लिखित नियमों के अनुसार शरीर में वीर्य आदि सत्वों का संचय होकर शरीर तैयार होने में जितने वर्ष लगते हैं उस से पांच गुनी आयु मुख्यतः मनुष्य की होती है। इस प्रकार जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का यथा योग्य पालन करेगा और आठों प्रकार के मैथुनों से बचा रहेगा, उसकी आयु १२५ वर्ष की होने की सम्भावना है।

दीर्घायु प्रदान करने वाला सनातन तत्व

हम दीर्घजीवी अवश्य होंगे—इस संकल्पको आप जितना

दृढ़ बनावेंगे, जितनी मजबूती से इसमें विश्वास करेंगे इतना ही वायुमंडल से दीर्घजीवन के तत्वों को आकर्षित करेंगे। मानसिक विचारों का प्रभाव महान् है। मानसिक दृढ़ता से अवश्य दीर्घ जीवन की प्राप्ति हो सकती है। केवल मन की दुर्बलता, काल्पनिक भय मनोजनित रोगों, स्वभावजन्य दुर्बलताओं के कारण अनेक व्यक्ति काल के ग्रास बनते देखे गये हैं।

तुम्हें दीर्घायु प्रदान करने वाला यन्त्र तुम्हारी आत्मा है। आत्म-शक्ति एवं दृढ़ मनोबल द्वारा तुम प्राण शक्ति उत्पन्न एवं इच्छानुसार विकीर्ण कर सकते हो। इच्छाशक्ति प्राणभूत विचार या मन है अतः वह आत्मा और सूक्ष्म आकाशभूत आत्मा या प्रकृति के मध्य सन्ताप का एक केन्द्र बन जाती है। आत्मा सनातन और चैतन्य प्राण-सूत्र है। यही महान् तत्व प्रकृति के विविध मंडलों में प्रकट हो रहा है।

संसार को हिला देने वाला बल अर्थात् ओजस-शक्ति का तुम्हारे मन में शब्द से निरूपण किया जा सकता है। यह शब्द है उद्बोधन या इच्छा शक्ति की अटल आज्ञा—इसे कोई नहीं टाल सकता। इच्छा की आज्ञा ब्रह्म वाक्य है। इसका उपयोग उच्चरित शब्द या समाहृत विचार में होना है। अपने मनोबल को प्रदीप्त, उसकी शक्ति का प्रचण्ड प्रकाश, तुम्हें आजन्म करना चाहिये। तुम अपनी दृढ़ शक्ति के अनुसार उद्बोधन द्वारा सहस्रों वर्ष संसार का आनन्द लूट सकते हो।

यदि तुम्हारा स्वास्थ्य सर्वोत्तम प्रकार से परिपुष्ट नहीं है, तो तुम अपनी निर्बलताओं, वृद्धावस्था के चिह्नों, रोगों के विचार न करो प्रत्युत पूर्ण जीवन की प्राप्ति पर अपना समस्त मनोयोग एकाग्र कर दो। कोई भी अनिष्ट कल्पना मनोजगत् में प्रवेश न करने दो। उद्बोधन करो. "मैं पूर्ण स्वस्थ, निर्विकार, अविनाशी हूं। मेरी शक्तिएं अपार एवं अप्रमेय हैं, मेरी आत्मा तथा समग्र विश्व में संचरित पराशक्ति से मेरा तादात्म्य है।

अन्तःकरण की जीवन प्रदायिनी धारा—मृत्यु का कारण शरीर में नहीं, प्रत्युत मन में है। कोई चिकित्सा जो मन में परिवर्तन नहीं कर सकती, मनुष्य को दीर्घायु नहीं बना सकती। क्योंकि शरीर मन का केवल बाह्य रूप है। शरीर को स्वस्थ करने के लिये मन की प्रवृत्ति को बदलना आवश्यक है क्योंकि मन कारण तथा शरीर कार्य है।

जिसने निज मन को सुव्यवस्थित कर लिया है और "मैं दीर्घजीवी हूँ—" इस तत्व को मनोमन्दिर में दृढ़ता पूर्वक स्थित कर लिया है, उस साधक को ताक़त की दवाइयां, बलवर्धक पदार्थ, पुष्टिकारक पाक जूस, सार अथवा पाशविक दूषित पदार्थों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। जिसके अन्तःकरण स्वास्थ्य, नवजीवन तथा जनस्फूर्ति का सञ्चार करने वाली विश्वव्यापी शक्ति का प्रवाह—द्वार खोल लिया है उसको रोगों के कीटाणुओं का भय नहीं।

जिन्हें अन्तःकरण की जीवन प्रदायिनी धारा द्वार खोलना है उन्हें ईर्षा, क्रोध, उद्वेग, प्रतिहिंसा कुढ़न, चिन्ता आदि की घातक भावनाओं से हृदय की रक्षा करनी चाहिये। प्रेम, केवल निस्वार्थ प्रेम की दृष्टि से समग्र विश्व को, विश्व के जीवों को निहारने का अभ्यास करना चाहिये।

सादा-जीवन

श्री मां

पैगम्बर मोहम्मद, जिन्होंने अपना समस्त जीवन ही अरब निवासियों के शिक्षण और उत्थान में लगा दिया था, न तो धनी थे और न ही उनके पास सुख आराम का कोई साधन था। एक रात जब कि वे एक सख्त चटाई पर सो रहे थे तो उनकी देह पर उसकी रस्सियों और गांठों के निशान पड़ गये। एक मित्र से न रहा गया। वह बोला—"हे ईश्वर के दूत यह शय्या आपके लिये अत्यन्त कठोर है। यदि आपने मुझे आज्ञा दी होती तो मैं आपके लिये बड़ी प्रसन्नता पूर्वक एक कोमल शय्या तैयार कर देता। इससे आपका विश्राम अधिक सुख कर हो जाता। पैगम्बर ने उत्तर दिया—' भाई कोमल शय्या मेरे लिये नहीं है। मुझे इस संसार में कुछ काम करना है। जब मेरे शरीर को विश्राम की आवश्यकता होती है तो उसे मैं वह दे देता हूं, पर उस घुड़सवार की तरह, जो अपने घोड़े को धूप की तेजी स बचाने के लिये पल भर किसी पेड़ की छाया में बांध देता है और फिर आगे चल देता है।"

×

पैगम्बर का कहना था कि उन्हें संसार में कुछ कार्य करना है। इसी लिये उनका उच्च जीवन एक सादा जीवन बन गया था। अपने ध्येय में विश्वास रखते हुये वे सब अरबवासियों को शिक्षा देना चाहते थे। आमोद प्रमोद के साधनों में उनकी जरा भी आसक्ति न थी। उनका हृदय उच्चतर विचारों की ओर झुका हुआ था।

निम्नलिखित अरबी कहानी से हमें पता चलेगा कि एक स्वस्थ आत्मा को कोई भी वस्तु उतना संतोष नहीं पहुँचा सकती जितना कि सादा जीवन पहुँचाता है।

मैंजूं खल्ब वंश की लड़की थी। अपने जीवन के प्रारम्भिक वष उसने मरुभूमि के बीच तम्बू में व्यतीत किये थे।

संयोगवश उसका विवाह ख़लीफा म्युआविझ के साथ हो गया। ख़लीफा के पास बहुत धन था; दास दासियां भी प्रचुर संख्या में थे। पर वह उसके साथ रह कर प्रसन्न न थी।

चारों ओर भरपूर धन ऐश्वर्य होने पर भी उसके मन को विश्राम नहीं था। जब कभी वह अकेली होती वह अरबी भाषा के कुछ स्वरचित पद मधुर स्वर में गाने लगती। वह गातीः—

"ऊंट की खाल से बने हुये भूरे वस्त्र मेरी आंखों में इन राजसी वस्त्रों से कहीं सुन्दर हैं।

रहने के लिये मरुभूमि का तम्बू इस महल के विशाल कमरों से अधिक सुखकर हैं।

मुर्गी के बच्चे जो अरब में तम्बू के चारों ओर फुदकते फिरते हैं, इन पुष्ट और कीमती साज से सजे हुये खच्चरों से अधिक तेज और फुर्तीले हैं।

चौकी पर रहने वाले कुत्ते की आवाज, जो किसी नये आदमी को देख कर भौंक उठता है, महल के चौकीदार की हाथी दांत से बनी हुई तुरही की आवाज से अधिक सुरीली है।"

ये पंक्तियां जब खलीफा के कान में पड़ीं तो उसने क्रोधित होकर अपनी स्त्री को महल से निकाल दिया। वह कवयित्री अपने सम्बन्धियों के पास लौट आई। उस ऐश्वर्ययुक्त महल से दूर आकर वह प्रसन्न ही हुई क्यों कि वह उसे हमेशा उदास कर दिया करता था।

×

प्रायः सभी देशों में अब लोग यह समझने लगे हैं कि सादा जीवन ऐसे जीवन से जो फिजूलखर्ची, दिखावे और मिथ्याभिमान पर अवलंबित है, कहीं अधिक वांछनीय है।

अधिकाधिक संख्या में अब पुरुष और स्त्रियां बहुमूल्य वस्तुयें खरीद सकने की क्षमता रखते हुये भी यह

सोचने लगे हैं कि उनके धन का और अच्छा उपयोग कैसे हो सकता है। वे बढ़िया खाने की तश्तरियों के स्थान पर स्वास्थ्यप्रद भोजन का व्यवहार पसन्द करने लगे हैं। बड़े बड़े भारी चटकीले भड़कीले सामान के स्थान पर वे अपने मकानों को हल्के, पायदार सामान से सजाना अधिक अच्छा समझते हैं, क्यों कि यह ऊपरी तड़क-भड़क सिवाय दिखावे के और किसी काम नहीं आती।

संसार की उन्नति में अपना जीवन उत्सर्ग करने-वाले श्रेष्ठ और उत्साही मनुष्य सदा ही शांति और मितव्ययता से रहना जानते हैं। ऐसा जीवन शरीर को भी स्वस्थ रखता है और मनुष्य को सर्वहित के कार्य में अधिकाधिक भाग लेने के योग्य बनाता है। ऐसे उदाहरणों से उन लोगों के सिर लज्जा से झुक जाते हैं जिन्होंने अपने चारों ओर निरर्थक चीजें जमा कर रखी हैं। और वे स्वयं भी अपने वस्त्रों, घर की साज-सामग्री तथा अपने नौकर-चाकरों के दास के अतिरिक्त और कुछ नहीं होते।

बिना गढ़ा खोदे टीला नहीं खड़ा किया जा सकता। एक का धन ऐश्वर्य प्रायः दूसरों की दुर्दशा का कारण होता है। इस संसार में बहुत से सुन्दर, महान तथा उपयोगी काम करने को पड़े हैं। फिर यह कैसे संभव है कि ऐसे लोग जिनमें बुद्धि का सर्वथा अभाव नहीं है अपना समय पैसे और विचारों को अनुपयोगी कार्यों में खर्च कर दें।

×

संत फरांस्वा (Saint Francois) का मुख्य काम था सत्य जीवन का प्रचार। यह काम वे धन की लालसा से नहीं करते थे। उनका अपना जीवन सादा था और उनकी सबसे बड़ी प्रसन्नता इस में थी कि वे अपने उदाहरण और उपदेशों से लोगों को शिक्षा दें। उन्हें जो कुछ खाने को मिल जाता वे उसी में संतुष्ट रहते।

एक दिन वे और उनका एक साथी मातेओ (Matteo) एक शहर के पास से गुजरे। मातेओ भिक्षा के लिये एक सड़क पर हो लिया और फरांस्वा दूसरी पर। फरांस्वा छोटे कद के तथा देखने में भी ऐसे वैसे ही थे जब कि उनका साथी ऊंचे डील-डौल-वाला प्रभावशाली और सुन्दर था। लोगों ने इसको खूब भिक्षा दी पर बेचारे फरांस्वा थोड़े से अन्न के अतिरिक्त और कुछ इकट्ठा न कर सके।

शाम को शहर के दरवाजे के बाहर दोनों मिले। पास में ही बहती नदी के किनारे एक बड़ी चट्टान पर बैठ कर उन्होंने अपने सारे दिन की कमाई पर दृष्टि डाली। फरांस्वा प्रफुल्लित मुख से बोल उठे—"भाई मातेओ, हमें ऐसे बढ़िया भोज की आशा नहीं थी।" मातेओ ने उत्तर दिया—"रोटी के इन थोड़े से टुकड़ों में आपको भोज दिखाई दे रहा है! न हमारे पास कोई मेज है, न छुरी, न कांटा, और न ही कोई नौकर है।"

"भूख लगने पर सुन्दर चट्टान की मेज पर रखी रोटी हो और प्यास लगने पर नदी का निर्मल जल पीने के लिये हो, यह क्या दावत नहीं है?" फरांस्वा ने उत्तर दिया।

इसका यह अर्थ नहीं कि गरीब मनुष्य सदा अपनी दीन अवस्था में ही संतोष मानकर उसी में पड़ा रहे वरन् इससे यह प्रकट होता है कि किस प्रकार बाह्य धन और सामग्रियों के अभाव में सुन्दर आत्माओं के अन्दर रहने वाले संतोष और प्रसन्नता रूपी धन उस स्थूल धन का स्थान ले लेते हैं।

×

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सादा रहन सहन किसी भी व्यक्ति को हानी नहीं पहुँचाता। पर धन ऐश्वर्य के बाहुल्य के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। निरर्थक चीजों का संग्रह प्रायः मनुष्य के लिये क्लेश का कारण बन जाता है।

प्रसिद्ध बादशाह अकबर के राज्यकाल में आगरे में बनारसी दास नाम के एक जैन साधु रहते थे। एक दिन बादशाह ने उन्हें अपने महल में बुलवाया और उनसे कहा—"आपको जो चाहिये मुझसे मांग लीजिये। आपके धर्म पूर्ण जीवन के फलस्वरूप आप की सब इच्छायें पूरी की जायेंगी।"

"परब्रह्म ने मुझे आवश्यकता से अधिक दिया हुआ है," संत ने उत्तर दिया।

अकबर ने अनुरोध किया—"कुछ तो मांगिये"।

"तब राजन्, मैं यही मांगता हूं कि तुम मुझे फिर कभी अपने महल में न बुलाना। मेरा सारा समय भगवान् के कार्य के निमित्त ही है।"

"अच्छा ऐसा ही होगा, पर महाराज! अब आप से मेरी भी एक प्रार्थना है।

"कहो राजन्?"

"मुझे एक ऐसी सलाह दीजिये जिसको मैं सदा याद रखूं और उस पर पूरा अमल कर सकूं"

बनारसी दास ने एक क्षण सोच कर उत्तर दिया "इस बात का सदा ध्यान रखो कि तुम्हारा भोजन सदा शुद्ध और पवित्र हो, विशेषकर रात में मांस तथा पेय पदार्थ का ध्यान रखना।"

"मैं आपकी सलाह कभी नहीं भूलूंगा," बादशाह ने साधु को विश्वास दिलाया।

अवश्य ही वह सलाह उत्तम थी क्योंकि शुद्ध सात्विक भोजन और पेय पदार्थ शरीर को स्वस्थ बनाते हैं। ऐसा शरीर ही शुद्ध विचार और पवित्र जीवन का क्षेत्र बनने के योग्य हो सकता है।

जिस दिन वह साधु अकबर के पास आया था वह रोज़े का दिन था। अकबर को उस दिन रात्रि के पिछले पहर भोजन करना था। रसोइये शाम को ही भोजन तैयार कर चुके थे। सोने चांदी के थालों में सब सामग्री परोस कर वे रोज़े के खुलने के समय की प्रतीक्षा में बैठे हुये थे।

अभी रात कुछ बाकी थी जब अकबर ने खाना लाने का हुक्म दिया। वह जल्दी में था फिर भी उसे एक दम बनारसी दास के वचन याद आ गये—मांस और पेय पदार्थ का विशेष ध्यान रखना। उसने ध्यान पूर्वक अपने सामने रखे थाल को देखा। सैंकड़ों भूरी चीटियां उस पर चल रहीं थीं। नौकरों के बहुत सावधानी बरतने पर भी चींढियां उस भोजन पर चढ़ गई थीं और वह अब खाने के काम का नहीं रह गया था।

अकबर ने थाल वापिस भेज दिया, पर इस घटना ने उसके मन में बनारसी दास की सलाह का महत्व और भी अधिक बढ़ा दिया।

यह तो तुम समझ गये होगे कि बनारसीदास ने अकबर को केवल चींटियों से ही सावधान रहने के लिये नहीं कहा था, वरन् उन सब भोजनों से, जो शरीर और मन के लिये अहितकर हैं।

अपथ्य भोजन से अनेक व्याधियां उत्पन्न होती हैं।

जो लोग जान बूझ कर दूषित भोज्य पदार्थ बेचते हैं उनका नागरिकों के प्रति किया गया अपराध अक्षमणीय है। केवल बासी और सड़े गले पदार्थ ही अहितकर नहीं वरन् वे सब चीज जिन्हें खाने से मन में या शरीर में किसी प्रकार का दोष उत्पन्न हो जाय, अवांछनीय है।

×

उपर्युक्त कहानी में यह नहीं कहा गया कि अकबर के प्याले में भी चींढियां थीं पर बनारसी दास ने उसे पेय पदार्थ की ओर से भी सावधान रहने के लिये कहा था।

यह सच है कि चमकते हुये प्याले आंखों को लुभावने लगते हैं, उनमें का तरल पदार्थ भी स्वादिष्ट और तरोताजगी देने वाला प्रतीत होता है पर वह होता है वास्तव में मनुष्य के लिये हानिकारक। पर

पर इनमें से भी सबसे अधिक हानिकारक होते हैं सुरा-पात्र।

पैगम्बर मोहम्मद की शिक्षा थी कि मदिरा पान तथा जुआ पाप है। इसलिये जो लोग कुरान के वचनों पर श्रद्धा रखते हैं उन्हें इन दोनों वचना से बचना चाहिये।

पर संसार में सर्वत्र ऐसे लोग हैं जो मदिरा पान को उचित समझते हैं। हम उनके मत का मान करते हैं पर ये लोग यह कभी नहीं कहते कि मदिरा न पीना भी कोई अवगुण है।

कुछ लोग मदिरा पान को बुरा समझते हैं तो कुछ अच्छा भी समझते हैं पर ऐसा कोई भी नहीं है जो इसका न पीना दोष माने। इसका पीना लाभदायक है या नहीं यह बात विवादास्पद हो सकती है पर इसका न पीना हानिकारक है यह बात किसी के मुंह से नहीं निकलेगी। और यह तो प्रत्येक का विश्वास है ही कि इसके न पीने से पैसे की बचत होती है।

प्रायः सभी देशों में इससे बचने के लिये समितियां बनाई गई हैं। इनके सदस्य मदिरा न छूने की प्रतिज्ञा करते हैं। कई शहरों में तो सौदागरों को इसके बेचने तक की मनाही करदी गई है।

इसके विपरीत कुछ स्थानों में, जहां अब तक लोग शराब को जानते भी नहीं थे, इसका व्यवहार होने लगा है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष में, जहां शताब्दियों से इसका व्यवहार नहीं होता था अब यह प्रचलित हो गई है। प्राचीन कथाओं में वर्णित किसी भी राक्षस से यह कम भयानक नहीं है। वे दुर्दान्त राक्षस तो केवल शरीर को ही हानि पहुँचा सकते थे पर यह शराब तो विचार शक्ति के साथ साथ चरित्र को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देने की शक्ति रखती है। सबसे पहले तो यह शरीर को ही हानि पहुँचाती है। जो माता पिता इसका अधिक प्रयोग करते हैं उनके बच्चों पर भी इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। यह बुद्धि का नाश करती है और जिन्होंने मनुष्यमात्र का सेवक बनना था यह उन्हें अपना दास बना लेती है। हम सब में से प्रत्येक को मनुष्य मात्र का सेवक बनना चाहिये। यदि हम अपने खान पान से अपने मन और शरीर को दुर्बल बना लेंगे तो हम अयोग्य सेवक ही बन पायेंगे ऐसे सेवक जो अपना कार्य करने में असमर्थ होंगे।

वह सिपाही क्या हुआ जिसकी बांह कट गई हो? वह नाविक किस काम का जिसकी नाव का मस्तूल खो गया हो? वह घुड़सवार, जिसका घोड़ा लंगड़ा हो गया है क्या करेगा! और वह मनुष्य क्या होगा जिसका अपनी अमूल्य शक्तियों पर से अधिकार उठ गया है? वह पशु से भी गया बीता है। पशु भी वही खाता पीता है जो उसके लिये हितकर होता है।

रोमन कवि वरजिल (Virgil) को खेतों में रहना सहना बहुत पसंद था। पुष्ट और तगड़े बैल उन्हें विशेष प्रिय थे क्योंकि वे खेतों में हल चलाकर उन्हें फसल के लिये तैयार करते हैं। बैल का शरीर खूब मजबूत होता है, उसके पट्ठे बड़े पुष्ट होते हैं। वर्षों लगातार कठोर काम करने का वह अभ्यासी होता है।

वरजिल कहते हैं:—

"वह शराबों और दावतों से सदा दूर रहता है। घास-फूस खाता है और बहती नदियों और निर्मल झरनों के पानी से अपनी प्यास बुझाता है। कोई चिंता उसकी सुखद नींद में व्याघात नहीं पहुँचाती।"

बलवान होने के लिये संयमी बनो।

यदि तुम्हें कोई कहे कि दुर्बल बनो तो क्या तुम उससे रुष्ट न हो जाओगे?

खान पान का संयम जहां बलवानों की शक्ति वृद्धि करता है वहां दुर्बलों की शक्ति की रक्षा भी करता है।

बनारसीदास की सलाह थी। "खाने का ध्यान रखो।" "पीने का ध्यान रखो।"

विषैले और निर्विष सांपों की पहिचान

श्री रामेश बेदी

विषैले और निर्विष सांप में भेद

सब सांपों को इस अर्थ में विषैला कहा जाता है कि अपने शिकार को मारने या जड़ करने के लिए उन की लार में काफी विष होता है। परन्तु इनकी अधिक संख्या ऐसी है जिनका विष छोटे जीवों पर ही कार्य कर सकता है, बड़े प्राणियों पर नहीं। ऐसी जातियां मनुष्य के लिए हानिप्रद नहीं हैं इस लिए इन्हें विषहीन कहा जाता है। जब तक एक निश्चित विष-ग्रन्थि, इस से विष ले जाने वाला प्रणाली और सूचि-वेध कर के उस विष को आगे पहुँचाने वाले विषैले दांत विद्यमान न हों सांप विषैला नहीं होता।

घातक सांप कुल पांच

विभिन्न देशों में विषैले और विषहीन सांपों की प्रतिशतकता अलग-अलग होती है। जन्तु-शास्त्र के मोटे अनुमान के अनुसार भारत में सांपों की कुल जातियां तीन सौ तीस के करीब हैं। इन में से समुद्रीय सांपों की उनत्तीस और भूमि के सांपों की चालीस जातियां मनुष्य के लिए ज़हरीली कही जा सकती हैं।[1] भारत के अधिक खतरनाक भूमि के सांप ये हैं—दो फणी, दस प्रकार के कौड़िये, सात मूंगे सांप और मण्डलियों की सोलह जातियां। इन में से कुल पांच सांपों में एक हट्टे कट्टे जवान आदमी को मारने की शक्ति निश्चित रूप से होती है। इन पांच के नाम ये हैं—शेष नाग, फनियर, साधारण कौड़िया (Bungarus caerules), रसल मण्डली और फूर्सा। घातक विष वाले सांपों की इतनी कम संख्या होते हुए भी हर साल मनुष्यों की एक बड़ी संख्या सर्पदंश के कारण मौत का शिकार हो जाती है।

[1] सुश्रुत ने सांपों की कुल अट्ठासी जातियां लिखी हैं जिन में से बारह निर्विष और शेष छिहत्तर विषैली समझी हैं। वृद्ध वाग्भट ने सोलह निर्विष जातियों का उल्लेख किया है जिन में से सात सुश्रुत के निर्विष सांपों की सूची में गिनी गई हैं और नौ नहीं। इस लिए सुश्रुत की बारह जातियां+वाग्भट की नौ जातियां=इक्कीस जातियां विषहीन हुईं। इस से पता लगता है कि आयुर्वेद के अनुसार सविष और निर्विष सांपों की संख्या चार में एक है।

एक लाख से अधिक मौतें

सर्पदंश से होने वाली मौतों की सख्या संसार के दो देशों—भारत और ब्राज़ील—में उच्चतम है। एक लाख से अधिक आदमी हर साल सांप के काटने से दुनियां में मरते हैं। पहले जो ब्रिटिश भारत था, उस में हर साल बीस हज़ार से तेईस हज़ार तक जानें जाती हैं। शेर, चीते, बघियाड़, भालू, भेड़िये और मगरमच्छ आदि जंगली जानवरों से सब मिला कर जो मौतें हर साल होती हैं उस से यह संख्या करीब दस गुनी है। रियासतों के क्षेत्र को भी इस में मिला लिया जाय तो हम यह बिलकुल ठीक कह रहे होंगे कि अकेले भारत में हर रोज़ सौ आदमी सांप के काटने से मर जाते हैं। बंगाल, बिहार, उड़ीसा और उत्तर प्रदेश में सब से अधिक मौतें होती हैं।

अधिक मौतें अज्ञान से

दयनीय तो यह है कि रोज़ की इन सौ लाशों में अधिक ऐसी होती हैं जिन में घातक विष तो पहुँचाया ही नहीं गया होता। डसने वाला सांप बिलकुल विष-हीन होता है। भय, अज्ञान और चिकित्सा के अवैज्ञानिक

तरीकों से जान चली जाती है। लोग सांपों की भयङ्कर ज़हरीली किस्मों को विषहीन जातियों से अलग पहिचानना जान जांय तो यह भय और अज्ञान दूर किया जा सकता है और वर्तमान उच्च मृत्यु संख्या को कम किया जा सकता है।

देहातों में प्रचार आवश्यक

अधिक जानें गांवों में जाती हैं इस लिए विषैले और निर्विष सांपों की भेदक पहिचान करना देहातियों को अवश्य सिखाना चाहिए। इस विषयक पोस्टरों, पत्रकों और छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का प्रचार गांवों में करना चाहिए। वही स्कूल मास्टर गांवों में नियुक्त किये जांय जिन्हें इस विषय का ज्ञान हो और दुर्घटना होने पर जो प्रारम्भिक उपचार देने की योग्यता रखते हों!

ठीक पहचान के लिए छिलकों का ज्ञान आवश्यक

सांप का रंग उसकी जाति नहीं बताता क्योंकि रंग प्राय: आस पास की चीज़ों के अनुरूप होता है। आकार और डीलडौल से जाति की पहिचान इस लिए नहीं होती कि आयु के साथ-साथ ये बदलते रह सकते हैं। ऊपर की रेखाओं या दूसरे निशानों से भी उस की सच्ची पहिचान इस लिए नहीं हो सकती कि आयु के अनुसार इन में परिवर्तन होता रह सकता है। बच्चों के निशान और रंग कुछ जातियों में युवावस्था से बिलकुल भिन्न होते हैं। इस प्रकार यह विदित होता है कि केवल रूप-रंग और बाहर की विशेषताएं ही किसी सांप की पहिचान करने में गलती भी करा सकती हैं, यद्यपि यह अनुमान करने में इस से मदद तो अवश्य मिलती है कि सांप किस विशेष टाइप का हो सकता है। इस लिए किसी सांप की ठीक-ठीक पहिचान के लिए वैज्ञानिक तरीके से छिलकों की विशेषताएं और उनका क्रम देखना चाहिए।

विषैले और निर्विष सांपों की पहिचान

चित्र १—पूंछ ऐसी चपटी हो तो सांप विषैला होता है। समुद्रीय सांपों में ऐसी पूंछ होती है।

चित्र २—गोल या लगभग गोल पूंछ वाला सांप विषैला और निर्विष दोनों प्रकार का हो सकता है।

चित्र ३—पेट के सब छिलके छोटे हों तो विषहीन सांप है।

चित्र ४-पेट पर बीच वाला छिलका (प्लेट) बड़ा हो और उसके साथ छोटे छिलके भी हैं तो सांप विषहीन है।

चित्र ५—छिलका (प्लेट) इतना बड़ा हो कि पेट की सारी चौड़ाई तक चला जाय। छोटा छिलका कोई न हो तो सांप विषैला और विषहीन दोनो प्रकार का हो सकता है।

सिंधु-सर्प
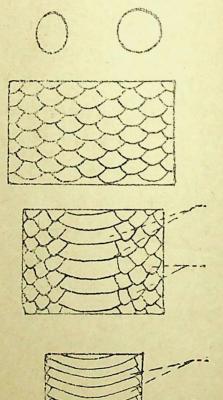
पतवार के फलक की तरह पूंछ चपटी और दबी हुई है तो यह सिन्धु-सर्प है और इस लिए ज़हरीला है।

समुद्रीय सांपों के काटने की घटनाएं समुद्र के बीच में या तट पर ही हो सकती हैं। नदियों और तालाबों में रहने वाले सांप निर्विष हुआ करते हैं।

भूमि के सांप

पूछ गोल हो तो भूमि का सांप है और विषैला तथा निर्विष दोनों प्रकार का हो सकता है।

अधिक भूसर्पों में पेट की प्लेटें चौड़ी होती हैं और ये सांप सविष और विषहीन दोनों तरह के होते हैं। प्लेटें इतनी चौड़ी न हों कि सारे पेट को ढकें परन्तु पेट के बीच में ही रह जांय तो सांप निश्चित रूप से विषहीन है। दुमुही तथा अजगर जैसे डरावने और बड़े सांप इस प्रकार के होते हैं।

मण्डलियों की विशेषताएं

बिना गड्ढे वाले सब मण्डलियों के पेट पर चौड़ी प्लेटें और सिर पर छोटे छिलके होते हैं। ये ज़हरीले सांप हैं। भूमि के किसी दूसरे सांप में ये दोनों विशेषताएं एक साथ नहीं होतीं। मारने में सिर कुचला भी गया है तब भी यह बात पता लग जाती है और इस पहिचान में गलती नहीं लगती। इन दो विशेषताओं वाले सांप के आंख और नाक के बीच में गढ़ा है तो यह गर्तमण्डली होगा। कुछ गर्त मण्डलियों में सिर के त्वक् खण्ड (shields) बड़े होते हैं। गड्ढे से इन की पहिचान हो जाती है।

अजगर और मण्डली में भेद

एक ताज़ा मारा गया मण्डली अपनी प्राकृतिक जगह पर पड़ा है तो आस पास की घास पात से रंग में इतना अधिक मिल सकता है कि उस पर सहसा नज़र न पड़े। अजगर अपेक्षाकृत घने जंगलों में रहता है। इस लिए यदि रसल मण्डली ऐसे घने जंगलों में मिले तो न जानने वाला गलती से उसे अजगर का बच्चा समझ सकता है। रसल मंडली की लम्बाई चार फीट के करीब होती है और आम तौर पर यह वृक्षों पर नहीं पाया जाता। पानी के अच्छे निकास वाली स्थली अथवा पानी के किनारे इन का निवास होता है।

मण्डली की चार विशेषताएं

उड़ती नज़र और लापरवाही से देखने पर इन सांपों का रसल मंडली के साथ भ्रम हो सकता है— अजगर का बच्चा, रसल्स अर्थ स्नेक और रॉयल स्नेक। इस लिए रसल मंडली की निम्नलिखित चार विशेषताएं देखनी चाहिए—१. पेट पर चौड़ी प्लेटें, २. पीठ तथा सिर पर एक जैसे ही छोटे-छोटे छिलके, ३. पीठ पर काले चकत्तों की तीन शृङ्खलाएं या जंजीरें— बाहर की दो पंक्तियों के चकत्तों के किनारे सफेद होते हैं, और ४. पूछ के नीचे प्लेटें विभक्त होती हैं।

फूर्सा की पहिचान

छिलकों की रचना में रसल मंडली से फूर्सा में भेद यह है कि इस की पूछ के नीचे की प्लेटें पूरी होती हैं, विभक्त नहीं।

गिंडोले जैसे सांप

पीठ के छोटे छिलकों के समान पेट पर भी छोटे छिलके हों, जैसा कि गिंडोले के सदृश अन्धे सांपों में होता है, तो सांप निश्चित रूप से विषहीन है।

फनियर की पहिचान

चौड़ी उदर प्लेटों वाले सांपों में मंडलियों की कोई विशेषताएं न मिलें तो मालूम करें कि यह फणी या कौड़िया तो नहीं। फणी के फन होता है इस लिए सांप यदि जीवित है तो उसे पहिचानने में कभी गलती नहीं होगी। गरदन पर ऐनक का सा या गोल सा जो निशान होता है उस से फनियर पहिचाना जाता है। ऊपर के गरदन के निचले पृष्ठ पर दो तीन पंक्तियां काली प्लेटों की हैं तो यह फनियर है। ओठ का तीसरा शल्क (shield) बहुत बड़ा होता है और नाक तथा आंख के त्वक् खण्ड को छूता है।

मूंगे सांप

मूंगे (कोरल) सांपों में भी यह विशेषता होती है

परन्तु उन के शरीर पर मूंगे के से निशान भी होते हैं। ये सांप इतने विषैले नहीं समझे जाते कि मनुष्य को मार सकें।

धामन से शेषनाग का भेद

पूर्व से आये सांपों के बक्सों को जिन में एक से अधिक जाति के सांप चौकन्ने धामन आदि मूषक भोजी सांपों के साथ ही पैक कर दिये जाते रहे हैं। खोलने में डॉक्टर डिटमार सदा सतर्क रहे हैं। ये निर्विष सांप रूप-रंग में शेष नाग के साथ बहुत अधिक मेल खाते हैं और एक सूक्ष्मदर्शी आंखें ही शेष नागों के बच्चों और इन निर्विष सांपों में भेद कर सकती हैं।

कौड़िये की छह विशेषताएं

नीचे लिखी छह विशेषताएं जिस सांप में विद्यमान हों वह कौड़िया होगा—

१ पेट पर चौड़ी प्लेटें।

२ शल्कों (shields) से आवृत सिर।

३ गोल पूंछ।

४ रीढ़ के ऊपर के छिलके दूसरों से बड़े, सीधी एक रेखा में और करीब-करीब छह पहलू वाले।

५ निचले ओठ के दोनों ओर केवल चार शल्क।

६ पूंछ के नीचे प्लेटें पूरी, विभक्त नहीं।

चौथी और छठी विशेषताएं ही कौड़िये की पहिचान के लिए काफी होती हैं।

शेष सब विषहीन

काटने वाला सांप मण्डली, फणी, कौड़िया या सिन्धु सर्पों में से कोई नहीं है तो समझ लेना चाहिये कि वह निर्विष प्रकार का है, दंश घातक नहीं होगा और व्यक्ति को कुछ हानि नहीं होगी। विषैले सांपों के इन तीन बड़े समूहों की पहिचान में जो बातें ज़रूरी हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिए। इन के अतिरिक्त सब सांप, चाहे वे देखने में कितने ही बड़े या भयङ्कर प्रतीत होते हों, निर्विष होते हैं।

विषहीन सांपों के दांत

निर्विष सांपों में ऊपर के जबड़े में दांतों की चार और नीचे के जबड़े में दो पंक्तियां होती हैं। ऊपर के जबड़े की दो पङ्क्तियां मुख की छत के मध्य में तालू में स्थित होती हैं। शेष दो ऊपर के जबड़े के दोनों किनारों पर होती हैं। इन सांपों में निचले जबड़े के दोनों किनारों पर एक-एक दन्त-पंक्ति होती है।

विषैले सांपों के दांत

विषैले सांपों में ऊपर के जबड़े में तालू के दांतों की पङ्क्तियां तो होती हैं परन्तु किनारों की दो पङ्क्तियां नहीं होतीं। उनके स्थान पर दो बड़े विषदन्त होते हैं। विषदन्त दोनों ओर प्रायः एक-एक होता है। परन्तु एक या अधिक फालतू बिषदन्त भी हो सकते हैं जो एक थैली में बन्द रहते हैं। ये विशेष रूप से परिवर्तित दांत हैं जो गड्ढेदार या नलिकाकार होते हैं और दूसरे दांतों से प्रायः कुछ बड़े होते हैं। इसलिए यदि एक पिन ऊपर के जबड़े के किनारे पर फेरने से बहुत से दांत अनुभव हों तो बहुत सम्भवतः यह निर्विष सांप है। यदि एक ही दांत अनुभव हो और अपेक्षाकृत बड़ा हो तो सांप ज़हरीला है।

दांत की पहिचान ही अचूक नहीं

सविष और निर्विष सांपों को पहिचानने की यह सुगम विधि मुख्य-मुख्य सांपों की पहिचान में अवश्य मदद देती है परन्तु बहुत अधिक व्यापी रूप में यह लागू नहीं होती। इस प्रकरण में कहे गये ज़हरीले सांपों के प्रमुख चार समूहों की पहिचान में इसका आश्रय लिया जा सकता है परन्तु सर्प-विद्या का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर लेने पर इस नियम के अपवाद भी मिल जाते हैं। इसलिए विषैले सांपों की अचूक पहिचान तो अगले पृष्ठ पर दिये गये चार्ट के अनुसार करनी चाहिये।

बॉल का चार्ट

हज़ारों भारतीय सांपों का व्यवस्थित अध्ययन करने के बाद कर्नल बॉल ने एक बहुत उपयोगी चार्ट बनाया था। इस में उन्होंने प्रमुख ज़हरीले सांपों—[सिन्धु] सर्पों और भूसर्पों—के चार बड़े समूह की पहिचान बताई है। नीचे दी गई तालिका से विषैले और निर्विष सांपों के भेद का ज्ञान सरलता से हो जायगा।

सांप

पतवार के फलक की तरह पूंछ दबी हुई और चपटी		बेलने की तरह गोल और दबी हुई न हो
समुद्रीय सांप—विषैला		भूसर्प
पेट पर छिलके वैसे छोटे हों जैसे पीठ पर	पेट की प्लेटें बड़ी और चौड़ी हों लेकिन पेट की पूरी चौड़ाई को न ढक सकें	पेट की पूरी चौड़ाई को ढकने वाली चौड़ी प्लेटें हों
निर्विष	निर्विष	
सिर पर छिलके वैसे छोटे हों जैसे पीठ पर	सिर पर छोटे छिलके या शल्क (shield) हों तथा नाक और आंख के बीच में गड्ढा हो	सिर पर शल्क (Shield) हों
मण्डली - विषैला	गर्तमंडली – विषैला	
१. ऊपर के ओठ का तीसरा शल्क आंख और नाक के शल्क को छूता हुआ हो	२. पृष्ठवंशीय छिलके तुलना में बड़े हों और पीठ पर पट्टियां या आधे छल्ले हों, पूंछ के नीचे प्लेटें अविभक्त हों	३. नम्बर एक या दो में वर्णित कोई विशेषता न हो
फणी और मूंगे सांप	कौड़िया—विषैला	निर्विष
विषैला		
फन होगा / पेट पर मूंगों जैसी धारियों के निशान होंगे		

डसे गये स्थान से पहिचान

बहुधा ऐसा होता है कि डसने वाला सांप मारा नहीं जा सका और न ही देखा गया है । ऐसे उदाहरणों में भी दंश की विशेषताओं और दष्ट स्थान की अवस्था को देख कर यह कहना सम्भव होता है कि सांप विषैला था या विषहीन ।

दांतों के निशानों से पहिचान

विषैले सांपों के काटने पर प्रायः दो छिद्र बनते हैं जो लम्बे विषदन्तों के खुबने से बने होते हैं । सांप के मुख की चौड़ाई के अनुसार इन की आपस में दूरी भिन्न-भिन्न होती है । विषहीन सांप के दंश में दांतों की पंक्तियों की तरह बहुत से छिद्र पड़ सकते हैं । ज़हरीले दांतों के छिद्र निर्विष सापों के दंश से अधिक गहरे हो सकते हैं । बहुत से उदाहरणों में सांप का मुंह डसे जाने वाले अंग को पकड़ने के लिए बहुत छोटा होता है । इस लिए उसे तिरछा हो कर काम करना पड़ता है । इस से दात फिसल जाते हैं और नियमित दो छिद्र बनाने की बजाय खाल को फाड़ते हुए या खरोचते हुए निकल जाते हैं जिस से ज़हरीले सांप का दंश प्रायः कर एक घाव सा बन जाता है, और क्योंकि सांप अपनी सुविधा के लिये तिरछा हो कर काटने की कोशिश करता है तो एक ही ओर का दांत गड़ने से छिद्र या खरोंच भी एक ही हो सकती है । छिद्र बहुत स्पष्ट नहीं है तो प्रवर्द्धक ताल से देखना चाहिये ।

दष्ट स्थान पर अन्य लक्षण

डसे हुये स्थान पर वेदना होती है । घाव में विष डाला गया है तो तुरन्त या कुछ ही देर बाद तीव्र वेदना ज़रूर अनुभव होती है और देर तक बनी रहती है । जलन होती है या ऐसा मालूम होता है कि किसी विषैले जीव का डंक लगा हो । सूचिविद्ध किये गये विष के परिमाण के अनुसार पीड़ा की तीव्रता का कम या अधिक होना स्वाभाविक है । जितनी बड़ी मात्रा में विष घाव में गया है उतनी ही तीव्र पीड़ा होगी । फनियर के दंश में वातनाड़ियों के पक्षाघात के कारण कुछ देर बाद वह स्थान सुन्न पड़ने लगता है । ज़हर डाला गया है तो डसा हुआ भाग तुरन्त सूज जायगा । कुछ देर के बाद सोज नहीं हुई तो दंश के साथ विष प्रविष्ट नहीं हुआ या सांप था ही निर्विष ।

छिद्रों से खून रिसना

साधारण सी खरोंच लग जाने पर भी खून बहने लगता है और कुछ मिनिटों के बाद वह स्वयं जम जाया करता है । खून के जमने की यह शक्ति सर्पविष से बहुत कम हो जाती है । छिद्रों पर खून जमने के बजाय लाल से पतले द्रव के रूप में लगातार कुछ घण्टों तक रिसा करता है । निर्विष सांप का दंश है तो खून के जमने से थोड़ी ही देर बाद छिद्र बन्द हो जायगे ।

खाल नीली पड़ जाना

दंश में ज़हर डाला गया है तो इस के चारों ओर का भाग कुछ मिनिटों में हरा या नीला सा और कभी-कभी जामनी हो जायगा, वह हिस्सा चोट खाया हुआ सा मालूम पड़ता है । दंश के चारों ओर त्वचा के नीचे रक्त स्राव हो जाने से ऐसा होता है । विष प्रविष्ट नहीं किया गया तो त्वचा के रंग में ऐसे परिवर्तन—सोज और रक्तस्राव—नहीं होंगे । दूसरे विषैले सांपों की अपेक्षा मण्डली के दंश में ये स्थानिक लक्षण अधिक स्पष्ट होते हैं ।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि कस कर बंधे हुए बन्धन में ये लक्षण कुछ हद तक छिप जाते हैं क्योंकि खून का दौरा उसी जगह रुक जाने से बन्धन के नीचे के हिस्से में कुछ सोज हमेशा हो जाया करती है ।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु—जाड़ा पूरे जोर पर हैं। प्रातः सायं अच्छी ठंड पड़ रही है। शीत के कारण वन उपवन भी ठिठरे हुए से खड़े प्रतीत होते हैं। प्रभात में गंगा-द्वार से ढाहू के झोंके भी आते रहते हैं। इन दिनों अध्ययन की कक्षाएं सुहावनी धूप में ही लग रही हैं। गुरुकुल के समीप की गेहूं की खेतियां शनैः शनैः पनप रही हैं। अवकाश के क्षणों में ब्रह्मचारी वन-यात्राओं पर जाते रहते हैं। गंगा पार के जंगलों में बेर और आंवलों की बहार है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। सायं-कालीन क्रीडाएं नियमित रूप से हो रही हैं।

विशिष्ट अतिथिगण

दीपावली के अवकाश के दिनों में तथा उसके बाद भी अनेक मान्य अभ्यागत गुरुकुल में आते रहे हैं।

पोरबन्दर (सौराष्ट्र देश) के प्रसिद्ध उद्योगपति और व्यापारी श्री सेठ नानजी भाई कालिदास मेहता गुरुकुल के पुराने प्रेमी हैं। उन्होंने दीपावली के पश्चात् गुरुकुल में पधार गुरुकुल का आतिथ्य स्वीकार किया। विद्यालय के सभा-भवन में आपने अपने युगांडा (पूर्व अफ्रीका) के साहसी और स्वावलम्बी जीवन के अनेक शिक्षाप्रद प्रसंग सुना कर ब्रह्मचारियों को लाभान्वित किया। गुरुकुल के कार्य-कलाप को निहार आपने बहुत प्रसन्नता प्रकट की।

डेलेबीयर युनिवर्सिटी (न्यूयार्क) के दर्शन-शास्त्र के उपाध्याय प्रो० फिलिप उस दिन गुरुकुल में पधारे। आपने गुरुकुल के पाश्चात्य दर्शन के उपाध्याय श्री प्रो० नन्दलाल जी खन्ना के साथ दार्शनिक विषयों पर विचार विमर्श किया। इसके अतिरिक्त भारतीय आयुर्वेद के दार्शनिक तत्व के विषय में गुरुकुल के चरकोपाध्याय श्री दिवाकरम् जी के साथ बड़े जिज्ञासुभाव से नाना प्रकार की चर्चाएं की। आप मानसिक उपचार और योग-चिकित्सा पर विशेष रूप से दिलचस्पी रखने वाले विद्वान् प्रतीत हुए।

इनके अतिरिक्त विभिन्न प्रान्तों के विविध क्षेत्रों में काम करने वाले कुछ एक विद्वान् सज्जनों ने पिछले दिनों गुरुकुल का अवलोकन किया और गुरुकुल की कार्य प्रवृत्तियों के प्रति अपना स्नेह प्रकट किया। इनमें निम्न-लिखित महानुभावों के नाम उल्लेखनीय हैं।

श्री त्र्यंबक रघुनाथ देवगिरीकर (मराठी चित्र-मय जगत् मासिक पत्र के संपादक और भारतीय संसद के सदस्य) चित्रशाला प्रेस पूना के संचालक श्री दामोदर त्र्यंबक जोशी। सार्वजनिक कॉलेज सूरत के प्रस्तोता (रजिस्ट्रार) श्री व्रजरत्नदास अक्कड़। मुम्बई के गुजराती दैनिक पत्र वंदेमातरम् के उपसंपादक श्री वल्लभदास अक्कड़। लखनऊ के पुरातत्व संग्रहालय के अध्यक्ष श्री मदनमोहन नागर। मथुरा के पुरातत्व-संग्रहालय के अध्यक्ष श्री कृष्णदत्त वाजपेयी।

आचार्य रामदेव स्मृति दिवस

गत ६ दिसम्बर को प्रातःकाल ६ बजे विद्यालय के प्रांगण में आचार्य प्रियव्रत जी के सभापतित्व में कुल-वासियों ने आचार्य रामदेव-दिवस मनाया। ब्र० जयवीर, प्रो० लालचन्द जी तथा प्रो० सुखदेव जी के भाषण हुए। प्रो० लालचन्द जी ने श्री रामदेव जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुवे कहा कि वह गुरुकुल के प्रचार में तथा कार्य करने में सदा अथक रहे। उन का जीवन एक सच्चा ब्राह्मण-जीवन था। लोभ उन्हें छू तक नहीं गया था। इस के पश्चात् प्रो० सुखदेव जी ने आचार्य रामदेव जी की जीवनी पर बोलते हुए कहा कि यदि हम गुरुकुल के कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी के बाद किसी को दूसरा स्थान दे सकते हैं तो वह निःसंदेह आचार्य रामदेव जी का ही है। अन्त में आचार्य प्रियव्रत जी ने अपने बहुत से अनुभव आचार्य रामदेव जी के साथ रहने के बताये और कहा कि विद्याप्रेम उनका एक व्यसन सा बन गया था जिस प्रकार हम

भूख से व्याकुल होकर भोजनालय की ओर दौड़ते हैं ठीक उसी प्रकार आचार्य रामदेव जी यात्रा में पुस्तक खरीदने की ओर दौड़ते थे। वह कई विषयों के ज्ञाता थे। महात्मा गांधी जी सन् १९१४ में उनसे प्रथम मिलने पर ही उनकी कार्य-क्षमता और योग्यता से प्रभावित हो गये थे। गुरुकुल और आर्यसमाज की सेवा में ही उन्होंने अपने खून से पानी बना दिया था। भारत में राष्ट्रिय-शिक्षा के उन्नायकों में उनका महत्वपूर्ण स्थान था।

स्वर्गीय लाला नारायणदत्त जी

गुरुकुल के परमभक्त, आर्यसमाज के पुराने कर्मठ वीर और दिल्ली राजधानी की अनेक सार्वजनिक संस्थाओं के प्राण रूप श्री लाला नारायणदत्त जी ठेकेदार का ८२ वर्ष की परिपक्व आयु में निधन-वृत्तान्त सुन कर समस्त कुलवासी बहुत दुःखी हुए। गुरुकुल के स्थापना-काल से ही प्रशंसित लाला जी उसके परम सहायक और परिपोषक रहे। वर्षों तक वे गुरुकुल की स्वामिनी सभा (आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब) की अन्तरंग सभा के तथा गुरुकुल की विद्या सभा सदस्य चले आ रहे थे। उनके अनुभव, दूरदर्शिता और सुझाव संकट के समयों पर बहुत उपयोगी होते थे। गुरुकुल के प्रतिष्ठापक कुलगुरू स्वामी श्रद्धानन्द जी के वे परम मित्र और सहकर्मी थे। अखबारों की प्रसिद्धि से दूर रह कर और बिना बोले बहुत काम करने वाले आप निरीह समाज सेवक थे। समस्त कुलवासियों ने आपकी स्मृति में एकत्र होकर आपकी सेवाओं के प्रति श्रद्धाञ्जलियां अर्पित करके आपके आत्मीयजनों तथा विशाल मित्रगणों के प्रति सहानुभूति के भाव प्रकाशित किए हैं। सत्य ही गुरुकुल के लिए आपकी क्षति अपूरणीय है।

योगीराज श्री अरविन्द की स्मृति में

पांडीचेरी के परमहंस योगीप्रवर श्री अरविन्द के निर्वाण का समाचार रेडियो द्वारा ज्ञात होते ही गुरुकुल विश्वविद्यालय में शोक की छाया छा गई। अगले दिवस इस दिवंगत महाप्राण पुरुष के सम्मान में गुरुकुल के सब विभाग बन्द रहे। प्रातःकाल नौ बजे विद्यालय के आँगन महती सभा के रूप में समवेत होकर समस्त कुलवासियों ने श्री अरविन्द के दिव्य और प्रतिभावान् जीवन कार्यों के प्रति श्रद्धा के फूल चढ़ाए। गु० कु० के उपाचार्य श्री प्रो० लालचन्द जी ने विस्तार से उनके कार्यकलाप का परिचय देते हुए बतलाया कि प्राची और प्रतीची की ज्ञान-ज्योति से श्री अरविन्द का जीवन आलोकित था। भारतीय संस्कृति के इस महान ज्योतिर्धर ने एक महान् सन्त, महान् दार्शनिक, महान् साहित्यकार और महान् योगी के रूप में जगत् के लिए एक बड़ा भारी दाय प्रदान किया है। वे स्वयं दिव्य जीवन पथ के यात्री थे और जगत् को उसी पन्थ की ओर ले जाने के लिए पांडीचेरी के शांत एकांत आश्रम में बैठ कर गत चालीस वर्षों से साधना कर रहे थे। जगत् के चोटि के विद्वानों को उन्होंने अपनी प्रतिभा से आकृष्ट किया था। वे भारतीय-संस्कृति के अन्यतम प्रतिनिधि और उपदेष्टा थे। उनके यशोदीप्त जीवन और कार्यों के प्रति सारा भारत नतमस्तक है। श्री प्रो० सुखदेव जी और आचार्य श्री प्रियव्रत जी ने भी श्री अरविन्द की जीवन-साधना पर प्रकाश डालते हुए अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित की।

पुरातत्व संग्रहालय

मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय के अध्यक्ष श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने गुरुकुल के पुरातत्व संग्रहालय का अवलोकन करके निम्नलिखित रूप में अपने विचार प्रकट किए हैं—

आज मुझे गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संग्रहालय को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। यह संग्रहालय लगभग दस मास पूर्व ही अस्तित्व में आया

है। परन्तु इतने अल्पकाल में ही इसका जैसा रूप बन गया है वह इस की भावी उन्नति का द्योतक है।

संग्रहालय में प्राचीन वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्र कला एवं मुद्राओं आदि के संकलन एव प्रदर्शन की व्यवस्था की गई है। कांगड़ा शैलो के जो चित्र यहां प्रदर्शित हैं उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आशा है इन चित्रों के संग्राहक महोदय पं० गंगाप्रसाद मिश्र स्थायी रूप से इन चित्रों को संग्रहालय के लिए प्रदान करने की कृपा करेंगे। कनखल की प्राचीन दीवालों पर मैंने अब से लगभग सवा सौ वर्ष के कुछ भित्ति चित्र देखे। इनमें से अनेक चित्र अच्छी कोटि के हैं। उनके प्रतिचित्र बनवा कर संग्रहालय के उत्साही अध्यक्ष ने यहां लगवा दिये हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने भारत की प्राचीन लिपियों के उद्‌भव एवं विकास सम्बन्धी चार्ट, कुछ शिला-लेखों की छापें तथा प्राचीन भारत के कई भौगोलिक मानचित्र भी संग्रहालय की दीवालों पर यथा-स्थान लगवा दिये हैं, जो विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी हैं।

सिक्कों का संग्रह थोड़े से ही काल में काफी अच्छा बन गया है। इस में पं० ठाकुरदत्त जी द्वारा प्रदत्त सिक्कों की संख्या सब से अधिक है।

पूज्य सरदार को श्रद्धांजलि

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के महान् सेनानी सरदार श्री वल्लभभाई पटेल का दुःखद निधन समाचार गुरुकुल शिक्षा नगरी के निवासियों ने वज्राघात की तरह अनुभव किया। अपने इस प्यारे नेता के महाप्रयाण के विस्तृत समाचार जानने के लिए छोटे छोटे ब्रह्मचारी तक भी रेडियो वाले घरों की ओर दौड़ने लगे। समाचार मिलते ही गुरुकुल के समस्त विभाग सरदार श्री के सन्मान में बन्द कर दिए गए। विषाद की गहरी छाया कुल पर छाई हुई थी। सबके मन दुःख के आवेग से भरे हुए थे। समस्त कुलवासियों ने सायंकाल ४ बजे सार्वजनिक सभा के रूप में एकत्र होकर निम्नलिखित प्रस्ताव द्वारा इस दिवंगत राष्ट्र पुरुष के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलियां अर्पित कीं --

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के समस्त ब्रह्मचारी, उपाध्याय और कार्यकर्ता नूतन भारत के महान् निर्माता, भारतीय गणराज्य के उपप्रधान मन्त्री, स्वाधीनता महासंग्राम के महान सेनानी और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के अन्यतम सहकर्मी तथा दाहिने हाथ माननीय सरदार श्री वल्लभ भाई पटेल के एकाएक देहावसान पर अतिशय खेद अनुभव करते हैं। हमारे राष्ट्र की मुक्ति और उन्नति के लिए जीवन पर्यन्त जाग-जागरूक प्रहरी की भांति सदा सन्नद्ध रह कर कार्य करने वाले इस महान् राष्ट्र पुरुष की सुदीर्घ सेवाओं के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनके आत्मीय जनों, सहकर्मियों और मित्रों के साथ अपनी गहरी समवेदना और सहानुभूति प्रकाशित करते हैं। और परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह उस महान् आत्मा को शांति और सद्‌गति प्रदान करे।

शिक्षापटल का चुनाव

गुरुकुल विश्वविद्यालय के शिक्षापटल का निर्वाचन प्रति तीन वर्ष बाद होता है। इस वर्ष शिक्षा पटल का नया चुनाव होना है। नियमों के अनुसार स्नातकों के दो प्रतिनिधि शिक्षापटल में होते हैं। उन सब स्नातकों को प्रतिनिधि निर्वाचन करने के लिए मत देने का अधिकार है. जिन्हें स्नातक बने कम से कम तीन वर्ष व्यतीत हो चुके हों। वाचस्पति परीक्षोत्तीर्ण स्नातकों के लिए यह तीन वर्ष की बाधा नहीं है। आप जिन दो स्नातकों को अपना प्रतिनिधि निर्वाचित करना चाहें, उनके नाम यथा सम्भव शीघ्र ही प्रस्तोता कार्यालय में भेजने की कृपा करें। ३१ दिसम्बर तक नाम प्रस्तोता कार्यालय में पहुँच जाना चाहिए।

नोट – निम्नलिखित स्नातक अन्य प्रकार से शिक्षापटल के सदस्य हो चुके हैं, अतः अपना वोट देते हुए इस का ध्यान रखना चाहिए।

सर्व श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति, पं० सुखदेव जी वेदान्त वाचस्पति, पं० दीनदयालु जी शास्त्री, पं० यशःपाल जी सिद्धान्तालङ्कार, पं० भद्रसेन जी आयुर्वेदालंकार, पं० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी. हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी की

विशेष गुणादायक औषधियां

च्यवनप्राश हाइपो

च्यवनप्राश में कैल्शियम व सोडियम आदि नवीन रासायनिक पदार्थ डालकर यह योग तय्यार किया गया है। खांसी, क्षय, निर्बलता दमा आदि में रामबाण है और शरीर वृद्धि के लिये उत्तम रसायन है।

मूल्य ३।) पाव।

सिद्ध मकरध्वज

स्वर्ण, कस्तूरी आदि बहुमूल्य वस्तुओं से तैयार किया गया है। सब प्रकार की निर्बलता को दूर करके शरीर में शक्ति व स्फूर्ति देता है व नया जीवन लाता है।

मूल्य ३॥) माशा, ४५) तोला।

बादाम पाक

बादाम, पिस्ता व अन्य गुणदायक वस्तुओं से तैयार किया गया है। स्वादिष्ट, बलवर्धक पाक है। मस्तिष्क व शारीरिक दुर्बलता को दूर कर शक्ति देता है।

मूल्य ४) पाव।

गुरुकुल चाय

जड़ी-बूटियों के योग से बनी देशी चाय है। सुख व स्वास्थ्य के लिये परिवार में इसका प्रयोग कीजिये। थकावट, हल्के बुखार, खांसी, जुकाम में तुरन्त लाभ दिखाती है।

मूल्य ।~) छटांक, १=) पाव।

बसन्त कुसुमाकर

सोना, चान्दी, मोती आदि से तैयार की गई यह औषधि बहुमूत्र और मधुमेह रोग में विशेष गुणकारी है। शरीर की नसों की निबलता को हटा कर समर्थ और बलवान बनाता है। मूल्य ३) माशा, ३६) तोला

चन्द्रप्रभा वटी

शिलाजीत, लोह भस्म, वंशलोचन आदि लाभदायक चीजों से तैयार की गई यह औषधि अनेक रोगों को दूर करके शरीर में नई शक्ति लाती है। खून की कमी, जिगर की निर्बलता, बवासीर तथा विशेषकर प्रमेह व स्वप्नदोष आदि में लाभदायक है।

मूल्य १) तोला, ४) छटांक।

महालोहादि रसायन

इसके सेवन से शरीर में नया रक्त पैदा होता है। प्रत्येक ऋतु में सेवन करने योग्य उत्तम औषधि है।

मूल्य ६) तोला।

द्राक्षासव

बलवर्धक, स्वादिष्ट पेय है। शारीरिक व मानसिक थकावट को दूर करके स्फूर्ति व शक्ति देता है।

मूल्य १।) पाव, ४।) पौंड।

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (हरद्वार)

गुरुकुल पत्रिका

माघ
२००७

वर्ष ३
अङ्क ६

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ३
अङ्क ६

माघ
२००७

गुरुकुल-पत्रिका

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

भारतीय दृष्टि से मौलिक अध्ययन की आवश्यकता	श्री जयचन्द्र विद्यालंकार
सात मर्यादा	आचार्य विद्यानन्द
मांसाहारी वनस्पतियां	श्री रामकुमार गोयल
सातवाहन युग (३०० ईस्वी पूर्व) की वास्तुकला	श्री हरिदत्त वेदालंकार

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

मुझको तेरा एक सहारा !

ऋषिः —मेध्यातिथिप्रियमेधौ । देवता—इन्द्रः । छन्दः—गायत्री । स्वरः—षड्जः

न घेमन्यत् आपपन वज्रिन् अपसौ नविष्टौ ।
तवेदु स्तोम चिकेत ॥

ऋक—८. २. १७. ॥ सोम उ०—१. २. ३. ॥ अथर्व—२०. १४. २, ॥

[वज्रिन्] हे वज्रवाले ! मैं (अपसः) कर्म के (नविष्टौ) प्रारम्भ में (अन्यत् घा ईम्) अन्य किसी की भी न आपपन नहीं स्तुति करता (तव इत् उ) केवल तेरी ही (स्तोमं) स्तुति करना (चिकेत) जानता हूँ ।

हे मेरे क्षण-क्षण के मंगल ।
मुझको तेरा एक सहारा ॥

'आदि' करूँ प्रत्येक कार्य का,
लेकर पावन नाम ।
मुझको तेरी ही स्तुति प्यारी,
औरों से क्या काम ॥

जान गया हूँ तेरी ही तो,
दासी है सब शक्ति ।
सभी कार्य पूरे करती है,
देव ! भक्त की भक्ति ॥

तेरे हाथों वज्र महाबल,
जिसने सब असुरों को मारा ।
हे मेरे क्षण-क्षण के मंगल,
मुझको तेरा एक सहारा ॥

—श्री वेदव्रत वेदालङ्कार ।

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

[१]

शिक्षा प्राप्त करना स्वतन्त्र देश के प्रत्येक नागरिक का अधिकार है।

नागरिक को जो शिक्षा दी जाय, वह ऐसी होनी चाहिए जो उसे शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बलवान् और चरित्रवान् व्यक्ति बनाये। ऐसा नागरिक ही राष्ट्र के लिए हितकारी हो सकता है, अन्य नहीं।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हमारे राष्ट्र की शिक्षा के सम्बन्ध में जो प्रश्न सब से पहले और अधिक ध्यान देने योग्य हैं वे दो हैं। एक यह कि देश के प्रत्येक नागरिक को शीघ्र से शीघ्र कैसे शिक्षित किया जाय, और दूसरा यह कि शिक्षा की प्रणाली में कौन से परिवर्तन किये जांय, जिससे वह शारीरिक, मानसिक और नैतिक दृष्टि से आदर्श नागरिक तैयार कर सके?

इस लेख में मैं पहले प्रश्न पर विस्तार से विचार करूंगा।

[२]

स्वतन्त्र भारत के संविधान में जहां राज्य के कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है, वहां नागरिकों को शिक्षा देने का विशेष रूप से निर्देश है। कोई सरकार सभ्य और प्रजातन्त्री कहलाने के योग्य नहीं यदि वह अपने सब नागरिकों को कम से कम अक्षरों और अङ्कों के पढ़ने लिखने की शिक्षा नहीं देती। अंग्रेज़ी सरकार से हमारी एक बहुत भारी शिकायत यह थी कि उसने अन्य उन्नत देशों की भांति भारत में अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था नहीं की। अंग्रेजी सरकार की सर्वसाधारण भारतवासियों को अशिक्षित रखने की नीति उनकी विस्तृत साम्राज्य नीति का परिणाम था। उनका विचार था और वह ठीक भी था कि जिस दिन सर्वसाधारण भारतवासी शिक्षा पा जायंगे, उस दिन भारतवर्ष इङ्गलैंड के राजमुकुट में लगा हुआ हीरा नहीं रह सकेगा, वह स्वतन्त्र हो जायगा। प्रातः स्मरणीय श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने १६१० में अनिवार्य शिक्षा का बिल उपस्थित करते हुए अंग्रेजी सरकार पर यह आरोप लगाया था कि वह जान-बूझ कर भारतवासियों को अशिक्षित रखती है।

स्वराज्य की स्थापना के साथ वह सब कुछ बदल जाना चाहिए था। यदि अंग्रेज शासकों का हित इसमें था कि सर्वसाधारण भारतवासी अशिक्षित रहें, तो वर्तमान सरकार का हित इसमें है कि देश का प्रत्येक नागरिक शीघ्र से शीघ्र साक्षर हो जाय। विशेषतः वयस्क मताधिकार ने यह अत्यन्त आवश्यक कर दिया है कि शिक्षा के सार्वदेशिक प्रचार में क्षणमात्र का भी विलम्ब न किया जाय। वर्तमान संविधान के अनुसार देश का प्रत्येक ऐसा निवासी, जो २१ वर्ष या उससे अधिक आयु का है, मत दे सकेगा। जो व्यक्ति निपट अनपढ़ है, वह नागरिकता और उसके कर्तव्यों को नहीं समझता, वह ठीक मत क्या दे सकेगा? और यह दिन में सूर्य की तरह स्पष्ट सत्य है कि जहां समझदार मतदाता स्वतन्त्र राज्य का आधारस्तम्भ समझा जाता है वहां नासमझ मतदाता जनतन्त्री शासन का घोर शत्रु बन सकता है। मुसोलिनी और हिटलर जैसे तानाशाह अनाड़ी मतदाताओं की कृपा से ही उत्पन्न होते हैं। जब पढ़े-लिखे मूर्खों के प्रजातन्त्र राज में लोकमत के बल से तानाशाह बन सकते हैं तो भारत जैसे कम शिक्षा वाले देश के करोड़ों अनपढ़ वोटरों के गलत मत प्रदान का कैसा बुरा परिणाम हो सकता है, यह आसानी से समझा जा सकता है।

[३]

चिन्ता की बात यह है कि जिस शिक्षा की हमारे देश के नवोद्भूत प्रभुत्व सम्पन्न जनतन्त्र शासन की रक्षा और ठीक संचालन के लिये इतनी अधिक आवश्यकता है, अभी तक हमारी सरकार उस ओर बहुत ही कम ध्यान दे सकी है। यदि हम कहें कि कुछ भी

ध्यान नहीं दे सकी, तो यह अत्युक्ति न होगी।

पहले शिक्षितों की संख्या पर दृष्टि डालिये। हमारा चरम लक्ष्य यह है कि थोड़े से थोड़े समय में शिक्षा के योग्य आयु वाला प्रत्येक भारतवासी शिक्षित हो जाय। इस लक्ष्य को हमारी सरकार ने सदा स्वीकार किया है। अभी तो हमारी यह हालत है कि हमारे देश में साक्षरों की संख्या १५ प्रतिशत से अधिक नहीं है, १०० में से यदि १५ साक्षर हैं तो ८५ अनपढ़ हैं। स्वराज्य की स्थापना से पहले १९४४ में भारत सरकार की ओर से सार्जेंट रिपोर्ट नाम की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, उसमें यह विचार प्रकट किया गया था कि चालीस वर्षों में भारतवर्ष को सौ प्रतिशत शिक्षित बनाया जा सकेगा। उसके पश्चात् आल इण्डिया एज्युकेशन कान्फ्रेंस की जो बैठक हुई, उसने ४० वर्षों के समय को बहुत लम्बा समझा और भारत को शत प्रतिशत शिक्षित करने के लिए १० वर्षों की योजना बनाई। उस योजना को बने तीन वर्षों से अधिक समय व्यतीत हो गया है। कान्फ्रेंस ने १० वर्षों का जो समय दिया था, उसका तीसरा भाग व्यतीत हो चुका है। यदि लक्ष्य तक पहुँचना हो तो अब तक ८५ प्रतिशत अशिक्षित भारतवासियों में से न्यून से न्यून २८ प्रतिशत का शिक्षित हो जाना आवश्यक था, परन्तु आप यह जान कर आश्चर्यित होंगे कि अब देश में शिक्षितों की संख्या में अढ़ाई तीन प्रतिशत से अधिक वृद्धि नहीं हुई। यदि इसी गति से देश में शिक्षा का विस्तार हो तो सारे देश के शिक्षित हो जाने में ३० वर्ष लग जाना असम्भव नहीं। इस अशिक्षा के क्या कुपरिणाम हो सकते हैं, यह आप इस बात से समझ सकते हैं कि हमारे देश में राष्ट्रपति और धारासभाओं के सदस्यों के चुनाव हर पांचवें वर्ष हुआ करेंगे। ३० वर्षों तक देश के अशिक्षित या अर्धशिक्षित रहने का अभिप्राय यह होगा कि ६ चुनावों में अशिक्षित मतदाता भाग लेंगे। क्या हमारा नवोद्भूत स्वतन्त्र राज्य-विधान अर्धशिक्षितों द्वारा ६ निर्वाचनों के धक्कों को सह सकेगा? वह बीच ही में विशीर्ण तो न हो जायगा?

[४]

कहा जा सकता है कि सरकार शिक्षा प्रचार की ओर ध्यान तो दे ही रही है, और क्या करे?

सरकार किसी कार्य में कितना ध्यान दे रही है, उसका अनुमान वार्षिक बजट से लगाया जा सकता है। सरकार का ध्यान जिस कार्य की ओर जितना अधिक होगा, उसका बजट भी उतना ही अधिक होगा। सरकार के प्रवक्ता बार २ कहते हैं कि देश की सुरक्षा की ओर हमारा पूरा ध्यान है, तभी तो हम राज्य की वार्षिक आय का आधे से अधिक भाग सेना पर खर्च कर रहे हैं। बजट में व्यय के मद्दों की तुलना करते हुए आसानी से समझा जा सकता है कि सरकार किस कार्य का कितना महत्व समझती है।

इस दृष्टि से देखें तो आप आश्चर्यित रह जांयगे। स्वतन्त्र भारत के वार्षिक बजट में शिक्षा के लिये इतनी कम राशि रखी जाती है कि उन्नत देशों से उसकी तुलना करने पर लज्जा से सिर झुक जाता है। हमारे देश के केन्द्रीय बजट में सम्पूर्ण व्यय की राशि में शिक्षा के लिये व्यय किये जाने वाला व्यय .९ (दशमलव नौ) अर्थात् १ प्रतिशत से भी कम है। प्रान्तों में शिक्षा के लिए जो व्यय किया जाता है, यदि उसे भी बीच में मिला लें तो वह केन्द्र और प्रान्तों के सम्मिलित व्यय-बजट का चार प्रतिशत भाग बनता है। इन आंकड़ों की क्षुद्रता को आप तब समझ सकेंगे जब अन्य देशों के आंकड़ों से उनकी तुलना करें। मैं कुछ आंकड़े नीचे देता हूं—

मिश्र	२० प्रतिशत
फ्रांस	१२ प्रतिशत
इङ्गलैंड	१२ प्रतिशत

चीन (केन्द्र)	२५ प्रतिशत
,, प्रान्त	२५ प्रतिशत
,, जिला	३५ प्रतिशत
भारत केन्द्र और	
प्रान्त मिला कर)	४ प्रतिशत
भारत (केवल केन्द्र)	.६ प्रतिशत

इन संख्याओं को देखिये और बताइये कि क्या हम अपने देश के ८५ प्रतिशत निवासियों के साथ न्याय कर रहे हैं?

[५]

कुछ समय पूर्व यह समझा गया था कि मौलिक (बेसिक) शिक्षा के प्रयोग से देश की शिक्षा सम्बन्धी समस्या हल हो जायगी। गत पांच छः वर्षों के अनुभव ने उस आशा को निर्मूल कर दिया है। इस दृष्टि से मौलिक शिक्षा उपयुक्त सिद्ध हुई है कि वह बालक के मस्तिष्क के साथ ही साथ आंखों और हाथों को शिक्षित करती है। वह बालक की सर्वाङ्गीण शिक्षा में सहायक होती है, परन्तु मौलिक शिक्षा के उद्भावक महात्मा गान्धी जी की यह आशा पूरी नहीं हो सकी कि वह मौलिक शिक्षा देने वाले शिक्षणालय अपना खर्च आप निकाल लिया करेंगे। कुछेक प्रान्तों और केन्द्रों को छोड़ कर प्रायः सभी जगह मौलिक शिक्षा कुछ मंहगी सिद्ध हुई है। कम से कम निरक्षरता के मार्जन में उससे सहायता नहीं मिल सकती।

[६]

वयस्क मात्र में शिक्षा प्रचार के लिये एक नई आकर्षक योजना बनाई गई है, जो शिक्षा सम्बन्धी काफिलों की स्कीम कहलाती है। तीन चार लारियों में लद कर शहर से कुछ अफसर और उनके साथी गांव में जाते हैं। उनके साथ सिनेमा और रेडियो की मशीनें रहती हैं। गांव में जा कर वे कबड्डी, वालीबॉल आदि खेलों और कुश्तियों की व्यवस्था करते हैं, और रेडियो सिनेमा आदि द्वारा मनोरंजन और प्रचार करते हैं। उसे 'शिक्षा मेला' कहा जाता है। प्रायः एक और कभी दो दिन तक ऐसा मेला शहर में जमा होता है गये हुए महानुभाव घरों को वापिस चले जाते हैं, और मान लेते हैं कि गांव वालों में शिक्षा के प्रति गहरी रुचि उत्पन्न हो गई है। मैंने स्वयं गांव वालों से भली प्रकार पूछताछ की है और मेले के फलों को जांचा है। वस्तुतः शिक्षा प्रचार के सिलसिले में इन मेलों का प्रभाव नगण्य ही होता है। गांव वाले इन मेलों को मेला ही समझते हैं, और चाहते हैं कि वैसा मेला फिर से हो। उनकी मेला देखने की रुचि को यदि शिक्षा के प्रति रुचि समझा जाय, तो भ्रान्ति ही होगी। केवल दिल्ली में ही कारावान योजना पर खर्चने के लिये १३ लाख से अधिक राशि की स्वीकृति ली गई है। इस योजना से अन्य कुछ भी लाभ हो सकते हैं, परन्तु इससे देश भर को १० वर्षों में शिक्षित कर देने में कोई विशेष सहायता मिलने की आशा रखना व्यर्थ है।

मेरे इस लेख का उद्देश्य यह दिखाना है कि हमारी सरकार देश में सार्वजनीन प्रचार के लिये इस समय जो यत्न कर रही है, वह इतना क्षुद्र है कि उसे 'नहीं' के बराबर कह सकते हैं। यह स्थिति हमारे जनतन्त्र राज्य के जीवन के लिये अत्यन्त भयानक है। वयस्क मताधिकार और जनता की निरक्षरता — दो चीजें देर तक साथ-साथ नहीं रह सकतीं।

डेढ़ सौ वर्ष की आयु

श्री रजनीकान्त मोदी

अनादिकाल से मनुष्य समय की उन शक्तियों से लड़ता आ रहा है जो उस के शरीर के विसर्जन और विनाश में कारणभूत होती हैं। ऋग्वेद के एक वैदिक द्रष्टा का मन्त्र है : 'तू सौ शरद, सौ हेमन्त, सौ बसन्त जी सकता है।' उपनिषद् के एक ऋषि कहते हैं : 'जगत के सारे काम करते हुए, मनुष्य को सौ वर्ष जीने की कामना करनी चाहिए।

मनुष्य में दीर्घायुष्य की यह कामना क्यों है? आजकल मनुष्य की उम्र सत्तर बरस तक पहुँचती है तो वह सौ बरस जीना चाहता है। यदि हम सौ बरस जीने लग जांय, तो चाहेंगे कि डेढ़ सौ बरस जियें। विज्ञान के अनुसार मनुष्य को प्राकृतिक रूप से कम से कम डेढ़ सौ बरस जीना ही चाहिए, क्योंकि प्रत्येक पशु-प्राणी अपनी परिपक्वता की उम्र से पांच गुनी उम्र तक जीता है। मनुष्य की परिपक्वता की उम्र तीस बरस है, सो उस की प्राकृतिक मृत्यु १५० बरस की उम्र से पहिले नहीं होनी चाहिए। पर यदि दो एक पीढ़ियों में वैज्ञानिक की यह मानवी आयुष्य विस्तार को १५० बरस तक ले जाने की निश्चयात्मक आशा सफल हो जाती है तो यह निश्चित है कि फिर हम उस से भी अधिक जीने की कामना करने लगेंगे। असल बात तो यह है कि हम मौत को चाहते ही नहीं हैं; हम तो चिरकाल जीवित रहना चाहते हैं। हम समय के सारे आक्रमणों से खम ठोक कर लड़ना चाहते हैं। थोड़े में यह है कि हम अमरता चाहते हैं।

जब हम निराशा की पीड़ना से बेहद त्रस्त हो उठते हैं। तो कभी-कभी हम मरना चाहते हैं और यह सोचते हैं कि ऐसी यन्त्रणा की जिन्दगी से तो मौत ही भली। लेकिन इस तरह की भावना-मात्र मन की एक क्षणस्थायी हालत होती है, जो अधिक समय टिकती नहीं है। वह हमारी स्वाभाविक स्थिति नहीं है, वह तो बाहर की परिस्थिति द्वारा हमारे भीतर ठूंस दी जाती है। अन्तरंग भाव से मूलतया हम जीवन को प्यार करते हैं और मौत से डरते हैं।

प्रत्येक प्राणी रोग, क्षय और मरण के विरुद्ध लड़ता है। मनुष्य की जिन्दगी के हर पल में, सोते जागते, सचेत, अचेत हर अवस्था में यह संघर्ष चलता ही रहता है। हमारे सचेतन दैहिक मानस का इस संघर्ष से ना कुछ सा ही वास्ता होता है। क्योंकि वह संघर्ष हमारी सत्ता के किसी अव-मानसिक स्तर पर चलता रहता है। आयुष्य और जीवन संरक्षण की शक्तियां प्राण के स्तर पर विनाश और मरण की शक्तियों के विरुद्ध कटिबद्ध होकर खड़ी रहती हैं। सारा युद्ध वहीं पर होता है। मानवीय शरीर के रासायनिक उत्थान-पतन प्राण की ही क्रिया-प्रक्रिया है।

यहीं वह सवाल उठता है जो लोग अक्सर पूछा करते हैं। क्या बुढ़ापा और मौत उतने ही अनिवार्य हैं और अटल हैं जितने कि वे माने जाते रहे हैं? जब से मानवता इस धरती पर प्रकट हुई है। मानवों ने जन्म लिया है, बूढ़े हुए हैं और फिर जीवन से विदा हो गए हैं। और इस चीज ने बुढ़ापे और मौत की अनिवार्यता के भाव मनुष्य में बहुत प्रबल कर दिया है। पर इस का मतलब यह नहीं होता कि मनुष्य के भीतर जिस अमरता की भावना, धारणा और कल्पना उस की सहज वृति के भीतर से ही होती रही है। वह भविष्य में भी प्राप्त नहीं की जा सकेगी। उपनिषद् कहते हैं:— 'हमें मृत्यु में से निकल कर अमरता में प्रवेश करना है।' मनुष्य की सत्ता के गम्भीरतम तल देश में से उठी आ रही यह अमरता की उत्कण्ठा क्या चीज है। जो अब तक के सारे संचित अनुभवों के विरोधी प्रमाणों के बावजूद भी अनिरुद्ध और अपराजित बढ़ती ही चली जा रही है।

श्री अरविन्द कहते हैं:—'मृत्यु प्रकृति द्वारा जीवन

से पूछा जाने वाला प्रश्न है; वह जीवन को मौत के द्वारा याद दिलाती है कि उस ने अभी अपने आप को पाया नहीं है। यदि मौत का आक्रमण न होता तो प्राणी सदा एक अपरिपूर्ण जीवधारी के रूप में ही बन्दी हो रहता। मौत के तकाजे से मनुष्य के भीतर पूर्ण जीवन का भाव-विचार जागता है। और तब वह उस के साधन-सम्भावनाओं की खोज करता है। ऊपर जो परस्पर विरोधी लगने वाला तथ्य प्रकट किया गया है उसका समाधान यही है। जो भी अब तक हमने दैहिक अमरता प्राप्त नहीं की है। फिर भी हमारा लक्ष्य वही है, पर वह हमारा तात्कालिक लक्ष्य नहीं बल्कि चरम लक्ष्य है। आत्मा के अनवरत जीवन में मरण तो मात्र एक घटना है। चूंकि हम मौत को मानते हैं इसी से वह हमारे पास आती है। यह हमारे भीतर की संचित विरासत है जो इन सारे युगयुगान्तरों को पार करती आ रही है। पर इस मान्यता को हमें उलट देना होगा।

पर साथ ही हमें यह भी याद रखना है कि मात्र भौतिक देह की आयुष्य को किसी हद तक बढ़ा देने से फिल हाल अमरता प्राप्त नहीं हो सकती। यहां इस सम्बन्ध में भी श्री अरविन्द ने कहा है:-"यदि भौतिक विज्ञान या देवी-तन्त्र-विज्ञान शरीर जीवन की आयुष्य को अनिश्चित दीर्घकाल तक बढ़ाने के आवश्यक साधन परिस्थितियां उत्पन्न भी कर लेंगे तब भी यदि मनुष्य अपनी आन्तरिक विकसित सत्ता की अभिव्यक्ति के उपयुक्त अपने देह को भी नहीं बना लेता, या देह उस के अनुरूप नहीं हो जाता तो आत्मा उस शरीर को छोड़ने का कोई और उपाय खोज निकालेगी और वह देहान्तर कर ले जायगी। मौत के दैहिक और भौतिक कारण ही उस के एक मात्र और सच्चे कारण नहीं है; नवीन सत्ता के विकास की आध्यात्मिक आवश्यकता ही मृत्यु के अन्तरतम का सच्चा कारण है।" ऐसी हो किसी आन्तरिक आवश्यकता से प्रेरित होकर ही आत्मा यहां भौतिक चोले को धारण करती है और वैसी ही किसी दूसरी भिन्न प्रकार की आन्तरिक आवश्यकता से प्रेरित हो कर वह फिर उसे त्याग भी देती है। मौत और बुढ़ापे के दैहिक-भौतिक कारण तो मात्र बाहर दीखने के ही हैं। और अपने आन्तर प्रयोजन के लिए निरर्थक अथवा अनुकूल हो गए वर्तमान भौतिककोष का विसर्जन करने के लिए और अन्ततः उसे फेंक देने के लिए आत्मा इन कारणों को अपने उपाय बनाता है। जो भी शरीर अपने विकास और विनाश में अभी भी निम्न प्रकृति के नियमों का पालन करता है। पर इसी लिए यह आवश्यक नहीं कि भविष्य में भी वह सतत उन का पालन करता ही जाये और निरन्तर वह निम्न-प्रकृति का ही गुलाम बना रहे। निश्चेतन के भीतर से होने वाले विकास में शरीर और आत्मा के बीच इस प्रकार का सम्बन्ध एक अनिवार्य व्यवस्था थी। पर अब उस सम्बन्ध को उलटा जा सकता है और आत्मा वह हो सकती है। जो होना उस का सदा का अभिप्रेत रहा है—अर्थात् वह इस भौतिक देह की। और उसे अस्तित्व में थामें रखने वाली प्राण-शक्तियों की सच्ची स्वामिनी हो सकती है। यदि शरीर जड़ और हठाग्रही हो कर विकास का निरोध करे तो आत्मा अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा उस पर काबू बैठा सकती है। मन चाहे काल तक शरीर को जीवित रखने के लिए तब वह सीधे जीवनोद्गम से ही जीवनी-शक्तिया प्राप्त कर सकता है। और इस के लिए आधुनिक वैज्ञानिक द्वारा बताये हुए पथ्यापथ्य, हार्मोन्स आदि पदार्थों पर निर्भर करना अब उसके लिए आवश्यक नहीं रह जाता है। अन्ततः आत्मा सत्ता के प्रत्येक जीवाणु में भगवान की चेतना और आनन्द के सारभूत द्रव्य को पिण्डदान कर सकती है; यह सारभूत द्रव्य अपने मौलिक रूप में हो अमर है। श्री अरविन्द के योग ने जिस पूर्ण और प्रगतिशील रूपान्तर का प्रत्यक्ष किया है उसका यही अन्तिम चरण है। इस

योग क्या है ?

श्री अरविन्द

योग का अर्थ है ज्ञान के लिये, प्रेम के लिये या कर्म के लिये परमात्मा से अन्तर्मिलन। योगी उससे अपना साक्षात् संबन्ध जोड़ता है जो मनुष्य के भीतर और उसके बाहर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। वह अनन्त से अपना स्वर मिलाये रहता है, वह ईश्वर की शक्ति के लिये प्रणालिका बन जाता है जिससे वह शक्ति अपने आपको शान्त दया या सक्रिय परोपकार के द्वारा संसार में प्रवाहित कर सके। जब मनुष्य अपने ऊपर से स्वार्थी 'स्व' की कैंचुली उतारकर ऊँचा उठता है और दूसरों के लिये तथा दूसरों के सुख दुःख का साथी बन जाता है;—जब वह पूर्णता से तथा प्रेम और उत्साह से काम करता है, पर फल की चिंता छोड़ देता है और न तो विजय के लिये उत्सुक रहता है, न ही पराजय से भयभीत होता है; जब वह अपने सब काम भगवान् को अर्पण कर देता है और प्रत्येक विचार, उच्चार और आचार को भगवान् की वेदी पर उत्सर्ग कर देता है; जब वह भय और घृणा, द्वेष और ग्लानि और राग से मुक्त हो जाता है और प्रकृति की शक्तियों की भांति, उतावली न करते हुये, विश्राम न लेते हुये, अटल तौर पर तथा पूर्णता से काम करता है; जब वह इस विचार से ऊंचा उठ जाता है कि वह शरीर या हृदय या मन है या इनका जोड़ है और अपने आपको तथा सच्ची आत्मा को पा लेता है; जब वह अपनी अमरता और मृत्यु की अवास्तविकता से अभिज्ञ हो जाता है; जब वह ज्ञान के उदय को अनुभव करता है और अपने आपको स्थितिशील अनुभव करता है तथा दिव्य शक्ति को अपने मन, अपनी वाणी, अपनी इन्द्रियों और अपने सब अंगों द्वारा निर्बाध कार्य करते हुये अनुभव करता है; वह जो कुछ स्वयं है और जो कुछ भी वह करता है या जो कुछ भी उसके पास है उस सबको इस प्रकार सबके स्वामी, मनुष्य-जाति के प्रेमी और सहायक पर उत्सर्ग करके जब वह उसमें स्थिर रूप से निवास करता है और दुःख विक्षोभ तथा मिथ्या उत्तेजन से चलायमान नहीं होता तभी वह योग युक्त कहलाता है और वही है योग।

●

प्रकार के पिण्डदान या मूर्तीकरण द्वारा बाह्य देह आन्तरिक आत्मा के लिए उपयुक्त कारण बन जायगा; तब देह एक उपलब्ध मनोवैज्ञानिक पूर्णत्व का ही भौतिक प्रतिबिम्ब हो जायगा। तब आत्मा के लिये अपने इस पार्थिव वाहन को त्यागना आवश्यक नहीं रह जायगा।

यह सच है कि ये सारी बातें वैज्ञानिक आयुष्य-विजय-विद्या से बहुत परे चली जाती हैं। पर यह एक अशुभ लक्षण ही है कि वैज्ञानिक अपने ही दायरे और दिशा में आज मानवीय आयुष्य–विस्तार को बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं और आयु की इस सीमा से आगे बढ़ जाने को प्रयत्नशील हैं जिसे हम में से अधिकांश मनुष्य की प्राकृतिक और अनिवार्य आयु-मर्यादा मानते हैं। युग-युगों से पश्चिमी जगत् में सत्तर वर्ष की आयु की और पूर्व में 'शत शरद' की आयु की जो धारणा अब तक चली आई है, उसे आज हम लांघ गये हैं और उसके स्थान पर विज्ञान द्वारा १५० वर्ष की आयु की सम्भावना की धारणा हमारी चेतना में दृढ़तर हो गई है। यह वैज्ञानिक प्रगति भी सही दिशा में ही एक अगला कदम है। क्योंकि यह आवश्यक है कि हमारी मौत की मान्यता को समाप्त हो जाना चाहिये। मनुष्य जाति के भीतर की अन्तश्चेतना ही उसे वह प्रेरणा देती है जिससे वह उन पुरानी बद्धमूल धारणाओं और आदतों से मुक्त होकर आगे बढ़ता है, जो उसकी मानसिक बनावट में बहुत गहरी भिदी हुई होती है। भगवान् की ओर विकास का अनिवार्य अगला चरण भरने से पहले मानस की प्रगतिशील दर्शन चेतना को इस प्रकार की बद्धमूल धारणाओं और अवरोधों से मुक्त कर ही लेना होगा।

●

भारतीय कला की विशेषताएं

श्री हरिदत्त वेदालंकार

भाव-व्यंजना की प्रधानता

भारतीय कला अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण अन्य देशों की कलाओं से मौलिक रूप से भिन्न है। उसका मर्म जानने के लिए इनका परिज्ञान आवश्यक है। उसकी पहली विशेषता भाव-व्यंजना की प्रधानता है। कला, आकृति, प्रतिकृति और अभिव्यक्ति पर बल देने से प्रायः तीन बड़े हिस्सों में विभक्त की जाती हैं। जिस कला का उद्देश्य मुख्य रूप से सौंदर्यमयी आकृतियां बनाना होता है, वह आकृति-प्रधान कहलाती है। जिसमें रमणीय प्राकृतिक घटनाओं और मानवीय रूपों की यथार्थ प्रतिकृति बनाकर उन्हें सदैव के लिए स्मरणीय बना दिया जाता है, वह प्रतिकृति-प्रधान होती है और जिसमें किसी अमूर्त भाव को कलात्मक कृति द्वारा अभिव्यक्त किया जाय वह अभिव्यक्ति-प्रधान कला कही जाती है। चीनियों ने पहले प्रकार पर अधिक ध्यान दिया, उनकी कृतियां देखते ही हम उनके सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगते हैं, यूनानी तथा पश्चिम की आधुनिक कला प्रतिकृति-प्रधान हैं, उसमें नर-नारी के आदर्श रमणीय रूप को हू बहू वैसे ही पत्थर में खोदने तथा चित्रपट पर अंकित करने का सफल और सराहनीय प्रयास किया गया है। पहली दृष्टि में ही उनकी कलाकृतियां प्रेक्षक को अपनी अङ्गसौष्ठव-प्रधान रमणीयता से प्रभावित कर लेती हैं। किन्तु भारतीय रचनाओं में ऐसी बात नहीं हैं, उनमें बाह्य सौन्दर्य दिखाने के बजाय आन्तरिक भावों के अंकन को बहुत महत्त्व दिया गया है। इसमें बाहरी सादृश्य की ओर नहीं, किन्तु अन्तस्तल के आलेखन की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। भारतीय कलाकारों ने भगवान् बुद्ध के अंग-प्रत्यंग गठन, मांस-पेशियों के सूक्ष्म चित्रण, मछलीदार भुजाओं के अंकन की अपेक्षा उनके मुख-मंडल पर निर्वाण और समाधि के दिव्य आनन्द को प्रदर्शित करने में अधिक हस्त कौशल प्रदर्शित किया है। भारतीय कला में प्रतिकृति-मूलक कृतियों का सर्वथा अभाव हो, सो बात नहीं; किन्तु प्रधानता भाव-व्यंजना की ही रही है। काव्य की भांति कला की आत्मा भी 'रस' ही मानी जाती थी। रस की अभिव्यक्ति ही कला का चरम लक्ष्य था। इसके अभाव में यूनानी तथा पश्चिमी कला चित्ताकर्षक होते हुए भी निष्प्राण और निर्जीव है. भारतीय कला कई बार उतनी यथार्थ और नयनाभिराम न होते हुए भी प्राणवान् और सजीव है।

धर्मतत्त्व की मुख्यता

दूसरी विशेषता भारतीयकला में धर्मतत्त्व की प्रधानता है। प्राचीन काल में कला धर्म की चेरी थी, इसके सभी अंगों का विकास धर्म के आश्रय से हुआ। मूर्तिकारों ने प्रधान रूप से महात्मा बुद्ध तथा पौराणिक देवी देवताओं की मूर्तियां बनाई, वास्तुकला का विकास स्तूपों, विहारों और मन्दिरों द्वारा हुआ, चित्रकला का प्रधान विषय धार्मिक घटनाएं थीं। भारत में कला कला के लिए नहीं, किन्तु आत्मस्वरूप के साक्षात्कार या उसे परमतत्त्व की ओर उन्मुखीकरण के लिए थी। भारतीय कलाकारों के अनुसार विषयोपभोग में प्रवृत्त कराने वाली कला कला नहीं है, जिससे आत्मा परम तत्त्व में लीन हो, वही श्रेष्ठ कला है।[1] मूर्तिकला का प्रधान ध्येय उपासकों के हित के लिए भगवान् की प्रतिमा बनाना था (साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूप कल्पनम्) यही हाल अन्य कलाओं का था। किन्तु भगवान् असीम, अपरिमेय और अनन्त है इनकी सान्त प्रतिमा कैसे बन सकती है। अतः मूर्ति केवल उनकी प्रतीक है। भगवान् के विविध रूप हैं, अतः उनके प्रतीक भी विभिन्न होंगे। भारतीय कला इस

१ विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मता।
लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला॥

प्रतीकात्मकता से ओत-प्रोत है। कलाकारों का प्रधान ध्येय निगूढ़ दार्शनिक तत्वों को मूर्त रूप प्रदान करना था। इसीलिए इनके बारे में कहा जाता है कि वे पहले धर्मवेत्ता और दार्शनिक थे और बाद में कलाकार। उनका प्रधान उद्देश्य सूक्ष्म धार्मिक भावनाओं को स्थूल रूप देना था। उन्होंने सुन्दर कलाकृतियों का निर्माण किया, किन्तु आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यक्ति के लिए ही। मध्य युग के योरोपीय कलाकारों की भांति भारतीय शिल्पियों ने जो कुछ बनाया, प्रायः भक्ति भाव से अनुप्राणित होकर ही। अजन्ता आदि के चित्रों के निर्माता वहां रहने वाले बौद्ध भिक्षु थे। उन्हें राजाओं को प्रसन्न करने के लिए या अपना पेट भरने के लिए नहीं किन्तु अपने चैत्यों और विहारों को अलंकृत करने के लिए कलात्मक सृष्टि करनी थी।

अनामता

भारतीय कला की तीसरी विशेषता अनामता है। कहा जाता है कि नाम और लौकैषणा की भावना महापुरुषों की अन्तिम दुर्बलता होती है। किन्तु अधिकांश भारतीय कलाकार इससे मुक्त थे। उन्होंने चित्रों या मूर्तियों पर अपने नाम की अपेक्षा कृति की उत्कृष्टता से अमर होना श्रेयस्कर समझा। नाम तो वहां दिया जाता है, जहां आत्माभिव्यक्ति और विज्ञापन की भावना प्रबल हो, उनका उद्देश्य तो दार्शनिक तथा धार्मिक भावनाओं की, तथा भगवान् की महिमा की अभिव्यंजना था, अतः उसमें भाव प्रधान और नाम गौण था। यही कारण है कि अजन्ता जैसे प्रसिद्ध चित्रों के निर्माताओं का नाम हमें ज्ञात नहीं है।

भारतीय कलाओं का विकास

सब भारतीय कलाओं का मूल वेद माना जाता है किन्तु वैदिक युग की मूर्ति, चित्र, वास्तु आदि कलाओं के कोई प्राचीन अवशेष नहीं मिलते। इसका प्रधान कारण यह है कि उस समय इमारतें, मन्दिर, मूर्तियां प्रायः लकड़ी की बनी होती थीं, भारत के आर्द्र जलवायु और दीमक के प्रभाव से इनका कोई निशान नहीं बचा। भारतीय कला के आरम्भिक इतिहास पर अन्धकार का पर्दा पड़ा हुआ है, वह पहली बार ईसा से २७०० वर्ष पूर्व मोहेञ्जोदड़ो में तथा दूसरी बार इसके २४०० वर्ष बाद तीसरी श० ई० पूर्व में अशोक के समय उठता है। दोनों कालों की कला अत्यन्त प्रौढ़ है। उसने कला-मर्मज्ञों को विस्मय में डाल दिया है। मोहेञ्जोदड़ो का ऊंचे ककुद वाला बैल तथा अन्य पशु इतने सुन्दर हैं कि मार्शल के शब्दों में इनकी कला को किसी भी तरह प्रारम्भिक नहीं कहा जा सकता। हड़प्पा की दो मूर्तियां देखकर तो वे इतने विस्मित हुए थे कि उन्हें पहले यह विश्वास ही नहीं हुआ कि ये मूर्तियां प्रागैतिहासिक काल की हो सकती हैं। इनकी गर्दन इतनी सुन्दर है कि पुरानी दुनिया में यूनानी युग से पहले वैसी रचना अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाती। चौबीस शताब्दियों के अन्धकार के बाद हमें फिर मौर्य युग में भारतीय कला अत्यन्त परिपक्व और विकसित रूप में दिखाई देती है। अशोक स्तम्भ के शीर्ष पर बने सिंह उस समय की कला की दृष्टि से बेजोड़ हैं। मौर्य युग से ही मूर्ति तथा वास्तु कला के उदाहरण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं, अतः इस युग से प्रत्येक काल के कला सम्बन्धी विकास पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जायगा।

मौर्य युग

भारतीय कलाओं का विस्तृत इतिहास सम्राट् अशोक के समय से उपलब्ध होता है। उसने बौद्ध धर्म अंगीकार करने के बाद देश में कला को पूरा प्रोत्साहन दिया, धर्म-प्रचार के लिए बहुत अधिक स्मारक बनवाये। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार उसे ८४ हज़ार स्तूप बनाने का श्रेय दिया जाता है, वर्तमान समय में उसके उपलब्ध स्मारकों को चार भागों में बांटा जाता है। १. स्तूप, २. स्तम्भ, ३. गुहाएं ४. राज-प्रासाद।

स्तूप

महात्मा बुद्ध की पवित्र धातु (भस्म) पर तथा

उनके सम्पर्क से पवित्र स्थानों पर वह स्तूपों का निर्माण करते थे। स्तूप उलटे कटोरे के आकार का पत्थरों या ईंटों का ठोस गुम्बद होता था। वैदिक काल से 'शव' को (बिना जलाये या जला कर) तोप कर जो तूदा बनाने की रीति चली आती थी, यह उसी का किंचित् विकास मात्र था। प्राचीन स्तूपों से मौर्यस्तूपों में यह विशेषता थी कि इनमें वह रक्षा के लिए चौखूंटी बाड़ लगा देते थे, आदरार्थ एक छत्र भी ऊपर स्थापित करते थे, चारों ओर के घेरों को प्रदक्षिणा का रूप दे देते थे और इस घेरे में, चारों दिशाओं में चार तोरण या द्वार बना देते थे। पहले कहा जा चुका है कि बौद्ध परम्परा के अनुसार अशोक ने ८४ हजार स्तूप बनवाये, उसके नौ सौ वर्ष बाद युआन च्वांग ने भारत-भ्रमण करते हुए उसके सैंकड़ों स्तूप इस देश में देखे। वर्तमान समय में इसका सर्वोत्तम स्मारक सांची का स्तूप है। इसके तोरण तो शुंग युग के हैं किन्तु मूल स्तूप इसी युग का है।

स्तम्भ

अशोकीय वास्तु के सुन्दरतम और विशिष्ट स्मारक स्तम्भ हैं। इस समय तेरह स्तम्भ दिल्ली, सारनाथ, मुजफ्फरपुर, चम्पारन के तीन गांवों, रुक्मिनदेई (बुद्ध की जन्मभूमि लुम्बिया वन) तथा सांची आदि स्थानों में पाये जाते हैं। ये सब चुनार के लाल पत्थर के बने हुए हैं और दो भागों में हैं। लाट या प्रधान दण्डाकार हिस्सा तथा स्तम्भ शीर्ष या परगहा। समूची लाट और समूचा परगहा एकाश्मीय या एक ही पत्थर से तराशा हुआ है। दोनों पर ऐसी ओप (पालिश) है जिस पर से आंख भी फिसलती है। २२०० वर्ष बीत जाने पर भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह पालिश अभी की गई है, दिल्ली वाले स्तम्भ में बढ़िया पालिश के कारण इतनी चमक है कि दर्शक उसे धातु का समझते रहे हैं। १७ वीं शती में टोम कोरियट तथा १८ वीं शती में बिशप हेबर ने इसे पीतल का गढ़ा हुआ समझा था। यह ओप या पालिश भारत की प्रस्तर कला की ऐसी विशेषता है जो दुनिया में अन्य कहीं नहीं मिलती इसकी प्रक्रिया अब तक अज्ञात है और यह अशोक के पौत्र सम्प्रति के बाद से भारत से लुप्त हो जाती है। लाट गोल और नीचे से ऊपर तक चढ़ाव-उतारदार है। इस दृष्टि से चम्पारन के लौरिया नन्दगढ़ की लाट सब से सुन्दर है, नीचे उसका व्यास ३५½ इञ्च है और ऊपर २२½ इञ्च। लाटों की ऊंचाई तीस से चालीस फुट तक और भार १३५० मन (५० टन) तक है। इन भीमकाय एकाश्मीय स्तम्भों की गढ़ाई, खान से अपने अपने ठिकाने तक ढुलाई, इन स्थानों पर इनका खड़ा करना और इन पर परगहों का ठीक-ठीक बैठाना इस बात का प्रमाण है कि अशोकयुगीन शिल्पी और इञ्जीनियर कारीगरी में किसी अन्य देश के शिल्पियों से कम नहीं हैं। इन लाटों के शीर्ष या परगहों पर मौर्य मूर्ति कला अपने उत्कृष्ट रूप में मिलती है। इन पर शेर, हाथी, बैल या घोड़े की मूर्तियां बनी होती हैं। इनमें सारनाथ का शीर्ष सर्वश्रेष्ठ है। इसे कला मर्मज्ञों ने भारत में अब तक खोजी गई इस ढंग की वस्तुओं में सर्वोत्तम बताया है। महात्मा बुद्ध के धर्मचक्र प्रवर्तन के स्थान पर इस स्तम्भ को खड़ा किया गया था। इसके शीर्ष पर चार सिंहों की मूर्तियां हैं और उनके नीचे चारों दिशाओं में चार पहिये धर्म-चक्र-प्रवर्तन के सूचक हैं। पहले इन सिंहों पर भी एक बड़ा धर्म-चक्र था। 'सिंह पीठ से पीठ सटाये चारों दिशाओं की ओर दृढ़ता से बैठे हैं। उनकी आकृति भव्य, दर्शनीय और गौरवपूर्ण है, जिसमें कल्पना और वास्तविकता का सुन्दर सम्मिश्रण है। उनके गठीले अंग-प्रत्यंग सम विभक्त हैं और वे बड़ी सफाई से गढ़े गए हैं। उनकी फहराती हुई लहरदार केसर का एक एक बाल बड़ी सूक्ष्मता और चारुता से दिखाया गया है। इनमें इतनी नवीनता है कि यह आज के बने प्रतीत होते हैं।' इन मूर्तियों की कलाविदों ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा

की है। स्मिथ ने लिखा है कि 'संसार के किसी भी देश की प्राचीन पशु-मूर्तियों में इस सुन्दर कृति से उत्कृष्ट या इसके टक्कर की चीज़ पाना असम्भव है।' सर जान मार्शल के शब्दों में 'शैली एवं निर्माण-पद्धति की दृष्टि से ये भारत द्वारा प्रसूत सुन्दरतम मूर्तियां हैं और प्राचीन जगत् में इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं जो इनसे बढ़कर हो। भारत ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद इन्हीं मूर्तियों को अपना राजचिह्न बनाया है। रामपुरवा (जि० चम्पारन) के स्तम्भ-शीर्ष पर बनी वृष मूर्ति बड़ी सजीव और ओजस्वी है।

गुहाएं

अशोक तथा उसके पौत्र दशरथ ने भिक्षुओं के निवास के लिये गुहा-गृहों को खुदवाया था। ऐसी गुहाएं गया के १६ मील उत्तर में बराबर नामक स्थान पर मिली हैं। ये बहुत ही कड़े तेलिया पत्थर से न केवल भगीरथ परिश्रम से काढी गई है किन्तु घुटाई या वज्र-लेप द्वारा 'शीशे की भांति' चमकाई भी गई हैं। यहां पुरानी ओप की कला अपनी पराकाष्ठा तक पहुँची हुई है।

प्रासाद

पाटलिपुत्र में अशोक ने बहुत ही भव्य-राज प्रासाद बनवाये। ये सात-आठ शतियों तक बने रहे। पांचवीं शती में फाहियान ने इनके निर्माण-कौशल की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि ये मनुष्यों के बनाये हुए नहीं हो सकते, इनकी रचना देवताओं ने की है। सम्भवतः ये महल लकड़ी के थे, अतः खुदाई में इनके भग्नावशेषों के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला।

नीरवता और वाक्

विश्व में दो महान शक्तियां हैं, नीरवता और वाक्। नीरवता सब प्रकार की तैयारी करती है, वाक् उत्पन्न करती है। नीरवता कार्य करती है, वाक् कार्य के लिये प्रेरणा प्रदान करती है। नीरवता बाधित करती है, वाक् अनुरोध करती है। संसार की सब अपरिमेय और अचिंत्य प्रक्रियायें अपने आपको अंदर ही अंदर पूर्ण बनाती हैं, उस गंभीर महामहिम नीरवता के अन्दर जो शब्द के कोलाहलपूर्ण और भ्रांतिजनक उपरीतल से आवृत होती है—ऊपर होती है अनगिनत तरंगों की हलचल, नीचे समुद्र की अथाह अदम्य जल राशि। मनुष्य तरंगों को देखते हैं, वे किंवदती और सहस्रों आवाजों को सुनते हैं, और इनसे वे भविष्य की दिशा का और ईश्वरीय संकल्प के मर्म का निर्णय कर लेते हैं; परन्तु दस में से नौ अवस्थाओं में वे निर्णय गलत होते हैं। इसीलिये यह कहा जाता है कि इतिहास में सदा अप्रत्याशित घटना ही घटित होती है। परन्तु अप्रत्याशित घटना घटित नहीं होगी अगर मनुष्य अपनी आंखें उपरितल पर से हटा सकें और अंदर पैठकर सारतत्व को देख सकें, अगर वे प्रतीतियों को एक तरफ रखने और उनका भेदन कर उनसे परे निगूढ़ और प्रच्छन्न सद्वस्तु तक पहुँचने का अभ्यास करलें, अगर वे जीवन के शोर को सुनना बन्द कर दें और उसकी जगह उसकी नीरवता को सुनें।

—श्री अरविन्द।

हठयोग

श्री स्वामी कृष्णानन्द

आजकल हठयोग को जो सर्व प्रियता तथा प्रतिष्ठा प्राप्त हो रही है उसका कारण इस योग से होने वाले शारीरिक लाभ हैं। अतः इस समय प्रायः इसी उद्देश्य को दृष्टि में रख कर लोग हठयोग की क्रियाओं को करते हैं। इस लिए इस से होने वाली आत्मिकोन्नति की उपेक्षा हो जाती है। हठयोग से शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा के अतिरिक्त नीचे लिखे आध्यात्मिक लाभ होते हैं—

प्राण का सुषुम्ना में प्रवेश, प्राणलय, बिन्दु संरक्षण, ऊर्ध्वरेतस, इन्द्रिय विजय, मनः स्थिरता, मनोविजय, मनोनाश, सूक्ष्म दिव्य दृष्टि, अन्य अलौकिक शक्तियां, अखंड वाङ् मनसागोचर आनन्दोपलब्धि, व्यष्टि आत्मा का समष्टि आत्मा से संयोग, आत्म दर्शन। पाश्चात्य संसार के डाक्टरों तथा वैज्ञानिकों ने हठयोग की प्राणायाम आदि क्रियाओं का जो खण्डन किया है, उसको वैज्ञानिक रीति के अनुसन्धानों तथा सैद्धान्तिक अनुशीलन से अयुक्त सिद्ध करने के प्रयत्न एक प्रकार से श्रेष्ठ हैं; क्योंकि इससे वैज्ञानिकों का उन्हीं की रीति तथा युक्ति से समाधान हो सकता है। परन्तु ये हठयोग की क्रियाएं साधारण वैज्ञानिक बुद्धि की खोज अथवा अनुसन्धान नहीं हैं। और न ही ये क्रियाएं वैज्ञानिक क्रम से अनेक परीक्षणों के पश्चात् भूलों के क्रमशः सुधार से संस्कार को प्राप्त होने वाले परिणाम ही हैं। ये तो जगत् गुरु ईश्वर की ओर से; जो कि सब ज्ञानों की खान है; मनुष्य को प्राप्त हुई हैं। हठयोग की विभिन्न क्रियाएं, तीन बन्ध, खेचरी आदि मुद्राएं, अनेक प्रकार के प्राणायाम और यहां तक कि सब प्रकार के आसन की ऐसी विशेषताओं से युक्त हैं कि मानवीय बुद्धि के निरीक्षण, विवेचन तथा सामञ्जस्य आदि उपायों से मनुष्य कभी भी किसी प्रकार इन को प्राप्त नहीं कर सकता। प्राणायाम की तुलना पाश्चात्य देशों के सांस लेने की व्यायाम से नहीं की जा सकती। इन दोनों प्रक्रियाओं में तो समानता नाम मात्र की भी नहीं है। प्राणायाम आदि हठयोग की प्रक्रियाओं का लक्ष्य तो कुण्डलिनी को जागृत करना तथा अन्य चक्रों में प्राण की गति की अनुभूतियां हैं यन्त्रों से सज्जित विज्ञान की सीमा से सर्वथा बाहर हैं। ये सूक्ष्म अनुभूतियां सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध रखती हैं और भौतिक जगत् में मानवीय शक्ति से जो सूक्ष्म से सूक्ष्म वीक्षण यन्त्र बन सकने की संभावना हो सकती है, उस यन्त्र में भी ऐसी सामर्थ्य कभी नहीं हो सकती कि वह इन को दिखा सके। कुण्डलिनी के जागृत होने पर हठयोग की अनेक क्रियाओं का अपने आप (स्वतः ही) साधक के शरीर से होने लग जाना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि ये ईश्वरीय देन हैं। साधक की कुण्डलिनी के जागृत होने पर जब कि वह और किसी साधन में सलग्न होता है तो ऐसा होने लगता है कि योग के अन्य अंगों की क्रियाएं उसके शरीर से स्वतः ही होने लग जाती हैं जबकि साधक को न तो इन क्रियाओं का पूर्व कोई ज्ञान होता है और न ही वह इसके लिए प्रयत्न करता है। यह इन क्रियाओं के ईश्वरीय प्रदत्त होने का एक स्पष्ट प्रमाण है। अतः ये योग वैज्ञानिक अनुसंधानों के आश्रित नहीं हैं और न ही इनका उद्देश्य शारीरिक होता है। ये तो किसी ऊंची ऐसी शक्ति की प्रेरणाएं तथा ज्ञान हैं जो कि सर्वशक्ति, सर्व सामर्थ्य तथा पूर्ण ज्ञान से युक्त हैं।

हठयोग और भौतिक विज्ञान में संघर्ष

इस लिए भौतिक विज्ञान तथा उसके समर्थकों का साधारणतया यह अधिकार नहीं है कि वे इस क्षेत्र में प्रवेश करें और किसी प्रकार के अपने निर्णयों को इस योग पर भी थोपने का यत्न करें। यदि दो क्षेत्रों के सिद्धान्तों में कुछ संघर्ष हो तो ईश्वर प्रदत्त ज्ञान का अधिक आदर और महत्व होना चाहिए और य

धैर्य पूर्वक उदार हृदय से अनुसंधान को जारी रखा जाए तो इसका अवश्य यह परिणाम होगा कि मानवीय बुद्धि की सीमित शक्तियों के द्वारा निर्मित सिद्धान्तों और धारणाओं में सुधार करना पड़ेगा और भौतिक विज्ञान को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सूक्ष्म आध्यात्मिक क्षेत्र में उसकी गति नहीं हो सकती; परन्तु आजकल तो बात ही उलटी है।

हठयोग विषयक हमारी धारणाओं तथा क्रियाओं में सुधार की आवश्यकता

वे समाज, सभाएं तथा व्यक्ति जो कि हठयोग के प्रचार में रुचि रखते हैं यदि नीचे लिखी बातों को उचित महत्त्व दें तो वर्तमान काल के मनुष्य समाज की जो कि भौतिकता की प्रवृत्तियों से अपने सर्व क्षेत्रों की शान्ति को बुरी तरह से खो चुका है; विशेष सेवा कर सकेंगे।

१ ये क्रियाएं मनुष्य के शारीरिक क्षेत्र से ऊंचे क्षेत्रों में प्रभाव उत्पन्न करती हैं। और क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य ही मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति करना है, अतः इनका उपयोग केवल शारीरिक रोग निवृत्ति आदि स्थूल शारीरिक उद्देश्यों की पूर्ति में ही नहीं होना चाहिए। इनका उपयोग उन आध्यात्मिक परिवर्तनों के लिए होना चाहिए जिनका संक्षिप्त वर्णन ऊपर किया गया है।

२ इन क्रियाओं का आधार वे सूक्ष्म नियम हैं जो कि सूक्ष्म जगतों में कार्य करते हैं।

३ ये ईश्वरीय ज्ञान के भण्डार हैं, इन्हें मानवीय भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों की अपेक्षा अधिक आदर तथा महत्व मिलना चाहिये।

४ यदि पाश्चात्य वैज्ञानिक इन क्रियाओं का खण्डन करें तो उन्हें वैज्ञानिक युक्तियों से ही प्रत्युत्तर मिलना चाहिए। परन्तु अन्तिम विजय तो सफलता की है। हमें इन सिद्धान्तों की सत्यता को क्रियात्मक परिणामों से सिद्ध करना पड़ेगा। यदि परिणाम अनुकूल निकलें तो उनके अनुसार ही भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों में सुधार किये जाने चाहिए।

५ भौतिक विज्ञान के स्थूल तथा आध्यात्मिक विज्ञान के सूक्ष्म क्षेत्रों में मन की पदार्थों को महत्त्व देने की प्रक्रिया सर्वथा विपरीत होती है। भौतिक विज्ञानवादी स्थूल जगत को ही वास्तविक सत्य, सूक्ष्म जगत का प्रभावक तथा नियन्ता मानता है और कई बार तो सूक्ष्म जगत के अस्तित्व से ही इन्कार कर देता है। इसके विपरीत आध्यात्मिक क्षेत्र में विचरण करने वाला मन सूक्ष्म जगत को वास्तविक सत्य, नित्य तथा जगत् का आधार और बाह्य भौतिक जगत का प्रभावक तथा नियन्ता मानता है। स्थूल शरीर, जीवन, मन तथा आत्मा के विषय में प्रचलित एक दूसरे से विरोधी मन्तव्य हमारी इस स्थापना को स्पष्टतया सिद्ध करते हैं। और यही बात हठयोग की क्रियाओं के सम्बन्ध में भी विरोधी भावनाओं के होने में वैसे ही लागू होती है।

दूध की कल्प चिकित्सा

प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.

कल्प मिश्रित भी होते हैं, किन्तु दुग्ध-कल्प में केवल दूध पर ही रहना होता है। रोगी के शरीर में प्रोटीन या जिन खनिज लवणों, विटेमिनों या चिकनाई की न्यूनता होती है, वह क्षतिपूर्ति दूध के तत्वों द्वारा होती है। प्रकृति ने दूध में वे सम्पूर्ण तत्व एकत्रित कर दिये हैं, जिनकी आवश्यकता मनुष्य शरीर की टूट फूट दूर करने, परिवर्द्धन, विकास तथा स्वस्थ रखने के लिए पड़ती है। कल्प द्वारा शरीर की कमी पूर्ण की जाती है। जब सब जीवन-तत्व उचित अनुपात में आजाते हैं, तो शरीर नया बन जाता है। दूध के तत्व शरीर में सीधे सम्मिलित हो जाने का महत्वपूर्ण गुण लिये रहते हैं। इस कारण दो सप्ताह में ही यथेष्ट लाभ दीखने लगता है।

ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि रोगी अधिक से अधिक मात्रा में दूध पचा सके, उसे खूब भूख लगे, दूध से उसे विरक्ति न हो जाय। बिना क्षुधा के दूध पीना या पिलाना हानि उत्पन्न करेगा। नियमित रूप से दूध पर रहने के लिये तेज भूख उपजाना अनिवार्य है। प्रश्न उठता है कि तेज क्षुधा किस प्रकार की जाय ? तेज भूख पैदा करने के अनेक उपाय हैं। सर्व प्रथम तो यह है कि कुछ दिन तक न खाया जाय, उपवास किया जाय। उपवास में भोजन नहीं किया जाता, इससे आँतें स्वयं मुलायम पड़ जाती हैं। उपवास काल में जल लिया जा सकता है जिससे आन्तरिक सफाई में आँतों को सरलता मिलती है। उपवास से इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं किन्तु साथ ही शरीर में कमजोरी आती है। यह निर्बलता हमें इस कारण और अधिक मालूम होती है क्योंकि हम सोचते रहते हैं कि आज हमने भोजन नहीं किया है अतः निर्बलता अवश्यम्भावी है।

उपवास लम्बे भी होते हैं तथा छोटे भी। हम छोटे उपवास के पक्ष में हैं। आरम्भिक शुद्धि के लिए दो-तीन दिन का व्रत यथेष्ट है। इन दिनों में पेट के ऊपर नया बोझ न पड़ेगा अतः पुराना सड़ा हुआ संचित विष धीरे-धीरे दूर होगा। प्रायः लोग नहीं जानते कि हम जितना भोजन करते हैं, उसका अधिकांश भाग अंतड़ियों में मल के रूप में इधर-उधर जमता रहता है। यही जमाव जीर्ण कब्ज उत्पन्न करता है। कोष्ठ बद्धता है ही क्या ? वृद्धावस्था में या आलसी जीवन व्यतीत करने से जब जीवन क्रियाएं मन्द पड़ जाती हैं, तो मल विसर्जन का कार्य करने वाले अवयव अपना काम उस सतर्कता से नहीं करते, जिससे उन्हें करना चाहिए। फिर एक और गलती हमसे होती चलती है। हम भोजन में खुजा या चोकर, तरकारियों के छिलके, चावल के कन इत्यादि ऐसे पदार्थ नहीं लेते जिनसे मल विसर्जन कार्य में कुछ सहायता मिलती। अतः बहुत सा मल बड़ी आँत की दीवारों में जमता रहता है। यही जीर्ण कब्ज बन कर अनेक उपद्रवों का कारण बनता है।

प्रायः जन साधारण इस पुराने जमाव को निकालने की ओर ध्यान नहीं देते। उनका आहार ज्यों का त्यों चला करता है। शरीर का अम्ल-तत्व जो कारबन से मिलता जुलता है, धीरे-धीरे बड़ी आंत में एकत्रित होता रहता है। इससे प्राण-शक्ति में तथा जीवन की अन्य क्रियाओं में व्यवधान उपस्थित होता है। संचित मल के कारण सिर दर्द, आलस्य एवं उदासीनता बनी रहती है। दुग्ध-कल्प से पूर्व शरीर शुद्धि-करण इसी लिये किया जाता है कि दूध के आहार से अधिक लाभ उठाया जा सके। इस शुद्धि का सर्वोत्तम उपाय उपवास ही है।

उपवास काल में शरीर तो शुद्ध होता ही है, मन भी विकार रहित बनता है—'आहारान् पचति शिखि दोषान् आहार वर्जितः।' उपवास से दोष भी पच

जाते हैं। यह एक स्वाभाविक एवं प्राकृतिक विधान है जिसके द्वारा अस्त-व्यस्त पाचन क्रिया पुनः सक्रिय की जा सकती है। यहां एकत्रित अपचा भोजन शरीर के उपयोग में आने लगता है। पाचक यन्त्र की श्लैष्मिक कलाएं संचित मल निकालना प्रारम्भ करती हैं। शरीर में रक्त संचार क्रिया जोरों से भोजन मांगने लगती है जिससे शरीर का संचित द्रव्य पच कर रक्त मांस में परिणत हो जाता है।

उपवास काल में शरीर की आंतड़ियों का धुल जाना आवश्यक है। अतः उपवास काल में विष निकालने के लिये जल का प्रयोग खूब कीजिये। संचित मल को निकालने के लिये जल सर्वोत्तम है। पानी के प्रयोग से मल, मूत्र तथा स्वेद निकलने के मार्ग साफ हो जायंगे। बदबूदार पसीना निकलेगा, उपवास काल में अच्छी तरह रगड़ रगड़ कर स्नान करना चाहिये। प्यास के अनुसार ही जल की मात्रा घटाई या बढ़ाई जाय। स्वाद परिवर्तन के निमित्त जल में नींबू का या अंगूर का रस भी दिया जा सकता है।

इस उपवास के पश्चात् दूसरी स्टेज में रसाहार पर रोगी रहे। जल के स्थान पर फलों का रस ग्रहण करें। उपवास फलों के रस द्वारा ही तोड़ा जाय किन्तु उस रस को चूस २ कर स्वाद लेते हुए लिया जाय। प्रतिदिन दिन भर में सेर सवा सेर तक आवश्यकतानुसार रसीले फलों को निचोड़ कर पिया जाय। दिन में तीन-चार बार रस पान किया जाय। इसमें खट्टे तथा मीठे फलों का संमिश्रण रह सकता है। संतरा इस दिशा में सर्वोत्तम रहेगा। किन्तु ध्यान रहे, गट गट कर रस एक बार में न पी लिया जाय। एक सन्तरे को निचोड़ कर एक बार में लिया जा सकता है। क्रमशः यह रस बढ़ाया भी जा सकता है। स्मरण रहे ताजे फलों का तुरन्त निकाला हुआ रस ही लिया जाय। रसीले फल जो इस प्रयोग में लाये जा सकते हैं, सन्तरे चकोतरे, जंभीरी, कागजी नींबू, टमाटर हैं।

तृतीय स्थिति फलाहार की है। संसार में यदि कोई ऐसी खाद्य वस्तु है जो पथ्य तथा औषधि दोनों साथ २ है तो वह फल ही है। एडाल्फ जुस्ट का कथन हैं कि दूध व फलों में सब रोगो को दूर करने की अद्भुत शक्ति होते हुए भी मनुष्य औषधियों से आरोग्य प्राप्त करना चाहता है, यह उसका दुर्भाग्य है। फल का प्रधान गुण क्षार-धर्मी होना है। इनका क्षार मानव शरीर में संचित समस्त विषों का परिहार करता है। जहां रेचक औषधियां हानि पहुँचाती हैं, वहां फलों का रेचक बृहत् आंत को कोमलता से साफ रखता है। सुपक्व फल अत्यन्त सुपाच्य होते हैं, फलों में यथेष्ट खुज्जा प्रस्तुत होने के कारण उससे मल की मात्रा में वृद्धि होती है। जब रसाहार के पश्चात् रोगी फलाहार पर रहता है तो तीव्र क्षुधा उत्पन्न होती है। जब रोगी को फलाहार पर रक्खा जाय तो यह स्मरण रखना चाहिए कि उसे ताजे खट्टे-मीठे दोनों प्रकार के फल उचित मात्रा में दिये जांय। मध्य में रसीले फल, टमाटर अंगूर, संतरे इत्यादि भी लिये जाते रहें। संतरे, टमाटर इत्यादि में प्रस्तुत अम्ल तथा शर्करा पाकस्थली की ग्रन्थियों को उत्तेजित कर पाचक रस यथेष्ट मात्रा में उत्पन्न करने में प्रचुर सहायता प्रदान करते हैं। वस्तुतः संतरे तथा टमाटर का रस सर्वोत्तम श्रेणी का क्षुधावर्द्धक आहार है। संतरा न मिलने पर नींबू का प्रयोग कर सकते हैं। रोगी के रक्त विकार दूर करने में आम, जामुन, अनन्नास, अंगूर इत्यादि बेजोड़ हैं। क्षुधा तीव्र करने में पपीता अपना सानी नहीं रखता।

फलाहार में दो बातें स्मरण रखिये। उपवास तथा रसाहार में तो आपको किसी प्राकृतिक चिकित्सक की देख रेख की आवश्यकता है किन्तु फलाहार तो रोगी स्वयं कर सकता है। फलाहार क्षुधा के अनुसार किया जाय और तीन या चार बार फल भोजन की भांति लिए जांय। इन फलों में ऐसे भी फल रहें जिनसे मल बने, पेट में कुछ बोझ भी रहे अर्थात्

यथेष्ट खुजा रहे। ऐसे फल नासपाती, ककड़ी, खरबूजा, खीरा, सेब, अमरूद इत्यादि हैं। फलाहार काल में रोगी कुछ हलका व्यायाम भी ले, ऑक्सिजन अधिक से अधिक प्रयोग में ले और खुली वायु में टहलने, खेलने, कूदने में अधिकांश समय व्यतीत करे।

क्षुधा तीव्र करने के लिए एनिमा भी एक साधन है। कुछ विशेषज्ञों की राय है कि उपवास एवं एनिमा के संयोग से जीर्ण कोष्ठ वद्धता दूर की जा सकती है। योग की कई क्रियाएं भी बड़े महत्व की हैं। कुछ योगी नाभि तक जल में खड़े होकर अथवा बैठ कर नौलि-क्रिया से गुदा द्वारा जल को बड़ी आंतों में खींचते हैं। तत्पश्चात् नौलिक्रिया करके उस मल मिश्रित जल को त्याग दिया जाता है। इस प्रकार आंत की स्वच्छता से भूख तेजी से लगती है। एनिमा से गांठें, पुराना जमाव तथा गाढ़ा मल निकलता है तथा आन्तरिक अवयव सशक्त बनते हैं।

प्रारम्भिक शुद्धि के लिए उपरोक्त रीतियों से पर्याप्त लाभ उठाना चाहिए तब तक उपवास, एनिमा रसाहार तथा फलाहार कीजिए, जब तक दूध के लिए तेज भूख उत्पन्न न हो जाय। दुग्ध कल्प से पूर्ण तथा स्थायी लाभ प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि आप अपने पेट तथा आंतों की सफाई कर लें और दूध को अपना चमत्कार प्रदर्शन का अवसर प्रदान करें।

कल्प के लिए दूध का चुनाव

सर्वोत्तम दुग्ध गौ माता का है। गौ के दुग्ध की समता दूसरा नहीं कर सकता। गौ दुग्ध के विषय में चरक की उक्तियां यह स्पष्ट रूप से दिखला देती हैं कि भारतीय आयुर्वेद विज्ञान के प्रारम्भिक काल में भी औषध एवं खाद्य की दृष्टि से गौ दुग्ध की महिमा पहिचान ली गई थी। यह दूध बलवर्धक, संजीवन-दायक, सात्विक एवं चित्त को प्रसन्न करने वाला होता है। यह आत्मा को बल देता है आयुवर्द्धक, कान्तिदाता, हड्डियों को जोड़ने वाला और यौवन प्रदान करने वाला है।

बकरी का दूध जल्दी पच जाने के कारण प्रायः चुना जाता है। गौ के दूध के पाचन में जहां दो घंटे लगते हैं, वहां बकरी का दूध आध घंटे में ही पच जाता है। सम्भवतः इसका यह गुण इसके चिकनाई के कणों के कारण है, जो गौ के दूध की चिकनाई के कणों के पञ्चमांश तथा माता के दूध की चिकनाई के कणों के बराबर होते हैं। गौ, भैंस का दूध रखा रहने पर मलाई जल्दी आती है, बकरी के दूध पर वह बहुत धीरे धीरे आती है। जिन १२ प्राकृतिक लवणों की हमारे भोजन में आवश्यकता होती है, और जो सभी स्त्री के दूध में होते हैं, उनमें गौ के दूध में छः तथा बकरी के दूध में नौ होते हैं। अत्यन्त आवश्यक लवण, लोहा बकरी के दूध में गाय के दूध से सात से दस गुना तक अधिक मिलता है। डॉक्टर शर्मन ने एक बार १८ लड़कों पर, जिनका हाजमा बिगड़ गया था, भोजन के प्रयोग किए थे। उनका कथन है कि 'सत्रह लड़कों को बकरी का दूध ठीक २ पचने लगा था। कई लड़कों को तो इससे बहुत अधिक लाभ हुआ। जो गाय का दूध भी नहीं पचा पा रहे थे, वे बकरी का दूध मजे में पचा सके।' कल्प से पूर्ण लाभ उठाने के लिए इन्हीं दो में से एक का चुनाव करें।

दूध कैसा लेना चाहिये

सब से अच्छा दूध धारोष्ण, ताजा एवं फीका होता है तथा दुग्ध कल्प से पूर्ण इच्छित लाभ प्राप्त करने के लिए धारोष्ण फीके दूध को ही काम में लेना चाहिए। आप धारोष्ण ताजे दूध से बहुत शीघ्रता से शरीर की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले समस्त पदार्थ, खनिज, लवण, फास्फोरस

कैलशियम पा सकते हैं। जितना ही आप धारोष्ण दूध में परिवर्तन करेंगे; उतनी ही मात्रा में गुण, लाभ एवं विटामिन कम होते जायंगे। हां, रोगी की परिस्थिति, अवस्था, व देश काल के अनुसार साधारण फेर फार किया जा सकता है।

अत्यन्त ठन्डा दूध कल्प में प्रयोग न करें। हां बिगड़ने के डर से आप उसे सम्भाल कर किसी ठंडे स्थान में पवित्रता से रख सकते हैं किन्तु बर्फ के सदृश ठन्डा दूध पान न करें। यदि दूध का पात्र बर्फ में रक्खा गया हो, तो उसे इतना गर्म कीजिये जितना गर्म रक्त होता है। खून जैसी गर्मी ही यथेष्ट है। इतनी गर्मी प्रायः धारोष्ण दूध में भी होती है। औटाकर दूध पीने से विटामिन नष्ट होते हैं। गरिष्ठ बन कर ऐसा दूध कब्ज भी करता है। जहां तक हो मलाई न आने दीजिये। यदि थोड़ी बहुत आगई है तो मलाई को फेंट कर मिला लीजिए। यदि धारोष्ण पीएं तो झाग सहित पीना उत्तम है क्योंकि दूध के झागों में अद्भुत गुण होते हैं। सेपरेटा (मक्खन निकला हुआ दूध) पीने से स्वाद और गुण परिवर्तित हो जाते हैं। लाभ प्रायः नहीं होता। बहुत दिन की ब्याई हुई गौ का दूध कुछ गरिष्ठ व कम गुणकारी होता है और महीने भर या दो माह की ब्याही हुई गौ का दूध कुछ हलका और लाभप्रद होता है। ऐसी गौ का दूध इतना सुपाच्य है कि आंतों को इसका रक्त बनाने में बहुत ही कम शक्ति व्यय करनी पड़ती है तथा जब यह पेट तथा आन्तों में होकर गुजरता है तो उनकी नसें व रग पट्ठे दूध का रस व सार ग्रहण करके पुष्ट व क्रियाशील बन जाते हैं। दुबले पतले व्यक्ति इस पुष्टि से मोटे हो जाते हैं।

श्री अरविन्द

प्रोफेसर लालचन्द्र एम. ए.

श्री अरविन्द के पिता का नाम कृष्णधन घोष था। ये विलायत से आई. एम. एस. होकर आए थे और बंगाल में सिविल सर्जन बने। तीव्र बुद्धि, कोमल हृदय, तरंगी, इतने उदार कि जो पास होता सब दान कर डालते। अपनी ज़रूरतों से बेपरवाह पर औरों के कष्टों को तीव्रता से अनुभव करने वाले, ऐसा था चरित्र इस पिता का। मगर यह थे पक्के साहब। दकिया नूसी बातों को नहीं मानते थे। और इन्हों ने अपने बच्चों की शिक्षा पश्चिमी ढङ्ग पर की। श्री कृष्णधन घोष को उन के मित्र लाड से स्वेज़ कैनाल कहते थे क्योंकि इन के यहां अङ्गरेज़ और बंगाली दोनों आते थे और दोनों का खूब आतिथ्य होता था। श्री अरविन्द के नाना का नाम था ऋषिराज नारायण घोष। यह यद्यपि पश्चमी शिक्षा पाए हुए थे, पर थे बहुत स्वदेश भक्त, अपनी प्राचीन संस्कृति पर नाज़ करने वाले और सुन्दर साहित्य द्वारा उस का प्रचार करने वाले।

श्री अरविन्द का जन्म १५ अगस्त १८७२ ई० में कलकत्ते में हुआ। ५ साल की आयु में पिता ने बालक को कॉन्वेन्ट स्कूल दार्जिलिंग में भरती कर दिया जहां सब काम अंग्रेजी में होता था। ७ साल की आयु में पुत्र को विलायत ले गये और वहां मानचेस्टर में एक अंग्रेज ड्रेवेट के घर शिक्षा के लिये रखा। फिर वह सेंट पौल्स स्कूल लंदन में प्रविष्ट हुए जहां उन्होंने अपने अध्यापकों को अपने उच्च चरित्र और विलक्षण प्रतिभा से बहुत प्रभावित किया। यहां से छात्रवृत्ति ले कर वह किंग्स कॉलेज, कैम्ब्रिज में प्रविष्ट हुए। यहां उन्होंने ट्राइप्स परीक्षा प्रथम विभाग में पास की, फिर सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठे तो क्लासिक्स में अर्थात् ग्रीक और लैटिन में उन्होंने रिकॉर्ड मार्क्स प्राप्त किये, जब सवारि की परीक्षा का समय आया तो जान बूझ कर नहीं गये और इस तरह वह आई. सी. एस. अर्थात् इण्डियन सिविल सर्विस में नहीं आये। असल में प्रभु उनको आई. एस. इ. अर्थात् इण्डियन स्पिरिचुअल एम्पायर के लिये तय्यार कर रहा था। जब वह पढ़ते थे तो विलायत में भारतीयों का एक क्रान्तिकारी समाज बना जिसका नाम था 'लोटस एण्ड डैगर।' उस में आप जोरशोर से भाग लेते थे इस लिये सरकार की नज़र तभी से उन पर रहने लगी। आयर्लैंड उस समय स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष कर रहा था। आपने आयर्लैंड और वहां के देशभक्तों पर अंग्रेजी में दर्दभरी और जोशीली कवितायें लिखीं। विलायत में उन्होंने अंग्रेजी, फ्रेंच, ग्रीक, लटिन भाषाओं पर तो पूरा प्रभुत्व पा ही लिया था इनके अतिरिक्त जर्मन इतनी सीख ली कि गेटे का 'फास्ट' मूल में पढ़ लिया और इटैलियन इतनी जान गये कि डैंटे का 'डिवायन कामिडि' मूल में पढ़ ली। इस तरह विलायत के १४ साल के वास में पश्चिम की पुरानी, मध्यकालीन और आधुनिक तीनों कालों की संस्कृति से गहरा परिचय कर लिया। बड़ौदा के गायकवाड़ इत्तिफाक से उस समय विलायत आए हुए थे एक मित्र के द्वारा उनसे भेंट हुई और परिणाम स्वरूप वह स्टेट सर्विस में आ गये।

१४ साल वह विलायत में रहे और सारा पश्चिम का ज्ञान हज़म किया। संस्कृत, बंगला, गुजराती, मराठी भाषाओं को सीखा और इनका साहित्य पढ़ा। बड़ौदा में पहले सेक्रेटेरियेट में काम करते रहे, फिर अंग्रेजी के उपाध्याय बने, फिर बड़ौदा कालिज में वाइस प्रिंसिपल बने, अपने पद का काम चातुर्य से करने के अतिरिक्त आप ने भारत का पुराना अमर साहित्य पढ़ा। वेद, उपनिषत् इत्यादि का स्वाध्याय किया और कई एक कविताएं भी लिखीं। बड़ौदा में वह बहुत सरलता और तपस्या का जीवन बिताते थे। वहां रहते हुए उनकी शादी हुई, उन्होंने अपनी पत्नी को एक पत्र में लिखा कि तू ने एक पागल से शादी कर ली है, जिस के तीन पागलपन हैं। एक यह कि मैं अपनी भारत माता आज़ाद देखना चाहता हूँ, दूसरे यह कि भगवान

का साक्षात् करना चाहता हूँ, तीसरा यह कि अपनी कमाई से मैं उतना ही अपने पास रखना चाहता हूं जितना केवल मेरे या मेरे परिवार के खाने पहनने इत्यादि के लिये अत्यावश्यक हो, शेष पर मैं कोई अपना स्वत्व नहीं रखना चाहता । शेष सब दरिद्र नारायण का है और उनको ही मैं दे देना चाहता हूँ।

वहां रहते हुए एक मराठे महात्मा लेले से उन्होंने योग-साधना भी सीखी। जब वह विलायत से वापस बम्बई उतरे तो उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो एक विशाल शान्ति ने घेर लिया। यह वास्तव में भारत माता का अपने प्यारे लाल का स्वागत था, उस लाल का जिसने न केवल माता की बेड़ियां ही काटनी थीं परन्तु उस माता का नाम सारे संसार में फैलाना था और उसका मस्तिष्क सारे संसार में ऊंचा करना था। महात्मा लेले ने उनको कहा—मन को खाली कर दो, कोई विचार न आने दो। तीन दिन में वह मन को बिल्कुल खाली करने में सफल हुए और उन्होंने एक विचित्र चीज़ अनुभव की कि विचार बाहर से हमारे अन्दर आते हैं और हम भ्रम से उनको अपना मान लेते हैं। भारत का साहित्य पढ़ते, भारत की भाषाओं को पढ़ते, प्रोफेसर और प्रिंसिपल का काम करते, अंग्रेजी की कविताएं लिखते और योग अभ्यास करते और बिना अपना नाम दिये राजनैतिक विषयों पर तेजस्वी और तीव्र लेख लिखते हुए उन्होंने बंगाल से पुकार सुनी, बंगाल का विभाजन कर दिया गया था। सारा बंगाल हिल उठा था, लोगों में नया जोश पैदा हो गया था, अब वह अपने आपको न रोक सके, प्रिंसिपल का पद छोड़ दिया। सात सौ रुपये की प्रतिष्ठित नौकरी को एक दम त्याग कर १५०) मासिक पर नेशनल कॉलेज, कलकत्ता के प्रिंसिपल बन गये। मगर वहां के अधिकारी उनको पूरी स्वतन्त्रता नहीं देते थे कि अपने विचार के अनुसार कॉलिज को चला दें तब उन्होंने वह काम भी छोड़ दिया और वन्दे मातरम् पत्र के सम्पादक बन गए। उनका सिद्धान्त था कि जो काम करना, तन मन लगा कर करना। राजनीति में वह तिलक को नेता मानते थे। उनके लेख बड़े उग्र और युक्तियुक्त होते थे। उनके लेखों से जाति के अंदर एक नये जीवन का सचार हो गया। योग्यता तो उनके अन्दर थी ही पर उन के लेखों के प्रभाव का मुख्य रहस्य यह था कि भारत को माता समझते थे। जीवित जागृत, सुन्दर, सम्पन्न पर जंजीरों से जकड़ी हुई मां समझते थे और उनका सब काम अपने यश या अपने धन कमाने के लिए नहीं परन्तु भारत माता को आज़ाद करने के लिये एक उच्च विशुद्ध बुद्धि से होता था। इसीलिये उनके लेख सीधे दिल में चोट करते थे, मगर जो जोश उन्होंने इस तरह लोगों में पैदा किया वह देर तक न रह सका, क्योंकि लोग अभी तैय्यार नहीं थे। १९०७ में उन पर विद्रोह का अभियोग चलाया गया पर वह इस में बरी हो गए। १९०८ में अलीपुर षड्यन्त्र केस में वह फिर पकड़े गये और एक साल तक अलीपुर जेल में रहे। इस एक साल के कारावास के लिये जिसे वह आश्रमवास कहते थे वह अंग्रेजी सरकार का बहुत धन्यवाद करते थे, क्योंकि वहां उन को भगवान् के दर्शन हुए, वहां उन को ऐसा साक्षात् हुआ कि सब वस्तुओं में, सब व्यक्तियों में भगवान् बसा हुआ है। इस आश्रमवास के पश्चात् जब वह जेल से बाहर निकले तो उन्होंने अंग्रेजी में एक भाषण दिया, जिसका नाम उत्तरपाराभाषण है। यद्यपि वह साधारणतया बड़ी पंडिताई की भाषा लिखते थे पर इस भाषण में उनकी अंग्रेजी बहुत सरल है। छोटा सा पैम्फलेट है। जो अंग्रेजी जानता है और उसने वह भाषण नहीं पढ़ा वह सचमुच अभागा है, और जो हिन्दी जानता है और उसने अभी तक उसका हिन्दी अनुकरण नहीं पढ़ा वह भी अभागा है। पुस्तिका क्या है: एक आबदार बहुमूल्य हीरा है जिस से साबित होता है कि वह अब

अपनी मैं और मेरी से ऊपर उठ चुके थे। प्रभु को पूरा समर्पित हो चुके थे। प्रभु का आदेश पा चुके थे 'तेरा असली कार्य भारत की आत्मा को बचाना है, जिन सचाइयों ने भारत को अभी तक जीवित रखा है जो गूढ़ तत्व वेदों और उपनिषदों में लिखे हैं। उन को फिर पाओ, अपनी साधना से अपने योग अभ्यास से पाओ और पा कर ऐसा अमर साहित्य तय्यार कर जाओ जिस से भारत का सिर संसार में ऊंचा हो। भारत फिर संसार का अध्यात्मिक नेता बन और संसार में अज्ञान और कलह के स्थान पर प्रकाश, क्रान्ति और आनन्द का राज्य हो" कुछ काल तो वह एक पत्र 'कर्मयोगी' अङ्गरेज़ी में और 'धर्म' बंगला में निकालते रहे जिन में बहुत ऊंचे स्तर से लिखे हुए लेख होते थे। जब उन्हों ने अपने ध्यान में देख लिया कि यह काम प्रभु अब औरों के सपुर्द करेंगे जो असहयोग आन्दोलन द्वारा भारत को आज़ाद कराएंगे तो जो काम केवल वह ही सब से अच्छा कर सकते थे और कोई इतना योग्य ही नहीं था। उस काम के लिए वह पहले चन्द्र नगर पीछे पांडीचेरी चले गए जहां उन्हों ने योग अभ्यास किया, वेद का स्वाध्याय किया और उस मासिक 'आर्य' पत्र में जिस में उन्हों ने अनेक गम्भीर विषयों पर क्रमिक लेख लिखे वह अमर साहित्य तय्यार किया जिस को पढ़ कर संसार के बड़े से बड़े विद्वान् भी चकित हैं। उन क्रमिक लेखों को इकट्ठा कर के कई बहुमूल्य पुस्तकें तय्यार हुई हैं और हो रही हैं। 'लाइफ डिवाइन' तीन मोटी जिल्दों में ११८३ पृष्ठों की एक पुस्तक है। सर फ्रान्सिस यंगहसबेण्ड पार्लियामेण्ट ऑफ रिलिजन का प्रधान था। उस ने लिखा है "लाइफ डिवाइन इस शती की सब से महान् पुस्तक है।" कोई गम्भीर विषय ऐसा नहीं जो उन्हों ने छुआ न हो और कोई विषय उन्हों ने छुआ नहीं जिस में उन्होंने जान न डाल दी हो। सब पक्षों को इतने सुन्दर ढङ्ग से रखा कि उन पक्षों के पोषक ने भी ऐसे सुन्दर ढङ्ग से नहीं रखा और जब रख दिया तो उस में जो कमी है वह भी बता दी। उदाहरणार्थ शंकर के वेदान्त को इतने सुन्दर ढङ्ग से रख दिया है कि वेदान्ती भी क्या रखते होंगे। फिर बता दिया कि ब्रह्म तो सत्य है पर जगत् भ्रम नहीं जगत् भी सत्य है, हर विचार का, हर दर्शन, का हर धर्म का उचित स्थान अपने ज्ञान चक्षु से देख कर उन्हों ने बता दिया है। कौन धर्म कब आया और क्यों आया उस को उस समय क्या ज़रूरत थी और उस से क्या लाभ हुआ। यह सब निष्पक्ष हो कर उन्हों ने बताया। यहां तक नास्तिक और सन्देहवादियों का ज्ञान की उन्नति में क्या हिस्सा है उन्हों ने इतनी सुन्दरता से रखा है कि एक बार तो नास्तिक भी वाहवाह कह उठे हैं। वह वास्तव में धीर पुरुष हैं। धीर नैतिक दृष्टि से, धीर बौद्धिक दृष्टि से, आपत्ति में अचल रहे। और भिन्न भिन्न पक्षों पर राय देने में भी वह धीर रहे। सब के गुण दोष बिना पक्षपात के बता कर वह सब को अपनी ओर खींचते हैं। लाइफ डिवाइन पुस्तक के पढ़ने से ऐसा पता चलता है कि वह अन्दर की दुनियां के सब से बड़े खोज करने वाले हैं। अपनी तीव्र अन्तर्दृष्टि से उन्होंने इस लोक का कोना कोना देख लिया है। माइण्ड से सूपर माइण्ड तक उन्होंने कई श्रेणियां बताई। हायर माइण्ड, इलूमाइण्ड माइण्ड, इन्टूशन ओवर माइण्ड, सूपर माइण्ड। इन सब स्थितियों में चित्त की क्या अवस्था होती है, उसका अपने वैयक्तिक अनुभव के आधार पर बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया है। इस में संसार के विकास का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। दिव्यता प्रकृति में सुप्त थी। धीरे-धीरे जागने लगी। अन्नमय लोक में प्राणमय लोक व्यक्त हुआ, पौदे पैदा हुए, फिर पशु-पक्षी पैदा हुए, इसके बाद प्राणमय लोक में मनोमय लोक प्रगट हुआ। मनुष्य पैदा हुआ पर अभी विकास खतम नहीं हुआ। मनोमय लोक से विज्ञानमय लोक

प्रगट होने वाला है, सूपर माइण्ड का अवतरण होने वाला है और मनुष्यों में से वह जो बौद्धिक नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से तैय्यार हैं एक सूपर मैन की सृष्टि होने वाली है जो चेतना और सामर्थ्य की दृष्टि से मनुष्यों से ऐसे ही भिन्न होंगे जैसे मनुष्य पशुओं से। सूपर मैन के अन्दर अदम्य शक्ति, निर्भ्रान्त ज्ञान और सारभौम प्रेम होगा। संसार के देशों के प्रधान और राजा इस जाति में से, जनक महाराज और अजातशत्रु की तरह राज करेंगे, सब कलह मिट जायंगे, शान्ति का साम्राज्य हो जायगा। क्योंकि हर एक देश के प्रधान हर एक देश के प्रधान में एक ही ब्रह्म देखेगा तो फिर झगड़ा किस का किस से होगा।

इस पुस्तक के अन्दर बड़े जटिल विषयों पर बड़ा सुन्दर, स्पष्ट और मौलिक विचार किया गया है। भगवान् आनन्द स्वरूप है तो संसार में दुःख क्यों? पुनर्जन्म, कर्म फल, दिव्य जीवन ऐसे ऐसे अनेक गम्भीर विषयों पर जो उन्होंने स्वतन्त्र, युक्तियुक्त और मौलिक विचार लिखे हैं उनके पढ़ने से मनुष्य को अलौकिक प्रकाश और अवर्णनीय आनन्द मिलता है। मैंने तो अङ्गरेज़ी जानने का सब से बड़ा लाभ यह उठाया है कि श्री अरविन्द के ग्रन्थ पढ़े हैं, ग्रन्थ क्या पढ़े हैं अमृत पान किया है, और छक कर किया है। और अब भी कर रहा हूँ। स्वामी रामतीर्थ जी, स्वामी विवेकानन्द जी वगैरह ने जो लिखा है वह भी मैंने खूब पढ़ा हैं और बहुत आनन्द लिया है मगर यह सोमरस कुछ विलक्षण ही है। श्री अरविन्द एक चौमुखी प्रतिभा वाले महर्षि थे। यूरोप की सब मुख्य भाषायें, भारत की सब मुख्य भाषायें वे जानते थे। उन्होंने अङ्गरेज़ी में कविताएं लिखीं। गीता-प्रबन्ध लिखा, ईशउपनिषद्, केन उपनिषद्, माण्डूक उपनिषद् की टीकायें लिखीं वेद रहस्य लिखा। दयानन्द बंकीम और तिलक की सारगर्भित और संक्षिप्त जीवनयां लिखी हैं। तीन जिल्दें उन के पत्रों की निकल चुकी हैं। योग के आधार, योग प्रदीप, माता इत्यादि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। एक एक के अन्दर प्रकाश और आनन्द का सोमरस भरा पड़ा है। हाल ही में अमेरीका से एक बड़ा प्रोफेसर जिसका नाम स्पीलबेरी था भारत में यह देखने आया था कि अध्यात्मिकता भारत में वस्तुतः कहीं है भी या यों ही इसका शोर डाल रखा है। जब पांडीचेरी गया और योगीराज श्रीकृष्ण के दर्शन हुए तो गद्गद् हो गया और उसे विश्वास हो गया कि अध्यात्मिकता सचमुच भारत में जीवित जागृत है। अमेरिका जाकर उसने अपने एक पत्र में लिखा है कि मैं और मेरे शिष्य नियमपूर्वक नित्यप्रति बड़े शौक से और बड़ी श्रद्धा से लाइफ डिवाइन और एस्सेज़ ऑन दी गीता (जो अरविन्द की दो मुख्य पुस्तकें हैं) पढ़ते हैं और लाभ उठाते हैं। लन्दन के प्रसिद्ध पत्र टाइम्स के साहित्य परिशिष्ट में जोहन पुरे ने एक लेख में लिखा है कि श्री अरविन्द आधुनिक योग पर केवल मात्र एक ही मौलिक लेखक हैं। रोम्यां रोलां ने लिखा है कि श्री अरविन्द ने पूरब और पश्चिम की संस्कृतियों का सब से पूर्ण समन्वय किया है। श्री अरविन्द के आसपास का वातावरण अध्यात्मिक विकास के लिये बहुत सहायक है।

अगर है स्वर्ग कोई इस ज़मीं पर,
यहीं पर है, यहीं पर है, यहीं पर।

उच्च कोटि का मानसिक भोजन प्राप्त करने के लिए गुरुकुल-पत्रिका पढ़िये।
वार्षिक मूल्य देश में ४), विदेश में ६)।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कोटा अधिवेशन के लिए निर्वाचित सभापति श्री जयचन्द्र विद्यालंकार इतिहास क्षेत्र के ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हैं। उनका चौड़ा माथा, चमकीली और पैनी आंखें उनकी प्रतिभा और बुद्धि का आभास देते हैं। उनका पतला शरीर और गेहुँआ रंग उनके व्यक्तित्व के परिचायक हैं। गत २४ वर्ष से इस विद्वान् विचारक ने अपना सारा जीवन राष्ट्रीय शिक्षा के आदर्शों को चरितार्थ करने और भारतीय इतिहास एवं समाजशास्त्र के मौलिक अध्ययन और अन्वेषण द्वारा हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि में लगाया है। भारतीय इतिहास का कोई भी युग या पहलू ऐसा नहीं जिस पर उनकी मौलिक खोजों ने नया प्रकाश न डाला हो। भारतीय इतिहास की घटनाओं की व्याख्या के लिए प्राचीन भू-अंकन की खोजों का सहारा लेने की नई परिपाटी का आपने आरम्भ किया है। यह कार्य मुख्यतः हिन्दी माध्यम से ही हुआ और इसे जानने और समझने के लिये अनेक अहिन्दीभाषी और विदेशी विद्वानों को भी हिन्दी सीखनी पड़ी है। हिन्दी के बहुत कम विद्वानों को ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि उनके अनुसन्धानों और कृतियों का अध्ययन करने के लिए ही अहिन्दीभाषी और विदेशी विद्वान् हिन्दी सीखें।

जन्म और बाल्यकाल

जयचन्द्र जी का जन्म १८६६ में पश्चिमी पञ्जाब (आधुनिक पाकिस्तान) के लायलपुर जिले की डिजकोट बस्ती में हुआ। डिजकोट ऐतिहासिक खण्डहरों का स्थान है। आपकी शिक्षा-दीक्षा भारत के प्रथम राष्ट्रीय शिक्षणालय गुरुकुल कांगड़ी में आधुनिक भारत में राष्ट्रीय शिक्षा के पिता महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) की देखरेख में हुई। १६१६ में आप गुरुकुल से स्नातक बन कर निकले। इसके बाद गढ़वाल के भीषण अकाल, रोलट एक्ट विरोधी आन्दोलन आदि में कार्य करते रहे। १६१८ में पञ्जाब में मार्शलला लागू होने पर जब अमृतसर में जलियांवाला बाग की घटना घटी, तो स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उस घटना की विस्तृत रिपोर्ट तैयार करने के लिए आपको ही पञ्जाब भेजा था।

कृतियां और अनुसन्धान

जयचन्द्र जी की पहली रचना 'भारतवर्ष में जातीय शिक्षा' नाम से सन् १६१६ में प्रकाशित हुई थी। इसमें जयचन्द्र जी ने राष्ट्र के उद्धारार्थ राष्ट्रीय शिक्षा के कार्यक्रम में भारतीय भाषाओं में उच्च वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण के लिए आयोजन पूर्वक काम करने वाली राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना पर बहुत अधिक बल दिया था, जिसका उल्लेख प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री प्रो० विनयकुमार सरकार ने उन्हीं दिनों अमरीका के एक वैज्ञानिक पत्र में बड़े आदर के साथ किया था।

उनकी दूसरी कृति 'भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार' १६२५ में प्रकाशित हुई। इसमें भारत के ऐतिहासिक और सामरिक भू-अंकन पर क्रमबद्ध रूप से पहले-पहल प्रकाश डाला गया था। १६२८ में देवघर षड्यन्त्र के मुकदमे में उनके छोटे भाई इन्द्रचन्द्र नारङ्ग की तलाशी में यह ग्रन्थ उनके पास से बरामद हुआ, जिसका अंग्रेजी अनुवाद कराकर सरकारी वकील ने उनके खिलाफ सबूत रूप में पेश करते हुए कहा कि भारत का सामरिक भू-अंकन उसमें होने से वह भारतीय क्रान्तिकारियों के बड़े काम की चीज है। अंग्रेज जज ने उसे पढ़ कर प्रत्याख्यान करते हुए कहा कि "यह ब्रिटिश साम्राज्य के लिए भी उतनी ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है।" इसी ग्रन्थ का संशोधित और परिवर्धित रूप 'भारत भूमि और उसके निवासी' नाम से प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ की प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता स्व०

हीरालाल तथा नार्वेजियन पुरातत्ववेत्ता डा० स्टेनकेनो ने भारतीय भूगोल को शास्त्र का रूप देने के कारण बहुत प्रशंसा की। इस ग्रन्थ में महाकवि कालिदास के रघुवंश में वर्णित रघु और महाभारत के सभापर्व में वर्णित अर्जुन की उत्तर दिग्विजय में आये प्राचीन भारतीय भू-अंकन सम्बन्धी उल्लेखों पर गवेषणा करते हुए उन्होंने प्राचीन कम्बोज जनपद को पहचाना और ऋषिक तुखारों की पहचान भारतीय इतिहास में वर्णित कनिष्क आदि सम्राटों की जात 'यूचियों' से की, जिनकी भाषा का नाम मध्य एशिया में पाये गये उनके अपने प्राकृत लेखों में आर्षी मिलता है। डा० कोनो ने यह खोज करने वाले प्रथम विद्वान होने का श्रेय इन्हें दिया।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने १९३३ में जयचन्द्र जी की इस पुस्तक को उस वर्ष की सर्वोत्कृष्ट हिन्दी पुस्तक मान कर उन्हें प्रथम द्विवेदी पदक प्रदान किया। यह पदक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं प्रदान किया। इसी वर्ष जयचन्द्र जी की सब से प्रसिद्ध पुस्तक "भारतीय इतिहास की रूप रेखा" दो भागों में प्रकाशित हुई। इस ग्रन्थ की मौलिकता और प्रमाणिकता का सर्वत्र मान हुआ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इस ग्रन्थ पर उस वर्ष का सर्वोत्कृष्ट इतिहास ग्रन्थ होने के नाते 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' भेंट किया।

अनुसन्धानों की सराहना

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा स्व० डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को उनकी ७० वीं जन्मगांठ पर भेंट किये गये भारतीय अनुशीलन ग्रन्थ में प्रकाशित जयचन्द्र जी के लेख (नकुल का पश्चिम दिग्विजय) से उनकी भारतीय इतिहास और प्राचीन भू-अंकन के प्रति गहरी अन्तर्दृष्टि प्रकट होती है। इस लेख में महाभारत के उद्योगपर्व में वर्णित भू-अंकन की पहचान की गई है और इसका उपयोग पूना के भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टिच्यूट से निकलने वाले महाभारत के आलोचनात्मक संस्करण के उस प्रकरण के मूल पाठ संशोधन के समय भरपूर किया गया। इसी लेख में महाभारत में आये 'रोहीतक बहुधान्यक' की पहिचान वर्तमान रोहतक से की गई थी। दो वर्ष बाद स्व० डा० बीरबल साहनी ने रोहतक के पास खुदाई कराते हुए करीब दस हज़ार सिक्कों के सांचे ढूंढ निकाले जिनमें "यौधयानां बहुधान्यके" यौधयों के बहुधान्यक देश में लेख था। इससे जयचन्द्र जी के सुझाव की पुष्टि हो गई। डा० साहनी ने इस घटना का विवरण देते हुए जयचन्द्र जी का सादर उल्लेख किया है।

जयचन्द्र जी की तीसरी मुख्य कृति 'इतिहास-प्रवेश' या 'भारतीय इतिहास का दिग्दर्शन' प्रकाशित होने पर प्रो० विनय कुमार सरकार ने इसे रक्तमांस के बने नर-नारियों का इतिहास बताया। यह राजनीतिक घटनाओं का विवरण-मात्र न हो कर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास था। हिन्दू धर्म और इस्लाम के विभिन्न संसर्गों पर आपने जो प्रकाश डाला है वह मननीय है। इस ग्रन्थ के पढ़ने के लिए ही मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष प्रो० नीलकण्ठ शास्त्री ने हिन्दी सीखी। इस पुस्तक के सम्बन्ध में लिखते हुए श्री शास्त्री जी ने एक पत्र में लिखा, 'आपकी पुस्तकें और भाषण जो मैंने पढ़े, किसी भारतीय भाषा में पहले हैं, जिन्होंने मुझे विश्वास दिला दिया है कि अपनी जनता को अपना इतिहास उसकी अपनी भाषा में उसी के दृष्टिकोण से बताना सम्भव और आवश्यक दोनों ही है। यह कार्य कितना महत्वपूर्ण है, सो आपने मुझे समझा दिया है।

आपने भारतीय इतिहास परिषद्, जिसके सभा-

पति डा० राजेन्द्र प्रसाद हैं, के तत्वाधान में भारत का एक राष्ट्रीय इतिहास भारतीय विद्वानों से लिखवाने की योजना प्रस्तुत की। इस योजना में सम्पूर्ण भारत के चोटी के ऐतिहासिक विद्वानों ने सम्मिलित होने की स्वीकृति दी।

अन्य क्षेत्रों में

जयचन्द्र जी निरे ऐतिहासिक और साहित्यिक विद्वान ही नहीं, एक राजनीतिक कर्मी, संगठनकर्ता और विचारवान् नेता भी हैं। १६२० के बाद भारत में राज्यक्रान्ति के जो गुप्त या प्रकट प्रयत्न किये जाते रहे उन के मुख्य सगठनकर्ताओं और सञ्चालकों में से वे थे। अमर शहीद सरदार भगतसिंह सुखदेव आप के शिष्यों में से थे और उन्हें क्रान्ति संगठन के भीतर लाने और सिखाने-पढ़ाने का सारा श्रेय आपको ही है। प्रसिद्ध क्रान्किारी ज्योतिषचन्द्र घोष और शचीन्द्रनाथ सान्याल से आपका घनिष्ट परिचय और सम्बन्ध था। क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध होते हुए भी आप त्रासवादी आन्दोलन के विरोधी थे। आपका कहना था कि सैनिक क्रान्ति से ही देश को आजादी मिल सकती है, और हमें सेनाओं में घुस कर काम करने वाले सैनिक नेताओं की आवश्यकता है। आतंकवादी और त्रासवादी तरीकों से संगठन नष्ट हो जायगा और यही हुआ भी। नेपाल राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष तथा नेपाल में हो रहे विद्रोह के नेता श्री मातृकाप्रसाद कोइराला भी आपके ही एक विद्यार्थी हैं।

जयचन्द्र जी के जीवन के इस पहलू पर टिप्पणी करते हुए स्व० शचीन्द्रनाथ सान्याल ने उनकी तुलना भारतीय क्रान्तिकारी दल में लेनिन से की थी और सक्रिय क्रान्ति आन्दोलन से हट जाने तथा पूर्णतः भारतीय इतिहास के क्षेत्र में लग जाने पर खेद प्रकट किया था। किन्तु ठीक जिन कारणों से रूस में लेनिन को वहां के पुराने क्रान्ति दलों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर अध्ययन के लिए कुछ समय इंगलैंड में जाकर चुपचाप बैठने को बाधित होना पड़ा था, लगभग वही कारण जयचन्द्र जी को भी उस क्षेत्र से खींच कर भारतीय इतिहास के मनन और विश्लेषण की ओर लाने के निमित्त बने। और वे थे अपने देश की परिस्थिति का ठीक-ठीक अध्ययन और निदान करना, जिसके बिना देश में क्रान्ति का सुलझा हुआ वातावरण पैदा ही नहीं किया जा सकता था। यही कारण है कि भारतीय और नैपाली सीमाओं का जितना गहरा ज्ञान आपको है, शायद आज अन्य किसी इतिहासकार को नहीं है।

वरुण की नौका — लेखक श्री पं० प्रियव्रत जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय। इस पुस्तक में वरुण सूक्तों में आये वेदमन्त्रों की विद्वत्तापूर्ण सरल व्याख्या की है। प्रतिपद के अर्थ के साथ मन्त्र के अर्थ को सुबोध और सुगम बनाने के लिए विस्तृत व्याख्या की गई है और अन्त में अपने आत्मा को ही सम्बोधित करके मन्त्र से प्राप्त होने वाली शिक्षा का सार संक्षेप में दिया गया है। पुस्तक के आरम्भ में स्वाध्यायशील लेखक ने वरुण-सम्बन्धी ३५ पृष्ठों की एक गवेषणापूर्ण भूमिका भी दी है।

कर्मफल विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिए यह पुस्तक एक वरदान है। लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में सच्चे सुख का सच्चा उपाय इसमें बताया है। प्रभु कृपा किस पर होती है और कैसे कर्म करके हम प्रभु के प्यारे हो सकते हैं इत्यादि विषय पुस्तक में दार्शनिक गहराइयों के साथ सरल रूप में वर्णित हैं। मूल्य प्रथम भाग ३), द्वितीय भाग ३)। मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

भारत का बौद्धिक पुनरुत्थान और ऋषि दयानन्द

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

एक ऐसी मार्मिक युगसंधि में, जब कि हमारे देश में डेढ़ सौ बरस से टिकी हुई राज्य-संस्था और उस पर आश्रित आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक ढांचे की जड़ें हिल चुकी हैं, किन्तु उनके स्थान में नई संस्थाएँ जम नहीं पा रही हैं, और इस कारण जनता का कष्ट चरम सीमा तक पहुँच रहा है, जब कि हमारी प्रत्येक करनी और प्रत्येक चूक का परिणाम दूरगाम हो सकता है, आप भारत की प्रधान वाणी के उपासकों ने उस वाणी की प्रमुख संस्था की बागडोर थामने की मुझे जो आज्ञा दी है, उसे सिर आँखों पर लेता हूँ।

पन्द्रह बरस की चुनौती

हमारे देश में युगपरिवर्तन की पुकार सन् १६०५ से व्यक्त रूप से उठती रही है। १९४७ में वह युग-परिवर्तन आता दिखाई दिया तो जनता ने जाना उसकी दबी हुई वाणी अपने देश में फिर खुल कर गूंजेगी। किन्तु आज एक बरस हुआ जब जनता के प्रतिनिधि कहलाने वालों ने स्वयं यह निश्चय किया कि भारत के शासन और शिक्षा में भारत की वाणी अभी पन्द्रह बरस तक और शायद उसके बाद भी मुंह में थाम कर रखना होगा। इन निश्चयों के बाद यह प्रकट है कि हमारा अभीष्ट नवयुग अभी नहीं आया, प्रत्युत हमने एक युगसंधि में प्रवेश किया है।

संविधान-सभा का उक्त निश्चय एक सीधी चुनौती है। उस चुनौती का रूप यह है कि भारत की वाणी में नये ज्ञान और नये विचारों वाला वाङ्मय कहाँ है। पर यह चुनौती तो कोई नई नहीं है। जनता के बहुत से सेवक इससे जूझते अपने जीवन दे चुके हैं। शंकर बालकृष्ण दीक्षित, जगदीशचन्द्र वसु, प्रफुल्लचन्द्र राय, गौरीशंकर ओझा, हरप्रसाद शास्त्री, सुधाकर द्विवेदी, काशीप्रसाद जायसवाल आदि कितने ही नामों का स्मरण इस प्रसंग में हो आता है। और मैं अपने जीवन के पिछले रास्ते की ओर गरदन घुमा कर देखता हूँ तो याद आता है कि इन्हीं आचार्यों की प्रेरणा और कृपा से मेरा जीवन भी आरम्भ से ही इस चुनौती का सामना करने के लिए निवेदित रहा है। आप हिन्दी जगत् के बौद्धिक प्रतिनिधियों ने उन अग्रणियों के इस अनुयायी को आज जो अपनी पांत के आगे खड़ा किया है, इससे प्रकट है कि आप परिस्थिति को खूब समझ रहे हैं और डट कर मोर्चा लेने को कटिबद्ध हैं। आपकी यह स्थिति की पहचान मुझे आपको आगे ले चलने का बल देगी और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इस मोर्चे को हम जीत कर छोड़ेंगे।

युरोप की चुनौती, भारत की मोहनिद्रा

हमारे देश का अंग्रेजी में सोचने वाला वकील-अमला-वर्ग जो चुनौती हमें आज दे रहा है, वह वास्तव में साढ़े चार सौ बरस पुरानी है, और वह केवल हमारी भाषाओं के लिए नहीं प्रत्युत हमारे राष्ट्र के समूचे जीवन के लिए रही है।

१५०६ ई० की दीव की लड़ाई के बाद पुर्तगालियों ने हमारे समुद्र पर एकाधिपत्य कर लिया; उसके एक शताब्दी बाद ओलन्देज़ों (डचों) और अंग्रेज़ों ने आकर हमारे समुद्र में चाँचियागीरी शुरू की—हम डेढ़ शताब्दी तक पिटते लुटते और अपनी स्त्रियों पर बलात्कार होता देखते रहे, पर उसे रोक न सके। हमारी उस अशक्तता की जड़ में केवल हमारा जलयुद्ध विद्या में पिछड़ जाना था। उस कमी की ओर हमारा ध्यान जाता तो हम उसे आठ-दस बरस में ही पूरा कर सकते थे। पर हमारा ध्यान न गया। अठारहवीं सदी तक युरोप वाले स्थल-युद्ध की विद्या में भी हम से आगे निकल गये। एक फ्रांसीसी ने तब यह भी पहचान लिया कि हमारे ज्ञान-चक्षु जिस प्रकार मुंदे हैं उसी प्रकार हमारी जनता की राष्ट्रीय भावनाएं भी सुप्त हैं, और कि उस दशा में भारत से ही भाड़ैत सेना खड़ी कर उसे नई युद्धविद्या की कुछ बाहरी बातें सिखा कर

अपना उपकरण बनाया जा सकता और उसके द्वारा भारत को जीता जा सकता है। १७४० से १७५२ तक इस नये उपकरण की हाथों में लिये हुई युरोपी शक्ति से भारत के नेताओं ने पहली पछाड़ें खाईं। वे उस शक्ति को देख कर स्तब्ध रह गये, उन्होंने यह नहीं देखा कि उसकी तह में केवल दो वस्तुएं थीं—एक नई युद्धविद्या और दूसरे हमारी ही जनता की जहालत से लाभ उठाना।

जागृति के अग्रदूत

उस समय के भारत के पेशवा (प्रमुख नेता) बालाजीराव ने अपनी राजनीतिक परिस्थिति को देखने समझने में भी वैसी ही जड़ता दिखाई। उसकी मूर्खता की बदौलत सन् १७५६ में जब कोंकण के विजयदुर्ग से मराठा झंडा उतार कर क्लाइव और वाटसन ने अंग्रेजी झंडा फहराया, तब वहां दो मेधावी मराठे—हरि दामोदर और उसका पुत्र रघुनाथ हरि—उपस्थित थे, जो घटनाओं को अधिक सुलझी दृष्टि से देख रहे थे। वे पहले भारतीय थे जिन्होंने इस बात को पहचाना कि युरोपी लोग हम से ज्ञान की दौड़ में जो कुछ आगे निकल गये हैं, उसमें उन्हें पकड़े बिना हम उनका मुकाबला नहीं कर सकते। हरि दामोदर को उसी साल झांसी भेजा गया। वहां रघुनाथ हरि ने नये युरोपी विज्ञान को सीखने का भारत में पहला प्रयत्न किया। उसने एक पुस्तकालय और परीक्षणालय भी स्थापित किया, जो १८५८ में अंग्रेजों की बर्बरता से ध्वस्त होने तक बना रहा।

इस बीच भाड़ैत भारतीय सेना के उपकरण से अंग्रेज़ों ने अपना साम्राज्य खड़ा कर लिया। बंगाल और महाराष्ट्र पर उनकी मार पड़ने पर वहां राममोहन राय और गोपाल हरि देशमुख जैसे विचारनेता उठे जिन्होंने उस तथ्य को फिर देखा और कहा जिसे रघुनाथ हरि ने उनसे आधी पौनी शताब्दी पहले देख लिया था। राममोहन के सामने यह बात भी स्पष्ट थी कि नया ज्ञान भारतीयों तक उनकी अपनी देसी भाषाओं में ही पहुँच सकता है और पहुँचना चाहिए। गोपाल हरि ने तो अपने राजनीतिक और सामाजिक विचार महाराष्ट्र जनता को उसकी भाषा में ही दिये। इसके बाद विशेष कर महाराष्ट्र में, जहां के लोगों में अंग्रेज़ी राज से पहले भारत में सब से अधिक राजनीतिक चैतन्य था, अनेक विद्वानों ने युरोप के नये ज्ञान का तत्त्व जनता की भाषा में देना आरम्भ किया। वह प्रयत्न[1] बड़ा होनहार था, किन्तु अंग्रेज़ों को भारत की प्रतिभा का उस दिशा में जाना अभीष्ट न था। उन्होंने अपनी युनिवर्सिटियां स्थापित कर, उन युनिवर्सिटियों में अंग्रेज़ी साहित्य और कानून की शिक्षा को प्रमुख स्थान दे कर उनके विद्यार्थियों में अपने देश की परिस्थिति भाषा और संस्कृति से विरक्ति पैदा कर तथा सब ऊंचे नीचे पद मिलना उन युनिवर्सिटियों की डिग्रियों पर निर्भर कर भारत की जागती हुई प्रतिभा को फिर बांझपन की एक नई दिशा में फेर दिया। भारत में अंग्रेज़ी का बोलबाला हो जाने पर भारतीय भाषाओं में सहज ही पैदा हुई वैज्ञानिक वाङ्मय की वह पहली धारा छीज गई। इस ऐतिहासिक सचाई को आज अच्छी तरह हृदयंगत कर लेना आवश्यक है। इसके बाद उस धारा को यदि बहती रक्खा तो उन लोगों ने जो अंग्रेज़ों के पैदा किये वातावरण से लोहा ले कर भी उसे जीती रखते रहे।

राममोहन और गोपाल हरि ने भारत की कमज़ोरी के कारणों पर विचार किया था, तो भी उनका ध्यान इस मोटे तथ्य की ओर न गया था कि भारत के गले

---

१. महाराष्ट्र के उस पहले प्रयत्न का वृत्तान्त यशवन्तराव दाते ने अपने लेख 'शास्त्रीय वाङ्मयाचा आढावा' में दिया है; बड़ोदा मराठी साहित्य सम्मेलन १९२१ उनके पास इस युग के मराठी वैज्ञानिक ग्रन्थों का अच्छा संग्रह भी है।

में गुलामी की जंजीर उसकी अपनी भाड़ैत सेना द्वारा ही डाली गई है। गोपाल हरि के समवयस्क नाना साहब और अज़ीमुल्ला ने इस तथ्य को पहचान लिया, और उस पहचान के ज़ोर पर ही भारत का पहला स्वतन्त्र-युद्ध लड़ा। वह युद्ध अन्त में विफल हुआ इस कारण कि उन्होंने भारत की हार के इस दूसरे मुख्य कारण को न पहचाना था कि युरोप के लोग युद्धविद्या में भारतीयों से आगे निकल चुके हैं और कि उनका मुकाबला करने के लिए भारतीयों को उस विद्या में पैठ कर उसके सिद्धान्तों के अनुसार अपनी सेना का संचालन करना चाहिए। क्या उस युद्ध के बाद भारतीयों का ध्यान अपनी विफलता के इस कारण की ओर गया? और क्या उन्होंने इसे दूर करने का प्रयत्न किया? यदि नहीं तो कहना होगा कि भारतीय मस्तिष्क में कोई स्थायी विकार है, जिसके कारण वह अपनी स्थूल ऐतिहासिक परिस्थिति को भी नहीं देखता। अंग्रेज़ों ने यह वाद चलाया कि भारतीय मस्तिष्क दार्शनिक और पारलौकिक चिन्ता में ही ग्रस्त रहता है, अपनी आंख के सामने की ठोस लौकिक वस्तु को भी नहीं देखता, अतः भारतीयों के भाग में सदा ठोकरें और मार खाना ही है। और चूंकि भारतीय मस्तिष्क एशियाई मस्तिष्क का प्रतिनिधि था, अतः अठारह सौ सत्तरों में युरोप में यह विश्वास फैल गया कि समूचा विश्व युरोप की प्रभुता में आ जाने को है।

क्रान्तिवाद और बौद्धिक पुनरुत्थान

पर भारत चाहे कई शताब्दियों से मोहनिद्रा में पड़ा था तो भी उसकी वह निद्रा त्रैकालिक या सनातन नहीं थी। १८५७-५६ की विफलता के तुरन्त बाद भारत के श्रेष्ठ-मस्तिष्क ने उसके कारणों को देखा समझा, और उन्हें दूर करने का जो प्रयत्न आरम्भ किया उसी से भारत में पुनरुत्थान का आरम्भ हुआ और क्रान्ति की धारा जनमी। दयानन्द सरस्वती १८५७ के युग में भारत के श्रेष्ठ मन के प्रतिनिधि थे। हाल की खोज से प्रकट हुआ है कि १८५७-५६ की स्वाधीनता चेष्टा से भी उनका गहरा संपर्क था। जिस व्यक्ति का तरुण मन शिवलिंग पर चूहे की लीला देखकर ही जड़ तक हिल गया था, उसने भी १८५७-५६ की महान् घटनाओं के बीच विचरते हुए उनके विषय में यदि सोचा न होता तो हमें यह मानना ही पड़ता कि भारतीय मस्तिष्क में कोई त्रैकालिक विकार है। किन्तु दयानन्द और उनके शिष्यों के कार्य से प्रकट है कि उन्होंने अपनी परिस्थिति को भली भांति देखा-समझा और उसे समझ कर जो कुछ करना चाहिए था वही किया। दयानन्द ने धार्मिक-सामाजिक सुधार की लहर चलाई और उसके लिए आर्यसमाज की स्थापना की सो तो सुविदित है। किन्तु दयानन्द भारत का बौद्धिक पुनरुद्धार भी चाहते थे, भारत के पुराने ज्ञान के साथ आधुनिक विज्ञान का समन्वय करना होगा यह विचार भी स्पष्ट रूप से उनके सामने था। उनकी उस प्रेरणा को मूर्त रूप देने की नींव उनके शिष्य मुन्शीराम या श्रद्धानन्द ने डाली, जिससे राष्ट्रीय शिक्षा की लहर चली। दयानन्द ने यह भी पहचाना था कि अंग्रेज जहां भारतीय मस्तिष्क को अंग्रेजी साहित्य और कानून में उलझाये रखना चाहेंगे, वहां जर्मनी की ऐतिहासिक स्थिति ऐसी है कि वह विज्ञान और शिल्प का तत्त्व खुल कर भारत को दे सकेगा। भारत को सामरिक शिक्षा की आवश्यकता थी। पर कोई भी राष्ट्र अपनी सामरिक शिक्षा की संस्थाओं में विशेष दशाओं के बिना विदेशी युवकों को घुसने नहीं देता। उन्नीसवीं सदी की चौथी चौथाई में जर्मनी एक नई शक्ति के रूप में उठ रहा था, उसके इङ्गलैंड का प्रतिद्वंद्वी बन खड़े होने के लक्षण थे। उस दशा में वह भारतीय युवकों को अभीष्ट शिक्षा दे सकता था, यदि वे युवक सुसंघठित भारतीय क्रान्ति दल की ओर से भेजे जांय। श्यामजी कृष्ण वर्मा और कृष्णसिंह बारहट जैसे दयानन्द के शिष्यों की कार्यावली पर ध्यान देने से स्पष्ट दिखाई देता है कि

दयानन्द के सामने यह समूचा चित्र था। उन लोगों ने गहरे सोये हुए भारत में जाग्रति की चिनगारियां सुलगा कर और उन चिनगारियों को बटोर कर पहले एक क्रान्ति-संघटन की नींव डाली, और जैसे ही वह संघटन खड़ा हुआ कि वे विदेशों से संपर्क कर भारत के लिए शक्तिदायी ज्ञान पाने के उपाय करने लगे। इसमें उनका दल सफल हुआ ही चाहता था कि पहला विश्वयुद्ध आ पहुँचा।

उक्त विवेचन से यह भी प्रकट है कि राष्ट्रीय शिक्षा की लहर तथा क्रान्ति संघटन की लहर एक ही पुनरुत्थान चेष्टा के दो पहलू थे। उनकी एकप्राणता को ये पहले क्रान्तिकारी और शिक्षानेता हर दम अनुभव करते थे। श्याम जी कृष्ण वर्मा जब उदयपुर के दीवान थे तब गौरीशंकर ओझा ने उनके सचिव रूप में काम करते हुए बराबर उनसे प्रेरणा पाई। काशीप्रसाद जायसवाल जब इङ्गलैंड पढ़ने गये तब श्याम जी और उनके साथी सरदारसिंह राणा, हरदयाल और विनायक सावरकर से ही उन्हें वह प्रेरणा मिली जिससे जीवन भर वे भारतीय इतिहास की साधना में लगे रहे। अन्तिम समय तक जायसवाल की इन लोगों से घनिष्ठता रही। मेघनाद साहा जैसे वैज्ञानिक को अपने जीवन की प्रेरणा नौजवानी में ढाका अनुशीलन समिति के सदस्य होने से ही प्राप्त हुई।

दयानन्द ने विज्ञान की शिक्षा के लिए जर्मनी से संपर्क करने का जब यत्न किया तभी बंगाल में महेन्द्रलाल सरकार ने भारतीय-विज्ञान संस्था की नींव डाली। दयानन्द के समकालीन बंकिमचन्द्र चैटर्जी के लेखों में भी क्रान्ति की वैसी ही विचारधारा है। इन दोनों ने पहलेपहल भारत के आदर्श पूर्ण स्वराज्य की घोषणा १८८०ओं में की। पीछे बंगाल में विवेकानन्द और पञ्जाब में रामतीर्थ ने भी उस धारा को पुष्ट किया। भारत की भाषाओं को सींचने की कैसी उमंगें और उन भाषाओं के क्षेत्रों को बहा कर उजाड़ देने की अंग्रेजों की प्रवृत्ति के विरुद्ध वैसी उग्र भावनाएं वह धारा लिये हुए थी सो बंकिमचन्द्र के लेखों और विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के पहले निबन्ध से प्रकट है।

समूचे भारत में एकसूत्रता रखने को भारत की एक राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि थोड़े प्रयत्न से हो सकती है यह भी इस धारा के चिन्तकों ने देख लिया था। दयानन्द की मातृभाषा गुजराती थी और शिक्षा-दीक्षा सब संस्कृत में हुई थी। उन्होंने पहले संस्कृत द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों को अपना सन्देश देना चाहा। किन्तु अपनी बंगाल की यात्रा में भूदेव मुखर्जी और केशवचन्द्र सेन जैसे विचार-नेताओं के संपर्क में आने पर उन्होंने शीघ्र समझ लिया कि इस युग में समूचे भारत की जनता को अपनी एकता का उद्बोधन कराने वाली एक वाणी हिन्दी ही हो सकती है। जिसे आज हम हिन्दी कहते हैं वह ऐतिहासिक कारणों से भारत की राष्ट्रभाषा १३वीं-१४वीं शताब्दी से थी ही। पर भारतीय पुनरुत्थान के प्रसंग में इस तथ्य को पहलेपहल पहचाना बंगाली विचार नेताओं ने।

१८९०ओं में इस धारा से सींचे क्षेत्रों में वैज्ञानिक वाङ्मय के पहले मौलिक फल आने लगे। भारतीय ज्योतिष का पहला वैज्ञानिक इतिहास शंकर दीक्षित ने मराठी में प्रकाशित किया; जगदीशचन्द्र वसु और प्रफुल्लचन्द्र राय की कृतियां बंगला में प्रकट हुईं; भारत की प्राचीन लिपियों का पहला शृंखलाबद्ध इतिहास गौरीशंकर ओझा ने हिन्दी में निकाला, और आधुनिक खोज के समन्वय द्वारा भारत का पहला शृंखलाबद्ध इतिहास हरप्रसाद शास्त्री ने बँगला में पेश किया। इस परम्परा में नवम्बर १८९४ में जब जगदीशचन्द्र ने विश्व में पहलेपहल बिना तार के बिजली की तरंग चला दिखाई, तब दुनिया ने देख लिया कि लौकिक विषयों में भारत की प्रतिभा कितनी गहरी पैठ सकती और कितनी ऊँची उठ सकती है। जगदीशचन्द्र ने अपने उस महान् आविष्कार का विवरण भी पहले बँगला में

दिवंगतं पटेलमहोदयं प्रति श्रद्धाञ्जलिः

[१]

देशोद्गतेः कर्मसु संप्रवृत्तं
स्वातन्त्र्य-संरक्षण दत्तचित्तम् ।
लोकोपकारेऽर्पित चित्तवित्तं
मान्यं पटेलं प्रणताः समेस्मः ॥

[२]

राष्ट्रीय नौका शुभकर्णधारं
मेधाविनं भारतमातृहारम् ।
द्रोहिभ्य आभीषण वाक्प्रहारं
मान्यं पटेलं प्रणताः समेस्मः ॥

[३]

सुस्पष्टवक्तारमृजुं सुधीरं
वीराग्रगण्यं सुगुणोपपन्नम् ।
अतुल्यदक्षं किल राजनीतौ
मान्यं पटेलं प्रणता वयं स्मः ॥

[४]

क्व लप्स्यते तादृशनीतिवेत्ता
क्व लप्स्यते दीनदयालु चेताः ।
क्व लप्स्यते वीर सुधीर नेता
इत्येव चिन्ताकुलमानसाः स्मः ॥

[५]

ददातु सोमः सुमतिं समेभ्यः
ददातु देवः सुबलं जनेभ्यः ।
सन्ने तृ मृत्योरविषह्यहानिं
सोढुं तथा तत्कृत कार्यपूर्त्यै ॥

धर्मदेवो विद्यावाचस्पतिः ।

ही दिया । यदि भारत की राजशक्ति भारत के अपने हाथों में होती तो इस धारा को नियमित और स्थायी करने के लिए उसने उसी दिन से सब उपाय कर दिये होते । पर भारत के अंग्रेज़ शासकों का स्पष्ट स्वार्थ इसमें था कि इस धारा के स्रोतों को जैसे भी बने सुखा दिया जाय ।

राष्ट्रीय स्वाधीनतावादी और अधिकारप्रार्थी

१८५७-५९ की क्रान्तिचेष्टा को कुचल देने के बाद जब १८८०ओं में उन्होंने फिर भारत में स्वदेशी राज्य और स्वदेशी भाषा की यह नई पुकार उठती सुनी, तब उन्हें डर हुआ कि इसका पर्यवसान १८५७ के से विस्फोट में हो सकता है । इस खतरे को दूर करने के लिए उन्होंने निश्चय किया कि भारत के असन्तोष को प्रकट करने का नेतृत्व उस अंग्रेज़ी-दीक्षित अंग्रेजीभाषी और अंग्रेजों पर निर्भर वर्ग के हाथ दिया जाय जिसकी मांगें स्वयं क्षुद्र होंगी और जिसकी भाषा को अंग्रेज बखूबी समझ सकेंगे । इस नीति के अनुसार १८८५ में गवर्नर-जनरल डफरिन की सलाह से अंग्रेज काम-दार ह्यू म ने, जो सन् ५७ में इटावे का कलक्टर रहते हुए बुर्का पहन कर बच निकला था, इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना कराई । ये दो धारायें देश में साथ साथ चलती रहीं और इस शताब्दी के शुरू में जनता ने इन्हें 'गरम' और 'नरम' नाम दिये । दोनों की आन्तरिक प्रवृत्तियों को देखते हुए इन्हें क्रमशः राष्ट्रीय स्वाधीनतावादी और अधिकारप्रार्थी कहना चाहिए । नरम या अधिकारप्रार्थी पक्ष अंग्रेजी साम्राज्य को 'विधाता की देन मानता और उसके बाहर कभी जाने की कल्पना भी न करता था । गरम या राष्ट्रीय स्वाधीनतावादी पक्ष का कहना था कि 'हमें पूर्ण स्वाधीनता चाहिए''''''फिरंगी की कृपा से मिले अधि-कारों पर हम थूकेंगे; हम अपनी मुक्ति स्वयं पायेंगे ।'

[हिन्दी साहित्य सम्मेलन में दिये गये भाषण का अंश]

पुस्तक-परिचय

ब्रह्म-विद्या—लेखक, श्री स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती। प्रकाशक--विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधन संस्थान, साधु-आश्रम, होशयारपुर। पृष्ठ संख्या ४६+२५०, आकार २०×२६=८, मूल्य ६) । यह पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है—साध, साधक तथा साधन। पुस्तक के लेखक अनुभवी, अभ्यासी तथा विद्वान् हैं। उन्होंने अत्यन्त सुन्दर तथा उपयोगी ढंग से इन विषयों का प्रतिपादन किया है। वर्तमान भौतिक-वाद प्रधान युग में आध्यात्मिकता की रुचि बहुत कम हो गई है। फिर भी मानसिक शान्ति चाहने वाले जिज्ञासु भी, चाहे अल्प संख्या में ही सही, परन्तु हैं अवश्य। ऐसे जिज्ञासुओं के लिए इस पुस्तक में बहुत उपयोगी सामग्री एकत्रित है। प्रथम खण्ड में इस विषय का विवेचन है कि प्राणी मात्र सुख चाहता है और ऐसा सुख चाहता है जो पूर्ण हो उस में कमी न हो तथा जो नित्य रहने वाला हो। ऐसे सुख की आशा भौतिक पदार्थों से जब पूरी नहीं हो पाती तभी मनुष्य अध्यातम पथ क ओर अग्रसर होता है। द्वितीय खण्ड में साधक में जो योग्यता होनी चाहिए उस का शास्त्रीय प्रतिपादन है। तृतीय खण्ड में अध्यात्म पथ के सम्पूर्ण प्रचलित साधनों का विवेचन है। लेखक महोदय ने अत्यन्त योग्यतापूर्वक यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि इस समय साधकों को क्यों सफलता प्राप्त नहीं होती। उनका कथन है कि साधकों में एकांगिता है। कोई साधक योग को, कोई वैराग्य को, कोई भक्ति को, कोई शास्त्र पाठ को और कोई किसी अन्य हठयोगादि प्रक्रियाओं को ले लेता है। तथा दूसरे आवश्यक अंगों की अवहेलना करता है। जिस से साधन में पूर्णता नहीं आती। ये सब अध्यात्म-मार्ग के साधन एक दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं। साधक को सावधान करने के लिए ये प्रकरण बहुत उपयोगी हैं। इस से साधक को यह भली प्रकार ज्ञात हो सकता है कि किस साधन का क्या महत्त्व है और उस की क्या सीमाएं हैं। यह प्रकरण इस समय में जब कि सब साधन अलग अलग पड़े हुए हैं उन में सामञ्जस्य लाने के लिए बहुत उपयोगी है। इस से अध्यात्म पथ के जिज्ञासुओं का बहुत कल्याण होने की आशा है। साधन चतुष्टय, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि बहिरंग तथा अन्तरंग साधनों की शास्त्रीय तथा क्रियात्मक व्याख्या की गयी है। सभी विषयों का प्रतिपादन शास्त्र प्रमाण उद्धृत करते हुए तथा युक्ति पूर्वक किया गया है। आशा है मानसिक शान्ति चाहने वाले सज्जनों को बहुत सहायता मिलेगी। पुस्तक की भाषा विषय के अनुरूप गम्भीर तथा प्राञ्जल है। पुस्तक की छपाई सुन्दर, अक्षर सुपाठ्य, आकार प्रकार आकर्षक है।

भारत का संविधान—लेखक प्रोफेसर रघुराज एम० ए०। पृष्ठ १६०, मूल्य १॥) । इस पुस्तक के प्रणेता राजनीति और अर्थशास्त्र के अच्छे विद्वान् और हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ लेखक हैं। इस समय आप कलकत्ता विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में कार्य कर रहे हैं। आप राजनीति और अर्थशास्त्र पर अनेक उत्तम ग्रन्थ लिख चुके हैं। उक्त पुस्तक में नवविधान के प्रत्येक पहलू पर अधिकारपूर्वक विचार किया गया है। १८६१ से लगा कर १९१९–३५ के गवर्मेन्ट आॅफ इन्डिया एक्ट, १६ जून १९४६ की कैबिनट मिशनयोजना, इन्डियन इन्डिपेंडेस एक्ट तक एक विहंगम दृष्टि डालने के पश्चात्, नव संविधान की विशेषता, राष्ट्रपति, मन्त्रि-परिषद् (कैबिनट), संसद् (पार्लियामेन्ट), उच्चतमन्यायालय (सुप्रीम कोर्ट), राज्य कार्यपालिका (स्टेट एक्जीक्यूटिव), उच्चन्यायालय और अधीन न्यायालय, विधायिनी शक्तियों का विभाजन (डिस्ट्रीब्यूशन आफ लैजिस्लेटिव पावर्स), प्रशासन सम्बन्ध, केन्द्र प्रशासित प्रदेश, लोकसेवा-आयोग, (पब्लिक सर्विस कमीशन), आपात उपबन्ध (इमरजैन्सी प्राॅवीजन्स) आदि समस्त आवश्यक विषयों का वर्णन, समालोचना तथा संसार

[शेष पृष्ठ ३३ पर]

गुरुकुल समाचार

ऋतु

मकर-संक्रांति चली गई, फिर भी शीत की प्रबलता है। प्रातः सायं अच्छी ठंड पड़ती है। मकर संक्रांति से पूर्व ही शीतकालीन वर्षा हो जाने से जाड़ा मानो नए जोर से पड़ने लगा है। इस बार यह वर्षा ठीक समय पर पड़ जाने से खेतियों को बहुत लाभ हुआ है। गत तीन वर्षों से यह वर्षा पिछड़ जाया करती थी। लोहड़ी और मकर-संक्रान्ति के ऋतु पर्व कुलवासियों ने आनंद से मनाए। लोहड़ी के दिन तो सवेरे बारह बजे तक वर्षा होती रहने के कारण रग में भंग प्रतीत होता था। पर बाद को आकाश खुल गया और ब्रह्मचारियों ने उत्साह-पूर्वक काष्ठ एकत्र कर रात को प्रेम से दो स्थानों पर लोहड़ी प्रदीप्त की और रात को देर तक आमोद प्रमोद और क्रीड़ाएं होती रहीं। कुलवासियों का स्वास्थ्य बढ़िया है। रोगीगृह में आने वाले छात्रों की संख्या मामूली सी है।

भाषण-प्रतियोगिता में विजय

मेरठ कॉलेज के वार्षिक उत्सव पर अन्तः कॉलेज हिन्दी वादविवाद प्रतियोगिता आयोजित हुई थी। वाद-विवाद का विषय रक्खा गया था "निःशस्त्रीकरण से ही विश्वशान्ति हो सकती है"। इस स्पर्द्धा में गुरुकुल महाविद्यालय के तृतीय वर्ष के ब्र० श्रुतिकांत और ब्र० नारायणदत्त ने भाग लिया था। इस वाक्-संघर्ष में गुरुकुल की शानदार विजय हुई। छात्र विजय-चिन्ह (चांदी की ढाल) जीत लाए हैं। इस के अतिरिक्त सर्वोत्तम वक्ताओं के प्रथम दो वैयक्तिक पुरस्कार भी क्रमशः ब्र० श्रुतिकान्त और ब्र० नारायणदत्त को ग्रन्थों के रूप में प्राप्त हुए हैं। दोनों ही छात्रों के भाषण बहुत प्रशंसनीय रहे। ब्र० श्रुतिकांत के भाषण की भाषा और बोलने की अदा ने जहां बहुत साधुवाद पाये वहां ब्र० नारायणदत्त के तर्कों और विषय प्रतिपादन के प्रकार ने श्रोताओं को प्रभावित किया। मेरठ कालेज के गुरुजनों ने तो विशेष रूप से इन दोनों छात्रों को आशीर्वाद और साधुवाद दिए हैं। विजयी छात्रों को बधाई है।

श्री श्रद्धानन्द बलिदान-पर्व

सदा की भांति इस पुण्य पर्व का प्रारम्भ २३ दिसम्बर से हुआ। प्रथम दिवस समस्त कुलवासी श्रद्धानन्द द्वार पर एकत्र हो कर गुरुकुल के दोनों वाद्य दलों के साथ शोभा-यात्रा [जलूस] के रूप में व्यवस्थित होकर, मार्ग में कुलमाता और कुलपिता के यशोगीत गाते हुए कुलपताका की छाया में पहुँचे। वहां श्री आचार्य प्रियव्रत जी ने कुलपताका फहराई। पताका गीत गाया गया और फिर वेद मन्दिर में स्मृति-सभा हुई। जिस में छात्रों और गुरुजनों ने श्रद्धेय कुलपिता के तेजस्वी जीवन और कार्यों पर विवेचना करते हुए श्रद्धा के फूल चढ़ाए।

इस पर्व के उपलक्ष में इस वार एक वॉलीवाल टूर्नामेंट किया गया था। जिसमें अन्त में गुरुकुल का प्रथम दल विजयी हुआ। मुकाबले में रुड़की का प्रताप क्रीड़ा-दल [क्लब] था। प्रतापदल की खेल भी अच्छी सराहनीय रही। श्रद्धानन्द चल विजयोपहार गु० कु० दल के नायक ब्र० कर्मवीर को दिया गया। सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी का पुरस्कार ब्रह्मचारी रवीन्द्र तृतीय वर्ष को मिला। वाद्यों के निर्घोष के साथ गुरुकुलाचार्य श्री प्रियव्रत जी ने पुरस्कार वितरण विधि को संपन्न किया।

संगीत सम्मेलन

विगत ६ और ७ जनवरी को गुरुकुल में शास्त्रीय संगीत का एक सुन्दर आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में पूना के सुप्रसिद्ध संगीत-वेत्ता श्री विनायकराव पटवर्धन, श्री दत्तात्रेय विष्णु पलुस्कर जी तथा दिल्ली के गान्धर्व महाविद्यालय के सञ्चालक श्री विनयचन्द्र

अपनी कलाकार-मंडली सहित पधारे थे। दो दिन तक शास्त्रीय संगीत की मधुर मन्दाकिनी प्रवाहित होती रही। श्री पटवर्धन जी ने जयजयवंती और बागेश्वरी का मिश्र राग, भैरवी और आभोगी-कानड़ा प्रस्तुत किया। साथ ही आपने कर्नाटकी संगीत और उत्तर भारतीय संगीत के प्रभेद और विशेषताओं का उदाहरणपूर्वक विवेचन भी किया। पलुस्कर जी ने शंकरा राग और भैरवी से श्रोताओं को आनन्दित किया। श्री विनयचन्द्र जी के जलतरंग की बड़ी बहार रही। श्री बलवन्तराय [प्रभात संगीत-विद्यालय मुजफ्फरनगर के सञ्चालक] श्री महादेव देशपांडे तथा श्री भास्करराव वाईकर आदि संगीतज्ञों ने अपनी अपनी कलापूर्ण गीतियों से रसिकों को खूब छकाया। सितार-प्रवीण श्री अनिलचन्द्र धर का सितार वादन और श्री चन्द्रप्रकाश जी का बांसुरी-वादन लाजवाब रहा। इन सब कलाकारों के संग तबला बजाने में श्री फकीरचन्द जी ने भी बड़ा कौशल प्रदर्शित किया। कलाकार स्वयं ही उनके तबला-वादन की तारीफ कर रहे थे। गुरुकुल के छात्रों ने वृन्दवादन [समूह वाद्य] के रूप में तथा ब्र० शीलकान्त ने अपने गान द्वारा गुरुकुल का प्रतिनिधित्व किया। आयोजन बड़ी सुन्दरता और सुव्यवस्था के साथ संपन्न हुआ। इस कलामय अनुष्ठान के लिए बड़े प्रेम और उत्साह के साथ तैयारी में जुटे रहने वाले छात्रों में ब्र० कर्मवीर, ब्र० भक्तप्रिय, ब्र० शीलकांत और ब्र० नरपति साधुवाद के पात्र हैं।

विशेष अतिथि

संगीताचार्य विनायकराव जी पटवर्धन के शिष्य और सूपा गुरुकुल के संगीत-शिक्षक श्री भास्करराव जी वाईकर कुछ काल तक गुरुकुल में रहे। आपकी उपस्थिति से महाविद्यालय विभाग के कई छात्रों ने संगीत और वादन कला में अच्छा लाभ उठाया। आप लगन और प्रेम के साथ शास्त्रीय संगीत और वाद्यों का परिचय छात्रों को देते रहे। उनकी ही प्रेरणा और प्रयत्न से गुरुकुल के छात्र संगीत सम्मेलन में वृन्दवादन का कार्य प्रस्तुत कर सके हैं। उनकी इस सहज कृपा और उदारता के लिए हम सब कृतज्ञ हैं।

वैज्ञानिक प्रदर्शनी

आयुर्वेद कालेज के ऊपर के तल्ले पर विद्यमान गुरुकुल का सामान्य संग्रहालय गत वर्ष से वैज्ञानिक संग्रहालय के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है। उसमें विशेष रूप से वनस्पतिशास्त्र, प्राणी-विज्ञान, जीव-विज्ञान, रसायनशास्त्र आदि से सम्बद्ध वस्तुएं रखी जाती हैं। गत वर्षों में इस प्रदर्शनी में विविध सर्पों का अच्छा संग्रह किया गया था। इस वर्ष गुरुकुल के वनस्पतिशास्त्र और जीव-विज्ञान [बायोलोजी] के उपाध्याय श्री चम्पतस्वरूप जी के पुरुषार्थ से विविध कीड़ों तथा पतंगों का बहुत बढ़िया संग्रह बन सका है। इस प्रदेश में पाए जाने वाले कोई पांच सौ प्रकार के कीट और पतंगे व्यवस्थित वर्गीकरण पूर्वक पांच मंजूषाओं में सजाकर रखे गए हैं। वन्य-पशुओं के अस्थिपंजरों को एकत्र करने का भी प्रयत्न हो रहा है।

शोक-वार्ता

खेद का विषय है कि गुरुकुल के योग्य स्नातक श्री रामेश्वरप्रसाद बिसवां निवासी (जिला सीतापुर) का गत २० दिसम्बर १९५० को देहावसान हो गया है। आप ने गुरुकुल के आयुर्वेद महाविद्यालय से सम्वत् १९८६ वि० में आयुर्वेदालंकार की पदवी पाई थी। आप बड़े विनोद शील स्वभाव के थे। आपको व्यायाम का बड़ा शौक था। कुलवासी उनकी दिवंगत आत्मा की सद्गति के लिए प्रार्थना करते हैं।

आवश्यकता

जबलपुर में कार्य करने के लिए एक ऐसे

आयुर्वेदालंकार स्नातक की आवश्यकता है जो आर्य समाज के प्रचार कार्य में भी अच्छा सहयोग दे सकें। पत्र-व्यवहार का पता—ब्रह्मानन्द आयुर्वेदालंकार, पटियाला आयुर्वेद फार्मेसी, जबलपुर।

स्वास्थ्य समाचार

श्रेणी	नाम रोगी ब्र०	नाम रोग	कितने दिन
१३	मदनलाल	चोट	४
१३	नरेश	विषम ज्वर	८
१३	रवीन्द्र	”	७
१३	शिवकुमार	हर्निया	२०
१३	विश्वदेव	चोट	८
१२	विश्वनाथ	प्रतिश्याय ज्वर	३
१२	रामचन्द्र	”	३
११	ओम्प्रकाश भरतपुर	”	४
७	रणजीत रुड़की	ज्वर	५
५	विनोद	”	२
४	हर्षवर्धन	प्रतिश्याय ज्वर	३
४	राजेन्द्र रुड़की	खुजली	७
३	श्यामसुन्दर	चोट	६
३	सन्तोषपाल	मोच	५
४	योगीराज	”	३
२	प्रेमप्रकाश	ज्वर कास	४
४	विजय कुमार	मम्स	७
३	धीरेन्द्र	ज्वर	४
१३	जीवन प्रकाश	ज्वर व चोट	७
५	शम्भूनाथ	ज्वर	६

उपरोक्त ब्रह्मचारी गत मास रुग्ण हुए थे, अब सब स्वस्थ हैं। ब्र० शिवकुमार १३श का हार्निया, ब्र० जितेन्द्र का टौन्सिल्स का ऑपरेशन सफलता पूर्वक हो गया है। इन दिनों सर्दी अच्छी पड़ रही है।

[पृष्ठ ३० का शेष]

के अन्य संविधानों से उन की तुलना, पुस्तक की विशेषतायें हैं। विधान में प्रयुक्त उन शब्दों, जिन से कि पाठक अभी पूरी तरह परिचित नहीं हैं, उन के अङ्ग्रेजी और सरल हिन्दी पर्य्याय भी कोष्ठक में दिए गए हैं। विधान जैसे गूढ़ विषय को लेखक ने खूब रोचक और सरल बना दिया है। भारतीय भाषाओं में अभी तक ऐसी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है जिस में प्रामाणिक और संक्षिप्त रूप से भारत के नव विधान की इतनी सुन्दर विवेचना हो। हमें आशा है कि सामान्य पाठकों तथा विद्यार्थियों में प्रस्तुत पुस्तक बहुत प्रिय होगी। प्रकाशक—एच० चटर्जी ऐण्ड कं० लिमिटेड, १६, श्यामाचरण दे स्ट्रीट, कलकत्ता १२।

वैदिक दैनन्दिनी (डायरी)—सन् १९५१ की यह डायरी आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब, जालन्धर शहर के मन्त्री ने प्रकाशित की है। मूल्य १) है। प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर वैदिक वाङ्मय से चुने हुए सुभाषित दिए हैं। उन का हिन्दी अनुवाद साथ में होने से संस्कृत न जानने वाले भी उन वैदिक आदर्शों से प्रेरणा तथा उद्बोधन प्राप्त कर सकते हैं। हम इसका खूब प्रचार चाहते हैं।

रामेश बेदी।

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

गुरुकुल पत्रिका

फाल्गुन
२००७

वर्ष ३
अङ्क ७

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - हरिद्वार

वर्ष ३
अङ्क ७

गुरुकुल-पत्रिका

फाल्गुन
२००७

व्यवस्थापक
श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी।

सम्पादक
श्री सुखदेव विद्यावाचस्पति
श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार।

इस अङ्क में

अगले अंकों में

अग्निहोत्र क्यों करना चाहिए — श्री देवराज विद्यावाचस्पति
पक्षियों का अद्भुत संसार — प्रो० राधाकृष्ण कौशिक एम. एस. सी.
शरीर शुद्धि के सम्बन्ध में पूर्व से पश्चिम क्या सीख सकता है ? — डॉ. सुन्दरलाल भंडारी, एम. बी. बी. एस., पी. सी. एम. एस.

अन्य अनेक विश्रुत लेखकों की सांस्कृतिक, साहित्यिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी रचनाएं।

मूल्य देश में ४) वार्षिक
विदेश में ६) वार्षिक

एक प्रति
छः आने

ॐ

गुरुकुल-पत्रिका

[गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की मासिक पत्रिका]

उद्बोधन

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीडाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे निह्वये वः ॥ ऋग् १० १०-१-१

मृत्योः पद योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥ ऋग्० १०-१८-२

अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि वाजान् ॥ अथर्व. १२-२-२६

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं, न स्वप्नाय स्पृहन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ऋग्. ८-२-१८

उठो, जागो, हे भाइयो ! मनोबल से अनुप्राणित हो जाओ । एक राष्ट्र के वासी तुम सब अपने अन्दर उत्साह की अग्नि को प्रदीप्त करो । तुम्हारी रक्षार्थ मैं उस 'अग्नि' का आह्वान करता हूं जिसे धारण करते ही मनुष्य क्रियाशील हो उठता है । तुम्हारी रक्षार्थ मैं प्रकाश से जगमगाती हुई उस 'उषा' का आह्वान करता हूँ जिस से जीवन ज्योतिर्मय हो उठते हैं । अपने जीवनों को 'अग्निमय' बनाओ, अपने जीवनों को ज्योतिर्मय बनाओ ।

हे भाइयो ! उठो, मौत के पैर को परे धकेल दो, श्रेष्ठ लम्बी आयु को धारण करो । धन-धान्य तथा प्रजा से फूलो-फलो और शुद्ध-पवित्र तथा परोपकारी जीवन वाले बनो ।

उठो, मित्रो ! देखो, वह सामने अनेक विघ्न-बाधाओं के पत्थरों से भरी संसार की दुस्तर नदी वेग से बहती चली जा रही है । उठो, तैयार हो जाओ, एक-दूसरे का हाथ पकड़ लो, मिल कर उद्यम करो और उसे पार कर जाओ । जो खोटी चालें हैं उन्हें यहीं छोड़ दो । आओ, विघ्न-बाधाओं की इस भयङ्कर नदी के पार उतर कर रोग-रहित ऐश्वर्य-सुख का उपभोग करें ।

हे मनुष्य ! जाग उठ, जाग उठ, सोया मत पड़ा रह । देख, जो व्यक्ति जाग कर शुभ कर्मों में लगता है उसी को देवता चाहते हैं । सोये पड़े रहने वाले से वे प्रीति नहीं करते । अच्छी तरह समझ ले, प्रमादी की कोई सहायता नहीं करता ।

भारतीय दृष्टि से मौलिक अध्ययन की आवश्यकता

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

अपनी मुक्ति स्वयं पाने के जो उपाय राष्ट्रीय स्वाधीनतावादियों के सामने थे, उनमें अपनी शिक्षा को भारतीय भाषाओं के माध्यम से स्वयं संघटित करने का प्रमुख स्थान था। 'राष्ट्रीय शिक्षा' की इस लहर का आरम्भ महात्मा मुन्शीराम उर्फ स्वामी श्रद्धानन्द ने सन् १६०० में कांगड़ी गुरुकुल की स्थापना कर के किया। उस संस्था में भारतीय भाषा में आधुनिक विज्ञान की शिक्षा देने का सब से पहला प्रयत्न किया गया। गुरुकुल के उदाहरण से १६०५ में बंगाल में 'जातीय शिक्षा परिषद्' की स्थापना हुई। अधिकार-प्रार्थी पक्ष के लोग इन राष्ट्रीय शिक्षणालयों की उपेक्षा या उपहास करते थे। उनमें इतना आत्म-विश्वास कहाँ था कि अंग्रेज़ी सरकार की सहायता बिना स्वयं किसी बड़े संघटन-कार्य को उठाने की अथवा देसी भाषाओं को अंग्रेजी की सतह पर पहुँचाने की कल्पना कर सकते ?

सन् १६१० में इस हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की स्थापना हुई। ऐसी संस्था अधिकार-प्रार्थी 'साहब लोगों' की विचारधारा से कोई मेल न खा सकती थी। इसमें या तो ऐसे लोग थे। जिन्हें भारतीय संस्कृति भाषा और लिपि पर अटूट श्रद्धा थी, और या यदि कोई राजनीतिक आकांक्षाओं वाले लोग थे तो प्रायः राष्ट्रीय स्वाधीनतावादी विचारधारा के। इसके संस्थापक श्री पुरुषोत्तमदास टंडन राजनीति में बाल गंगाधर तिलक के अनुयायी माने जाते थे; महात्मा मुन्शीराम इसके शुरू के सभापतियों में से थे। हिन्दी के वाङ्मय को सब प्रकार के विज्ञान से भरपूर करना और देश के शासन और शिक्षा में उसे अंग्रेजी के स्थान पर बिठाना इसके आरम्भ से उद्देश्य थे।

सन् १६१४ से ही कांगड़ी गुरुकुल में आधुनिक विज्ञान के पाठ्यग्रन्थ हिन्दी में तैयार कराने का प्रयत्न आरम्भ किया गया। उस प्रसङ्ग में दो चार बरस में ही यह अनुभव हो गया कि भारतीय भाषाओं में अभष्ट वैज्ञानिक ग्रन्थ युरोपी भाषाओं के सीधे अनुवाद से तैयार नहीं हो सकते। वह अनुभव अत्यन्त महत्त्व का था और आज उसे हृदयंगत किये बिना हम एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते।

उदाहरण रूप में हमें अपनी भाषाओं में इतिहास-ग्रन्थ चाहिएं। पर युरोपीयों के लिखे इतिहासों के अनुवादों से हमारा काम नहीं चलता। भारतीय विद्वान् देश-विदेश के इतिहास का मूल स्रोतों से भारतीय दृष्टि से अध्ययन-मनन कर अपने परिपक्व विचारों को दर्ज करें तभी उनकी कृतियां हमारी इतिहास वाङ्मय की आवश्यकता को पूरा कर सकती हैं। भारतीय दृष्टि से लिखे इतिहास की मांग इस समय से देश में बराबर बनी रही और उस प्रकार के अध्ययन के लिए कोई सुविधा न होते हुए भी अनेक निष्ठावान् विद्वान् इस दिशा में काम करते रहे। साथ ही मैकाले शिक्षणालयों के जिन अध्यापकों ने अपने दिमाग अंग्रेजों के हाथ बेच रक्खे थे वे यह प्रश्न उठाते रहे कि भारतीय दृष्टि का अर्थ क्या है। इस प्रश्न का क्रियात्मक उत्तर मैं पिछले बत्तीस बरस से देता रहा हूँ और आज उसे देने को एक अलग व्याख्यान की आवश्यकता होगी। तो भी दो-एक बातें यहां कह ही दूं।

भारतीय इतिहास के पहले ही अध्याय में हमारे लिए प्रश्न उठता है कि हिमालय की सब से बड़ी चोटी का नाम क्या है। अंग्रेजों ने एक अंग्रेज का नाम उस पर मढ़ा है और दुनिया को यह दिखाने की कोशिश की है कि परलोकचिन्तक भारतीयों ने अपने देश की उस महान् प्राकृतिक विभूति पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। पर नंगा पर्वत से नमचा बरुआ तक हिमालय की प्रत्येक चोटी को जिन भारतीयों ने नाम दिये थे, वे उसकी सब से बड़ी चोटी को ही देखने से चूक जाते यह बात साधारण बुद्धि से मानने की न थी, और जर्मन, स्वीड और फ्रांसीसी विद्वान् भारत के अंग्रेज शासकों को

वह नाम छिपाने का दोष देते रहे। हमारे देश की मैकाले-यूनिवर्सिटियों में वर्ड्सवर्थ और टेनिसन की अंग्रेजी पर खोजें होती रहीं, पर अपने देश के इस सीधे से प्रश्न पर ध्यान देने की किसी को न सूझी। अन्त में 'भारतभूमि और उसके निवासी' में यह सुझाया गया कि दूधकोसी दून में जा कर वह नाम खोजना चाहिए और एक अकिंचन सत्यान्वेषी ने सगरमाथा का नाम खोज निकाला जिसकी सचाई अन्य अनेक स्रोतों से प्रमाणित हुई। बाबूराम खरदार ने अपनी यह खोज एक भारतीय भाषा की पत्रिका[१] में प्रकाशित की, अतः हमारे देश के उन साहब लोगों ने जो अंग्रेजी की खिड़की में से ही दुनियां को देखते हैं, पिछले दस बरस से अपने को इस ज्ञान की किरण से वंचित रखा।

भारत के इतिहास को अंग्रेजों ने हिन्दू-मुस्लिम और ब्रितानवी युगों में बांटा था। पर जैसा कि मैंने इस सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन (१६३६) की इतिहास-परिषद् के अध्यक्षीय भाषण में कहा था, 'यदि इतिहास का प्रयोजन राष्ट्रीय-जीवन के क्रमविकास को टटोलना है तो यह युगविभाग उस विकास की सर्वथा उपेक्षा ही नहीं करता प्रत्युत उसका गलत और भ्रान्त चित्र उपस्थित करता है।' उसका ठीक चित्र उपस्थित करने के लिए सर्वथा नये अध्ययन की आवश्यकता है। हमारे सल्तनत युग (११६४-१५०६) का इतिहास केवल फारसी-अरबी सामग्री के आधार पर कहा गया है, पर उसकी संस्कृत-देसी भाषा सामग्री भी उतने ही महत्त्व की है। दोनों सामग्रियों के सामञ्जस्यात्मक अध्ययन की मांग बराबर बनी है। राखालदास बनर्जी और गौरीशंकर ओझा ने उस प्रकार के अध्ययन के बढ़िया नमूने भी पेश किये हैं। पर मैकाले-युनिवर्सिटियों के कानों पर उस मांग से जूं न रेंगी। और चूंकि राखालदास और ओझा ने इस विषय की अपनी खोजें बंगला और हिन्दी द्वारा पेश की हैं, और वे कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड से जूठी होकर नहीं आईं अतः उन युनिवर्सिटियों के लट्ठभारतीयों[२] ने आज तक उन्हें पढ़ने का कष्ट नहीं किया।

भारतीय इतिहास के ब्रितानवी युग के वृत्तान्त में अंग्रेजों ने किस प्रकार सत्य की हत्या की है और किस प्रकार भारतीय-दृष्टि से नये अध्ययन की आवश्यकता है, यह वामनदास वसु ने दिखाया है। वैसे अध्ययन के लिए दर्जनों सत्यान्वेषकों की आवश्यकता है।

इतिहास को छोड़ कर अब हम समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजशास्त्र पर ध्यान दें। इन विषयों पर युरोपी भाषाओं में जो ग्रन्थ हैं, उनके सिद्धान्त युरोपी समाज के तजरबे, युरोपी इतिहास और युरोपी संस्थाओं को लक्ष्य में रख कर निश्चित हुए हैं। जैसे वैयक्तिक संपत्ति का विकास कैसे हुआ, पूंजीपति और श्रमी वर्गों के सम्बन्धों की परिणति कैसे हुई, विवाह की संस्था कैसे उगी, नगर-राष्ट्रों से बड़े राष्ट्र कैसे बने, इस प्रकार के प्रश्न उपस्थित होने पर युरोपी अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजशास्त्र यूनान के तजरबे से आरम्भ करते और रोम और मध्यकालीन युरोप के जीवन-विकास को टटोलते हुए आधुनिक युरोप तक पहुँचते हैं। उनके लिए वैसा करना ठीक है। किन्तु जब उनके ग्रन्थों का शब्दानुवाद भारतीय भाषाओं में पेश किया जाता है, तब भारतीय पाठक को वह वस्तु अपनी नहीं लगती। उसके मन में आश्चर्यपूर्वक प्रश्न उठता है कि क्या भारत में सम्पत्ति-वर्ग-सम्बन्धों, विवाहों और राष्ट्रों का

१. काठमांडू से प्रकाशित पर्वतिया पत्रिका 'शारदा' १६४०।

२. 'ज्ञानलवदुर्विदग्ध' लोगों के लिए अंग्रेजी शब्द 'स्नौब' है। हमारी खड़ी बोली का 'लंठ', व्रजभाषा का 'लठापांडे' और काशी की पंडितमंडली का भोजपुरी शब्द 'लट्ठ-भारती' उस अर्थ की सुन्दर अभिव्यक्ति करते हैं।

विकास नहीं हुआ, क्या भारत का तजरबा इन विषयों में शून्य है। भारतीय भाषाओं में इन शास्त्रों की जड़ तभी जमेगी जब हमारे विद्वान् अपने देश के इतिहास अपनी संस्थाओं और अपने स्वतन्त्र चिन्तन पर भारतीय सामाजिक विज्ञानों को खड़ा करेंगे। हो सकता है इस भारतीय-दृष्टि के अध्ययन से वे सिद्धान्त और भी पुष्ट और स्पष्ट हो जायँ जिन्हें युरोपी आचार्यों ने स्थापित किया है। हो सकता है हमें उनमें कुछ फेरफार करना पड़े। किन्तु हर दशा में भारतीय जनता को इन विषयों में तभी जगाया जा सकता है जब हम भारतीय सामग्री के भारतीय दृष्टि से अध्ययन-पूर्वक भारतीय भाषाओं में इन्हें पेश करें।

यह सोचा जा सकता था कि इतिहास और सामाजिक विज्ञानों पर यह बात लागू होगी, किन्तु भौतिक विज्ञान तो सब देशों के लिए एक से हैं, अतः उनके ग्रन्थों का युरोपी भाषाओं से सीधा अनुवाद किया जा सकेगा। पर ध्यान देने से प्रकट हुआ कि वह भी नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, जैसा कि मैंने बीरबल साहनी अभिनन्दनग्रन्थ में लिखा है, 'वनस्पतिशास्त्र पर युरोपी भाषाओं में जो कृतियां हैं उनके उदाहरण प्रथमतः और मुख्यतः युरोपी वनस्पति के हैं, उनकी परिभाषाएं युरोपी विचार की परम्परा के अनुसार नियत हुई हैं, और उनमें वैज्ञानिक विचार का विकास टटोला जाता है तो युरोप के वनस्पतिविषयक विचार का ही। भारतीय भाषाओं में प्रामाणिक और स्वाभाविक वनस्पतिशास्त्र तैयार हो सके इससे पहले भारतीय वनस्पतियों के विस्तृत और बारीक अध्ययन की, उस अध्ययन के परिणामों के संकलन की, तथा भारतीयों के पुराने वनस्पतिविषयक और उससे संबद्ध ज्ञान और विचार के ऐतिहासिक शृङ्खला में संकलन और मथन की आवश्यकता है।'

युरोपी विद्वानों ने न केवल अपने यहां के प्रत्युत भारत के सिवाय शेष जगत् के भी वनस्पतिविषयक ज्ञान का शृङ्खलाबद्ध इतिहास लिखा है। किन्तु भारत की उस विषय में देन इतनी अधिक है कि जब तक भारतीय स्वयं उस देन का इतिहास न पेश करें, दूसरा कोई नहीं कर सकता। इस प्रकार विश्व के वनस्पतिशास्त्रीय ज्ञान के इतिहास में आज केवल भारत का स्थान खाली पड़ा है।

ठीक यही बात समूचे जीवशास्त्र (बायोलोजी) पर लागू होती है। आयुर्वेद को लीजिए। हमारे आयुर्वेद ने अब तक जो पाश्चात्य आयुर्वेद से पछाड़ नहीं खाई उसका कारण केवल जनता का अन्धविश्वास नहीं है। जहां तक शरीर की रचना और उसकी भीतरी कार्यप्रक्रियाओं का प्रश्न है, उस सम्बन्ध में यदि हमारा आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान दो विरोधी बातें कहते हैं तो दोनों ठीक नहीं हो सकतीं। उस अंश में भारतीय आयुर्वेद को निरथक समझा जायगा। किन्तु त्रिदोष-सिद्धान्त जैसी अनेक स्थापनाएँ उसमें ऐसी हैं जो व्यवहार में बड़ी उपयोगी सिद्ध होती हैं और जिन्हें आधुनिक विज्ञान स्पष्ट गलत नहीं कह सकता। आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से उनकी ठीक ठीक व्याख्या के लिए बड़े परिश्रम और मनन की आवश्यकता है। दूसरे जिस अंश में भारतीय आयुर्वेद की स्थापनाएँ गलत सिद्ध हो भी चुकी हैं उस अंश में भी उनका ऐतिहासिक मूल्य बहुत ही ऊँचा है, और आज विज्ञान के अध्ययन में विज्ञान के इतिहास पर बहुत बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जहां औषधियों के गुण और प्रभाव का प्रश्न आता है, वहां भारतीय भाषाओं के ग्रन्थों में यदि हम युरोपी ग्रन्थों का अनुवादमात्र करके केवल युरोपी औषधियों का विवेचन करे तो यह अत्यन्त अनुपयुक्त होगा। यदि हम अपने ग्रन्थों में प्राचीन भारतीय आयुर्वेद को उद्धृतमात्र करते हुए भारतीय औषधियों के भी गुण लिख दें तो उस से आधुनिक जिज्ञासा की शान्ति नहीं होगी, कारण कि हमारे पुरखों ने उनके गुण अपने साधारण तजरबे के आधार पर लिखे थे, आज का विज्ञान औषधियों के

गुण सूक्ष्म यन्त्रों और परीक्षणों से निश्चित् करता है, अतः प्राचीन आयुर्वेद के तजरबे को आधुनिक साधनों को जांचे बिना उद्धृत करने में आज सार्थकता नहीं है। इससे यह परिणाम निकला कि भारतीय भाषाओं में यदि हम नव्यआयुर्वेद का वाङ्मय उपस्थित करना चाहते हैं, तो हमें प्राचीन आयुर्वेद की ऐतिहासिक तहबन्दी सावधानी से करनी होगी, भारतीय ओषधियों के गुणों और प्रभावों के निर्णय के लिए अनेक परीक्षणालय स्थापित करने होंगे, उन परीक्षणालयों के परिणामों को प्रामाणिक रूप से दर्ज करने की परिपाटी चलानी होगी, और विदेशों की इस विषय की ज्ञान-प्रगति के साथ अपनी ज्ञान-प्रगति का बराबर सामञ्जस्य करना होगा।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार

आयुर्वेद के अन्तर्गत आहारशास्त्र (डायटिक्स) आजकल अत्यन्त प्रिय विषय है। आधुनिक आहारशास्त्र में विभिन्न भोजनों के पुष्टितत्त्वों (विटामिन) और उत्तापमान (केलोरिक वैल्यू) का हिसाब दिया जाता है। पर उपलब्ध ग्रन्थों में जिन खाद्यों की ऐसी छानबीन मिलती है वे सब युरोपी खाने के हैं। भारतीय भोजन की इस ढंग की छानबीन ही अभी नहीं हुई, और जो हुई भी है उसका ग्रन्थों में संकलन नहीं हुआ। इस दशा में युरोपी भाषाओं के इस विषय के ग्रन्थों का सीधा अनुवाद भारतीय भाषाओं में करने से भारतीय पाठकों के किस काम आयगा?

जीव जगत् को छोड़ अब हम जड़ जगत् की ओर चलें। भूगर्भशास्त्र पर यदि हमें किसी भारतीय भाषा में लिखना है तो भारत की मिट्टियों-चट्टानों के उदाहरणों को उनमें प्रथम स्थान देना होगा। उनके विषय में काफी खोज हो चुकी है और अनेक अच्छी कृतियां

अंग्रेज़ी में हैं। पर उनके अनुवाद भी हम किसी भारतीय भाषा में करना चाहें तो पहले अनेक प्रकार के पत्थरों और चट्टानों के भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित नामों का संग्रह करना होगा। ग्रैनाइट, नीस, सोपस्टोन, कोबाल्ट आदि भारत के जिन प्रदेशों में पाये जाते हैं, वहाँ की जनता इनके नाम भी जानती है, जैसे तेलिया उरगा, गोरा पत्थर, सविता आदि। पर जनता में प्रचलित ये नाम कोशों में प्रायः नहीं पाये जाते, और इन नामों को खोजे और बटोरे बिना किसी भारतीय भाषा में भूगर्भशास्त्र पर अच्छा ग्रन्थ नहीं लिखा जा सकता।

शुद्ध विज्ञान पर लिखना भी भारतीय परिस्थिति और इतिहास से बच कर नहीं हो सकता। विज्ञान और दर्शन का विचार क्षेत्र प्रायः एक ही है। दोनों में अन्तर यह है कि विज्ञान में जहाँ केवल परखे सिद्धान्तों का समावेश होता है, वहाँ दर्शन में तर्कना-मूलक विचार भी रहता है। दोनों में बहुत कर समान परिभाषाएँ प्रयुक्त होती हैं। भारत में दार्शनिक चिन्तन काफी से अधिक हो चुका है। नये वैज्ञानिक चिन्तन का उस पुराने चिन्तन के साथ समन्वय किये बिना उसकी परिभाषाएँ ठीक से निश्चित नहीं हो पातीं। इसका एक अच्छा उदाहरण यह है कि अब तक जिन वैज्ञानिक परिभाषाओं को हिन्दी में चलाने का यत्न किया गया उनमें से सुधाकर द्विवेदी की निश्चित की हुई गणित की परिभाषाएँ सब से अधिक परिपक्व सिद्ध हुईं, कारण कि वे भारत के पुराने और विश्व के नये ज्ञानचिन्तन का पूरा सामञ्जस्य कर निश्चित की गई थीं। इस अंश में तुलनात्मक अध्ययन की दिशा आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ शील ने १९१५ में दिखाई थीं।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली

श्री वागीश्वर विद्यालंकार

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी का शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास कर उसे उत्तम नागरिक बनाना है। यदि भारत में प्रचलित वर्तमान सरकारी शिक्षा प्रणाली की जांच इस दृष्टिकोण से की जाय तो अत्यन्त निराशा होती है। इस प्रणाली के प्रति निरन्तर बढ़ता हुआ असन्तोष अधिक दबाया नहीं जा सकता। कितने ही प्रान्तों में इस के दोषों पर विचार करने तथा इस में सुधार के उपायों का निर्देश करने के लिये कमीशन बनाए गए और उन्होंने अपने परामर्श पेश भी किए परन्तु अभी तक कुछ फल निकलता नहीं दीखता। बात यह है कि शिक्षा के मुख्य सिद्धान्त हैं, जब तक उन का अनुसरण नहीं किया जायगा सफलता न होगी। मैकाले महाशय ने काले अंग्रेज उत्पन्न करने के लिये इस मैशीन का निर्माण किया था। इसने कुछ समय तक खूब कार्य किया। परन्तु अब यह घिस चुकी है। दूसरी ओर भारतवासी भी अब जाग गए हैं। फलतः काले अंग्रेज बनने के लिये उनकी धुन काफी हद तक टूट चुकी हैं। ऐसी दशा में इस शिक्षा प्रणाली का असफल हो जाना बिलकुल स्वाभाविक ही था।

अपने लगभग १०० वर्ष के जीवन काल में इस शिक्षा प्रणाली ने जो फल हमें दिया है वह अत्यन्त कटु है। युरोप में शारीरिक विकास को शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग समझा जाता है किन्तु आज भारतीय शिक्षा में स्वास्थ्य रक्षा तथा शारीरिक उन्नति के लिये कोई स्थान नहीं है। शिक्षणालय प्रायः शहरों की घनी आबादी के बीच में बनाए जाते हैं जहां का दूषित वातावरण विद्यार्थी के शरीर तथा मन दोनों को अस्वस्थ करता रहता है। युरोप में जहां प्रत्येक विद्यार्थी बाधित रूप से खेलों में भाग लेता है, उसे सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है, वहां भारतीय विद्यार्थी के लिये इस प्रकार का कोई नियम नहीं है। गन्दे, अन्धेरे, अस्वस्थ घरों में निवास, अपुष्टि-कारक अपर्याप्त भोजन, कुसंगति, निचले दर्जे के चल चित्रपट और उस पर पढ़ाई लिखाई का अनावश्यक भारी बोझ विद्यार्थियों के शरीर को पनपने नहीं देते। बचपन से ही वे असाध्य रोगों के शिकार होने लगते हैं। दुबला-पतला शरीर आंखों पर ऐनक, बदहजमी या बवासीर ये एक विद्यार्थी के आवश्यक चिन्ह हैं। मतलब यह है कि विद्यार्थी उतना ज्ञान उपार्जन नहीं करता जितना उसे करना चाहिए।

केवल पुस्तकें पढ़ा देने मात्र से ही यहां शिक्षकों के कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है। बालकों को बुरी आदतों से बचा कर उन्हें सदाचारी बनाने की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। कोई २ शिक्षक तो

यह जो विवेचना मैंने आपके सामने की है, इसके तत्त्व सन् १९१० से १९१६ तक काँगड़ी गुरुकुल में अच्छी तरह पहचान लिये गये थे, भले ही उन्हें किसी ने वैसे स्पष्ट शब्दों में न रक्खा हो जैसे शब्दों में मैंने आज यहां रक्खा है। इन तत्वों को पहचान लेने पर यह बात स्पष्ट हो गई थी कि भारतीय भाषाओं में जिस वैज्ञानिक वाङ्मय की आवश्यकता है वह गहरे अध्ययन और खोज से तथा सुसंघटित सहोद्योगी श्रम से ही तैयार हो सकता है। किन्तु १९१६ से लेकर आज तक ३४ वर्षों में यह काम हुआ क्यों नहीं, यह प्रश्न अब आपके सामने आता है। आज जब हम इस कार्य को १५ बरस में या और भी जल्दी कर लेना चाहते हैं तब यह प्रश्न सब से अधिक महत्त्व का है। चौंतीस वर्षों के इस तजरबे से यदि हम नहीं सीखते तो हम फिर ठोकरें खायेंगे और खा कर भी कुछ न पायेंगे।

[हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापतिपद से दिये गये भाषण का अंश]

उन्हें उलटे दुराचार की शिक्षा देने से भी नहीं चूकते।

घरों में माता या तो प्राय: अशिक्षित ही होती है। यदि कुछ शिक्षित भी हुई तो उसे गृह कार्यों से ही फुर्सत नहीं मिलती जिससे कि वह बच्चे की ओर ध्यान दे सके। इस प्रकार की उपेक्षा से बच्चे का चरित्र बिगड़ता ही चला जाता है। किसी २ गरीब बालक को विद्यालय से लौट कर घर के कार्यों में सहायता करनी पड़ती है जिस से वह अपना सारा ध्यान एकमात्र पढ़ाई में नहीं लगा सकता। जिन विद्यार्थियों को बोर्डिंग हाउसों या होस्टलों में रहना पड़ता है उनकी अवस्था और भी अधिक खराब होती है। इन आश्रमों का वातावरण प्रायः अत्यन्त दूषित होता है। पूर्ण नियन्त्रण के अभाव में बहुत सी बुराइयां इन आश्रमों में उत्पन्न हो जाती है। जिन्हें न तो कोई रोकने का यत्न ही करता है न वे रोकी ही जा सकती हैं। इन आश्रमों के विद्यार्थी और भी अधिक उच्छृङ्खल, आचारहीन तथा शरारती हो जाते हैं। वे प्राय: किसी भी दुर्व्यसन से बचे नहीं रहते। इन आश्रमों में माता-पिता की दृष्टि से दूर रह कर अमीर, फिजूलखर्च बिगड़े हुए फैशनेबल विद्यार्थियों की देखा देखी देहातों के सीधे सादे विद्यार्थी भी इन बुराइयों में फंस जाते हैं। विद्यार्थियों में दुराचार सम्बन्धी रोगों की संख्या तीव्रगति से बढ़ रही है। शृङ्गार की सामग्री जितनी शहरों के विद्यार्थी खरीदते हैं उतनी साधारण सद्गृहस्थ महिलाएं भी नहीं खरीदतीं। नए से नए फेशन के शिकार पहले-पहल ये विद्यार्थी ही होते हैं। इस से स्पष्ट है कि देश के वे नवयुवक जिन्होंने जातीय-भवन की नींव में एक दिन पत्थर का काम देना है किस प्रकार खोखले और थोथे हो जाते हैं। क्या ये कभी राणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी की तरह देश की स्वाधीनता के संग्राम में अपने जीवन की आहुति दे सकते हैं।

सरकारी शिक्षाप्रणाली द्वारा शिक्षित नवयुवकों का मानसिक विकास पूर्ण नहीं हो सकता। इसका सब से बड़ा कारण शिक्षा का माध्यम अपनी मातृभाषा का न होना है। विद्यार्थी के जीवन का बहुत सा अमूल्य भाग तो केवल अंग्रेज़ी भाषा सीखने में ही व्यय हो जाता है। बी ए. तक अंग्रेज़ी भाषा आवश्यक विषय के रूप में पढ़नी पड़ती है। तब भी उस पर विद्यार्थी को पूरा अधिकार प्राप्त नहीं होता। बोलचाल आदि के लिए काम चलाऊ अंग्रेजी सीख लेने पर भी उसके द्वारा गम्भीर तथा कठिन विषयों का अध्ययन वास्तविक अर्थों में किया ही नहीं जा सकता। किसी अन्य स्वतन्त्र देश के विद्यार्थी के साथ उस भारतीय विद्यार्थी की तुलना तो कीजिए जिसे ज्ञान-विज्ञान सीखने के लिये अपनी शिक्षा का सब से अधिक समय एक विदेशी भाषा पर खोना पड़ता है। यही कारण है कि अन्य देशों में साधारण ज्ञान तथा उच्च शिक्षा का स्टैन्डर्ड यहां की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च है।

इसका दूसरा दोष यह है कि अध्यापक तथा विद्यार्थी का सम्बन्ध विद्यालय में केवल कुछ घंटों के लिये होता है। वे अध्यापक भी श्रेणी में अच्छी तरह से नहीं पढ़ाते जिस से कि विद्यार्थी घर पर बुला कर उन से पढ़ें और इस प्रकार उन्हें आर्थिक लाभ हो। साथ ही यह भी बात है कि जब तक अध्यापक तथा विद्यार्थी में गुरु शिष्य की पवित्र भावना न हो और विद्यार्थी गुरुओं के निकट सहवास में रह कर उन के आचार-विचारों से निरन्तर कुछ न कुछ सीखते न रहें तब तक उनका विद्याभ्यास पूर्ण हो ही नहीं सकता। पुस्तकों तथा मौखिक उपदेशों की अपेक्षा कहीं अधिक गहरा प्रभाव उच्च जीवन का पड़ता है। किन्तु भारतीय विद्यार्थी इस से सर्वथा वंचित रहता है यह उसका बड़ा दुर्भाग्य है।

यह शिक्षा विद्यार्थी को योग्य बनाने के बदले अयोग्य बना देती है अपने हाथ से काम करने में उसे शरम आती है, परिश्रम वह कर नहीं सकता। नौकरी

आज-कल मिलती नहीं, कला-कौशल शिक्षणालयों में सिखाए नहीं जाते, व्यापार के लिये साधन नहीं, विद्यार्थी जीवन में आदत अपव्यय की पड़ जाती है, कॉलिज की फीस देते २ घर का दिवाला निकल जाता है, आत्म-विश्वास है नहीं, परिणाम यह होता है कि एक दिन वह आत्मघात द्वारा अपने जीवन के दुःखान्त नाटक का उपसंहार कर देता है।

इस दूषित शिक्षा का एक अत्यन्त विषमय प्रभाव यह हुआ है कि हम युरोपियन जातियों के मुकाबले में अपने आपको हीन समझने लगे हैं। भारतीय विद्यार्थी अपने पूर्वजों के उज्ज्वल इतिहास को उन की संस्कृति, उनकी सभ्यता को या तो जानता ही नहीं, यदि जानता है तो बिल्कुल अशुद्ध। उसे यही पढ़ाया जाता है कि वेद गड़रियों के गीत हैं। भारतीयों का कोई धर्म, कोई सदाचार, कोई राज्य कभी रहा ही नहीं। भारत का जल-वायु तथा भौगोलिक परिस्थितियां ही ऐसी हैं जिन में कोई जाति किसी प्रकार की उन्नति कर ही नहीं सकती। इसी लिये भारत सदा से बाहर के आक्रमण-कारियों द्वारा लुटता, पिटता और जीता जाता रहा है। वह सदा से पराधीन रहा है। छोटी श्रेणियों से लेकर ऊपर तक यही सुहारनी नाना सिद्धान्तों के रूप में हमें रटाई जाती है धीरे २ हम स्वयं भी यही विश्वास करने लगते हैं कि हमारे पाश्चात्य गुरु जो कहते हैं वह अक्षरशः सत्य है। हमारे पूर्वज जंगली थे, उन्होंने कभी कोई आविष्कार नहीं किया, धार्मिक या राजनीतिक उन्नति नहीं की, विजय नहीं की, दार्शनिक विचार, आध्यात्मिक चिन्तन नहीं किया। प्रकृति, जीवात्मा तथा परमात्मा सम्बन्धी समस्याओं ने उन के ध्यान को कभी आकृष्ट किया ही नहीं। हम कपिल, व्यास, गौतम, कणाद, बुद्ध, चन्द्रगुप्त, अशोक, समुद्रगुप्त, कालिदास आदि के विषय में उतना नहीं जानते जितना एरिस्टोटल, प्लेटो, सिकन्दर शेक्सपीयर, मिल्टन, न्यूटन, कान्ट आदि के विषय में जानते हैं। इस शिक्षा ने सचमुच ही इन थोड़े से दिनों में हमारे हृदय को अभारतीय बना दिया है। हमें अपने धर्म, अपनी संस्कृति, अपने पूर्वजों और महापुरुषों से प्रेम नहीं रहा. इस अनर्थ परम्परा की समाप्ति यहीं नहीं हो जाती। अब कालिजों में सह-शिक्षा का भी परीक्षण और प्रचार हो रहा है। अमेरिका में इस सह-शिक्षा ने जो गुल खिलाये हैं उन्हें देखकर भी हमारी आंखें नहीं खुलतीं। हम अन्धे हो कर युरोप का अनुकरण कर रहे हैं। हमारी यह मानसिक दासता हमें कहां डुबाएगी, नहीं कहा जा सकता।

हमारी औसत आयु २३, २४ वर्ष है। उन में २२ वर्ष के लगभग तो यहां की उच्च शिक्षा प्राप्त करने में ही लग जाते हैं। इसके पश्चात् फिर विलायत जा कर भी न पढ़े तो क्या पढ़े। क्योंकि अच्छी नौकरी यदि मिल सकती है तो विलायती डिग्री के बल पर ही। हिन्दी और संस्कृत का अध्ययन भी विलायत में हो, इस से बढ़कर भारतीय शिक्षा-प्रणाली का उपहास क्या होगा? इतनी दौड़धूप करने के बाद भी मक्खी ने छींक दिया तो देखते ही रह जाते हैं। नौकरियां अब परीक्षाओं और योग्यता के आधार पर नहीं किन्तु सिफारिश के आधार पर मिलने लगी हैं।

यह तो हुई शिक्षा की बात, अब परीक्षा को लीजिये। प्रतिवर्ष परीक्षा परिणाम निकलने के पश्चात् असफल विद्यार्थियों द्वारा आत्मघात करने के समाचार सुनने में आते रहते हैं। काली माई बकरों और भैंसों की बलि मांगती है तो परीक्षा पिशाची नर बलि से कम में संतुष्ट नहीं होती। 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' विद्या कभी अमृत प्राप्ति का साधन थी आज वह मृत्यु का कारण बन गयी है।

शिक्षाप्रणाली के दोष से परीक्षा को अनुचित महत्व मिल गया है। ऐसा कोई उपाय नहीं सूझता जिस से विद्यार्थी प्रतिदिन याद करके साथ-साथ ही परीक्षा दे दे। परीक्षा क्या है? रक्त पिपासु महाजन का चिट्ठा है, जिसे वर्ष या दो वर्ष बाद चक्र व्याज के साथ

अपना स्वास्थ्य, अपने शरीर का रक्त देकर चुकाना पड़ता है। सब शिक्षाविज्ञ स्वीकार करते हैं कि प्रचलित परीक्षा पद्धति योग्यता की वास्तविक कसौटी नहीं। इस में कुछ तो स्मृति शक्ति का खेल है, कुछ भाग्य की करामात, तो भी पंचों का कहा सिर माथे, पर परनाला वहीं रहेगा। अभागा विद्यार्थी एक वर्ष एक पर्चे में अनुत्तीर्ण होता है तो दूसरे वर्ष दूसरे में। शिक्षा के कर्णधार कसम खाए बैठे हैं कि जब तक सब पर्चों में एक साथ उत्तीर्ण न होगा आगे कदम न बढ़ाने देंगे। कोई इस के विरुद्ध आन्दोलन करना चाहे तो नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता है? जो इस चक्की में से सही सलामत निकल गए उन्हें क्या गरज पड़ी है कि इस के विरुद्ध आवाज उठाए जो इस में से निकले नहीं उन की सुनता कौन है।

समझ और स्मृति शक्ति में बड़ा अन्तर है। भारतीय विद्यार्थी के लिये अंग्रेजी भाषा सीखना, उतना समझने पर आश्रित नहीं जितना रटने पर। अपनी मातृभाषा में विषय का कितना ही विशद ज्ञान क्यों न हो, यदि विद्यार्थी उसे शुद्ध अंग्रेजी में नहीं लिख सकता तो परीक्षा की भूल-भुलैयां से निकल सकना उस के लिए असम्भव है। मतलब यह कि भारतीय विद्यार्थी के लिये आज मातृभाषा नहीं किन्तु अंग्रेजी ही 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव' है संस्कृत या फारसी की ऊँची परीक्षा देकर केवल अंग्रेजी में बी. ए. और एम. ए. पास करने पर वह विद्यार्थी ग्रेजुएट बन सकता है जिसने एक भी विज्ञान नहीं पढ़ा किन्तु मातृभाषा द्वारा कई विज्ञानों की उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी वह अपठित ही माना जाता है। हमारी लज्जा और वेदना की पराकाष्ठा हो जाती है जब हम अपने बड़े २ विद्यादिग्गजों और शिक्षा के कर्णधारों के मुख से यह सुनते हैं कि भारत में मातृभाषा द्वारा उच्च शिक्षा नहीं दी जा सकती। क्या परमात्मा ने संसार भर में छांट कर हिन्दी को ही ऐसा बनाया है कि उस में वह टूटी-फूटी शिक्षा भी नहीं दी जा सकती जिसे पूर्ण करने के लिए विलायत जाने की आवश्यकता शेष रह जाती है, सचाई तो यह है कि हम अपनी भाषा का आदर करना ही नहीं जानते। जब गुरुओं की यह मनोवृत्ति है तो शिष्यों का कहना ही क्या?

परीक्षक विद्यार्थी की वास्तविक योग्यता के विषय में वैयक्तिक रूप से कुछ भी नहीं जानता। वह केवल पर्चे को देखता है। एक २ परीक्षक को सैंकड़ों पर्चों की घास सी काटनी होती है फिर परीक्षक है भी मनुष्य ही। वह अपनी तात्कालिक मनोवृत्तियों से ऊपर नहीं उठ सकता। उस का प्रभाव उस के अंक देने पर पड़ता है। कितनी ही बार परीक्षक के भ्रम या असावधानता से विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हो जाते हैं किन्तु उन्हें मुंह खोलने का अधिकार नहीं, खून के अपराधी को अपील का अधिकार है पर परीक्षार्थी उस से भी वंचित हैं। एक विषय में कुछ नम्बरों की कमी रही नहीं कि मामला फिर ३६५ दिन पीछे जा पड़ता है। गरीब विद्यार्थी के लघु जीवन के वर्ष कितने दयनीय रूप में सस्ते हैं? हमें इस बात की चिन्ता नहीं कि हम अपने नवयुवकों के जीवन के श्रेष्ठतम भाग को व्यर्थ के प्रपञ्चों में व्यर्थ न कर उन्हें शीघ्र योग्य बना राष्ट्र-निर्माण के महान् कार्य में लग जाने दें।

धन, जीवन, स्वास्थ्य, सदाचार, स्वधर्म और स्वसंस्कृति को खोकर प्राप्त किये हुए तथा कथित शिक्षा के कुछ अक्षर कितने महंगे हैं इसका अनुमान कीजिए। देश में प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली की असफलता को सिद्ध करने के लिये अब भी क्या किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता है।

सातवाहन युग की मूर्ति कला

श्री हरिदत्त वेदालंकर

मौर्यों के पतन से गुप्तों के उदय तक की पांच शतियां भारतीय कला के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इस समय सांची, भारहुत, बुद्ध गया, सांची, गांधार, अमरावती और नागार्जुनी कोंडा में विभिन्न प्रकार की कला-शैलियों का विकास हुआ। इनमें पहली तीन तो प्रधानतः शुंगकाल (१८८ ई० पू०—३० ई०) से सम्बद्ध हैं और शेष कुशाण-सातवाहनकाल (पू०—३०० ई०) से। इन दोनों कालों की एक बड़ी भेदक विशेषता यह है कि पहले काल में बुद्ध की कोई प्रतिमा या मूर्ति नहीं बनी, उन्हें सर्वत्रचरण, छत्र, पादुका, धर्मचक्र, आसन, कमल या स्वस्तिक के संकेत से प्रकट किया गया, किन्तु दूसरे काल में इनकी खूब मूर्तियां बनने लगीं। दूसरी विशेषता यह है कि भारहुत, सांची और बुद्ध गया के कलाकारों का विषय यद्यपि बौद्ध है, उनका उद्देश्य स्तूपों को अलंकृत करना है किन्तु मूर्तियां धार्मिक न होकर यथार्थवादी, प्राकृतिक और ऐन्द्रियिक हैं। इनमें धर्मतत्त्व की प्रधानता नहीं, किन्तु लोकजीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब है। यह कला बौद्ध धर्म के द्वारा अनुप्राणित नहीं, प्रत्युत उस समय प्रचलित लोक-कला का बौद्ध धर्म की आवश्यकताओं के अनुसार बदला हुआ रूप है।

श्री हरिदत्त वेदालंकार

भारहुत

मध्यभारत के नागोद राज्य में दूसरी श० ई० पू० के मध्य में भारहुत में एक विशाल स्तूप की रचना हुई। दुर्भाग्यवश यह स्तूप विध्वस्त हो चुका है; किन्तु इसे घेरने वाली पत्थर की बाड़ें (वेष्टनियें) का कुछ भाग और इसका एक तोरण कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित है। इससे भारतीय कला में एक नई प्रवृत्ति की सूचना मिलती है। अशोक कालीन बौद्ध कला बहुत सादी थी, उसमें प्रधानता पशु-मूर्तियों की ही थी, किन्तु नई कला में बुद्ध के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले दृश्यों को पत्थर में तराशा जाने लगा। भारहुत की पत्थर की बाड़ ऐसे ही मूर्ति-शिल्प से अलंकृत है। इसमें आधा दर्जन तो बुद्ध के चरित्र से सम्बद्ध ऐतिहासिक दृश्य हैं और चालीस के लगभग जातक कथाओं का अंकन है, अनेक दृश्यों के नीचे मूर्ति का विषय लिखा हुआ है। पहले प्रकार के दृश्यों में जेतवन का दान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारहुत कला में पशु-पक्षियों, नागराज और जानवरों की मूर्तियां बड़ी सजीव और स्वाभाविक हैं। इनमें केवल भक्ति भाव के ही नहीं अपितु हास्यरस के अनेक चित्र हैं। जातक दृश्यों में बन्दरों की लीलाएं हैं एक स्थान पर बन्दरों का दल एक हाथी को गाजे-बाजे से लिये जा रहा है। एक वह दृश्य भी कम हंसी का नहीं है, जिसमें एक मनुष्य का दांत हाथी द्वारा खींचे जाने वाले एक बड़े भारी संडासे से उखाड़ा जा रहा है, भारहुत के चित्र हमारे प्राचीन भारत के आमोद-प्रमोदपूर्ण लोक-जीवन का वास्तविक दिग्दर्शन कराते हैं उनमें धर्मग्रन्थों के दुःख और निराशावाद की हल्की सी झलक भी नहीं है। कला की दृष्टि से भारहुत की मानवीय मूर्तियां आकार और आसन में दोषपूर्ण हैं उनमें चपटापन है, किन्तु समग्र रूपेण ये तत्कालीन धार्मिक विश्वास, पहनावे आदि पर सुन्दर प्रकाश डालती हैं।

बुद्ध गया के प्रसिद्ध मन्दिर के चारों ओर एक छोटी बाड़ है। यह सम्भवतः पहली श० ई० पू० की

है। इस पर बने कमलों और प्राणियों के अलंकरण भारहुत जैसे हैं; किन्तु उसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर हैं और यह सूचित करते हैं कि इस समय तक कला काफी उन्नत हो चुकी थी।

सांची

यह बुद्ध गया से भी अधिक उत्कृष्ट शिल्पकला का द्योतक है। इसमें तीन बड़े स्तूप हैं और सौभाग्यवश काल के क्रूर आघात होने पर भी काफी अच्छी अवस्था में हैं। अशोककालीन प्रधान स्तूप के ५४ फीट ऊँचे अर्ध गोलाकार गुम्बद के चारों ओर पत्थर की बाड़ है, प्रदक्षिणा के लिए पथ है तथा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में चार तोरण या द्वार हैं। प्रत्येक द्वार चौदह फुट ऊँचे दो वर्गाकार स्तम्भों से बना है, इनके ऊपर बीच में से तनिक कमानीदार तीन बड़ेरियां हैं। सांची में स्तूप की वेष्टनी तो सादी है, किन्तु चारों तोरण भारहुत की भांति बुद्ध-जीवन के तथा जातकों के दृश्यों को चित्रित करने वाली मूर्तियों से अलंकृत हैं। बड़े-रियों पर सिंह, हाथी, धर्मचक्रयक्ष, त्रिरत्न के चिह्न हैं। इन पर विपरीत दिशाओं में मुंह किये ऊंट, हिरन, बैल, मोर, हाथी आदि के जोड़े बड़ी सफाई और वास्तविकता से बने हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सारा पशु जगत् भगवान् बुद्ध की उपासना के लिए उमड़ पड़ा है। खम्भे के निचले हिस्से में द्वार-रक्षक यक्ष बने हैं। खंभा पूरा होने पर बड़ेरियों का बोझ ढोने के लिए अन्दर की ओर चौमुखे हाथी तथा बौने बने हुए हैं तथा बाहर की ओर वृक्षवासिनी यक्षिणियां या वृक्षिकाएं। इनकी भाव-भंगी बड़ी मनोरम है। सांची की मूर्तियां और विषय भारहुत जैसे हैं; किन्तु इनके शिल्पियों ने भार-हुत के मूर्तिकारों की अपेक्षा शिल्प तथा कलात्मक कल्पना में अधिक प्रौढ़ता प्रदर्शित की है, मनुष्यों को विभिन्न आसनों तथा भाव-भंगियों में अधिक सफाई से दिखाया है, इनमें सरल और सुस्पष्टरूप से पाषाण में जटिल कथाओं और भावों को प्रतिबिम्बित करने की अधिक सामर्थ्य है। भारहुत की भांति, यह स्तूप भी उस समय के लोक जीवन और संस्कृति का विश्वकोश है।

मथुरा महातीर्थ व्यापारिक केन्द्र तथा कुशाणों की राजधानी होने से ईसा की पहली शतियों में कला का एक महान् केन्द्र था।

मथुरा शैली

शुंगकाल में यहां भारहुत की लोक-कला तथा सांची की उन्नत शैली साथ-साथ चल रही थी। कुशाण काल में यह एक हो गई। पुरानी कलाओं में चपटापन अधिक था, यह इस युग में दूर हो गया। किन्तु भारहुत के अभिप्राय और अलंकरण बने रहे। मथुरा से इस काल की असंख्य मूर्तियां मिली हैं, यह इनका अक्षय कोश प्रतीत होता है। ये सभी मूर्तियां सफेद चित्ती वाले लाल रवादार पत्थर की हैं। मथुरा शैली के पुराने और पिछले दो बड़े भाग किये जाते हैं। पुराने काल की मूर्तियां लगभग भारहुत जैसी और काफी अनगढ़ हैं। किन्तु पिछले काल में वे काफी परिष्कृत हो जाती हैं और इनमें एक महत्त्वपूर्ण नवीनता बुद्ध की प्रतिमा है। बुद्ध की शिक्षा मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थी, चिरकाल तक उनकी मूर्ति नहीं बनी, भारहुत और सांची में यही स्थिति थी, किन्तु भक्त भगवान् के दर्शन के लिए छटपटाते रहे। वे उनकी मूर्ति चाहते थे। मथुरा के कलाकारों ने उसे प्रस्तुत कर जन-साधारण की आकांक्षा को पूरा किया। बुद्ध की मूर्ति बनने से भारतीय कला में युगान्तर हो गया, अगली कई शतियों तक भारतीय शिल्पी बुद्ध की मूर्तियों द्वारा इस देश के आध्यात्मिक विचारों की उच्चतम अभिव्यक्ति करते रहे।

गान्धार शैली

जिस समय मथुरा के मूर्तिकार भगवान् बुद्ध की प्रतिमा बना रहे थे, लगभग उसी समय उत्तर-पश्चिमी भारत (गान्धार) में कुशाण राजाओं के प्रोत्साहन

से वहां के मूर्तिकार एक विशेष प्रकार की बुद्ध मूर्तियां बनाने लगे। ये सब प्रायः काले स्लेट के पत्थर की या कुछ चूने मसाले की बनी हैं। इस तरह की हजारों मूर्तियां अफगानिस्तान, तक्षशिला, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त से मिल चुकी हैं. इनका समय ५०-३०० ई० तक माना जाता है। गान्धार देश में विकसित होने के कारण, इन मूर्तियों की शैली को गान्धार शैली कहा जाता है। सरसरी तौर से देखने पर इनका सम्बन्ध यूनानी कला से प्रतीत होता है अतः इसे हिन्दयूनानी कला भी कहा जाता है। यूनान को सभ्यता का आदि स्रोत समझने वाले योरोपियन विद्वानों ने इस शैली को असाधारण महत्त्व दिया है, आज से दो तीन दशक पहले प्राचीन भारत में केवल इसी शैली को वास्तविक कलात्मक शैली समझा जाता था, अब तक अनेक कलाविदों की यह धारणा है कि समग्र भारतीय मूर्तिकला का मूल यही है; किन्तु नई खोजों से यह बात भली भांति सिद्ध हो चुकी है कि इस शैली का महत्त्व अत्युक्तिपूर्ण है। इसका परवर्ती कला पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। गान्धार शैली के मूल तत्त्व भारतीय हैं, इसमें यूनानी मूर्तिकला की वास्तविकता और भारतीय कला का भावमय आध्यात्मिक अभिव्यंजना का प्रयत्न किया गया किन्तु इन दोनों के विजातीय होने से यह असफल हुआ और यह शैली स्वयमेव समाप्त हो गई।

गान्धार शैली की मूर्तियां अपनी कई विशेषताओं के कारण झट पहचानी जाती हैं। पहली विलक्षणता मानव शरीर का वास्तववादी दृष्टिकोण से अंकन है, इसमें अंग-प्रत्यंग और मांस-पेशियों को अधिक सूक्ष्मता और ध्यान के साथ चित्रित किया गया है। दूसरी विशेषता यह है कि मूर्तियों को मोटे कपड़े पहनाये गए हैं तथा उनकी सलवटें बड़ी सूक्ष्मता से दिखाई गई हैं इस शैली की बुद्ध मूर्तियां भारत में अन्यत्र पाई जाने वाली प्रतिमाओं से बिलकुल भिन्न हैं, ये प्रायः कुछ को शरीर से बिलकुल सटे, अंग-प्रत्यंग दिखाने वाले झीने या अर्ध पारदर्शक वस्त्रों में चित्रित करती हैं; और उन्हें आदर्श मानव के रूप में अंकित करती हैं। यूनानियों के लिए मनुष्य और मनुष्य की बुद्धि सभी कुछ थी, उन्होंने देवताओं को भी मानव रूप प्रदान किया; भारतीय देवताओं में श्रद्धा रखते थे. उन्होंने मनुष्य को भी देव बना डाला। यही कारण है कि यूनानी कला वास्तववादी है और भारतीय आदर्शवादी। पहली भौतिक है और दूसरी आध्यात्मिक। गान्धार शैली में इन दोनों का सम्मिश्रण था। गान्धार कलाकार की आत्मा और हृदय भारतीय था किन्तु बाह्य शरीर यूनानी। यह शैली मध्य एशिया होती हुई चीन और जापान तक पहुँची तथा इसने उन देशों की कला को प्रभावित किया। पहले यह समझा जाता था कि बुद्ध की मूर्ति सबसे पहले इन्हीं कलाकारों ने बनाई, भारतीयों ने इसका अनुकरण किया किन्तु अब यह सिद्धांत अमान्य हो चुका है। हम पहले देख चुके हैं कि मथुरा के मूर्तिकारों ने इसका स्वतन्त्र रूप में विकास किया। दोनों में भारी अन्तर है। पहली यथार्थवादी है, उसमें भौतिक सौन्दर्य और अंग-सौष्ठव पर अधिक ध्यान दिया गया है, दूसरी आदर्शवादी है, इसमें शारीरिक रचना की अपेक्षा मुख-मण्डल पर दिव्य दीप्ति लाने का अधिक प्रयत्न है।

अमरावती शैली

दूसरी श० उत्तरार्ध से दक्षिण में कृष्णा नदी के निचले भाग में अमरावती (जि० गुण्टूर) जगय्यापेट और नागार्जुनी कोंडा में एक विशिष्ट शैली का विकास हुआ। अमरावती में न केवल स्तूप की बाड़ या वेष्टनी संगमरमर की थी; किन्तु सारा गुम्बद इसी पत्थर के शिलाफलकों से ढका हुआ था। भारहुत की भांति इसकी सारी बाड़ मूर्तियों से अलंकृत थी। किन्तु ये वहां की मूर्तियों से कई दृष्टियों में भिन्न हैं। इनमें कुछ को प्रतीकों तथा मूर्तियों दोनों प्रकार से व्यक्त किया गया है, अतः यह भारहुत और सांची तथा मथुरा

और गान्धारकलाओं का संक्रांतिकाल माना जाता है। यहां बुद्ध भगवान् की छः छः फुट से ऊंचे खड़ी मूर्तियां बहुत गम्भीर उदासीन और वैराग्य भाव से परिपूर्ण हैं। यहां बड़े कठिन आसनों में सुन्दर पतली और प्रसन्न आकृतियां अंकित हैं. दृश्यों में बहुत अधिक ब्यौरा भरने का यत्न किया गया है। वनस्पतियों और पुष्पों विशेषतः कमलों के अलंकरण बहुत सुन्दर हैं। सारी कला भक्ति भाव से ओत-प्रोत है। बुद्ध के चरण-चिह्न के सम्मुख नत उपासिकाओं का दृश्य बहुत भव्य है। हास्यरस की भी कमी नहीं है। ऐसा अनुमान है कि सत्रह हजार वर्ग फुट में इस प्रकार की मूतियां बनी हुई थीं। अखंड अवस्था में सफेद संगमरमर का यह स्तूप बहुत ही भव्य रहा होगा, दुर्भाग्यवश सौ वर्ष पहले चूना बनाने के लिए इसका बहुत बड़ा भाग फूंक दिया गया।

गुण्टूर जि० में ही नागार्जुनी कोंडा नामक स्थान पर एक अन्य स्तूप मिलता है। इसका शिल्प अमरावती जैसा उत्कृष्ट नहीं। बुद्ध जन्म का एक सुन्दर दृश्य यहां से मिला है। इसकी तथा अमरावती की मूर्तियों पर कुछ रोमन प्रभाव है।

सातवाहन युग की वास्तु-कला प्रधानतः पहाड़ों की चट्टानों में काटी हुई गुहाएं हैं। इनके काटने की पद्धति तो अशोक के समय से शुरू हो गई थी, किन्तु उस समय तक ये सादे कमरे थे, अब इन्हें स्तम्भ-पंक्तियों तथा मूर्तियों से अलंकृत किया जाने लगा। ये प्रायः दो प्रकार की होती थीं. चैत्य और विहार। चैत्य तो उपासना के लिए सुन्दर मन्दिर था और विहार भिक्षुओं का निवास स्थान। चैत्य एक आयातकार लम्बा हाल होता था, इसमें दोनों ओर दो स्तम्भ पंक्तियाँ और अन्दर अर्धवृत्ताकार सिरे पर एक छोटा सा स्तूप होता था। सामने की दीवार और दरवाजों पर चित्र बने होते थे। विहारों में एक केन्द्रीय हाल के चारों ओर कोठरियां होती थीं। चैत्य गुहाएं कार्ले कन्हेरी भाजा, नासिक आदि स्थानों पर महाराष्ट्र में पाई गई हैं। वहां इन्हें 'लेण' कहते हैं। इनमें सबसे सुन्दर कार्लेलेण है। उड़ीसा में इस प्रकार की गुहाएं गुम्फाएं कहलाती हैं। ये सब जैन मन्दिर हैं।

सातवाहन युग में कुछ स्तम्भ भी बने। इनमें दूसरी शती ई० पू० का विदिशा के पास यूनानी राजदूत हेलिउदोर द्वारा स्थापित गरुडध्वज सबसे अधिक प्रसिद्ध है। किन्तु इन स्तम्भों में अशोक कालीन चमक नहीं, इस काल में पिछले युग की भांति सुन्दर पशुमूर्तियां भी नहीं बनीं, किन्तु इस काल को सब से बड़ी देन बुद्ध की तथा अन्य मानवीय मूर्तियां और गुहा मन्दिर हैं।

साहस

श्री मां

अलमोड़े के राजा के पहाड़ी प्रदेश पर कुछ आक्रमणकारियों ने धावा बोल दिया। उनको मार भगाने के लिये एक नई सेना खड़ी की गई। उसमें कई लोगों ने अपना नाम दिया। प्रत्येक को एक बढ़िया तलवार दी गई।

राजा ने आज्ञा दी—'बढ़े चलो।'

उसी दम सब ने बड़े ज़ोर-शोर से अपनी मियानों में से तलवारें खींच लीं और उन्हें ऊपर चमकाकर वे सब जोर से चिल्लाये।

'यह क्या?' राजा ने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया—'स्वामी, हम तैयार हो रहे हैं जिससे हमारे शत्रु कहीं हमें असावधान पाकर हम पर चढ़ न आवें।'

'तुम डरपोक और घबराये हुए हो' राजा ने उनसे कहा, 'तुमसे कुछ न होगा। जाओ, अपने घर लौट जाओ।'

तुम देखोगे कि राजा ने इस प्रकार तलवारें खींच लेने और शोर गुल मचाने को जरा भी महत्त्व नहीं दिया। वह जानता था कि सच्ची वीरता में हल्ला करने और तलवारें बजाने की आवश्यकता नहीं होती।

इसके विपरीत, निम्नलिखित कहानी में तुम देखोगे कि कितनी शांतिपूर्वक लोगों ने एक कार्य किया और किस प्रकार समुद्र के बड़े खतरे के सामने भी वे वीरतापूर्वक डटे रहे।

सन् १९१० के मार्च महीने के अन्त में स्काटलैंड का एक जहाज आस्ट्रेलिया के यात्रियों को आशा अन्तरीप ला रहा था। आकाश में बादल का नाम-निशान नहीं था। समुद्र नीला और शांत था।

अचानक आस्ट्रेलिया के पश्चिमी किनारे से छः मील दूर जहाज एक चट्टान से जा टकराया।

जहाज के सब कर्मचारी एकदम इधर-उधर भागने लगे। सभी अपने कार्य में व्यस्त थे। सीटियों की आवाज सुनाई देने लगी। पर इस हलचल का कारण न तो कुप्रबन्ध था और न भय।

एक हुक्म गूंज उठा—

'डोंगियों पर चढ़ो।'

यात्रियों ने सुरक्षा की पेटियां पहन लीं।

एक नेत्रहीन व्यक्ति अपने नौकर का हाथ थामे डैक पर आया। सबने उसके लिये रास्ता छोड़ दिया। वह दुर्बल था। सब चाहते थे कि पहले उसको सहायता मिले।

कुछ क्षणों के बाद ही जहाज खाली हो गया, और फिर शीघ्र ही वह नीचे बैठ गया।

डोंगी पर बैठी हुई एक स्त्री ने गाना शुरू किया। लहरों के शोरगुल से बीच-बीच में गाने की आवाज दब जाती थीं पर फिर भी जो एक-आध कड़ी मल्लाहों के कान में पड़ जाती थी उससे उनके बाहुओं को बल मिल रहा था।

'किनारे की ओर बढ़ो, नाविको, किनारे की ओर बढ़ो।'

अन्त में वे सब जहाज की दुर्घटना से बचे हुए लोग किनारे तक पहुँच गये और दयालु मछुओं द्वारा किनारे पर लाये गये।

एक यात्री के भी प्राण नहीं गये। इस प्रकार चार सौ पचास व्यक्तियों ने अपने शांत-संयत स्वभाव से अपनी रक्षा कर ली।

अब मैं तुम्हें एक ऐसे शांतिपूर्ण साहस के विषय में बताती हूँ जिससे बिना किसी प्रदर्शन और धूम-धड़ाके के कई उपयोगी और भले कार्य किये हैं।

एक ग्राम के साथ-साथ एक गहरी नदी बहती थी। उसमें केवल हिन्दुओं के पांच सौ घर थे। उन ग्रामवासियों ने अभी तक भगवान् बुद्ध के उपदेश नहीं सुने थे। सो बुद्ध ने उनके पास जाने और उनको अपना उत्कृष्ट मार्ग बताने का निश्चय किया।

वे एक विशाल वृक्ष के नीचे बैठ गये। वृक्ष की शाखाएं नदी के किनारे तक फैली हुई थीं। ग्रामवासी

सब नदी के परले किनारे पर इकट्ठे हुए थे। अब बुद्ध ने अपनी आवाज उठाई और उन्हें पवित्रता और प्रेम का सन्देश सुनाया। उनके उपदेश एक चमत्कारक ढंग से उस बहते हुए पानी के ऊपर होते हुए नदी के परले किनारे तक पहुँच गये। फिर भी उन लोगों ने उनके वचनों पर विश्वास करना अंगीकार नहीं किया और उनके विरुद्ध वे बड़बड़ाने लगे।

उनमें से एक अभी और जानना चाहता था। उसने बुद्ध के निकट जाना चाहा, पर वहां न कोई नौका थी और न पुल ही था। उस मनुष्य ने मन में दृढ़ साहस रख नदी के गहरे पानी में चलना शुरू कर दिया। इस प्रकार वह उस गुरु के पास पहुँच गया। उसने उन्हें प्रणाम किया तथा बड़े हर्ष से उनके उपदेश सुने।

जैसा कि कहानी में कहा गया है कि उस मनुष्य ने चल कर नदी पार की थी, हम नहीं जानते। पर फिर भी उसने इस मार्ग पर चलकर हर तरह से साहस का ही परिचय दिया था, ऐसा मार्ग जो उन्नति-पथ की ओर ले जाता है। उसके उदाहरण से गांव के दूसरे लोगों ने भी फिर बुद्ध के उपदेश सुने और उनके अन्तःकरण उन अत्यन्त शुद्ध विचारों की ओर खुल गये।

× × ×

एक साहस है जो नदियां लांघ सकता है। एक ऐसा है जो मनुष्य को न्यायपथ पर ले जाता है। पर सत्य मार्ग पर चलना शुरू करने की अपेक्षा उस पर दृढ़ रहने के लिये जिस साहस की आवश्यकता पड़ती है वह उससे भी बड़ा है।

मुर्गी और उसके बच्चों का एक दृष्टान्त सुनो।

गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा था कि तुम अपनी ओर से पूरा प्रयत्न करो, फिर इस पर विश्वास रखो कि उन प्रयत्नों का फल तुम्हें मिलेगा ही।

उसने उनसे कहा—बिल्कुल उसी तरह जिस तरह मुर्गी अंडे देकर उन्हें सेती है, पर वह इस बात की जरा भी चिन्ता नहीं करती कि क्या मेरे बच्चे अपनी चोंचों से अंडा फोड़कर दिन के प्रकाश में आ जाने में समर्थ हो जायंगे? तुम्हें अब अधिक डर नहीं होना चाहिए। यदि तुम सत्य मार्ग पर दृढ़ रहोगे तो तुम प्रकाश तक भी अवश्य पहुँचोगे।

ठीक रास्ते पर चलना, आवेगों, मूढ़ विचारों और कष्टों का सामना करना, सदा आगे ही, प्रकाश की ओर बढ़ने के प्रयत्न में लगे रहना ही सच्चा साहस है।

× × ×

प्राचीन समय में ब्रह्मदत्त नाम का एक राजा बनारस में राज करता था। उसके शत्रुओं में से एक ने—जो किसी और देश का राजा था—अपने हाथी को युद्ध की शिक्षा दी थी।

लड़ाई की घोषणा हो गई। वह विशाल हाथी अपने स्वामी राजा को बनारस की चारदीवारी तक ले आया।

दीवारों के ऊपर से उन घिरे सैनिकों ने उबलते द्रव्यों और गोफन द्वारा फेंके हुए पत्थरों की उन पर झड़ी लगा दी। इस भयानक वर्षा के सामने एक बार तो हाथी पीछे हट गया। पर जिस आदमी ने उसे सधाया था वह उसकी ओर दौड़ा और बोला—

'अरे हस्ती, तू तो वीर है; वीर के समान कार्य कर और फाटक को जमीन पर दे मार।'

इन शब्दों से उत्साहित हो उस विशाल जन्तु ने फाटक पर एक जोर की चोट की, अन्दर प्रवेश किया और इस प्रकार राजा को विजय दिलाई।

इसी प्रकार साहस बाधाओं और कठिनाइयों को जीत कर विजय का पथ प्रशस्त करता है।

× × ×

देखो, किस प्रकार सब को, चाहे वे मनुष्य हों या पशु, बढ़ावे के शब्दों से सहायता पहुँचाई जा सकती है।

मुसलमानों की एक अच्छी पुस्तक में उदारहृदय व्यक्ति आबू सैयद की एक कहानी है। वह हमें बड़ा अच्छा उदाहरण देती है।

एक बार वह ज्वर से पीड़ित हुआ। उसके मित्र-गण उसके स्वास्थ्य का हाल-चाल पूछने उसके घर गये। कवि के लड़के ने द्वार पर उनका स्वागत किया। उसके होठों पर मुस्कराहट थी क्योंकि रोगी पहले से अच्छा था। वे लोग उसके कमरे में पहुँचे और बैठ गये। अपने सदैव के हंसोड़ स्वभाव के अनुसार उसे बोलते सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब क्योंकि गर्मी बढ़ चली थी, उसे नींद आ गई। और लोग भी सब सो गये।

सायंकाल तक सब उठ बैठे। आबू सैयद ने अभ्यागतों का जलपान से सत्कार किया और कमरे को सुवासित करने के लिए धूपबत्तियां जला दीं।

आबू सैयद ने तब प्रार्थना की, फिर उसने उठ कर एक छोटी सी स्वरचित कविता पढ़नी आरम्भ की—

'दुःख के समय निराश न हो, क्योंकि प्रसन्नता की एक घड़ी तेरे सारे दुःख दर्द भगा देगी।

मरुभूमि की तेज गर्म हवा बह रही है, पर वह ठंडे समीर में बदल सकती है।

काली घटा उमड़ रही है, पर वह जल-प्रलय करने से पहले ही हट सकती है।

आग लग सकती है, पर तुम्हारे सन्दूकों और पेटियों को छुए बगैर बुझ जायगी।

शोक आता है, पर चला जाता है। इसलिये जब विपत्ति आवे धैर्यवान् बनो।

समय सब चमत्कारों से बड़ा है। ईश्वर की कृपा से तुम्हें सदा अपने कल्याण की आशा करनी चाहिए।'

इस आशा से भरी सुन्दर कविता को सुन कर सब प्रसन्नता और बल अनुभव करते हुए अपने-अपने घर लौट गये। इस प्रकार एक रोगी मित्र ने अपने स्वस्थ मित्रों की सहायता की।

यह निश्चय है कि जो लोग स्वयं साहसी होते हैं वे ही दूसरों को साहस बंधा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे एक जलती मोमबत्ती अपनी लौ से दूसरी मोमबत्तियों को जला सकती है।

वीर बालको और बालिकाओ, तुमने यह कहानी पढ़ी है। तुम दूसरे को साहस बंधाना सीखो और स्वयं भी साहसी बनो।

भारतीय मन की प्रधान प्रेरणा

आध्यात्मिकता ही भारतीय मन की मुख्य कुञ्जी है—अनन्तता की भावना उसकी सहजात भावना है। भारत ने आदि काल में ही यह देख लिया और अपने तर्क बुद्धि के युग में तथा अपने बढ़ते हुए अज्ञान के युग में भी उसने वह अंतर्दृष्टि कभी नहीं खोई कि जीवन को केवल उसकी बाह्य परिस्थिति के प्रकाश में ही ठीक-ठीक नहीं देखा जा सकता और न वह केवल उन्हीं की शक्ति से पूरी तरह बिताया जा सकता है। वह प्राकृतिक नियमों तथा शक्तियों के महत्ता के प्रति जागरूक था, उसे भौतिक विज्ञानों के महत्त्व का सूक्ष्म बोध था; वह साधारण जीवन की कलाओं को संगठित करना जानता था। परन्तु उसने यह देखा कि भौतिकता को अपनी पूरी सार्थकता तब तक नहीं प्राप्त होती, जब तक वह अति भौतिक से ठीक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर लेती; उसने देखा कि संसार की जटिलता की व्याख्या मनुष्य की वर्तमान परिभाषाओं से नहीं की जा सकती और न मनुष्य की स्थूल दृष्टि से समझी जा सकती है, और यह कि विश्व के मूल में कुछ अन्य शक्तियां भी हैं तथा स्वयं मनुष्य के भीतर भी कुछ शक्तियां हैं, जिन्हें वह साधारणतया नहीं जानता।

—श्री अरविन्द।

गुरुकुल-संग्रहालय

श्री रमेश बेदी

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी की यह नवीन संस्था संवत् २००६ में प्रारम्भ हुई थी। इस अल्पकाल में इसकी उन्नति और विस्तार तथा लोकशिक्षण के महत्व-पूर्ण कार्य की सराहना देश के अनेक विद्वानों और पुरातत्त्वज्ञों ने मुक्त-कंठ से की है।

भारत सरकार के राष्ट्रीय संग्रहालय (नेशनल म्यूज़ियम) नई दिल्ली के अध्यक्ष श्र वासुदेव शरण अग्रवाल एम. ए., पी. एच डी., डी. लिट् ने संग्रहा-लय की स्थापना के अवसर पर निम्न उद्गार प्रकट किये थे—'मुझे यह देख कर प्रसन्नता हुई कि आरम्भ में ही आपने अपने संग्रहालय में प्राचीन मूर्तियों, भित्ति-चित्रों और मुद्राओं, इन तीनों क्षेत्रों में सफल आरम्भ किया है।

पुराने सिक्के

'आपके संग्रहालय में सिक्कों के संग्रह की भी अच्छी शुरुआत हुई है। पुराने चांदी के आहत सिक्कों के कुछ नमूने आप यहां देख सकते हैं। पाणिनि ने अपने

चतुर्मुख ब्रह्मा—उत्तर भारत के प्रस्तर शिल्प का सुन्दरतम नमूना। गुरुकुल संग्रहालय में सुरक्षित।

एक सूत्र में रूप से आहत कार्षापण का उल्लेख किया है। अंग्रेज़ी में इन्हें पंचमार्कड् सिक्के कहते हैं जिन पर तरह-तरह के रूप या सिम्बल ठप्पे से ठोके जाते थे। इन सिक्कों को देख कर पाणिनि के 'रूपादाहत प्रशंसयोः' सूत्र का अर्थ ठीक-ठीक समझ आ सकता है। उत्तर मौर्यकाल के ढले हुए सिक्के, कुषाणों के मोटे पैसे, कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार राजा भोजदेव के आदिवराह द्रम्म, सामन्तदेव के द्रम्म, अलाउद्दीन के सिक्के, जिन पर देव-नागरीअक्षरों में 'सुलतान अलाउद्दीन' लिखा है, मुगलों के रुपये और अंग्रेजी सिक्के सग्रहालय में इकट्ठे हैं।

ब्राह्मी आदि प्राचीन भारतीय लिपियों के ६० पत्रक जो आपके संग्रहा-लय में तैयार हुए हैं, छात्रों के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगे।'

संग्रहालय भवन

श्रेष्ठतम मूर्तियां

प्रयाग म्यूनिसिपल म्यूज़ियम के अध्यक्ष श्री सतीशचन्द्र काला ने संग्रहालय भवन की विशाल गैलरियों को एक आदर्श स्थान बताते हुए अमृत बाज़ार पत्रिका में एक लेख द्वारा इसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला था। उन्होंने लिखा था—

प्रतीक्षा [गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से]

संग्रहालय में मूर्ति-शिल्प के भी कुछ सुन्दर उदाहरण हैं। हरिद्वार भारत का एक प्रधान तीर्थ है। अनादि काल से हिन्दू धर्मावलम्बी 'हर की पैड़ी' पर गंगा में पवित्र स्नान करने के लिये आते रहे हैं। अनेक शतियों के सुदीर्घ काल में इस स्थान पर अनेक धर्मस्थान बने किन्तु वे नष्ट हो चुके हैं। संग्रहालय के अधिकारी इन अवशेषों की बड़े उत्साह से खोज कर रहे हैं। संग्रहालय में ५०० ई० से ९०० ई० तक की बौद्ध, जैन और हिन्दू मूर्तियां हैं। शिव विष्णु, महिषासुरमर्दिनी, चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्त्तियां शिल्प कला के उत्तम उदाहरण हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति में आकारचित्रण का सुन्दर प्रयत्न किया गया है, इसकी गणना उत्तर भारत की सुन्दरतम मूर्तियों में होनी चाहिये।
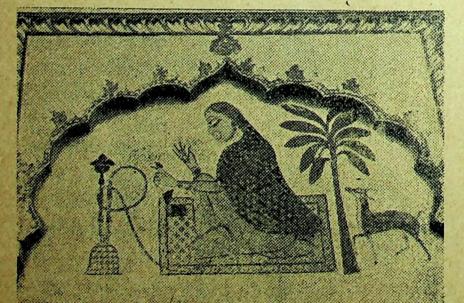
स्मृति [गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से]

कांगड़ा कला की शृङ्खलायें

उत्तर प्रदेश में विलीन टिहरी राज्य हरिद्वार के बिलकुल सन्निकट है। यह तथ्य सुविदित ही है कि राजपूताना और पञ्जाब की पहाड़ियों के हिन्दू राजाओं की भांति टिहरी राज्य के नरेशों ने भी

शुक क्रीड़ा [गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से]

'समुद्र-मन्थन', 'राधा-कृष्ण' के चित्रों में प्राचीन कांगड़ा कला के कतिपय आवश्यक तत्त्व पाये जाते हैं। गुरुकुल संग्रहालय के अधिकारियों ने इन भित्ति-चित्रों के कई फोटो तैयार करवाये हैं। इस प्रकार भावी सन्ततियों के लिए एक लुप्त होती हुई शृङ्खला

मूलतः मुगल दरबारों में रहने वाले हिन्दू चित्रकारों को संरक्षण प्रदान किया था। कांगड़ा शैली का एक उत्कृष्टतम चित्रकार मोलाराम, चैतू तथा मनकू और ज्वालाराम—ये सभी कलाकार टिहरी नरेशों के सुखद आश्रय में रहे थे। इन कलाकारों द्वारा प्रवर्तित परम्परा संभवतः इन प्रदेशों में काफी देर तक बनी रही किन्तु क्रमशः बढ़ते हुए सांस्कृतिक अधःपात में इन अवशेषों के अन्तिम चिन्ह भी लुप्त हो गये।

एक नई खोज

कनखल में निर्मला अखाड़ा नाम की एक बड़ी इमारत है इसकी दीवारों पर लगभग २०० फीट में, १६वीं शती के मध्य में बने भित्तिचित्र हैं। इन सौ वर्षों में इन चित्रों की सूक्ष्म योजनाएं और बारीकियां आश्चर्यजनक रूप से संरक्षित रही हैं। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि इन में से कुछ चित्र ठेठ ईस्ट इण्डिया कम्पनी शैली के हैं। चित्रों से यह स्पष्ट है कि इनका निर्माण बहुत कुशल हाथों से नहीं हुआ किन्तु फिर भी कहीं-कहीं महान् कला के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। 'राम का अभिषेक', 'झूले की नारियां', 'आसावरी' और 'टोडी रागिनियां', 'राजाओं की शोभायात्रा', 'गजेन्द्रमोक्ष',
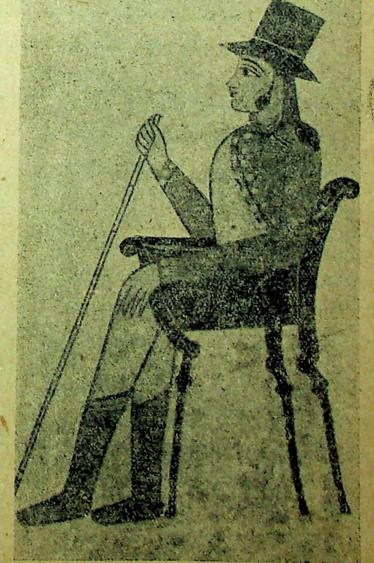
उन्नीस फिरंगी [गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से]

दर्पण देखती हुई एक सम्भ्रात महिला अपनी परिचारिकाओं के साथ

सुंदर संग्रहालय

श्रीयुत के.एन. पुरी पुरातत्व अधीक्षक (सुपरिन्टेण्डेंट ऑफ् आर्कियोलोजी) दिल्ली विभाग ने इसका अवलोकन करके लिखा था—

'वेद मन्दिर की गैलरियों में हाल में ही संस्थापित संग्रहालय अभी निर्माणावस्था में है किन्तु जिस उत्साह से इस का आरम्भ हुआ है, उससे यह आशा होती है कि यह संस्था विश्वविद्यालय का सुन्दर संग्रहालय बन जायगा।'

को सुरक्षित बना दिया गया है।

मथुरा पुरातत्व संग्रहालय के अध्यक्ष श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने निम्नलिखित रूप में अपने विचार प्रकट किए हैं—

'अल्पकाल में ही इसका जैसा रूप बन गया है वह इसकी भावी उन्नति का द्योतक है। कांगड़ा शैली के जो चित्र यहां प्रदर्शित हैं उन्हें देख कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आशा है इन चित्रों के संग्राहक महोदय पण्डित गंगा प्रसादमिश्र स्थायी रूप से इन चित्रों को संग्रहालय के लिए प्रदान करने की कृपा करेंगे।

आसावरी रागिनी [गुरुकुल संग्रहालय की आर्ट गैलरी से]

क्या सभ्यता विनाशोन्मुख है ?

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

यह प्रश्न आज पहली बार नहीं पूछा जा रहा। मनुष्य जाति के युगों में फैले हुए इतिहास में विचारशील लोगों ने कई बार यह प्रश्न उठाया और उसके उत्तर देने का यत्न भी किया। प्रश्न उठाने का तात्पर्य यह होता है कि यदि उस समय की सभ्यता को विनाश से बचाने का कोई उपाय हो सके तो वह किया जाय। समय-समय पर दूरदर्शी चिकित्सकों ने सभ्यता में लगे हुए रोगाणुओं के इलाज प्रस्तुत किये हैं? परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि जब एक बार किसी जाति के शरीर में क्षय के कीटाणु प्रविष्ट हो जाते हैं, तब वह जाति चाहे सभ्य हो या असभ्य, उसका विनाश से बचना कठिन हो जाता है। महाकवि कालिदास ने कहा है—

'नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण'

जैसे गाड़ी के पहिये की अरायें क्रम से ऊपर और नीचे आती और जाती हैं, इसी प्रकार इस पृथ्वी की जातियां मानों किसी विधान से बंधी हुई हैं, आकाश में चढ़ती और पाताल में गिरती रहती हैं।

एक बार मनुष्य जाति के विस्तृत इतिहास का सिंहावलोकन करके देखिये, आपको सभ्यताओं के उत्थान और पतन का क्रम विधि के विधान के समान निश्चितरूप से चलता हुआ दिखाई देगा। हम अत्यन्त प्राचीन इतिहास को छोड़ देते हैं और अर्वाचीन, प्राचीनकाल का निरीक्षण करते हैं, तो हम ईरान, यूनान और रोम की सभ्यताओं को बर्साती मेघ की तरह उमड़ता और कुछ देर तक बरस अन्त में हवा के प्रचंड झोंकों के सामने बिखरता देखते हैं। दारा का साम्राज्य क्या कभी नष्ट होने वाला प्रतीत होता था? सिकन्दर जब अफ्रीका और एशिया की जातियों को पद-दलित करता हुआ भारत की सीमाओं में प्रविष्ट हुआ, तब क्या कोई सोचता था कि एक दिन यूनान की उत्कृष्ट सभ्यता और संस्कृति को ग्रहण लग जायगा। रोम के शासक तो एक समय 'आसमुद्रक्षितीश' अर्थात् समुद्र मेखला पृथ्वी के मालिक बन गये थे। क्या जूलियस सीजर और उसके उत्तराधिकारियों को कभी यह कल्पना भी हो सकती थी कि एक दिन राज्य, शक्ति कला, साहित्य और विभूति रूपी चार खंभों पर खड़ा हुआ, रोमन साम्राज्य मिट्टी में मिल जायगा?

दूर क्यों जायें, महाभारत के संग्राम से पूर्व के समय की भारतीय विभूति किसी अन्य देश से कम नहीं थी। उस समय की संस्कृति, सभ्यता और विभूति का वर्णन पढ़ कर विश्वास भी नहीं होता कि आज से इतना समय पूर्व वह सब कुछ हो सकता था। कुछ लोग तो कपोल-कल्पित और असम्भव ही मानते हैं, परन्तु वह यदि सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में अवश्य सत्य था और यह भी सत्य है कि सृष्टि के नियमों के प्रभाव से वह सब कुछ नष्ट हो गया और अनेक शताब्दियों के लिये हमारे देश पर गहरा अन्धकार छा गया।

सभी जातियों के उत्थान और पतन के इतिहास को पढ़ने से एक बात मन पर स्पष्ट रेखाओं में अंकित हो जाती है। कुछ विचारक मानते हैं कि मनुष्य अपने मन को चारों ओर की परिस्थितियों से सर्वथा अलग-अलग करके स्वतन्त्र विचार कर सकता है। इतिहास का अनुशीलन बताता है कि बात इससे विपरीत है। मनुष्य के दार्शनिक, धार्मिक और नैतिक विचारों पर समय का बहुत गहरा प्रभाव रहता है। इसका एक प्रबल प्रमाण यह है, जब कोई जाति अभ्युदय की ओर जा रही होती है, तब उसके विचारों की विचारशैली प्रायः एक सी हो जाती है। उस जाति के विचारकों को यह अनुभव होने लगता है कि संसार वस्तुतः उन्नति की ओर जा रहा है। वह यह भी मानने लगते हैं कि मानव जाति को उन्नति की चरम-सीमा तक पहुँचाने के लिए जिस सभ्यता और संस्कृति की आवश्यकता है उसके प्रतिनिधि हम हैं। इस कारण संसार के जन्म-

सिद्ध नेता भी हमी हैं। इतिहास में जब किसी भी जाति का सितारा चढ़ा है, तभी उसमें ऐसे दार्शनिक और कवि उत्पन्न होते रहे हैं जो अपनी जाति के नेतृत्व का बलपूर्वक समर्थन करते रहे हैं। १६ वीं सदी में पश्चिम का भाग्य चमक रहा था, योरुप के व्यापारी और साहसिक पुरुष भूमंडल पर छा गये थे, प्रतीत होता था कि मानव जाति कुछ ही वर्षों में यूरोपियन जातियों की मानसिक और राजनैतिक दासी बन जायगी। उस समय यूरोप में विकासवाद ने जन्म लिया। विकासवाद की मौनरूप भावना यह थी कि सृष्टि में निरन्तर जो विकास हो रहा है, उसकी सबसे बढ़िया और परिष्कृत उपज योरुप की जातियां हैं, जो अपनी सभ्यता का वरदान देकर मनुष्यमात्र को विकास की ऊंची से ऊंची चोटी तक पहुँचायेगी। १६ वीं शताब्दी का अन्त होते-होते यूरोप की जातियों की नेतृत्व की होड़ चरम सीमा तक पहुँच गई। अग्रेज विचारकों की सम्मति बन गई थी कि ऐंग्लो-सैक्सन जाति विकास का सर्वोत्कृष्ट नमूना है, तो जर्मन तत्ववेत्ता सिद्ध करने लगे थे कि संसार के नेतृत्व का अधिकार केवल जर्मन को है। फ्रेंच लोग अपनी प्रमुखता का का दावा सदा ही करते रहे हैं। इस प्रकार पाश्चात्य सभ्यता २० वीं सदी के आरम्भ में उस स्थान पर पहुँच गई थी, जहां भारतीय सभ्यता को हम महाभारत युद्ध से पूर्व पहुँचा हुआ पाते हैं। भारत के नेताओं की उस समय की मनोवृत्ति को बहुत संक्षेप में जानना हो तो दुर्योधन के निम्नलिखित वाक्य का अभिप्राय समझना पर्याप्त है—

'सूच्यग्रम् नेव दास्यामि बिना युद्धेन केशव।'

हे केशव। मैं युद्ध के बिना पांडवों को भूमि का उतना भाग भी देना नहीं चाहता, जितना सूई के अग्रभाग से छेदा जा सके। २० वीं शताब्दी के आरंभ में यूरोप की मनोवृत्ति भी यही हो गई थी। जब किसी जाति में यह मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाये, तब समझ लो कि वह उन्नति की चोटी से गिरावट की खाई की ओर जाने लगा है। अत्यन्त अभ्युदय के कारण जो मनोवृत्ति उत्पन्न होती है, वह उन प्रवृत्तियों को पैदा कर देती है, जिनसे जातियों का पतन अनिवार्य हो जाता है। जब सृष्टि नियम के अनुसार प्राकृतिक उन्नति के सूर्य पर क्षीणता और विनाश के बादल छाने लगते हैं, तब उस जाति के विचारक इस प्रश्न पर विचार करने लगते हैं कि क्या हमारी सभ्यता विनाशोन्मुख है? यदि है तो उस विनाश से बचने का उपाय क्या है? आज पाश्चात्य जगत् उस स्थिति में आ गया है कि उसके विचारक इन प्रश्नों पर विचार करने के लिए बाधित हो गये हैं।

मैंने अभी कहा था कि इस समय पाश्चात्य सभ्यता की लगभग वही दशा है, जो महाभारत के समय भारतीय सभ्यता की थी। जब रोग एक-सा है तो उसका निदान और उपाय भी एक सा होना चाहिए। महाभारत के युद्ध में शस्त्रों और अस्त्रों का आदान-प्रदान होने से पहले भगवान् कृष्ण ने सभ्यता रूपी रोग के कारणों का बहुत सुन्दर विवेचन किया था। वह विवेचन यद्यपि व्यक्ति विषयक है, परन्तु वह लागू होता है राष्ट्रों पर भी। भगवान् ने कहा—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते,
संगात् संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते।
क्रोधात्भवति सम्मोहः, सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति भ्रंशात् बुद्धिनाशो, बुद्धि नाशात् प्रणश्यति॥

आजकल की आर्थिक भाषा में उसका अभिप्राय यह होगा कि जब मनुष्य विषयों के सुखों को अपना ध्येय बतलाते हैं, तब उनकी आवश्यकतायें बढ़ जाती हैं, आवश्यकताओं के बढ़ जाने से औरों के साथ प्रतिस्पर्धा का राष्ट्रों के संघर्ष के रूप में परिवर्तित होना अवश्यंभावी है। वही युद्ध है। युद्ध करने वालों की बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि के नष्ट हो जाने से चाहे वह व्यक्ति हो या जाति, उसका सर्वनाश हो जाता है।

यह सांसारिक अभ्युदय के आरम्भ होने से लेकर सर्वनाश तक का क्रम संसार के इतिहास में हम भूमंडल के भिन्न-भिन्न भागों में जातियों के उत्थान और पतन का जो निरन्तर अभिनय देखते हैं, उसका संचालन इसी क्रम के अनुसार होता है। जाति अपनी सभ्यता का परिष्कार लेकर उठती है। जाति के वीर पुत्र बुद्धि और साहस के बल से विजय प्राप्त करते और चारों ओर छा जाते हैं, जिससे जाति की अभिलाषायें बढ़ जाती हैं। मस्तक में अभिमान भर जाता है और हृदय में यह वासना उत्पन्न होती है कि हम संसार भर को अपने आधीन करके विश्व की विभूति का उपभोग करें। जब यह अवस्था उत्पन्न हो जाये, तब समझो कि उस जाति के अधःपतन और विनाश का प्रारम्भ होने वाला है।

महाभारत के युद्ध से पूर्व व्यास मुनि ने अपनी जाति की यह दशा योग की दृष्टि से देख ली थी, तभी तो उन्होंने कहा था—'ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येतत् न च कश्चिच्छृणोति मे। धर्मादर्थश्च कामश्च, कस्मात् धर्मो न सेव्यते।' मैं हाथ उठा कर यह घोषणा करता हूँ, परन्तु मेरी बात कोई सुनता नहीं है कि जब सांसारिक विभूति और सुख धर्म से ही प्राप्त हो सकते हैं, तो मनुष्य धर्म का सेवन ही क्यों नहीं करते। व्यास मुनि ने अपनी जाति की रक्षा का एकमात्र यही उपाय समझा था कि लोग प्रकृति सेवा छोड़ कर धर्म के मार्ग का अनुसरण करें।

परन्तु यहां पहुँच कर मुझे कुछ रुक जाना चाहिये बहुत से श्रोता शायद भगवान् कृष्ण के किये हुए विवेचन से तो सहमत हों, परन्तु व्यास मुनि की बताई हुई औषधि को अंगीकार नहीं करेंगे। वह कहेंगे कि धर्म नाम की वस्तु का मनुष्य की अशान्ति अथवा उन्नति से कोई सम्बन्ध नहीं, उल्टा धर्म ने तो मनुष्य जाति में सदा लड़ाई झगड़े ही पैदा किये हैं। योरुप और एशिया की जातियों के इतिहास धार्मिक युद्धों से भरे पड़े हैं। आज भी भारत में धर्म ही आपसी वैमनस्य का कारण बना हुआ है, ऐसी दशा में हम यह कैसे मान लें कि धर्म कैसे बने। युद्ध बन्द हो जायगा तो मनुष्य जाति सर्वनाश से बच जायगी।

इस आपत्ति के उत्तर में मैं धर्म के विषय पर लंबा व्याख्यान न देकर धर्म की व्याख्या व्यास मुनि के शब्दों में ही करूंगा। व्यास मुनि कहते है—

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्॥

धर्म का रहस्य सुनो और सुनकर उसे हृदयंगम कर लो। वह यह है कि जो तुम्हारी अपनी आत्मा को प्रिय है उसे दूसरों के लिये भी प्रिय समझो। अर्थात् जिसे तुम अपने लिये हितकर समझते हो उसी को दूसरों के लिये भी हितकर मानो और जो तुम्हें स्वयं बुरा लगता है, यह निश्चय रखो वह दूसरों को भी बुरा लगेगा। बस यही धर्म का रहस्य है। मनु ने कहा है-'न लिंगं धर्म कारणम्' किसी वेश भूषा में या किसी पूजन के ढंग में अथवा किताब या ईंट पत्थर में धर्म नहीं है। असली धर्म वह है, जो मनुष्य को यह सिखाता है कि उसे दूसरों से वैसा व्यवहार करना चाहिये जैसे व्यवहार की वह स्वय इच्छा रखता है क्योंकि सब मनुष्य विधाता की दृष्टि में समान हैं। यों तो सभी धर्मों के आचार्यों और प्रचारकों ने सिद्धान्त रूप से मनुष्य जाति की समानता और एकता का उपदेश दिया है परन्तु दुःख की बात है कि उनके अनुयायियों ने असली धर्म को छोड़ दिया, उसकी छाया को पकड़ लिया और क्योंकि छाया एक असत्य वस्तु थी इस लिये आपस में लड़ने, झगड़ने लगे।

इस थोड़े से समय में मैंने दो प्रश्नों का उत्तर देने का यत्न किया है। मूल प्रश्न यह था कि सभ्यता क्या विनाश पथ पर है ? इस प्रश्न को मैंने यह रूप दे दिया है, वर्तमान सभ्यता से मेरा अभिप्राय पाश्चात्य सभ्यता से है। मेरा उत्तर यह है कि हां, वर्तमान सभ्यता पूरे वेग से विनाश

सप्त मर्यादा

आचार्य विद्यानन्द विदेह

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ॥
ऋ० १०. ५. ६. ॥

(कवयः) मेधावियों ने (सप्त मर्यादाः) सात मर्यादायें (ततक्षुः) निर्धारित की हैं । (तासां) उन में से (एकां इत्) एक को भी (अभि गात्) लांघा कि (अंहुरः) पापी हुआ ।

ज्ञानियों ने लोककल्याण के लिये सात सुन्दर मर्यादायें बांधी हैं । पहली मर्यादा है दर्शन की । निस्सन्देह नेत्र देखने के लिये हैं. परन्तु दर्शन की, देखने की, मर्यादा है । देखो पर सुदृष्टि से देखो कुदृष्टि से नहीं । सुदृष्टि से देखना दर्शन की मर्यादा का पालन करना है । ऐसा करने से मनुष्य पुण्य का सम्पादन करता है । कुदृष्टि से देखना दर्शन की मर्यादा का उल्लंघन करना है । ऐसा करने वाला मनुष्य पापी होता है, समाज के लिये भयंकर अभिशाप होता है । पराई नारी को माता, भगिनी और पुत्री की दृष्टि से देखे । परवैभव को देखकर ललचाना या जलना पाप है । अपने पुरुषार्थ से वैभव सम्पादन करो, परधन का अवलोकन करके विकार और विषमता को प्राप्त मत होओ ।

दूसरी मर्यादा श्रवण की है । निश्चय ही कान सुनने के लिये हैं, परन्तु सुनने की, श्रवण करने की भी एक मर्यादा है । शुभ सुनो, सत्य सुनो, भद्र सुनो, वेद सुनो, शास्त्र सुनो. वीरगाथा सुनो, सत्पुरुषों के सच्चरित्र सुनो, सदुपदेश सुनो, सद्गान सुनो, इतिहास सुनो, वीरांगनाओं की वीरतायें सुनो, भजन सुनो, स्तवन सुनो, अभिनन्दन सुनो, परन्तु अश्लील मत सुनो, निन्दा मत सुनो, असत्य मत सुनो, झगड़े टंटे मत सुनो । शुभ और सत्य सुनना श्रवण की मर्यादा का पालन करना है, पुण्योपार्जन करना है । अशुभ और असत्य सुनना श्रवण की मर्यादा का लांघना है, पापी बनना है ।

तीसरी मर्यादा है भक्षण की । भक्ष्य का भक्षण करो, पेय का पान करो, अभक्ष्य का भक्षण न करो, अपेय का पान न करो । भक्ष्य का भक्षण और पेय का पान सुन्दर मर्यादा है । इसके पालन से सुख की वृद्धि और पुण्य की प्राप्ति होती है । अभक्ष्य का भक्षण और अपेय का पान भक्षण-मर्यादा का उल्लंघन है । इससे रोगों की वृद्धि और पाप का संचय होता है । रोग और पाप विनाश की ओर ले जाते हैं । पुण्य की वृद्धि से सुख का विस्तार और आनन्द का प्रसार होता है ।

चौथी मर्यादा भाषण की है । सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् ब्रूयान्नसत्यमप्रियम् । मनुष्य सत्य बोले, सत्य को अ-प्रियता के साथ न बोले । बोलो, सत्य बोलो, भद्र बोलो, मा निन्दत, निन्दा मत करो, अश्लील मत बोलो, वृथा बकवास मत करो; निरर्थक बातें मत करो । यह भाषण की मर्यादा है । इस मर्यादा के पालन से परिवार, समाज और संसार में विश्वास, व्यवस्था और शान्ति का

की ओर जा रही है । दूसरा प्रश्न यह है कि क्या धर्म उसे विनाश के गढ़े में गिरने से बचा सकता है । इसका उत्तर केवल हां या ना में नहीं दिया जा सकता । शायद यह अणुबम की सभ्यता उस कोटि तक पहुँच गई है जहां उसका एक बार विनाश होना आवश्यक है । यदि गिरावट का रास्ता रोकने के लिये धर्म आवेगा तो वह भी अणुबम से जला दिया जावेगा । परन्तु यह बात सत्य है यदि मनुष्य जाति उस विशुद्ध रूप में धर्म को स्वीकार करे जिसकी घोषणा व्यास मुनि ने की थी, तो सामान्यरूप से मनुष्य जाति और मानवीय सभ्यता की रक्षा अब भी हो सकती है ।
—अ० भा० रेडियो के सौजन्य से ।

★

है जिससे उस में खिलाड़ी की भावना का विकास होता है। व्यायाम, कुश्ती आदि के अतिरिक्त गर्मियों में ब्रह्मचारी तैरने का भी अभ्यास करते हैं जो कि एक अत्यन्त उपयोगी कला है। गढ़ मुक्तेश्वर के गंगा स्नान के मेले पर प्रतिवर्ष तैरने की खुली प्रतियोगिता होती है। उस में गुरुकुल के ब्रह्मचारी प्रायः प्रथम पारितोषिक प्राप्त करते हैं। गुरुकुल की हॉकी टीम दूर दूर तक प्रसिद्ध है। ब्रह्मचारियों का मुख्य कार्य खेल नहीं। प्रतिवर्ष कुछ खिलाड़ी अपनी शिक्षा समाप्त कर यहां से चले जाते हैं इस प्रकार हमारी टीम सदा बदलती रहती है इस त्रुटि के रहते हुए भी गुरुकुल की टीम ने कई सान्मुख्यों में शानदार विजय प्राप्त की है। जिसके कारण उसे अनेक सान्मुख्यों में आग्रह-पूर्वक बुलाया जाता है। मेरठ, शाहजहांपुर, बिजनौर, सहारनपुर आदि स्थानों में गुरुकुल दल ने समय-समय पर बहुत प्रशंसा प्राप्त की है।

मानसिक विकास

श्रेणी के लिये नियत पाठ्य पुस्तकें पढ़ने के साथ-साथ वक्तृत्व तथा लेखन कला की विशेष उन्नति करने के लिये ब्रह्मचारियों ने अपनी आश्रम-सभाएं बना रखी हैं। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में वाद-विवाद तथा वक्तृत्व का अभ्यास करने के लिये अलग-अलग सभाएं हैं। इन सभाओं की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी जब जब विभिन्न विश्वविद्यालयों की हिन्दी तथा संस्कृत व्याख्यान प्रतियोगिताओं में भाग लेने गये तब वे सर्व प्रथम रहे। इस से यह भी सिद्ध होता है कि अन्य विश्वविद्यालयों की अपेक्षा गुरुकुल में छात्रों का मानसिक विकास कहीं अधिक होता है अपने इस मानसिक विकास को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचारी समय-समय पर अपने उपाध्यायों तथा बाहर के विद्वानों के विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान भी करवाते हैं। लेखनकला की उन्नति के लिये ये सभाएं अपनी पत्रिकाएं भी प्रकाशित करती है उन में उच्चकोटि के निबन्ध, गल्प, कविताएं, सामयिक टिप्पणियां आदि रहती हैं। इन सभाओं के कारण ही गुरुकुल के अनेक स्नातक सफल लेखक, यशस्वी कवि, कृतकार्य सम्पादक तथा प्रसिद्ध वक्ता बने हैं। तेईस, चौबीस वर्ष की छोटी सी आयु में ग्रन्थ-रचना कर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त करने का सौभाग्य गुरुकुल के स्नातकों को ही प्राप्त है।

गुरुकुल के स्नातक अन्य विश्वविद्यालयों के स्नातकों की अपेक्षा प्रायः अधिक धार्मिक वृत्ति वाले, देशप्रेमी, ईमानदार, सदाचारी, सेवाव्रती तथा तपस्वी होते हैं। हाथ से काम करने में वे संकोच या लज्जा अनुभव नहीं करते। गुरुकुल में उन सब उपायों तथा साधनों पर विशेष बल दिया जाता है जिन से नवयुवकों के शरीर, मन तथा आत्मा का स्वाभाविक विकास अधिक हो सके। गुरुकुल में प्राचीन शास्त्रों और वेदों के गम्भीर अध्ययन के साथ-साथ आधुनिक नवीन विज्ञानों तथा अंग्रेजी भाषा और साहित्य का भी उच्च ज्ञान उन्हें करवा दिया जाता है।

मातृभाषा द्वारा उच्चतम शिक्षा

जो बुराई संसार में किसी भी सभ्य देश के विश्वविद्यालयों में नहीं है तथा भारत का कोई भी सरकारी शिक्षणालय जिस से बचा हुआ नहीं वह है विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा। हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि शिक्षा का माध्यम बन सकने की योग्यता अन्य भाषा में हो ही नहीं सकती। अन्य भाषा द्वारा साधारण से साधारण विषय को भी समझना विद्यार्थी के लिये कठिन होता है। कठिन विषय को तो प्रायः उन्हीं शब्दों में रट लेने के सिवाय अन्य कोई उपाय ही नहीं। इस प्रकार रटे हुए शब्द विद्यार्थी के मस्तिष्क में विजातीय द्रव्य की तरह संचित हो जाते हैं जो परीक्षा के बाद इस प्रकार उड़ जाते हैं—जिस प्रकार पिंजरा खुलने पर पक्षी। उन में निहित विचार विद्यार्थी के विचार के भाग नहीं बन जाते। विद्यार्थी विषय को समझ नहीं

सकता इस लिये उसे बाजारू नोटस तथा समरियां ज्यों की त्यों याद करने के लिये बाधित होना पड़ता है। यदि विषय समझ में आजाए तो उसे रटने की आवश्यकता नहीं होती। मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करते समय केवल विषय की कठिनाई को ही हल करना पड़ता है किन्तु अन्य भाषा में पढ़ते हुए भाषा तथा विषय दोनों को समझना पड़ता है। कभी-कभी भाषा के कारण ही विषय समझ में नहीं आता। अन्य भाषा द्वारा शिक्षा देने से विद्यार्थी के मस्तिष्क पर दुगना बोझ पड़ता है यह बड़ा भारी अत्याचार है। पुस्तकें मातृभाषा में हों तो अब की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान वह भी बड़ी सुगमता से और थोड़े समय में प्राप्त किया जा सकता है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् देश के नेताओं का ध्यान इस बुराई की ओर अब गया अवश्य है, किन्तु वे भी इसे दूर करने के लिये अभ पर्याप्त चिन्तित नहीं हैं। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इसे बहुत पहले अनुभव कर लिया था। इस लिये उन्होंने गुरुकुल में प्रारम्भ से ही उच्च शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी को रखा। गुरुकुल की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है यहां यह परीक्षण आधी शती से सफलता पूर्वक चल रहा है।

वेदादि प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन

गुरुकुल एक धार्मिक तथा राष्ट्रिय संस्था है किन्तु यहां की शिक्षा अत्यन्त उदार है। उच्चतम शिक्षा प्राप्त करके भी यहां के विद्यार्थी का झुकाव न तो नास्तिकता की ओर होता है न वह किसी सिद्धान्त को आंख मीच कर यों ही मान लेने के लिये तैयार होता है। उस में अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता ही नहीं, पूर्ण सहानुभूति भी होती है।। वेदों, दर्शनों तथा साहित्य का जितना गम्भीर, व्यापक तथा धार्मिक अध्ययन यहां करवाया जाता है उतना भारत के अन्य किसी भी विश्वविद्यालय में नहीं करवाया जाता। भारतीय प्राचीन साहित्य की प्रायः सभी शाखाओं में यहां के विद्यार्थी की बेरोक-टोक गति हो जाती है। वह उन में अनुसन्धान के योग्य हो जाता है, वेदों पर पाश्चात्य विद्वानों के आक्षेपों का समाधान उसे बताया जाता है, वेद को समझने के लिये जिस साहित्य को पहले पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् व्याकरण, निरुक्त, प्रातिशाख्य, ज्योतिष आदि वह सब उसे पढ़ाया जाता है, इस प्रकार वह वेद सम्बन्धी अपने अध्ययन को स्वतन्त्र रूप में आगे बढ़ाने के योग्य हो जाता है। वह दर्शनों के सिद्धान्तों को खूब समझता है, उन्हें दूसरों को सरल भाषा में समझा सकता है। संस्कृत-साहित्य पर उसका पूर्ण अधिकार हो जाता है। वह कवियों की सूक्ष्म आलोचना तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से कर सकता है, उसे प्राकृत भाषा तथा पाली से भी परिचित करवा दिया जाता है जिस से कि वह जैन, बौद्ध साहित्य आदि में अनुसन्धान के कार्य कर सके। गुरुकुल का विद्यार्थी अंग्रेजी कवियों के साथ-साथ बाल्मीकि, कालिदास आदि को खूब जानता है।

भारतवर्ष के सांस्कृतिक नवजागरण में गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी अपनी अमूल्य सेवाएं देता रहा है। इस विद्यातीर्थ से प्रतिवर्ष ऐसे तरुण विचारक और ज्ञानयात्री बाहर निकलते हैं जो राष्ट्र के चरित्र और इतिहास के निर्माण में अपनी विशेष देन दे सकते हैं, यदि उन को अपनी शक्तियों की अभिव्यक्ति के लिये अनुकूल अवस्थाएं अवसर और उचित प्रोत्साहन प्रदान किया जाय। गुरुकुल श्रद्धानन्द जी के इस शिक्षा-तपोवन और संस्कृति-तीर्थ की तुलना पश्चिमी देशों के उन आश्रमिक विद्यालयों (पब्लिक स्कूल्स) से सहज में ही की जा सकती है। जो समसामयिक मानव-समाज की विचार-संस्कृति और चरित्र संघटन में अपना महत्त्वपूर्ण भाग प्रदान करते हैं।

★

गुरुकुल समाचार

ऋतु—वसन्त पंचमी बीत गई तथापि अभी शीत का जोर कम नहीं हुआ है। प्रातः सायं अच्छी सर्दी पड़ रही है। पतझड़ के पवन-झकोरे अभी तक गरम लबादे लपेटने को बाध्य कर रहे हैं। शहतूत आड़ू, शीशम आदि के वृक्ष-विहीन होकर पतझड़ का वैभव प्रदर्शित कर रहे हैं। अभी तक ढाक के पेड़ों पर टेसू की रंगत नहीं आई है। गुरुकुल के चहुँ ओर की खेतियों में सरसों की अपूर्व बहार है। गेहूँ और चने के खेत भी लहरा रहे हैं। कुलवासियों का स्वास्थ्य अच्छा है।

गणराज्य दिवस

२६ जनवरी को समस्त कुलवासियों ने स्नेह और उत्साह के साथ गणराज्य दिवस मनाया। प्रातःकाल आठ बजे समस्त कुलवासी झंडा चौक में समवेत हुए। विश्वविद्यालय के वाद्यदल द्वारा बजाए जाते हुए मधुर और उद्बोधक स्वरों ने वातावरण को भव्य और चेतनापूर्ण बनाया हुआ था। सबने मिल राष्ट्रीय गान गाया। तदनन्तर गुरुकुलाचार्य श्री पं० प्रियव्रत जी ने दिवस के महत्व को समझाते हुए राष्ट्र की स्वातन्त्र्य-लक्ष्मी की सच्ची पूजा और उसकी सुरक्षा को लक्ष्य करके एक छोटा प्रवचन करते हुए नवीन राष्ट्रपताका को फहराने की विधि सम्पन्न की। वन्दे-मातरम् गीत गाया, ध्वज-वन्दन किया गया और शहीदों तथा राष्ट्र-विभूतियों के नाम पर जय के नारे लगाए गए। सायंकाल के समय क्रीडा-सान्मुख्यों के उत्साहक कार्यक्रम होते रहे।

महात्मा गान्धी दिवस

महात्मा गांधी जी के बलिदान दिवस के उपलक्ष्य में समस्त कुलवासियों की एक सभा आचार्य श्री पं० प्रियव्रत जी की अध्यक्षता में विद्यालय प्रार्थना भवन में सम्पन्न हुई। जिसमें ब्रह्मचारियों और गुरुजनों ने चरित्र नायक के जीवन-दर्शन और कार्यकलापों पर नाना दृष्टियों से विचार करते हुए उनकी अद्भुत सेवाओं के प्रति श्रद्धा के फूल चढ़ाए। श्री शंकरदेव विद्यालंकार ने गांधी-अर्थशास्त्र के विकेन्द्रीकरण सिद्धांत के विषय में विशेष रूप से प्रकाश डाला। श्री आचार्य जी ने भी गांधी जी के अपरिग्रह सिद्धांत की चर्चा करते हुए विश्वशांति के लिए अपरिग्रह पालन कितना जरूरी है इस तत्व को समझाया।

वसन्त पञ्चमी

११ फरवरी को कुलवासियों ने वसन्तोत्सव प्रेम-पूर्वक मनाया। दूधियाबन्द के समीप नहर के तीर पर सुहावने स्थान पर प्रातः कुलवन्दना के अनन्तर वॉली-बॉल का सान्मुख्य रचा गया। अपराह्न में प्रीतिभोज सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् साहित्योपाध्याय श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार की अध्यक्षता में साहित्य-गोष्ठी और गीतों का कार्यक्रम हुआ। सारा दिन आनन्द और उल्लास से व्यतीत हुआ।

अन्तर्विद्यालय प्रतियोगिताएं

[छात्रों के यशस्वी कार्यकलाप]

गतवर्ष से पंचपुरी में स्थित विद्यालयों (हाई स्कूलों) में एक बहुत अच्छी प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई है। जनवरी मास में समस्त विद्यालयों के छात्रों की शारीरिक और मानसिक तालीम और उसकी प्रगति का परिचय पाने के लिए विविध प्रतियोगिताएं और स्पर्धाएं आयोजित होती हैं। इनमें विजय पाने वाली संस्थाओं तथा यशस्वी छात्रों को पुरस्कार दिए जाते हैं। इन कार्यक्रमों में बड़े उत्साह, उल्लास और जिन्दादिली का वातावरण रहता है। ये कार्यक्रम तीन प्रकार के होते हैं।

(क) मैदानी सामूहिक खेलों में सान्मुख्य।
(ख) ओलम्पिक क्रीडाओं की स्पर्धाएं।
(ग) बौद्धिक प्रगति प्रदर्शक संघर्ष।

इस बार इन उत्साहप्रद कार्यों में गुरुकुल के विद्यालय विभाग के छात्रों ने बड़ी दिलचस्पी और दक्षता प्रदर्शित की है। उन्होंने प्रभूत मात्रा में पुरस्कार प्राप्त करके अपनी मातृ-संस्था की शान बढ़ाई है।

ब्रह्मचारियों द्वारा जीते गए पुरस्कारों का क्रम इस प्रकार है—

१. हॉकी के टूर्नामेंट में—गुरुकुल-दल ने चांदी का प्याला प्राप्त किया।

२. ओलम्पिक क्रीड़ाओं में प्रथम आने पर सर्वोत्कृष्ट रहने पर चांदी की ढाल प्राप्त की।

३. हिन्दी भाषण-प्रतियोगिता में चांदी का प्याला प्राप्त किया।

४. तकली द्वारा सूत कातने की स्पर्धा में चांदी का प्याला जीत लाए।

व्यक्तिरूप में यशस्वी होने वाले छात्रों के नाम तथा उनके कार्यों का विवरण इस प्रकार है—

१. सौ गज की दौड़ में ब्र० विजय ९म श्रेणी तथा ब्र० ताराचन्द ९म श्रेणी प्रथम और द्वितीय रहे।

२. ४४० गज की दौड़ में भी ब्र० विजय और ब्र० ताराचन्द प्रथम और द्वितीय आए।

३. ८८० गज की दौड़ में ब्र० विजय दूसरे पर आया।

४. झंडी दौड़ में ब्र० विजय, ताराचन्द, सुधीरकुमार ९म तथा रघुवीर ८म की मंडली प्रथम नम्बर पर आई।

५. हनुमान कूद (लम्बी कूद) में ब्र० विजय द्वितीय आया।

६. कवायद (ड्रिल) में गुरुकुल दल दूसरे पर रहा।

७. सुभाषण में ब्र० नृपेन्द्र ८म तृतीय रहा।

८. सुलेखन में ब्र० कुलदीप ८म द्वितीय रहा।

९. तकली कातने की स्पर्धा में ब्र० कुलदीप ८म प्रथम रहा।

१०. हिन्दी वाद-विवाद में ब्र० जयवीर ८म द्वितीय तथा विजय ९म तृतीय रहा।

११. तात्कालिक भाषण में ब्र० विजय ९म प्रथम आया।

प्राथमिक विभाग के छात्रों का विवरण इस प्रकार है—

१. सौ गज की दौड़ में ब्र० श्रीकृष्ण ६ष्ठ और शिवाजी ६ष्ठ क्रमशः २य और ३य नम्बर पर आए।

२. ४४० गज की दौड़ में ब्र० शिवाजी २य और श्रीकृष्ण ३य रहा।

३. झंडी दौड़ में ब्र० गोपाल ५ष्ठ, शिवाजी ६ष्ठ, धनपति ५म और श्रीकृष्ण की मंडली प्रथम नम्बर पर आई।

४. तीन टांग की दौड़ में ब्र० योगेन्द्र और श्रीकृष्ण की जोड़ी दूसरे पर आई और सुरेन्द्र ४र्थ तथा अश्विनी कुमार ४र्थ की जोड़ी तीसरे नम्बर पर आई।

भाषण प्रतियोगिता में विजय

देहरादून की आर्यकुमार सभा ने बड़े पैमाने पर विद्यार्थियों की एक हिन्दी भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया था। प्रतियोगिता में केवल कॉलेजों की १२वीं कक्षा तक के विद्यार्थी भाग ले सकते थे। इसमें भाग लेने के लिए गुरुकुल महाविद्यालय की ११वीं श्रेणी के दो ब्र० ओम्प्रकाश और सत्यव्रत गए थे। कुल बाईस संस्थाओं ने प्रतियोगिता में भाग लिया था। हर्ष का विषय है कि प्रतियोगिता में गुरुकुल कांगड़ी के प्रतिनिधियों ने शानदार विजय प्राप्त की की है। गुरुकुल को चांदी का एक चल-विजय चिह्न (ढाल) प्राप्त हुआ है। वाद-विवाद का विषय यह था—'धर्मानुप्राणित राजनीति से ही रामराज्य की स्थापना हो सकती है।' सर्वोत्तम वक्ता का पुरस्कार भी गुरुकुल के ब्रह्मचारी ओम्प्रकाश को प्राप्त हुआ है।

गुरुकुल महोत्सव

इस वर्ष गुरुकुल का वार्षिक महोत्सव १३-१४-१५ और १६ एप्रिल को मनाया जाना निश्चित हुआ है। नवीन छात्रों का प्रवेश भी इसी समय होगा। जो सज्जन अपने बालकों को प्रविष्ट कराना चाहें उन्हें पहिले से प्रवेश-पत्र मंगा कर अपने बालक के प्रवेश

की स्वीकृति मंगा लेनी चाहिए। उत्सव की तैयारी प्रारम्भ हो गई है।

स्नातक भीष्मदेव जी का अवसान

शोक का विषय है कि गुरुकुल के प्रिय और होनहार स्नातक भीष्मदेव जी वेदालंकार का पिछले दिनों अपने वतन नवसारी में देहावसान हो गया। वे पिछले ४-५ मास से बीमार चले आ रहे थे। गत वर्ष वे संस्कृत-साहित्य विषय लेकर एम. ए. की परीक्षा के लिए मेरठ केन्द्र में बैठे थे और यशस्वी अंकों से प्रथम वर्ष में उत्तीर्ण हुए थे। स्नातक होने के बाद से वे गुरुकुल सूपा (नवसारी) में अध्यापन कार्य कर रहे थे। आपका अपना प्रिय विषय दर्शन-शास्त्र था। श्री अरविन्द के तत्वज्ञान के प्रति आपका विशेष प्रेम था। आप बड़े साधु स्वभाव के विनम्र व्यक्ति थे। आपके अवसान पर सब कुलवासी दुःखी है और आपके आत्मीयजनों तथा मित्रों के साथ सहानुभूति व्यक्त करते हैं। आपकी विद्यालय की शिक्षा गुरुकुल सूपा में हुई थी और सन् १९४२ में आप कांगड़ी से स्नातक हुए थे।

गुरुकुल के स्नातक—आरम्भ काल से १९५० तक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से जो स्नातक निकले हैं उनका सचित्र परिचय इस पुस्तक में दिया गया है। समाज, राजनीति, व्यापार, पत्रकारिता आदि विविध क्षेत्रों में गुरुकुल के स्नातकों ने जो गौरवपूर्ण स्थान बना लिया है उसका ज्ञान इस से होता है। देश के प्रथम राष्ट्रीय शिक्षणालय के स्नातकों का विस्तृत परिदेने वाली इस पुस्तक को आज ही मंगाइये। मूल्य ३)।

वरुण की नौका—लेखक श्री पं० प्रियव्रत जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय। इस पुस्तक में वरुण सूक्तों में आये वेदमन्त्रों की विद्वत्तापूर्ण सरल व्याख्या की है। मूल्य प्रथम भाग ३), द्वितीय भाग ३)।

मिलने का पता—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।

स्वास्थ्य समाचार माघ मास

श्रेणी	नाम रोगी ब्रह्मचारी	नाम रोग	कितने दिन रोगी
१५	कर्मवीर	प्रतिश्याय ज्वर	११ दिन
१५	सुरेशचन्द्र	चोट	५
१३	रवीन्द्र	चोट	२
१३	नारायणदत्त	कास	६
१३	ओम्प्रकाश	चोट	३
१२	रामप्रकाश	प्रतिश्याय ज्वर	५
१२	गोपालकृष्ण	,, ,,	५
१२	स्वतन्त्रकुमार	,, ,,	५
११	बालकृष्ण	आन्तशूल	२
११	रघुनाथ	ज्वर	२
९	अभयदेव	चोट	५
९	सुधीर	ज्वर	४
९	विजयकुमार	चोट	५
९	रमेश	ज्वर	६
८	जितेन्द्र	चोट	६
६	जितेन्द्र	निमोनिया	१२
४	त्रिपुरेन्द्र	,,	६
५	हेमचन्द्र	ज्वरकास	३
६	हरिश्चन्द्र	,,	३
६	गोपाल	,,	३
६	रवीन्द्र	ज्वर	३
७	देवेन्द्र	प्रतिश्याय	४
५	सुभाष	,,	५
२	सुभाष	,,	५
२	प्रमोद	,,	३
३	जितेन्द्र	,,	५
२	कौशल किशोर	मम्पज	१२
२	राकेश	चोट	४

उपर्युक्त ब्रह्मचारी रुग्ण हुए थे। अब सब स्वस्थ हैं।

★

मुद्रक—श्री हरिवंश वेदालंकार। गुरुकुल मुद्रणालय, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार।
प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार।

GURUKUL PATRIKA

2007, G.K.U.